पानी पड़े पत्ता हिले

अंतर्भारतीय पुस्तकमाला

पानी पड़े पत्ता हिले

गौरकिशोर घोष

अनुवाद
डा. माहेश्वर

नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया

मानवधर्मी शिवनारायण राय के लिए

भूमिका

बांग्ला साहित्य का इतिहास लगभग हजार वर्षों का है परंतु बांग्ला उपन्यास का इतिहास केवल एक सौ तीस वर्षों का ही है। अंग्रेजी साहित्य का मंथन कर बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय सन् 1865 ई. में 'दुर्गेश नन्दिनी' लेकर उपस्थित हुए जो बांग्ला साहित्य का पहला सार्थक उपन्यास है। अंग्रेजी साहित्य के आरंभ के उपन्यास रोमांस से भरपूर थे। यही कारण है कि बंकिम के पूरे चौदह उपन्यास असंभव तथा अलौकिक घटनाओं से भरे हैं। इनके चरित्र (पात्र) उतने तर्कपूर्ण नहीं हैं जितने कि सनातन हिंदू धर्म के नवजागरण के उपाय ढूंढ़ने में नियंत्रित।

उपन्यास की मूल धारा है नर नारियों का अबाध प्रेम। बंकिम ने उनकी उपेक्षा नहीं की। अपने उपन्यास में उन्होंने यौनवृत्ति को बार बार धिक्कारा है। उनके उपन्यास 'विषवृक्ष' (1873 ई.), 'चन्द्रशेखर' (1875 ई.) 'कृष्णकान्त का वसीयतनामा' (1878 ई.) में अंतःसलिल प्रेम को उजागर करने में उनकी शिल्पीसत्ता का जो परिचय मिलता है, गृहस्थ जीवन की रूढ़िवादी नीतियों के कारण वह खंडित हो गई। उनके यहां कई रूढ़ियां खंडित हुईं। आम जनमानस के वैयक्तिक अधिकारों का पक्ष लिया जाने लगा। परवर्ती धारा के नेतृत्व में रवीन्द्रनाथ ठाकुर आते हैं। रवीन्द्रनाथ के तेरह उपन्यासों में 'चोखेरबाली' (1903 ई.), 'घरे बाइरे' (1916 ई.), 'शेषेर कविता' (1929 ई.) में बंगललनाओं को अंतःपुर की लक्ष्मण रेखा पार कर बाहर की दुनिया में कदम रखने का अधिकार तो मिला ही, साथ ही संप्रदायवाद, जातिवाद आदि का बहिष्कार भी हुआ।

दूसरा बदलाव शरत्चन्द्र के साहित्य से आया। बांग्ला कथा साहित्य में ये ही पहले लेखक थे जिनका इस धरती से बहुत गहरा संबंध था। उनकी इच्छा थी कि मनुष्य होकर भी जिनके आंसुओं का हिसाब मनुष्यों ने कभी नहीं लिया वैसे उपेक्षित लोगों को साहित्य के आंगन में लेकर आएं। उनके सतरह उपन्यासों में से प्रायः सभी में यह बात प्रकट हुई है कि 'समाज नामधारी अत्यंत छोटे देवता' वास्तविक जीवन में कितना विशाल रूप लेकर सामने उपस्थित होते हैं। उनके 'पल्लीसमाज' (1916 ई.), 'चरित्रहीन (1917 ई.), 'श्रीकान्त' (1917, 1918, 1927, 1933 ई.), 'गृहदाह' (1920 ई.), 'शेष प्रश्न'

(1931 ई.) आदि उपन्यासों में युगों से सम्मान रहित नारी जाति की दशा चित्रित हुई है। शरत्‌चन्द्र ने यह प्रश्न भी उपस्थित किया है कि नारी को आत्मनियंत्रण का अधिकार बाहरी आंदोलनों के द्वारा क्यों नहीं दिया जा सकता।

बीसवीं शती के बीस तथा तीस के दशक में केवल अंग्रेजी साहित्य ही नहीं, यूरोप के विभिन्न देशों के नाना प्रकार के मनोभावों ने बांग्ला उपन्यास को संपूर्ण रूप से झकझोर दिया। रवीन्द्रनाथ के विदेश प्रेम के उच्चमार्गीय बुद्धिविलास तथा शरत्‌चन्द्र के ब्राह्मण समाज व्यवस्था के सनातन संस्कारों में नियति निर्दिष्ट प्रेम के बंधन में न बंधकर कुछ साहित्यिक सुदूर सागर पार से प्राप्त संत्रासवाद के द्वारा देहात्मवादी जीवनधारा को पल्लवित करने में तत्पर हुए। जिन दार्शनिकों तथा साहित्यिकों के नवीन पथ निर्देश से वे अनुप्राणित हुए उनमें विशेष थे शोपेनहावर, नीत्शे, फ्रायड, मोपासां, हामसुन, योहान बोयार, लॉरेन्स, पिरानदेल्लो, आन्द्रे जीद। इसके साथ एक और भावधारा का भी आविर्भाव हुआ, जिसके पीछे प्रेरणास्वरूप रूसी विद्रोह तथा मार्क्स, एंजेल्स, लेनिन, गोर्की, दोस्तोयव्स्की, तुर्गनेव, फ्लेबयर आदि थे। इनके प्रभाव से उपन्यास में आदिम यौन लालसा, स्वप्नावेश तथा निर्लज्ज कामक्रीड़ा की लहर-सी उमड़ पड़ी। परवर्ती लेखकों के हाथों मजदूर, खेतिहर, चोर, घुमक्कड़, भिखारी, छोटे से छोटा किरानी बेरोक-टोक घुस पड़े। इन दो समूहों के उल्लेखनीय लेखकों में नरेशचन्द्र सेन गुप्त, मनीन्द्रलाल बसु, शैलजानन्द मुखोपाध्याय, प्रेमांकुर आतर्थी, अचिन्त्यकुमार सेन गुप्त, प्रेमेन्द्र मित्र, चारुचन्द्र बन्द्योपाध्याय, प्रबोधकुमार सान्याल, बुद्धदेव बसु, जगदीश गुप्त, मनोरंजन हाजरा आदि प्रमुख हैं। इनमें से किसी को भी उपन्यास की महान प्रतिभा के रूप में स्वीकृति नहीं मिली क्योंकि इस परिप्रेक्ष्य में वे स्वदेशी परंपरा के सार्थक उत्तराधिकारी नहीं थे। विदेशी कलमी पौध पर कुछ मौसमी फूल थोड़े समय के लिए खिले भी पर कुछ स्थायी नहीं फला।

तीस के दशक से स्थायी प्रतिनिधित्व का दायित्व जिन तीन उपन्यासकारों पर पड़ा वे तीनों ही बन्द्योपाध्याय थे—विभूतिभूषण, ताराशंकर तथा मानिक। इन तीनों ने नए तरीके से बांग्ला उपन्यास को त्रिविध संपदाओं से भरा। सबसे पहला उपन्यास 'पथेर पांचाली' (1929 ई.) से आरंभ कर 'अपराजित' (1932 ई.), 'आरण्यक' (1939 ई.), 'अशनिसंकेत' (रचनाकाल : 1944-46, पुस्तकाकार में 1959 ई.), 'इछामती' (1950 ई.) आदि चौदह उपन्यासों में विभूतिभूषण ने ग्रामीण बंगाल तथा बिहार सहित भारत के पूर्वांचल के अरण्यप्रकृति के रूप-रस-गंध के प्रत्यक्षीकरण में सफलता प्राप्त की। केवल पेड़-पौधे ही नहीं, उनके लेखन में गांव के द्वेष, कूटनीति, शकुनि समान क्रूरता आदि भी अनिवार्य रूप से उपस्थित हो गए हैं क्योंकि उनकी रचना का मूल प्रवाह हमारी कल्पनाओं को आशा और आकांक्षाओं से रंगीन तो बनाता है लेकिन उनकी लेखनी भाव जगत के साथ-साथ वास्तविक जगत में भी विचरण करती है। बंगालियों के मन में (सत्यजित राय के चलचित्र

रूपायण से सारे विश्व मानस में) 'पथेर पांचाली' का किशोर नायक 'अपु' किशोरावस्था का प्रतीक बन चुका है, अगणित माता-पिता के स्वप्नलोक के 'प्रथम वसंत' के किसलय का नाम है अपु, हर माता-पिता के मन में एक भयानक डर भी रहता है जिसका नाम 'दुर्गा' है। बंगाली जनक-जननी के सुख और दुख के ये दो नाम हैं।

ताराशंकर बन्द्योपाध्याय का लेखन सामंतवाद के बिखराव, पश्चिम बंगाल के गढ़ अंचल के संथाल, बाउरी, कहार, बाउल, बैरागी, सपेरे, डोम, झुमुरों के दल आदि अंत्यज श्रेणी के नृत्य-गीतमय जीवन के सुख-दुख से भरपूर है। अपने प्रथम उपन्यास 'चैताली धूर्णि' (1931 ई.) से लेकर 'धात्री देवता' (1939 ई.), 'कालिन्दी' (1940 ई.), 'कवि', 'गणदेवता' (1942 ई.), 'हांसुली बांकेर उपकथा' (1947 ई.), 'नागिनी कन्यार काहिनी' (1952 ई.), 'आरोग्य निकेतन' (1953 ई.) आदि सत्तावन उपन्यासों के कारण वे बांग्ला कथा साहित्य के चोटी के साहित्यकार माने जाने लगे।

मानिक बंद्योपाध्याय के यहां वर्ग-संघर्ष से पूर्ण जनमानस की अंतःप्रकृति का चेहरा विशेष रूप से व्यक्त हो उठा। उन्होंने अपने 'दिवारात्रिर काव्य' (1935 ई.), 'पुतुल नाचेर इतिकथा' (1936 ई.), 'अहिंसा' (1941 ई.), 'चतुष्कोण' (1942 ई.) आदि उपन्यासों में धनिक तथा पेटिबुर्जुआ वर्ग की आत्मरति, यौन विकृति, लोभ, स्वार्थांधता और खोखलेपन की बात उठाई। कम्युनिस्ट बन जाने के बाद उनके लेखन का प्रधान विषय बना खेतिहर-मजदूर-निम्नवित्त लोगों की अपनी अस्तित्व की लड़ाई। 'पद्मानदीर माझि' (1936 ई.) उपन्यास में गांव-देहात के मल्लाहों के जीवन-संघर्ष की बात तथा 'शहरतली' (1940 ई.) में शहरों में रहने वाले मजदूरों की रोजी-रोटी के लिए एक साथ मिलकर यूनियन गढ़ने का आश्चर्यजनक उल्लेख मिलता है जो उन्होंने कम्युनिस्ट बनने से पहले ही लिखा था। इस तरह के विषय को उपन्यास में ढालने वालों में वे पहले व्यक्ति थे। उन्होंने छत्तीस उपन्यास लिखे। 'दर्पण' (1945 ई.), 'चिन्तामणि' (1946 ई.) 'चिह्न' (1947 ई.) तथा 'सोनार चेये दामी' (1951 ई.) आदि उपन्यास भी उनके स्थायी कीर्तिमान हैं।

तीस से साठ के दशकों के बीच कई उपन्यासकारों द्वारा उपन्यास के विषय तथा रूपों में काफी विभिन्नता लाई गई। तार्किक दृष्टि रखने वाले मननशीलता के क्षेत्र में मुख्य थे—धूर्जटिप्रसाद मुखोपाध्याय, अन्नदा शंकर राय, दिलीपकुमार राय, गोपाल हालदार, संजय भट्टाचार्य। कहानी-प्रधान तथा रोमांटिकता में थे वनफूल, विभूतिभूषण मुखोपाध्याय, मनोज बसु, सरोजकुमार राय चौधरी, प्रमथनाथ बिशी, आशापूर्णा देवी, समरेश बसु, ज्योतिरिन्द्र नन्दी, बिमल कर, सन्तोषकुमार घोष, नरेन्द्रनाथ मित्र, शंकर आदि। राजनीतिक पृष्ठभूमि पर व्यक्ति तथा समूह के द्वंद्व को उद्घाटित करते हुए सतीनाथ भादुड़ी, रमेशचन्द्र सेन, सुबोध घोष, सुशील जाना, असीम राय सामने आए और ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर आधुनिक जीवन की प्रासंगिकता प्रस्तुत की नारायण गंगोपाध्याय, बिमल मित्र, कमलकुमार मजूमदार

आदि ने। डिटेक्टिव रहस्य-रोमांच के क्षेत्र में हेमेन्द्र कुमार राय, शरदिन्दु बंद्योपाध्याय आदि उल्लेखनीय हैं।

बुर्जुआ एस्टेब्लिशमेंट के प्रबल समर्थन तथा संरक्षण के फलस्वरूप चालीस तथा पचास के दशक के अधिकांश लेखक कायमी स्वार्थ के अनुयायी थे। परिणामस्वरूप उस समय की तीन भयानक घटनाओं मन्वंतर, विश्वयुद्ध की उन्मत्त कालाबाजारी, नैतिक मूल्यों का तीव्र गति से ह्रास और आजादी का मूल्य चुकाने के लिए देश के विभाजन संबंधी विषयों का कविता, छोटी कहानी तथा नाटकों में रूपायण तो हुआ लेकिन इनका उचित प्रतिफलन उपन्यास में नहीं हुआ—यह तत्कालीन बांग्ला उपन्यासकारों के लिए दुखद बात है।

महाराष्ट्र, केरल की तरह बंगाल भी उस समय कम्युनिस्ट आंदोलन का केंद्र था। उसके भीतर भी फल्गु नदी की तरह सोवियत तथा अंतर्राष्ट्रीय कम्युनिस्ट का मेलबंध प्रवहमान था। प्रथम श्रेणी के कुछ महान रचनाकार (उपन्यास में मानिक बंद्योपाध्याय, कविता में सुकान्त भट्टाचार्य, सुभाष मुखोपाध्याय) सहित द्वितीय श्रेणी के प्रायः सभी लेखकों के लिए उस समय कम्युनिस्ट आंदोलनों में शरीक होना ही प्रगतिशीलता का लक्षण माना जाता था।

उस समय वामपंथी पत्र-पत्रिकाओं ने ही युवा वर्ग को उत्साहित कर रखा था। बात कुछ यों बनी कि पचास के दशक का पूर्वार्द्ध पूरी तरह अपने-अपने अस्तित्व को बनाए रखने के काल के रूप में परिलक्षित हुआ। अंग्रेजी में जिसे Polarization कहते हैं। महाभारतीय भाषा में जिसे 'सेनोद्‌योगपर्वाध्याय' कहा जाता है—कौन किस शिविर से जुड़ेगा इसी की वचनबद्धता का काल।

सन् 1956 में सोवियत रूस की कम्युनिस्ट पार्टी के बीसवें अधिवेशन में स्टैलिन विरोधी रुख अपनाने से सहसा विश्व की कम्युनिस्ट दुनिया में एक दबाव सा उत्पन्न हुआ'। अचानक इस अग्नुत्पात से कम्युनिस्ट आदर्शवाद में जो दरारें आई, विश्वास को जो चोट पहुंची, इसके फलस्वरूप साठ के दशक के वामपंथियों के पैर के नीचे से जमीन सरकने-सी लगी। इधर दक्षिणपंथियों की लेखनी वृद्धावस्था में पहुंच चुकी थी। उसी समय पश्चिमी दुनिया की तरह यहां भी अस्तित्ववादी दर्शन की युक्ति से विमुख लहर दौड़ पड़ी—कॉफी हाउस इस तर्क-वितर्क से गरम हो उठे कि कितना सार्त्र को पढ़ा है, उसे कितना समझा है, कौन अस्तित्ववाद को कितना मानता है, अपने लेख में कितना प्रकट किया है...? मजा तब और भी आया जब यह पता चला कि सार्त्र कम्युनिस्ट है। और, तब कम्युनिजम के साथ एक्जिस्टेंशलिजम (existentialism) की मिलावट चल पड़ी। ऑस्ट्रिया के लेखक फ्रान्जकाफका की 'मेटामॉरफॉसिस' (Metamorphosis) कहानी का नायक जो अपने को एक कीड़े में रूपांतरित होते देखता है, 'द ट्रायल' (The Trial) उपन्यास के नायक जोसेफ का स्वयं को बचाने की कोशिश न करना तथा 'द कास्ल' (The Castle) के नायक 'के'

को लड़ाई (संघर्ष) से मुंह मोड़ लेने के बाद ही सफलता प्राप्त होना—ऐसा नकारात्मक जीवन-दर्शन देख-देखकर तथा साथ ही अलबेयर कामू के किमितिवादी जीवन-दर्शन देखने के बाद बंगाली लेखक अव्यवस्थित, विचित्र, बाधा-बंधनहीन जीवनधारा में अपने को पूर्ण रूप से विलीन कर 'नई रीति' के आधारहीन 'चैतन्य स्रोत' में बहने लगे। और, इसी तरह के सिजोफ्रेनिक तालमेलहीनता से साहित्य भंडार भरने लगा, इन्हीं परिस्थितियों में बांग्ला साहित्य में जिन युवा लेखकों का अपनी शक्तिमान लेखनी के साथ उदय हुआ उनमें गौरकिशोर घोष अन्यतम थे।

गौरकिशोर घोष का प्रथम उपन्यास 'जल पड़े पातार नड़े' मई, 1960 में प्रकाशित हुआ। ऐसा नहीं कि इसी कृति से उनके लेखक जीवन का शुभारंभ हुआ। शाम के दीपक जलाने के लिए जैसे सुबह से ही बाती बनाने की तैयारी की जाती है उसी प्रकार उन्होंने लघुरसात्मक व्यंग्य चित्र से भरे रिपोर्ताज लिखकर अपने को तैयार किया। उनकी पहली प्रकाशित पुस्तक 'एई कलकाताय' ('इसी कलकत्ते में', 1950 ई.) है। एक तरह से बांग्ला साहित्य एक दूसरी धारा का अनुयायी है।

बंकिमचन्द्र की लेखनी से बांग्ला उपन्यास के जन्म के पूर्व प्रस्तुति के रूप में जो हास्य-व्यंग्य से भरी रचनाएं उपलब्ध होती हैं, जैसे—भवानीचरण बंद्योपाध्याय का 'नवबाबूविलास' (1825 ई.) प्यारी चांद मित्र का 'आलोलेर घरे दुलाल' (1858 ई.) या कालीप्रसन्न सिंह का 'हुतोमपेंचार नक्शा' (1862 ई.) आदि रचनाएं उपन्यास न होते हुए भी बांग्ला उपन्यास के आधार-पृष्ठ के रूप में स्वीकार की गई। उसी तरह गौरकिशोर घोष का यह ग्रंथ तथा 'रूपदर्शी' छद्मनाम से लिखे 'नक्शा' के रूप में कई और रचनाएं भी स्वीकार्य हैं।

'जल पड़े पातार नड़े' उपन्यास की पृष्ठभूमि पूर्वी बंगाल के जसोर जिले (आजकल बांग्लादेश) का एक गांव है। बीसवीं शती के बीस के दशक में विदेशी शासकों से देश को मुक्त कराने के संग्राम में लीन कांग्रेस जब सिद्धांत तथा मार्ग के आधार पर तीन भागों में बंटी हुई थी, जब 1922 ई. में बारदोली कांग्रेस अधिवेशन में गांधीजी के प्रस्ताव पर असहयोग आंदोलन वापस ले लिया गया, जब कलकत्ते में काउंसिल के चुनाव की बात चल रही थी—उसमें भाग लेना, न लेना या उसे असफल बनाने के उद्देश्य से उसमें प्रवेश करना—ये तीन तरह के झगड़े तब शिखर पर थे। माडरेट (मध्यमपंथी), नो चेंजर तथा स्वराज्य दलों की खींचातानी से देश-भर में जो हलचल मची हुई थी, उन सब का असर बंगाल के एक छोटे से गांव पर कैसे पड़ा—इन सबका उल्लेख इस उपन्यास में किया गया है। युगों से साथ-साथ रहने वाले हिंदू-मुसलमान, दो संप्रदाय राष्ट्र की विभेद-नीति के कुचक्र में फंसकर किस तरह दो भागों में विभाजित हुए, अर्थजन्य स्वार्थ की खींचातानी से कैसे सांप्रदायिक दंगों की उत्पत्ति हुई, कांउसिल में स्वराज्य दल के सांप्रदायिक बंटवारे में सम्मति तथा काउंसिल में निरंकुश गरिष्ठता पाने के लिए देशबन्धु की नीति ने किस तरह

सांप्रदायिकता के बीज बोए तथा उसका प्रभाव बंगाल के गांव पर भी पड़ा—इन सब की बुनियाद खोजने का अनूठा विवरण इस उपन्यास का विषय है।

कभी न दूर होने वाला बद्धमूल कुसंस्कार, छुआछूत धर्मी हिंदुत्व, द्यूत मार्ग में विश्वास रखने वाले हिंदुओं द्वारा मुसलमानों को 'म्लेच्छ' बनाए रखना, मुसलमानों के हिंदू-विद्वेष का स्वरूप तथा उसका परिणाम आदि इस उपन्यास में निपुणता से वर्णित हुआ है।

यह उपन्यास राजनीतिक तथा स्वाधीनता संग्राम की पृष्ठभूमि पर लिखा गया है। परंतु यह राजनीतिक या ऐतिहासिक उपन्यास नहीं है। यद्यपि इसकी समाप्ति देशबन्धु चित्तरंजन की मृत्यु पर हुई है। उनका शव दार्जिलिंग मेल से दार्जिलिंग से कलकत्ता लाया जा रहा है। यह घटना जून, 1925 की है—इतिहास की पृष्ठभूमि का प्रयोग केवल इसलिए किया गया है कि इससे तत्कालीन बंगाल के समाज की मानरिकता की एक झलक दिखाई जा सके।

यद्यपि एक तरह से यह कुछ हद तक ऐतिहासिक भी है क्योंकि इसमें चर्चित समाज, देशकाल तथा पात्रों को लेखक ने अपनी आंखों से नहीं देखा। लेखक का जन्म सन् 1925 ई. में हुआ। उपन्यास में वर्णित समय सीमा 1922 ई. से 1925 तक की है। फलतः उपन्यास के विषय की जानकारी के लिए उसे ऐतिहासिक तथ्य को जानने जैसा अध्ययन करना पड़ा है। उसके झूठ और सच की छानबीन कर उस अतीत को उसने शाश्वत सत्य का रूप दिया है।

इस सच्चाई को जानने के लिए समय की बाधा अपारदर्शी या अभेद्य नहीं है। वस्तुतः किसी विशेष देशकाल की सच्चाई का स्वरूप जानने में समय का व्यवधान सहायक ही सिद्ध होता है। जैसे किसी विशाल तैलचित्र की सुंदरता उपलब्ध करने के लिए फासले की आवश्यकता होती है।

समय की उस परिधि (वृत्त) में, जिसे इस उपन्यास की पटभूमि के लिए चुना गया है, बंगाली समाज की मानसिकता में जो-जो परिवर्तन आए उन्हें सुस्पष्ट रूप देने में लेखक सफल हुआ है। आधुनिक जीवन के विस्तार के लिए गांव के जीवन की जड़ें ढीली हो रही हैं। संयुक्त परिवार टूट रहे हैं। गांव छोड़कर शहरों में नागरिक प्रतिष्ठा पाने के लिए लोग भाग रहे हैं। भारत में डेढ़ सौ वर्षों का विदेशी शासन कड़ा होते-होते इस हद तक पहुंच चुका था कि अब उसके बंधन टूट जाने की सारी तैयारियां हो चुकी थीं। तब सपना देखने का अवसर नहीं था, जरूरत थी वास्तविक बुद्धि की जिससे स्वाधीनता की नींव डाली जा सके—वही वास्तविकता दिखाई गई है। उपन्यास के प्रधानतम चरित्र मझले बाबू हैं, जो झिनाईदह नामक एक गांव के संभ्रांत परिवार के मझले पुत्र हैं—आदर्शवादी तथा विवेकशील पुरुष हैं। ये बी.ए. पास करने के पश्चात कलकत्ता छोड़कर गांव में किसानों, गरीबों के लिए पाठशाला बनवाने आ गए, बाद में यह सांध्य विद्यालय बन गया, जाति-भेद

प्रथा के विरुद्ध खड़े हुए, सनातन संस्कारों के विरुद्ध लड़ने के लिए कमर कस ली, परंतु सब कुछ को असफल होते देख वे गांव छोड़कर शहर चले गए। वहां एक जूट मिल के दफ्तर में काम कर लिया। प्रौढ़ावस्था में फिर से वे शहर की नौकरी छोड़कर गांव वापस आ गए। एक एम.ई. स्कूल खोलने की कोशिश की, परंतु सरकारी विरोध के कारण उस स्कूल को सरकारी मंजूरी नहीं मिली। उसके बदले एक मुस्लिम मिडिल मदरसा को मंजूरी दी गई जो सांप्रदायिक विद्वेष से पनप उठा था। गांव के जीवन से विच्छिन्न होकर तब इस संयुक्त परिवार के सदस्य अपने को प्रतिष्ठित करने के उद्देश्य से विभिन्न शहरों में बिखर गए।

तीन खंडों के इस महाग्रंथ 'देश माटि मानुष' का यह पहला खंड है। द्वितीय खंड का नाम है 'प्रेम नेई' (प्रेम नहीं है)। तृतीय खंड प्रकाशित होने वाला है।

आंचलिक भाषा का प्रयोग इस उपन्यास का सबसे प्रमुख आकर्षण है जो ग्रामीण लोगों की जीवनचर्या को पाठकों के सामने उपस्थित करने के लिए प्रयुक्त हुआ है—भाषा में इसका अनुवाद कठिन है। लेखक ने पूर्वी बंगाल के जसोर जिले के कथ्य और भाषा का इतना सहज प्रयोग किया है कि इस भाषा से परिचित न होते हुए भी कोई भी बंगाली पाठक इसके प्रति आकृष्ट हो जाएगा।

ग्रामीण कहावतें, पुराने रीति-रिवाज, व्रत-उपवास, शिक्षित-अशिक्षित, मध्यमवर्गीय, निम्नवर्गीय, खेतिहर-मजदूर, नारी-पुरुष—इन सबकी भावनाएं, भाषाएं संपूर्ण परिवेश तथा घटनाओं का वास्तविक प्रस्तुतीकरण इस उपन्यास में जिस प्रकार हुआ है, निसंदेह उससे इस उपन्यास का साहित्यिक मूल्य निर्धारित हो चुका है। वास्तविकता की कसौटी पर विश्व साहित्य के साथ सामंजस्य रखते हुए बांग्ला उपन्यास आजकल जिस मर्यादा के साथ अधिष्ठित हैं, इस उपन्यास में चर्चित विषयवस्तु के साथ लेखक का गहरा संबंध होने के नाते यह उपन्यास भी उसी ऊंचाई को छूने में सफल हो पाया है। पारिवारिक प्रेम, स्नेह का बंधन, शिशु की स्वीकृति, नए भविष्य गढ़ने में नवजातक की भूमिका को इस लेखक ने पूरी श्रद्धा के साथ प्रस्फुटित किया है।

'जल पड़े पातार नड़े' के अलावा गौरकिशोर घोष के अन्य उपन्यास हैं,—'एई दाह' (1962 ई.), 'मोनेर बाघ' (1963 ई.), 'लोकटा (1966 ई.), 'गड़ियाहाट ब्रीजेर ओपोर थेके दूजने' (1972 ई.), 'प्रेम नेई' (1978 ई.), 'एक धरणेर विपन्नता' (1981 ई.), 'कमला केमन आछे' (1985 ई.)।

इनमें एक बात विशेष रूप से सामने आती है कि 'जल पड़े पातार नड़े' तथा उसी के धारावाहिक 'प्रेम नेई' उपन्यास में लेखक ने ग्रामीण समाज, लौकिक जीवन के अंतर्प्रवाह

तथा 'देश मिट्टी और मनुष्य' का जो समग्र रूप लेखक ने अंकित किया है, वे उनके अन्य उपन्यासों में अनुपस्थित हैं, उनमें नागरिक जीवन का क्षयग्रस्त व खंडित नकारात्मक रूप ही वर्णित है। 'मोनेर बाघ' उपन्यास में काम वासना तथा समकामिता की प्रवृत्ति के पीछे आन्द्रे जीद की छाया दिखाई देती है। 'लोकटा' उपन्यास का नायक, लगता है फ्रान्ज़काफ़्का के जोसेफ के. (Joseph.K.) का रूप लेना चाहता है। 'गड़ियाहाट ब्रीजेर ओपोर थेके दूजने' उपन्यास में अपने को प्रकट करने की चेष्टा में कामू के एबसर्ड तत्व (absurd element) की छाया विद्यमान है, दूसरी ओर इसी के साथ-साथ उपन्यास के समान बड़ी कहानियां जो उन्होंने लिखी हैं उनमें अन्यतम है 'सागिना माहातो' जिसमें कम्युनिस्ट आंदोलन के द्वारा श्रमिकों के प्रति सहानुभूति के खोखलेपन को दिखाने की कोशिश में भी कोई सकारात्मक मनोभाव दिखाई नहीं देता, ट्रेड यूनियन लीडरों के पाखंड की उपस्थापित छवि में सार तत्व होने के कारण ही इस पर बने चलचित्र को लोगों ने खूब सराहा और 'सागिना माहातो' एक ट्रेजिक चरित्र के रूप में स्मरणीय हो गया। फिर भी यह कहे बिना नहीं रहा जाता कि यह लेखक के लिए एक भावहीन दायित्वहीनता (मंदग्राहिता) सा बर्ताव है। 'एक धरणेर विपन्नता' उपन्यास में विकृत काम देहतत्व का जो मैल जमा हो गया था उस पाशविकता का खंडन हुआ है। उनके परवर्ती उपन्यास 'कमला केमन आछे' में दो अकेले मानव एक नवजातक के लिए पूर्णता प्राप्त करते हैं। एक शिशु को सामाजिक वैधता दिलाने के लिए, उससे प्रेम का वादा निभाने के लिए दो छिन्नमूल नर-नारी एक दूसरे का सामीप्य खोज लेते हैं।

शिशु ही इस लेखक का केंद्रीय विषय है, गौरकिशोर घोष की लेखनी से शिशु-चरित्र बहुत आसानी से चित्रित हो जाता है। उसे एक विश्वस्त दुनिया भी मिल जाती है और इस दुनिया में लेखक को अपना कक्ष भी मिल जाता है—यहां उन्हें किसी विदेशी भावादर्श के चक्कर में नहीं फंसना पड़ता है।

—सत्यप्रिय घोष

'पानी पड़े पत्ता हिले' अपने आप में पूर्ण होते हुए भी, मेरे 'देश मिट्टी और मनुष्य' नामक एपिक उपन्यास का प्रथम खंड है। इस उपन्यास का घटनाकाल सन् 1922 से सन् 1926 के बीच का है। इसमें वर्णित सभी चरित्र कल्पित हैं। फिर भी यदि किसी के साथ इस उपन्यास के किसी चरित्र का सादृश्य दिखाई पड़े तो इसे नितांत दैव-संयोग माना जाए, लेखक का ऐसा कोई अभिप्राय नहीं है।

वराहनगर
25 वैशाख, 1367 बंगाब्द

—गौरकिशोर घोष

दुरंत धारा

एक

एक तो शनिवार की शाम, ऊपर से अमावस्या। लोहाजांगा के साह परिवार की कुड़ोन की मां गहराती शाम को नदी के घाट पर गई थी। सोचा, नहा लेगी और एक कलशी पानी भी ले आएगी।

कोठी के घाट वाली जगह अच्छी नहीं है। पूरा घाट जंगली घास-पात और बेर, कैफल, बाबला की झाड़ियों से भरा हुआ है। जंगल के बीच में यहां-वहां नील गाढ़ा करने के विशालकाय कड़ाह आसमान की ओर मुंह बाए राक्षसों की तरह पड़े हुए हैं, जो इस समय नजर नहीं आ रहे हैं। उनके मुंह इस तरह खुले हुए हैं, जैसे जो भी मिलेगा उसे निगल लेंगे।

कोठी के सामने के मैदान में शायद बाघ-भालू नहीं जाते, फिर भी कोठी के घाट पर शाम के समय साहसी पुरुषों को भी जाने में दुविधा होती है।

मगर साह परिवार की कुड़ोन की मां की बात ही अलग है। वह तो मर्दों के कंधों पर पांव रखकर चलती है। उसे तो डर-भय का लेश तक नहीं है।

इस ओर जो लोग रहते हैं उनमें अकेली कुड़ोन की मां है जो रोज शाम को कोठी के घाट पर नहाने आती है और एक कलशी पानी लेकर लौटती है। सर्दी-गर्मी-बरसात उसके लिए कोई चीज नहीं। बाधा-निषेध कुछ नहीं मानती वह।

उस दिन भी कुड़ोन की मां नहाने आई थी। वह चैत्र संक्रांति के पहले वाला दिन था। नहाकर पानी से भरा घड़ा कंधे पर लिए रोज की तरह ही वह दनदनाती हुई अपने घर की तरफ बढ़ी जा रही थी। कोठी के मैदान के बीचोंबीच आते ही कुड़ोन की मां चौंककर खड़ी हो गई।

ऐसी जगह घुटे गले से यह जो रोने की आवाज आ रही है, वह किधर से आ रही है? वह भी ऐसी कुवेला में? इस तरह फफक-फफक कर कौन रो रहा है? कहां रो रहा है?

कुड़ोन की मां ने गौर से इधर-उधर देखा। उसे भान हुआ, कोठी के मैदान के बीचोंबीच, कचहरी वाले दालान का तोरण जहां अखंड आयु लिए खड़ा है, जहां एक बूढ़ा बरगद और

खजूर का एक पेड़ एक-दूसरे को गलबांही दिए खड़े सिर पर परगाछा लताओं का बोझ संभाले हुए हैं, जहां अंधेरा किसी बड़ी काली चट्टान की तरह जमा हुआ है, यह रुलाई वहीं से आ रही है।

ऐसी जगह आकर शाम के समय किसे रोने का शौक चढ़ा है? कुड़ोन की मां अवाक रह गई। उसकी उम्र कम नहीं है। गिनती नहीं जानती, शायद इसीलिए ठीक-ठाक हिसाब नहीं बता सकेगी। जब वह कुड़ोन की उम्र की थी तभी वह विवाह के योग्य मान ली गई थी। कुड़ोन के बाप को भी गुजरे बहुत दिन हो गए। उसकी इतनी लंबी जिंदगी में इस तरह की विचित्र घटना कभी नहीं घटी थी।

पानी से भरे बड़े घड़े को लादे-लादे उसका एक कंधा दर्द करने लगा था। उसने घड़े को दूसरे कंधे पर बदल लिया तो उसे कुछ आराम मिला। फिर उसने गुहार लगाई, "अरे बच्ची, कौन हो भाई? वहां बैठे बैठे कौन रो रहा है?"

आवाज बहुत साफ न सुन पाकर भी कुड़ोन की मां ने अंदाजा लगा लिया था कि वह किसी औरत की ही रुलाई है। बाद में उसने पाया कि उसका अंदाजा सही था। उसकी पुकार सुनकर रुलाई थम गई। सूखे पत्तों पर चलते हुए पांवों की खस-खस पदचाप सुनाई दी। इसके बाद उस पथरीले अंधकार को चीरकर एक कम उम्र की अपरिचित विवाहिता उसके सामने आ खड़ी हुई। लगा, उसके सौंदर्य से चारों ओर उजाला हो गया है।

कुड़ोन की मां ने देखा, स्त्री का चेहरा देवी की प्रतिमा जैसा सुंदर था। और क्या केश थे ! जैसे सिर पर से काले जल की कोई धारा उतर रही हो, जो उसकी पूरी पीठ को ढकती हुई पिंडलियों तक आकर जम गई थी। उसकी देह पर चौड़े लाल पाड़ की साड़ी थी। मांग में सिंदूर भरा था। साड़ी का लाल पाड़ और मांग का लाल सिंदूर जैसे अंगारों की तरह दहक रहे थे। यह किसके घर की बहू है? उसने इसे कहीं देखा है? ऐसा तो कुड़ोन की मां को याद नहीं।

"तुम कौन हो बेटी? किसके घर की बहू हो? इससे पहले तो तुम्हें कभी देखा नहीं। इस भयानक जंगल में कोई घुसता भी नहीं। यहां बैठकर तुम क्यों रो रही हो? तुम्हारे साथ कोई है?"

कुड़ोन की मां एक साथ कई प्रश्न कर बैठी। कोमल-मधुर स्वर में जब बहू कुड़ोन की मां के सारे प्रश्नों का जवाब देने लगी तो उसे लगा कि वह कोई सुंदर गाना सुन रही है।

बहू ने कहा, "मां, मेरा घर बहुत दूर है, बहुत ही दूर। मेरे दुखों की कहानी सुनकर पत्थर भी पिघल जाएगा। मेरा अपना घर है, पति हैं, पुत्र है। मगर जिस स्त्री पर उसका पति ही निर्दयी हो उठे, उसके पास सब कुछ होते हुए भी कुछ नहीं होता। मेरे पति आदमी नहीं, एकदम पत्थर हैं, पत्थर। मेरी सौत को उन्होंने गले का हार बनाया हुआ है। मैं उन्हें

फूटी आंख नहीं सुहाती। नाव में बिठाकर मेरे पति मुझे मायके छोड़ने ले जा रहे थे। पता नहीं उनकी क्या मति फिरी कि मुझे इस निर्जन वन में वनवास देकर नाव लेकर चले गए। मैं घर में रहने वाली औरत, रास्ता-घाट का मुझे पता नहीं, ऊपर से अमावस की वह रात। कहां जाऊं, किसके घर में मुझे शरण मिलेगी, मैं नहीं जानती। इसीलिए अम्मा, मैं जंगल में बैठी मुंह छिपाए रो रही थी। तुम्हें देखकर मुझे थोड़ा भरोसा हुआ। धर्म की दुहाई, मुझे यहां छोड़कर चली मत जाना। रात-भर के लिए अपने घर में मुझे शरण दो।"

क्या विनती थी! क्या चिरौरी थी! हाय, बेचारी! कुड़ोन की मां द्रवित हो उठी। उसकी आंखों में आंसू भर आए। अपरिचित बहू को साथ लेकर वह घर की ओर चली। कुड़ोन की मां आगे-आगे और बहू पीछे-पीछे। घर के अंदर घुसकर, पानी से भरे घड़े को रसोईघर के दालान में उतारकर, कुड़ोन की मां ने गहरी सांस लेकर कहा, "बैठो बेटी।" इतना कहकर कुड़ोन की मां ने पीछे देखा तो कहीं कोई न था।

अरे, वहू कहां गई? लगता है, ड्योढ़ी के बाहर ही खड़ी हो गई है। अंदर आने में शरमा रही है।

"आओ बेटी, आओ, शरमाने की क्या बात है? इस समय घर में कोई मर्द नहीं है। कहने भर को हमारा यह शिवरात्रि का वरदान नन्हा-सा कुड़ोन है। मगर वह भी जो शाम को घर से निकलता है तो उसे लौटने में आधी रात हो जाती है।"

यह कहती हुई कुड़ोन की मां दरवाजे के पास आ गई। बांस छीलकर कुड़ोन ने ही बाहर का टट्टर बनाया था और बड़े यत्न से उसे घास-फूस से ढक दिया था। भीतर से बाहर की कोई चीज दीखती नहीं थी।

कुड़ोन की माँ बाहर निकल आई। नहीं, यहां भी तो कोई नहीं है। तो फिर वह गई कहां? थोड़ी देर पहले तो मेरे पीछे-पीछे आ रही थी। हरलाल सुनार के घर से आगे बढ़ी थी तब भी बहू के पांवों की आवाज उसने सुनी थी। तो फिर इत्ती-सी देर में वह कहां चली गई? हद है! फिर उसने सोचा—कहीं वह कोई पागल तो नहीं थी? मगर ऐसा कोई लच्छन तो दिखाई नहीं दिया था! तो क्या वह बदचलन थी? ऊंहूं! चेहरे से तो वह कोई खराब औरत लगी भी नहीं। भला ऐसा कोमल और चमकता चेहरा बदमाश औरत का होता है!

कुड़ोन की मां हरलाल के घर की ओर गई।

हरलाल अपने दरवाजे के सामने अंगीठी जलाए, नाक पर निकल का चश्मा चढ़ाए ठुक ठुक कर रहा था। कुड़ोन की मां को वापस आते देखकर भी उसने अपने ठुक ठुक में मन लगाए रखा।

"क्यों भौजी? क्या खोज रही हो?" उसने पूछा।

"अरे बबुआ, मेरे साथ-साथ जो बहू आ रही थी, वह तुम्हारे घर में तो नहीं घुस गई?"

हरलाल को ताज्जुब हुआ।

"किस बहू की बात कर रही हो? तुम्हारे संग किसी की बहू गई है, यह तो देखा नहीं। लड़के की शादी कब की?"

कुड़ोन की मां चिढ़ गई, बोली, "तुम्हें तो हमेशा मसखरी ही सूझती है। हंसी-मजाक रहने दो। सुनकर देह जलती है। मैं कहती हूं, आंखों पर चश्मा चढ़ाए मजे नें बैठे हो, फिर भी आंखों के सामने से जिंदा आदमी निकलते हुए तुम्हें सूझता नहीं। घाट पर से ही वह मेरे पीछे-पीछे आ रही थी। रो-रो कर बोली, उसका पति उसे छोड़ गया है। रात-भर के लिए आसरा चाहिए। मेरा भी मन नरम हो गया। सोचा, जवान जहान लड़की है, उम्र भी कच्ची है, ऊपर से देवी जैसा रूप है—जाएगी भी कहां इतनी रात में। कहा, मेरे घर चलो। लो देखो मजा, अब पता नहीं कहां चली गई !"

इस बार हरलाल वाकई चकित हुआ।

"धर्म से बोल रहा हूं, भौजी, तुम्हारे संग मैंने किसी को जाते नहीं देखा। रोज जैसे अकेली लौटती हो, आज भी वैसे ही अकेली लौटी हो। जानती तो हो, मेरी नजर में बिना पड़े एक मक्खी भी इधर से नहीं निकल सकती, औरत की तो बात ही क्या! मुझे लगता है, तुम्हें भरम हुआ है।"

"ऐसा भरम मुझे नहीं होता। और फिर भरम किस बात का है? उसे सरासरी देखा। उससे बातें कीं। पीछे-पीछे उसके पांवों की आहट सुनी। यह सब क्या भरम है? तुम्हारी तरह मेरी आंखों पर अभी चश्मा नहीं चढ़ा है। लगता है, कहीं वह रास्ता भूल गई।"

हरलाल मन ही मन चिढ़ गया। बेकार में समय बर्बाद कर रही है। लगता है, बुढ़िया को सचमुच भरम हुआ है। मेरे सामने से कोई चला जाए और मैं देख न पाऊं। हुंह! मेरी आंखों में अभी माड़ा तो पड़ा नहीं। कहती है, रास्ता भूल गई होगी। उसी तरह ठुक ठुक करते हुए हरलाल ने कहा, "सीधा तो रास्ता है, भूलेगी क्या? जाकर देखो, हो सकता है, तुम्हारे घर में ही बैठी हो। मगर दूसरे का झमेला अपने घर लाई ही क्यों? एक बात कह देता हूं, बिहान होते ही उसे विदा कर देना, समझी?"

मगर कुड़ोन की मां को इस परामर्श पर चलने का वक्त नहीं मिला। रात के आखिरी पहर में उसे कै दस्त शुरू हो गई। सवेरा होते न होते वह मर गई। ओलाइचंडी को घर बुलाने का फल हाथों-हाथ कुड़ोन की मां को मिल गया। कुड़ोन की मां गई तो कुड़ोन पड़ गया। दोपहर होते-होते वह भी साफ। उसके पीछे गया हरलाल सुनार, फिर उसकी बहू, फिर तीनों बेटे और दो बेटों की बहुएं। पूरा निरवंश। उनके पीछे पूरा गांव गया। घर के घर संहार हो गए। उसके बाद आई दूसरे गांवों की बारी। अठारोखादा, बिनेदपुर, धपधपी, कुड़ोल, नलसी—एक-एक कर सारे गांव मटियामेट हो गए।

शायद, बूदो भुइयां दम लेने के लिए एक पल रुका। बूदो कहानी बहुत अच्छी कहता है। लगता है, उसने सब कुछ अपनी आंखों से देखा है। एक बार महामारी फैली थी। इतनी देर से विस्तारपूर्वक उसी की कहानी सुना रहा था। अब दम लेने के लिए एक पल रुका। उसके रुकने के साथ ही आसमान को फाड़ता एक भयंकर गर्जन सुनाई पड़ा। सभी चौंक पड़े और उनके कान सुन्न हो गए। नरा चिलम को अच्छी तरह सजाकर उसे ब्राह्मण देवता के हुक्के में लगाने जा रहा था कि अचानक गर्जन की आवाज से उसके हाथ कांप उठे और चिलम नीचे गिर गया।

सरकार महाशय 'हां हां' कर उठे, "छोकरे की उम्र दस साल होने को आई मगर अभी तक काम काज नहीं सीख पाया। क्यों रे? तोड़ दिया क्या?"

कविराज महाशय बोले, "बाप रे ! सरकार महाशय का चिलम तोड़ दिया, तेरी शामत आई है क्या?"

सरकार महाशय ने फुफकार मारकर जैसे कविराज महाशय के मुंह से बात छीन ली, बोले, "अरे रहने दो, यह क्या कोई मामूली चिलम है? इस इलाके में इसका कोई जोड़ा नहीं है। हमारे दामाद के जीजा इलाहाबाद के उस तरफ पता नहीं किस शहर में डाक्टरी करते हैं। उन्होंने ही हमारे दामाद के लिए यह चिलम मंगवाया था। दामाद ने कहा, बाबूजी, इसे आप ही ले जाइए। जो लोग नवाबों-बादशाहों के चिलम बनाते हैं, उनके हाथ का बना हुआ है यह। टूट गया तो फिर पाऊंगा कहां?"

बूदो भुइयां ने छौंक लगाई, "नवाबी चीज को भला कहीं हल चलाने वाले के हाथ में दिया जाता है? आपके दामाद जी इतनी तकलीफ उठाकर अगर आपके लिए एक नवाबी चिलम भेज सके, तो उन्हें एक हुक्काबरदार भी साथ में भेजना चाहिए था।"

सरकार महाशय दूसरी ओर देखने लगे और जोर से खांसने लगे। उन्होंने सोचा—इन सब लौंडों-छोकड़ों की टिप्पणी का जवाब देना अपनी इज्जत खोना है।

इस बार नरा ने बहुत सावधानी से चिलम में तंबाकू सजाकर ब्राह्मण देवता के हुक्के को पुरोहित महाशय के हाथ में थमा दिया। हुक्के को अच्छी तरह से पोंछ-पाछकर रिदय ठाकुर ने कश खींचने शुरू किए।

बारिश अब हुई कि तब, जैसी हालत थी। थोड़ी देर में ही जोरदार बारिश शुरू हो गई। काले बादलों से घिरे आकाश की ओर देखकर मझले मालिक का मन थोड़ा खिन्न हो उठा। आकाश की हालत ठीक नहीं है। बारिश आज रुकेगी कि नहीं, इसमें भी संदेह है।

मझले मालिक ने अन्यमनस्क होकर अचानक पूछा, "नरा, तेरा बाप कहां है रे?"

नरा की पित्ती चमक गई। पता नहीं क्यों मझले मालिक को देखकर वह डर से काठ हो जाता है। ..बी दाढ़ी, गंजा सिर, बातचीत कम ही करते हैं। क्या इसी कारण नरा उनसे

डरता है? या कि बाहर रहते हैं, मिलना-जुलना उनसे कम होता है, इस कारण? कारण जो भी हो, मझले मालिक को लेकर नरा के मन में छुटपन से ही डर समा गया है। तब से अब तक, सज्ञान होने पर भी, नरा के लिए मझले मालिक आतंक की चीज हैं। छुटपन में जब भी नरा कोई शरारत करता तो उसका बाप कहता, 'ठहर, अभी मझले मालिक को बुलाता हूं।' और नरा एक पल में शांत हो जाता। बड़े मालिक रुतबे वाले हैं। छोटे मालिक नामी दारोगा हैं। उनके नाम से बाघ और गाय एक ही घाट पर पानी पीते हैं। मगर उन दोनों को देखकर नरा को कभी डर नहीं लगता। वह उनके पास अनेक बार चिलम भरने या उनकी दूसरी फरमाइशें पूरी करने गया है। यहां तक कि उसने छोटे मालिक की देह में तेल की मालिश भी की है। ऐसा डर तो उसे कभी लगा नहीं।

जितना डर है सब मझले मालिक से है। दो साल पहले वे अपनी बड़ी लड़की का विवाह करने गांव आए थे। उस समय नरा और भी छोटा था। तब उसने भीड़-भाड़ में लुक-छिपकर दिन काट लिए थे। कौन जाने इस बार उसकी किस्मत में क्या है? उसे इस बार मझले मालिक के पास ही रहना पड़ रहा है। यही तो मुश्किल है। पता नहीं मझले मालिक ने अभी क्या पूछा है? हे भगवान ! ठीक से सुन ही नहीं पाया। नहीं, सुना तो ठीक से ही था, मगर इस समय याद ही नहीं आ रहा है। हे मां काली ! अब क्या होगा ! घर भाग जाऊं क्या? फिर जीवन में कभी इधर रुख नहीं करूंगा।

"नरा, तेरा बाप क्या कर रहा है रे?" हां, याद आया। यही बात पहले भी एक बार मझले मालिक ने पूछी थी। अब क्या कहकर इन्हें पुकारूं? मालिक कहूं या बाबू या हुजूर?

"बापू? बापू छप्पर बांध रहा है।"

चलो, मझले मालिक को जवाब देने की हिम्मत तो पड़ी। लगा,जैसे पसीना निकलकर उसका बुखार उतर गया हो। तभी उसके दिमाग में अचानक कोई ख्याल आया।

"अच्छा बाबू (मुंह से बाबू ही निकला), मैं देखकर आता हूं।"

रिदय ठाकुर ने कहा, "महि, तुम कुछ चिंतित दिखाई दे रहे हो?"

मझले मालिक ने कहा, "भैया घर में नहीं हैं। कल से झिनैदा गए हुए हैं। एक मुकदमा है। इधर सवेरे से ही बेटी को धीरे-धीरे पीर उठ रही है।"

रिदय ठाकुर ने कहा, "अरे उसके लिए तुम चिंता मत करो। मंगलमयी मां की इच्छा से सब कुछ ठीक ही होगा।"

रिदय ठाकुर के इस आश्वासन से मझले मालिक को थोड़ी तसल्ली हुई। बोले, "नहीं, उसके लिए मैं उतना चिंतित नहीं हूं। चिंता हो रही है बारिश को लेकर। जिस तरह से हुई है, आज तो थमती नहीं दीखती।"

बूदो भुइयां ने कहा, "भगवान की लीला कौन समझे। इसी बरसात के लिए हम इतने दिनों से परेशान थे। समझे मझले मालिक, इस बार एक के बाद एक ऐसी विपदाएं हमारे

ऊपर पड़ी हैं कि क्या कहा जाए। ओलाइ देवी की दया की कहानी तो आप लोगों से पहले ही बता चुका हूं। दया करके सिर्फ हमारे गांव पर उन्होंने कोपदृष्टि नहीं डाली। फिर भी पूर्वी टोले के रियाजद्दी गाजी और इरफान शेख के घरों से चार जने खतम हुए हैं। महामारी के समय बरसात कहीं आसपास भी दिखाई नहीं पड़ती। अगर उस समय थोड़ी वर्षा हो जाती तो इतना सर्वनाश न होता। मगर कहां? उस समय एक बूंद भी नहीं पड़ी और आज लगता है, संसार को डुबाकर ही छोड़ेगी।"

हुक्के की नली चक्कर काटते-काटते इतनी देर में बूदो भुइयां के हाथ में आ पहुंची थी। फतुए की जेब से काठ की एक पतली नली हुक्के में लगाकर बूदो भुइयां ने जल्दी जल्दी कई कशें खींचीं और हुक्का बगल के आदमी की ओर बढ़ा दिया। फिर मुंह से गाढ़ा धुआं निकालते हुए उसने आराम की सांस ली।

इसके बाद उसने फिर अपना वक्तव्य शुरू किया, "कहा है—बरखा बरसे माघ शेष, धन्य वो राजा धन्य वो देश। मगर माघ तो दूर की बात; फागुन, चैत और अब बैसाख भी बीत गया, एक बूंद पानी नहीं पड़ा। ताल-तलैया सूखकर मैदान हो गई। हाट के दिन लोग नवगंगा को पैदल ही पार कर जाते हैं। आज तक किसी के खेत में हल नहीं उतरा। क्या करे कोई? खेत की मिट्टी सूखकर पत्थर हो गई है। आम-कटहल में फल फूल उगते ही सूखकर नीचे गिर पड़ते हैं। न कहीं मछली है, न कहीं घास। चारों ओर हाहाकार मचा हुआ है। ऊपर से महामारी। भाग्य की बात है कि आज रात के आखिरी पहर से भगवान की कृपा हुई है। अब अगर गरगराकर न बरसे तो खेत-खलिहान कैसे भीगे। पाट तो इस बार गया। अगर थोड़ा धान हो जाए तो दुनिया बच जाएगी।"

कविराज महाशय बोले, "पाट पैदा भी होता तो कौन भला होता हमारा। देखता हूं, साल-दर-साल दाम घटता ही जा रहा है। आजकल तो खेती की लागत भी वसूल नहीं होती। सबसे ज्यादा मार खा रहे हैं मियां लोग।"

"अरे उनकी बात छोड़ो।" सरकार महाशय ने नफरत से मुंह सिकोड़कर कहा, "उनका तो सब कुछ उल्टा होता है, समझे राम? हम जो भी करेंगे वे उसका उल्टा करेंगे। हम पूरब की ओर मुंह करके पूजा करते हैं तो वे पश्चिम की तरफ मुंह करके नमाज पढ़ते हैं। हम बाहर से घर लौटने पर पहले पांव धोते हैं तो वे पहले हाथ धोते हैं। हम बकरे की गर्दन झटका देकर काटते हैं, वे उसे रेतकर हलाल करते हैं। ... और कितना कहूं?"

सरकार महाशय की कथनभंगी पर कविराज महाशय हंस पड़े। बोले, "क्या बात कही है! देख रहे हैं कि पाट का दाम गिरता जा रहा है, फिर भी अगली बार और ज्यादा कपड़े बुन रहे हैं। क्या ये लोग इतना भी नहीं समझते कि माल ज्यादा होने पर दाम भी गिरेगा।"

सरकार महाशय ने कहा, "मैं कहता हूं, तुम किसे समझाना चाहते हो? मुसलमानों को? अगर उनके पास अक्ल ही होती तो क्या हमेशा से खेत-मजदूर बने रहते? हमारे

दामाद के जीजा जिस शहर में डाक्टरी करते हैं वहां के मुसलमान लोग वकील, डाक्टर, यहां तक कि जज-मजिस्ट्रेट भी हो रहे हैं। शायद मेरे दामाद ने ही बताया था। सुनकर मैं तो भौंचक रह गया। कहा है—चौदह सास्तर पढ़े अगर मुसलमान का बेटा, फिर भी उसकी अकल न सुधरे, तब भी वह लात को नात, ताल को त्याल और बाल को ब्याल ही बोलेगा। ऐसे लोग भला वकील-जज कैसे बनते हैं, मैं तो सोच भी नहीं सकता।"

मझले मालिक को याद आया कि अभी-अभी सरकार महाशय ने जो छंद कहा है उसे वे अपने बचपन से ही सुन रहे हैं। अगर वे थोड़ी शिक्षा न पाते, अगर कुछ दिन कलकत्ता में न बिताते तो वे भी इन्हीं की तरह हमेशा अज्ञानी ही बने रहते। इन्हीं की तरह वे भी विश्वास कर लेते कि मुसलमान लोग हमेशा से हल ही चलाते रहे हैं।

अचानक उन्हें अपनी युवावस्था के दिन याद आने लगे। कलकत्ता के उल्लास और उत्साह से भरे दिन, अपने कालेज के दिन। उन्हें अपने ऋषितुल्य अध्यापक याद आए। उन्हें डा. हसन याद आए। उनके जैसा विद्वान और चरित्रवान व्यक्ति मझले मालिक ने अपने जीवन में कम ही देखा है।

इन लोगों ने, कुएं के इन मेढकों ने देखा ही क्या है? जानते ही क्या हैं? युवावस्था में जब मझले मालिक की शिराओं में खून गर्म था, तब इन मूर्ख और अशिक्षित लोगों से उन्हें बहुत घृणा होती थी। तब इस तरह के मंतव्य सुनकर जैसे उनकी नसों में खून की जगह आग बहने लगती थी। तब वे जी-जान से यह प्रमाणित करने की कोशिश करते थे कि उनके मंतव्य गलत हैं। वे भयानक वाद-विवाद में जुट जाते और अंत में झगड़े पर आमादा हो जाते थे।

आज उनचास वर्ष की आयु में उनकी देह में न वह तेज है, न उनके स्वभाव में वैसा भोलापन। वे समझ गए हैं कि तर्क करने से तर्क ही होता है, और कुछ नहीं। प्रौढ़ता ने उन्हें इतना ज्ञान जरूर दे दिया है। इसके अलावा इनके अज्ञान के लिए इन्हें ही सोलहों आने दोषी मानने की आज इच्छा नहीं होती। इन लोगों की आंखों में ज्ञान की ज्योति जलाने की कोशिश ही कितनी हुई है? किसने की है? अब इनके लिए, इनके अज्ञान के लिए मझले मालिक के मन में करुणा ही उपजती है। उन्हें अपने ऊपर भी करुणा होती है। वे खुद भी क्या कर पाए?

पाट के व्यवसाय के बारे में दो-चार बातें वे कह सकते हैं। वे पाट के ही कार्यालय में काम करते हैं। रंगपुर जिले के पाट के डोमार स्थित वार्कमायर कंपनी में वे बाबू हैं। वे जानते हैं कि पाट की खेती करके पटरानी पालने के दिन चले गए। गोरे साहबों के कारखानों में पाट की मांग दिन पर दिन कम होती जा रही है। इस बार भी उनके कार्यालय में कलकत्ता से हुक्म आया है कि पहले बाजार में पाट न खरीदा जाए। दाम कितना नीचे उतरता है इसे देखने के लिए चुपचाप इंतजार किया जाए।

मझले मालिक गला साफ करके कुछ बोलने जा रहे थे, ऐसे में एक बार फिर बड़े जोर से बादल गरजे। साथ ही घर के भीतर से कुछ शोरगुल सुनाई पड़ा। जैसे किसी ने मझले मालिक के हृदय को एकाएक मुट्ठी में दबाकर छोड़ दिया हो। उनका मुंह सूख गया।

तभी भीगता हुआ रामकिष्टो वहां आया और उसने हताश स्वर में कहा, "मझले बाबू, छप्पर टूट कर गिर गया।"

मझले मालिक घबरा उठे, "तो फिर उपाय क्या है?"

रामकिष्टो ने कहा, "आंगन में घुटने तक पानी जमा हो गया है।"

मझले मालिक ने सोचा—स्थिति सुविधाजनक नहीं है। क्या पता, इस लड़की के भाग्य में क्या लिखा है? और वे बुद्धू की तरह आंखें फाड़े रिदय चकोत्ती (हृदय चक्रवर्ती) की तरफ देखने लगे।

पुरोहित महाशय ने उन्हें सांत्वना देने के लिए कहा, "महि, मैं, कहता हूं, आप जरा भी चिंता न करें। ननिनी के गर्भ का विधिवत शोधन किया गया है। प्रसव में किसी बाधा का प्रश्न ही नहीं उठता।"

बूदो भुइयां बोल उठा, "मझले मालिक की बिटिया के यहां जो आ रहे हैं वे सूखा और महामारी को पीछे ठेल कर सिर पर बादल उठाए जैसे सारी दुनिया में अपने आने का ऐलान करते हुए आ रहे हैं।"

रामकिष्टो ने कहा, "यह तो समझा कि आ रहे हैं, मगर आएंगे कहां, छप्पर कहां बांधूं?"

रिदय ठाकुर ने कहा, "तुम पक्के मिस्त्री हो, रामकिष्टो! अरे भाई, जहां सुविधा मिले वहीं छप्पर बांध दो। महि बेचारा पहले ही घबराया हुआ है, इसे और डराने की जरूरत नहीं है।"

रामकिष्टो चला जा रहा था कि मझले मालिक ने पूछा, "रामकिष्टो, तुम अकेले हो या साथ में और लोग भी हैं?"

रामकिष्टो ने कहा, "मालिक, यह सब काम क्या अकेले के वश का है? सुलेमान वगैरह को भी बुला लिया है। वह बहुत अच्छा राजमिस्त्री है। मुश्किल यह नहीं है। मुश्किल यह है कि आंगन में पानी जमा हो गया है। काफी ऊंचाई पर मचान बांधी थी, मगर देख तो रहे हैं, इन्द्र महाराज क्या कर रहे हैं ! पानी घुटने से भी ऊपर चढ़ा आ रहा है। ऐसे में भला वहां मिट्टी कैसे बैठाई जा सकती है? सब कुछ बहा जा रहा है।"

मझले मालिक ने कहा, "अगर छप्पर बांधा न जा सके तो, कमरे में ही सौरी बना दो। किया भी क्या जाए? कलकत्ता में तो सभी बच्चे हस्पतालों में ही पैदा होते हैं।"

मझले मालिक की बात सुनकर सभी जैसे आसमान से गिरे। कमरे में सौरी बनेगी! मझले मालिक का दिमाग तो खराब नहीं हो गया है? या कि ईसाई हो गए हैं? लगता

है, इन पर से कलकत्ते का रंग आज भी उतरा नहीं है।

रिदय ठाकुर बोले, "हमारा महि हमेशा से ऐसा ही है। अरे रामकिष्टो, अब खड़े क्यों हो, बेटा? जाओ, कुछ उपाय करो। भला कहीं कमरे में प्रसव होता है?"

तभी भीतर से चम्पा दौड़ती हुई आई। यह बड़े मालिक की छोटी बेटी है।

हांफते हुए उसने कहा, "मझले काका, जल्दी भीतर चलो। बड़ी मां बुला रही हैं। बड़ी दीदी का दर्द बढ़ रहा है।"

मझले मालिक का हृदय एक बार जोर से धड़का। क्या कह रही है? सर्वनाश! अभी भी छप्पर बांधा नहीं जा रहा है। सौरी होगी कहां? तो क्या बिटिया को आंगन के पानी में ही उतार देना होगा? लड़की तो मर जाएगी। बड़े भैया अभी भी क्यों नहीं आए? क्यों नहीं आ रहे हैं?

मझले मालिक का गला सूख गया। मन बड़ा अस्थिर हो उठा। छाती तक झूलती दाढ़ी पर तेजी से हाथ फेरने लगे, जैसे उस क्षण वही एकमात्र काम रह गया था।

"चलो न जल्दी।" चम्पा ने तगादा किया।

दो

भीतर जाने के लिए जैसे मझले मालिक के पांव ही नहीं उठ रहे थे। बूड़ी उनकी बहुत दुलारी बेटी है। एकमात्र बेटी। मझली बहू की आंखों की मणि। उन्हें गुजरे प्रायः दस साल होने को आए, मगर लगता है कि अभी कुछ दिन की ही बात है।

अंतिम क्षणों में भी मझली बहू को इसकी कितनी चिंता थी। आज भी वह दृश्य मझले मालिक की आंखों में झूल रहा है। लोगों से कमरा भरा हुआ है। खाट पर पड़ी मझली बहू छटपटा रही हैं। किसी से कुछ कहना चाहती हैं, मगर कह नहीं पा रही हैं। सभी समझ गए हैं कि मझली बहू का अंतकाल निकट है।

अचानक बड़ी बहू को कुछ ध्यान आया। उन्हें लगा कि मझली बहू कुछ कहना चाहती हैं। कान के पास मुंह ले जाकर उन्होंने पूछा, "मझली बहू, कुछ कहना चाहती हो?" मझली बहू ने कुछ कहा नहीं, सिर्फ एक बार मझले मालिक की ओर नजरें घुमाईं। उनकी आंखों के कोनों से दो बूंद आंसू लुढ़क पड़े।

बड़ी बहू समझ गईं। उन्होंने कहा, "सब लोग बाहर चलो। सरला शायद मझले मालिक से कुछ कहना चाहती हैं।" कमरा एक पल में खाली हो गया। मझले मालिक मझली बहू के सिर के पास जाकर बैठ गए। मझली बहू ने उनके दोनों हाथ पकड़ कर धीरे-धीरे कहा,

"बूड़ी तुम्हारे सहारे है। उसे डूबने मत देना।" मझले मालिक इशारा समझ गए। बोले, "मैं वचन देता हूं, बूड़ी को कभी कोई तकलीफ नहीं होने दूंगा।" मझली बहू निश्चिंत हो गई, बोलीं, "जरा अपने पांव की धूल दे दो।" मझली बहू ने पति के पांव की धूल माथे से लगाई। फिर अचानक बोल पड़ीं, "मुझे वचन दो कि बूड़ी का विवाह होने के पहले कलकत्ते नहीं जाओगे।" पहले तो मझले मालिक यह सुनकर अचकचा गए। उनकी समझ में नहीं आया कि इतना सब कुछ होने के बावजूद कलकत्ते की बात क्यों उठी? और वह भी इस समय? मगर एक पल बाद ही उन्हें अपने कालेज जीवन की बात याद आ गई। अपनी एक महामूर्खता की बात। मगर वह बात तो कब की खत्म हो चुकी है। गृहस्थी बसाने के बाद एक दिन भी मझले मालिक ने कलकत्ते की बात उठाई हो, ऐसा तो उन्हें याद नहीं आता। फिर भी मझली बहू इतने दिनों तक वह बात गांठ में बांधे रहीं। आश्चर्य! मझले मालिक ने कहा, "कलकत्ते की बात सोचकर तकलीफ करने की कोई जरूरत नहीं, मझली बहू। कलकत्ते जाने की मेरे मन में कोई साध बाकी नहीं है।"

मझली बहू की उसी प्रिय बेटी बूड़ी को आज संतान होने वाली है। मझली बहू जिंदा होतीं तो उन्हें कितनी खुशी होती? मझले मालिक को आज बूड़ी को लेकर परेशान होने की जरूरत न पड़ती।

बड़ी बहू की आवाज सुनकर मझले मालिक की विचारधारा टूट गई। उन्होंने एक गहरी सांस ली, जिससे उनकी छाती थोड़ी हल्की हो आई। बड़ी बहू ने पूछा, "मझले, तुम्हें बुखार तो नहीं है?"

बड़ी बहू और मझले मालिक एक ही उम्र के हैं। बड़ी बहू की शादी हुई तो उनकी उम्र आठ साल की थी। मझले मालिक की भी यही उम्र थी। तभी से उन दोनों के बीच दोस्ताना संबंध बन गए थे। कभी एक-दूसरे के गले मिलते तो कभी एक-दूसरे के बाल नोंचते। आपस में बराबर तू-तड़ाक चलती रहती। बाल-बच्चेदार होने के बाद तू-तड़ाक से वे तुम पर उतर आए थे। यह बढ़ती उम्र का तकाजा था।

"अरे मुंह में ठेठी लगी है क्या?" बड़ी बहू ने कहा, "मुंह से आवाज ही नहीं निकल रही है? पूछ रही हूं कि तुम्हें बुखार तो नहीं है?"

मझले मालिक ने बहुत चिंतित स्वर में पूछा, "बड़ी भाभी, बूड़ी का क्या होगा?"

जैसे कोई ज्योतिषी किसी का हाथ देख रहा हो, वैसे ही गंभीर स्वर में बड़ी बहू ने कहा, "लड़का होगा, नहीं तो लड़की होगी।"

बड़ी बहू के मजाक से वातावरण थोड़ा हल्का हो गया। लगता है, कोई वैसी गंभीर बात नहीं है। दुश्चिंता का भारी बोझ मझले मालिक के सिर से उतर गया।

थोड़ा हंसकर मझले मालिक ने पूछा, "कब से इतनी पक्की ज्योतिषी बन गई, तुम?"

बड़ी बहू ने कहा, "जब से मैंने देखा, मर्द लोग औरतों से भी ज्यादा घबराने लगे हैं। देखो मझले, तुम्हें इतनी चिंता किस बात की है? घर में क्या लोग नहीं हैं या फिर इस घर में पहली बार तुम्हारी बेटी ही बच्चा जन रही है?"

मझले मालिक ने कहा, "बूड़ी को कोई खतरा तो नहीं है?"

उनकी बात खत्म भी न होने पाई थी कि बड़ी बहू ने डांट पिलाई, "इसके अलावा तुम्हारे मन में और कोई चिंता नहीं है क्या? जैसे तुम मेरे बाप बनकर आए हो। अब तुम यहां से जाओ, और जाकर देखो, झोपड़ी जल्दी तैयार कराओ। जो करना है उसी में करो।"

मझले मालिक डांट खाकर चुप हो गए। फिर धीरे-धीरे कसमसाते हुए बोले, "बड़ी भाभी, मैं कह रहा था कि...मतलब...मैं कहता हूं कि बूड़ी को पानी से भीगी झोपड़ी में न भेजकर कमरे में ही रखने से नहीं चलेगा?"

बड़ी बहू जैसे आसमान से गिरी हों, बोलीं, "ओ मां ! यह क्या कह रहे हो? भला बच्चा कमरे में जन्म लेगा? ऐसी अनोखी बात तो हमारे कुल में दस पुश्तों से किसी ने नहीं सुनी होगी।"

मझले मालिक बोले, "तुम्हारी दस पुश्तों ने तो और भी बहुत कुछ नहीं सुना होगा। तुम्हारे पूज्य पिताजी ने अपनी आंखों से रेलगाड़ी भी नहीं देखी होगी। तो क्या इसीलिए रेलगाड़ी नहीं बनी? या कि तुम रेलगाड़ी पर चढ़ोगी ही नहीं? कलकत्ते में तो अस्पताल में ही सब कुछ होता है।"

बड़ी बहू थोड़ी देर एकटक मझले मालिक के मुंह की ओर देखती रहीं। होठों पर हल्की मुस्कराहट थी। मझले मालिक ने लक्ष्य किया, बचपन की वह दुष्ट हंसी बड़ी बहू की आंखों में चमक रही है।

मझले मालिक ने सावधान होने की कोशिश की। वे जानते हैं, इसके बाद उधर से हमला होगा।

बड़ी बहू बोलीं, "कलकत्ते के बाबू के मन में कलकत्ते के लिए बुढ़ापे में भी जो दर्द है, उसे मैं साफ-साफ देख रही हूं। कलकत्ते में बहुत कुछ है। वहां हमारे जैसी चुड़ैलें तो रहती नहीं, सुना है पंखकटी परियां रहती हैं। कलकत्ता-सास्तर कलकत्ता में ही चलेगा। गांव में तो चलने से रहा। यहां का नियम है कि जिस घर में बच्चा पैदा होता है, उसे छठी हो जाने के बाद गिरा देते हैं, नहीं तो बच्चे का अनिष्ट होता है। तो क्या तुम यह चाहते हो कि तुम्हारी दुलारी बेटी के लिए यह घर ही गिरा दिया जाए?"

मझले मालिक ने इतनी गहराई से नहीं सोचा था। बड़ी बहू की बातों से घबराकर दाढ़ी पर हाथ फेरने लगे।

बड़ी बहू फिर बोलीं, "बेकार की चिंता छोड़कर, उधर जाओ और देखो रामकिष्टो क्या कर रहा है। झोंपड़ी को अच्छी तरह बांध-बूंधकर मजबूत बनाना होगा। उसकी मचान

काफी ऊंची होनी चाहिए। मजबूत भी होनी चाहिए जिससे टूटने का खतरा न रहे। और हां, किसी को बूनोपाड़ा भेजकर वहां से अन्नो दाई को बुलवा लो। वह नवाब की बेटी आज बिना बुलाए दर्शन नहीं देगी।"

मझले मालिक ने अन्नो दाई की खोज में आदमी भेज दिया। उसके बाद मकान के अंदर गए जहां आंगन में झोंपड़ी खड़ी की जा रही थी। आंगन पर नजर पड़ते ही उनके होश उड़ गए। तेज वर्षा हो रही थी। बीच-बीच में हवा का तेज झोंका आता और सब कुछ हिला जाता। रामकिष्टो और सुलेमान के साथ नरा भी हाथ बंटा रहा था।

तीनों लोग ठंड से कांप रहे थे। मझले मालिक का चेहरा दुश्चिंता से काला पड़ गया। पहले तो, ऐसे मौसम में झोंपड़ी बनाना मुश्किल है और अगर किसी तरह झोंपड़ी बन भी गई तो उसमें बूढ़ी को रखना और भी मुश्किल है। मझले मालिक घबरा उठे। और जब कुछ नहीं सूझा तो बैठक की ओर चल पड़े।

नाली काटकर पानी निकालने की लाख कोशिश करने पर भी रामकिष्टो आंगन का जल-स्तर कम नहीं कर पा रहा था। घुटने भर पानी आंगन में हिलोरें मार रहा था। और सुलेमान टोकरी में मिट्टी भर-भर कर उसमें फेंके जा रहा था। भीगकर उसके शरीर की चमड़ी सिकुड़ गई थी। ठंड के मारे दांत बज रहे थे। रामकिष्टो ने नरा से चिलम भर लाने को कहा। मगर वह सुअर का बच्चा लौटकर ही नहीं आया। लगता है, बाहर के कमरे से चिलम सजाकर लाने में कलियुग का अंत हो जाएगा।

रामकिष्टो बोला, "सुलेमान, जाकर जरा बैठक में देख तो। देख तो, वह हरामजादा कहां मर गया। मिल जाए तो पहले उसकी पीठ पर दो लात जमाना। ... अच्छा ! अब आ रहे हैं नवाब के नाती। मन कर रहा है, इसी आंगन में साले को गाड़ दें। चल जल्दी पांव बढ़ा।"

नरा आकर खड़ा भी न हो पाया था कि बाप के मजबूत हाथों की मार उसे झेलनी पड़ी।

"क्या कर रहा था इतनी देर? तुझे चिलम भर कर लाने को कहा था, तो क्या तू वहां तंबाकू की खेती करने लगा? क्यों रे हरामजादा?"

जोरदार थप्पड़ खाकर नरा की आंखों के सामने चिनगारियां छूटने लगीं। वह भोकार छोड़कर रो पड़ा।

एक मिनट बाद बोला, "जानबूझकर देरी थोड़े ही की थी मैंने। बाबू लोगों ने मुझे रोक लिया। चार-पांच बार चिलम भरने के बाद जान छूटी। तो मैं क्या करता? जल्दी कैसे आता?"

इधर कड़े तंबाकू का धुआं पेट में उतरते ही रामकिष्टो का पारा भी झट से नीचे उतर आया। चिलम को सुलेमान के हाथों में थमाकर रामकिष्टो ने नरा को प्यार से अपने पास

खींच लिया।

बोला, "चुप हो जा, बेटा, चुप हो जा। पहले ही इतना पानी बरस रहा है, अब तेरी आंखों का आंसू भी इसमें शामिल हो जाएगा तो क्या होगा? मानता हूं, मुझसे अन्याय हुआ, मारना नहीं चाहिए था। चल, तू भी दो-चार कश लगा ले।"

इसके बाद उसने सुलेमान को हांक लगाई, "अरे सुलेमान, बाभन की तरह चिलम को पूरा चूस कर ही छोड़ेगा? इस बच्चे को थोड़ा प्रसाद दे दे और तू काम में लग जा। छप्पर जल्दी बांध दे।"

सुलेमान बोला, "बाप रे ! क्या बरसात है ! मन करता है, इसी आंगन में लेट जाऊं। चाचा, खेतों में भी कीचड़ भर गई है। भोर होते ही उधर भी हाथ लगाना होगा।"

रामकिष्टो ने पूछा, "क्यों रे सुलेमान, तेरे टोले में उस दिन इतनी रोशनी किस बात की हो रही थी? जात्रा हो रही थी क्या?"

छप्पर उठाते हुए सुलेमान बोला, "नहीं चाचा, जात्रा-वात्रा कुछ नहीं थी। मागरों के पीर साहब आए थे। मिद्दा साहब ने उनसे कहा, कुरानशरीफ का पाठ हो जाए। वही हो रहा था। मिद्दा साहब के दामाद मुख्तार बने हैं न, इसीलिए। चाचा, पीर साहब ने जो दाढ़ी रख छोड़ी है, उसे देखकर मुझे रामचरन का बकरा याद आता है। कुरानशरीफ पढ़ते समय उनकी दाढ़ी ऐसे हिलती है जैसे रामचरन के बकरे की कटहल के पत्ते खाते समय हिलती है।"

नरा ही-ही करके हंसने लगा। रामकिष्टो ने उसे जोरदार डांट लगाई। सुलेमान को भी डांटा, "पीर-मौलवी, गुरु-पुरोहित—यह सब गुणी लोग होते हैं। इनके बारे में हंसी-मजाक मुझे बर्दाश्त नहीं है।"

ठंड से कांपते हुए भी रामकिष्टो और उसके साथियों ने जानवर जैसा परिश्रम करके झोंपड़ी किसी तरह खड़ी कर दी थी। अब बाकी रह गया था उसके अंदर का फर्श बनाना। यह काम और भी कठिन था।

उन्होंने अथक परिश्रम किया था। बारिश के पानी में भीगकर ठंड उनकी हड्डियों तक पहुंच गई थी। इसीलिए नए काम में हाथ लगाने के पहले वे थोड़ी शक्ति संचय कर लेना चाहते थे। उन्होंने पूर्वी कमरे में आश्रय लिया। नरा एक अंगीठी भर कर आग ले आया। और साथ में सेर भर कच्चा तंबाकू। सभी बैठकर तंबाकू पीने लगे।

रामकिष्टो ने कहा, "देख सुलेमान, जैसी बारिश हो रही है उसे देखते हुए झोंपड़ी में मचान बांधने का काम सिर्फ हम दोनों के वश का नहीं है। तू एक काम कर। सरदारपाड़ा से चार-छः जवान लड़कों को पकड़ ला। सब मिलकर करेंगे तो काम जल्दी हो जाएगा।"

सुलेमान उछल पड़ा, "लाख टके की बात कही, चाचा तुमने। सोचता हूं, तुमने अगर

लिखाई पढ़ाई की होती... ।"

रामकिष्टो को यह प्रशंसा अच्छी लगी। आत्मगौरव से उसकी आंखें चमकने लगीं। मुंह से धुएं का एक गुबार छोड़ते हुए उसने चिलम सुलेमान के हाथ में थमा दिया और बोला, "क्यों रे? ये बात क्यों कही तूने? लिखना-पढ़ना सीख लेता तो क्या हमारे और दो हाथ उग आते?"

सुलेमान तेजी से चिलम की कश लग रहा था। रामकिष्टो की बात सुनकर एक पल के लिए वह रुका और बोला, "तो चाचा, तुम्हारे हाथों से हल-कुदाल नहीं उठते। मिद्दा साहब के दामाद की तरह तुम भी आंखों पर चश्मा चढ़ाए, पांव में बूट पहने, सिगरेट फूंकते-फूंकते सदर जाते और मुख्तारी करते।"

नरा की दोनों आंखें आश्चर्य से फैल गईं। उसने अपने बाप की मिद्दा साहब के दामाद की पोशाक में कल्पना की। उसने मुख्तार मियां को देखा है। मुख्तारी पास करने के बाद से ही मिद्दा साहब के दामाद का नाम पूरे गांव में मुख्तार मियां हो गया है। बापू की आंखों पर चश्मा...ही-ही...नरा के पेट में हंसी का तूफान उठ रहा था। बापू के पांव में बूट और इसटाकिन...इसटाकिन भला क्या चीज होती है?

नरा ने पूछा, "सुलेमान भैया, इसटाकिन भला क्या चीज होती है?"

सुलेमान ने कहा, "मोजा रे मोजा। छोटे मालिक पहनकर आते नहीं हैं! बाबू लोग उसी को इसटाकिन कहते हैं। मिद्दा साहब के दामाद अब फूल बाबू हो गए हैं। देखा तुमने, कौन कहेगा कि वे रियाजुद्दी गाजी के बेटे हैं? अब तो वे मुख्तार बाबू बन गए हैं।"

"बाबू के पांवों में इसटाकिन... हि हि हि..." नरा हंसकर लोटपोट होने लगा।

रामकिष्टो अपने बेटे के व्यवहार से नाखुश हुआ, "क्यों, इसटाकिन पहनना ऐसी क्या मुश्किल बात है? ये बात अलग है कि पहनने के बाद पांव में खुजली हो सकती है। इसीलिए रामकिष्टो फतुआ भी नहीं पहन पाता। शरीर पर कपड़ा पड़ते ही उसकी सांस घुटने लगती है। नहीं तो, ऐसा नहीं है कि वह बाबू नहीं बन सकता। रामकिष्टो ने लिखाई-पढ़ाई शुरू तो की थी, मगर जल्दी ही छोड़ दी। कितनी पुरानी बात हो गई। उसी साल उसने पढ़ाई छोड़ी, जिस साल मझले बाबू कलकत्ते से पढ़ाई करके लौटे थे। तब गांव में स्कूल खोलने की तरफ उनका बड़ा झुकाव था और जात-कुजात के हाथों का पानी पीने में भी उनको कोई एतराज न था। मझले बाबू ने तब पाठशाला खोली थी। कुछ दिनों पाठशाला खूब चली। दिन के समय रामकिष्टो पाठशाला नहीं जा पाता था। वह पाठशाला जाता तो हल की मूठी कौन पकड़ता। ठीक है—मझले बाबू ने कहा था—तो फिर तुम लोगों के लिए रात की पाठशाला खोलता हूं।"

मझले बाबू ने रात की पाठशाला भी खोली थी। हिंदू और मुसलमान सभी टोलों में घूम-घूमकर छात्र इकट्ठे किए थे। किताब-कापी भी खरीद लाए थे। जोड़-तोड़ करके पाठशाला

आरंभ भी हुई थी। फिर एक दिन सब कुछ पानी में चला गया। बिना सोचे-विचारे मझले बाबू ने सभी जातियों के लोगों को एक ही बर्तन से स्कूल में पानी पिलाना शुरू किया। इसकी ऐसी प्रतिक्रिया हुई कि जैसे गांव में प्रलय आ गया हो। चारों ओर प्रवाद फैल गया कि मझले बाबू बेहमज्ञानी हो गए हैं। 'बेहमज्ञानी' क्या होता है, यह बात रामकिष्टो नहीं जानता था। मगर उस समय गांव के लोगों के हाव-भाव देखकर रामकिष्टो को लगा था कि या तो मझले बाबू पागल हो गए हैं, या फिर ऐसी ही कोई सांघातिक बात है।

पहले, दिन की पाठशाला बंद हुई। रात की भी प्रायः बद होने को आई। दीवान घर में उन दिनों रात-दिन रोना-धोना, तर्क-वितर्क, गर्जन-तर्जन चल रहा था। बड़े मालिक और बड़ी मालकिन तब भी जिंदा थे। वही बड़े मालिक जो नील कोठी के दीवान थे, अपने समय में जिन्होंने बाघ और गाय को एक घाट पर पानी पिलाया था, वे भी मझले बाबू पर काबू पाने में सफल न हो सके थे। हार कर उन्होंने मझले बाबू को त्याग देने का निश्चय किया था। फिर भी मझले बाबू अपनी आदतों से बाज न आए थे। रामकिष्टो को मझले बाबू की उन दिनों की कुछ बातें आज भी याद हैं। अक्सर मझले बाबू कहते थे, "ईश्वर एक है। उसने ही सब कुछ सिरजा है। उसकी निगाह में न तो कोई ऊंची जात है और कोई नीची। यह अंतर तो आदमी ने पैदा किया है। सभी मनुष्य एक-दूसरे के भाई एक भाई के हाथ का पानी दूसरा भाई पीए, तो इसमें हर्ज ही क्या है?"

मझले बाबू रोज पाठशाला में ये सब बातें कहा करते। वे ऐसा क्यों कहा करते थे, रामकिष्टो नहीं जानता। इन बातों का मतलब क्या है, यह भी वह समझ नहीं पाता था। फिर भी सुनने में बुरा नहीं लगता था। और रामकिष्टो यह भी नहीं समझ पाता था कि इन बातों में ऐसी बुराई क्या है कि इन्हें सुनकर गांव के सारे बड़े लोग इतना नाराज हो गए हैं। खास कर पुरोहित महाशय तो एकदम आगबबूला हो गए थे। घर-घर घूमकर वे कहते फिरते थे, "जो भी महि की पाठशाला में अपना बच्चा भेजेगा उसे बिरादरी से बाहर कर दिया जाएगा। उसका सर्वनाश होगा।" पुरोहित ठाकुर बड़े तेजस्वी आदमी हैं। आसपास के आठ गांवों में उनका हुकुम चलता है। उनकी बात न मानने का साहस कौन करता? किसी ने भी अपने बच्चे को पाठशाला नहीं भेजा। दुखी होकर मझले बाबू ने साहबों के पाट के दफ्तर में नौकरी कर ली और गांव छोड़कर चले गए। उसके बाद से तो गांव के साथ प्रायः उनका संपर्क ही टूट गया। लड़की का अन्न-प्राशन भी उन्होंने परदेश में ही किया। बड़े मालिक मरे तो सभी ने सोचा, शायद वे उनका श्राद्ध आदि नहीं करेंगे, मगर देखा गया कि लोगों की यह धारणा सही नहीं थी। मझले बाबू गांव आए। नियमपूर्वक उन्होंने सारे कार्य किए। मालकिन के मरने पर भी उन्होंने किसी नियम का उल्लंघन नहीं किया। मझली मां के मरने पर भी नहीं। मझली मां के बाद बड़ी दीदी को गांव में छोड़कर मझले बाबू अकेले अपने काम पर चले गए। और तभी से गांव के साथ उनका फिर संबंध

शुरू हुआ। मगर आज के मझले बाबू के साथ पहले के मझले बाबू का कोई मेल नहीं है, यह बात रामकिष्टो को साफ दिखाई देती है। न केवल उन्होंने दाढ़ी रख ली है, बल्कि उन सभी से वे दूर हो गए हैं।

कितने दिनों की बात है। मझले बाबू की ही पाठशाला टिकी रहती तो शायद रामकिष्टो भी लिख-पढ़ जाता। न लिख-पढ़ पाने की भी वजह तो कुछ नहीं। कौन कह सकता है कि वह भी मुख्तार नहीं हो जाता। मिद्दा साहब के दामाद, इन्हीं शयला मियां ने क्या शुरू में हल नहीं चलाया था? चलाया तो था। मगर सुविधा पाते ही उसने लिखना-पढ़ना सीख लिया था। सीखा भी था बड़ी मुश्किल से। अब जब वह मुख्तार बन गया है, लोग उसकी इज्जत करेंगे ही।

"छोड़ो, यह सब सोचकर होगा क्या?" जैसे नींद से जागा रामकिष्टो, और बोला, "जा भाई, जल्दी से बूनोपाड़ा चला जा। हाथ में जो काम है उसे जल्दी से निबटा लेना होगा।"

सुलेमान बूनोपाड़ा की ओर भागा।

मझले मालिक बैठक में व्यग्र भाव से चहलकदमी कर रहे थे। थोड़ी देर पहले जो लोग वहां भीड़ लगाए हुए थे, उनमें से अब कोई भी वहां नहीं था। सूने कमरे में उनकी बेचैनी और बढ़ गई थी। बूड़ी को आंगन में उतारने की बात को किसी तरह भी उनका मन नहीं मानता था। ये लोग कुसंस्कारों से किस तरह घिरे हुए हैं, सोचकर मझले मालिक को आश्चर्य होता। दुनिया में कितने तेज बदलाव आ रहे हैं, इस बात की कोई खबर इन्हें नहीं है। तीस साल पहले इनके जो आचार-विचार थे, वे ही आज भी हैं। हैं तो हैं। अब इसके लिए उन्हें कोई दुख नहीं होता। इस बात को लेकर वे अब परेशान नहीं होते। उनकी परेशानी बूड़ी को लेकर है। ऐसी बारिश में लड़की को झोंपड़ी में रखने का मतलब है उसे खो देना। इसमें कोई संदेह नहीं। इसे स्वीकार करना असंभव है। यह व्यवस्था वे किसी तरह भी नहीं मानेंगे।

तभी कड़ककर कहीं बिजली गिरी। मझले मालिक चौंक पड़े। निश्चय ही कहीं आसपास बिजली गिरी है। बिजली की चकाचौंध से उनकी आंखें चौंधिया गईं। वे मकान के भीतर जाने की सोच ही रहे थे कि उन्होंने देखा कि अन्नो दाई सीताफल का एक पत्ता सिर पर रखे चली आ रही है। उसका पूरा शरीर भीगकर लथपथ हो रहा है।

मझले मालिक ने हड़बड़ा कर उससे पूछा, "क्यों रे, कहां थी तू? बड़ी बहू तेरे लिए बहुत परेशान हो रही थीं।"

अचानक मझले बाबू के सामने पड़ जाने से अन्नो दाई थोड़ा अचकचा गई। झट से सिर का कपड़ा मुंह पर खींचकर देह चुराती-सी वह अंदर भाग गई। अंदर जाते ही बड़ी बहू से उसका सामना हुआ।

बड़ी बहू ने धमकाते हुए कहा, "क्यों रे लबार की बेटी ! तुझे क्या सांप ने सूंघ लिया था?"

अन्नो कुछ कहने जा रही थी, मगर उसे बोलने का अवसर न देकर बड़ी बहू ने एक बार और धमकाया, "मैं कहती हूं, क्या तेरी अक्ल घास चरने चली गई है?"

अन्नो ने कातर भाव से कहा, "दुहाई है, मालकिन, पहले मेरी बात तो सुन लो, फिर तुम्हारे मन में जो आए कहना। लोहाजांगा का बदरू आधी रात को ही आकर मुझे जबरदस्ती पकड़ ले गया। मैंने कितना कहा उससे कि घर जाना है, मगर उसने एक न सुनी। उसकी बहू को शाम से ही दर्द हो रहा था। खैर, सब कुछ ठीक-ठाक हो गया। वहां से छूटते ही भागी चली आ रही हूं। तुम्हीं बताओ, क्या करूं? अभी तक मुंह में अन्न का दाना नहीं गया। दीदी के लिए तुम्हें परेशान होने की जरूरत नहीं है। पहलौठी का बच्चा है न? इतनी जल्दी कुछ नहीं होगा। थोड़ा वक्त लगेगा। तुम तो सब जानती हो, तुमने भी तो बच्चे जने हैं। मुझे कुछ खाने को दो। भूख से मरी जा रही हूं।"

अन्नो की हालत देखकर और उसकी बातें सुनकर बड़ी बहू का मन शांत हो गया। उन्होंने वहीं से बड़ी ननद को आवाज लगाई।

"ओ दीदी, तुम्हारी रसोई में कुछ तैयार है? जरा बाहर आओ तो।"

शुभदा रसोईघर से बाहर आई।

"ओ मां ! अन्नो आ गई ! चलो जान बची। तूने बड़ी चिंता में डाल दिया था।"

बड़ी बहू ने कहा, "इस बिचारी की भी बड़ी खींचतान है। रात को ही लोहाजांगा पकड़ ले गए लोग। वहां से फुरसत पाकर सीधे चली आ रही है। अभी मुंह में अन्न का दाना नहीं गया है। तुम इसे कुछ खाने को दे सकती हो?"

"रसोई तो बन गई है। पर इसे दूं कैसे? अच्छा देख, उस कमरे में फूली है क्या? हो तो मेरे पास भेज देना। मैं दाल-भात परोस देती हूं। वह अन्नो को परोस देगी। जा तो अन्नो, केले का एक पत्ता काट ला।"

अन्नो ने कहा, "मैं तो अब बरखा में उतरने से रही। पांव हमारे पहले ही गले हुए हैं। सीताफल का यह पत्ता है, इसी में दे दो।"

"तू तो सब बातों में अनोखी है।" कहकर शुभदा रसोईघर में चली गई।

"फूली दीदी, ओ फूली दीदी !" अन्नो ने पुकारा।

पास के कमरे से तेरह साल की फूलेश्वरी झूमती हुई बाहर आई और बिना कुछ कहे भौंहें उचकाकर और सिर हिलाकर पूछा, "क्या?"

फूली को देखकर अन्नो अवाक हो गई।

उसने पूछा, "तुम्हारे मुंह में क्या है?"

मुंह घुमाकर, मुंह में रखी चीज निगल कर फूली ने कहा, "मरी, चिल्ला-चिल्लाकर

पूरा मुहल्ला सिर पर क्यों उठा रही है? धीमे-से नहीं पूछ सकती? आम का अचार खा रही थी। बुआ जान पाएंगी तो पेट में से भी बाहर निकलवा लेंगी। ले, खाएगी अचार?"

अन्नो हंसकर बोली, "ओ मां ! क्या कह रही हो? अचार भला ऐसे खाते हैं? ठीक तो है तू? तुम्हारी करनी बहू को पता चल गई है। इसी कमरे में ही तो हैं।"

बड़ी बहू उसी कमरे में हैं, यह जानकर फूली को जैसे साप सूंघ गया। उसकी किस्मत अच्छी थी कि बड़ी बहू ने अचार के बारे में उससे कुछ नहीं पूछा।

वे बोलीं, "देख बेटी, दीदी के कमरे से दाल-भात-तरकारी लाकर अन्नो को परोस दे। एक लोटा पानी भी लाना, और ऊपर से उसे पिला देना।"

अन्नो का खाना अभी खत्म नहीं हुआ था। मुंह में कौर भरे-भरे ही उसने पुकारा, "बड़ी मां, सुनना जरा।"

बड़ी बहू कमरे से बाहर आईं।

अन्नो ने कहा, "असली बात तो भूली ही जा रही थी। लोहाजांगा जाना एक तरह से अच्छा ही हुआ। जुलाहा बहू के पांव की धोअन भी लाई हूं। पहला बच्चा है न! पता नहीं, कब किस चीज की जरूरत पड़ जाए।"

उस इलाके में जुलाहा बहू का बड़ा नाम है। आठ-दस बच्चों की मां हैं। किसी बच्चे के जन्म पर उन्हें जरा भी कष्ट नहीं हुआ। दर्द शुरू हुआ नहीं कि बच्चा हो जाता था। इसीलिए इस इलाके की दाइयां जुलाहा बहू के पांव धोकर पानी अपने पास रखती हैं। जिन औरतों को प्रसव में देर होती है, या ज्यादा कष्ट होता है, उन्हें दाइयां जुलाहा बहू के पांव का वही धोअन पिला देती हैं। पिलाते ही बच्चा पैदा हो जाता है।

भीतरी कमरे में गिरिबाला लेटी हुई थी। अन्नो की बात सुनकर उसके रोंगटे खड़े हो गए। पिछली दुर्गापूजा में उसने जुलाहा बहू को देखा था। वे बरवारीतल्ला की मूर्ति देखने आई थीं, तो इनके घर भी चक्कर लगा गई थीं। जुलाहा बहू से उसकी बातचीत भी हुई थी। उसी समय गिरिबाला ने देखा था कि जुलाहा बहू के दोनों पांवों में खुजली थी। उन्हीं पांवों को धोकर जो पानी अन्नो लाई है क्या उसे पीने को देंगे? ओक् ! ओक्! करके गिरिबाला उल्टी करने लगी।

"ओ मां ! क्या हुआ इस लड़की को? क्या हुआ, बेटी?" बड़ी बहू घबराकर कमरे में घुसीं।

तीन

घबराई हुई बड़ी बहू कमरे में घुसीं। देखा, गिरिबाला खाट के ऊपर झुकी हुई फर्श पर उल्टी कर रही है।

गिरिबाला की उम्र पंद्रह साल की थी। रंग काला अैर कद मंझोला। सिर पर घने काले घुंघराले बाल, जिनके दो-चार गुच्छे माथे पर लटक रहे थे। प्रथम मातृत्व का लावण्य उसकी पूरी देह में उसी तरह भर उठा था, जैसे पहली-पहली बारिश से कोई झील लबालब भर उठी हो।

गिरिबाला ने अपनी निढाल नजरें बड़ी बहू पर टिका दीं। फिर मिरगी के रोगी की तरह उछलकर उसने बड़ी बहू का गला दोनों हाथों से जकड़ लिया और फफक-फफक कर रोने लगी।

"बड़ी मां, ओ बड़ी मां, तुम्हारे पांव पड़ती हूं, मेरे सिर की कसम, तुम्हें ठाकुर जी की कसम, वह गंदा पानी मुझे मत पिलाना, नहीं तो मैं बचूंगी नहीं। बड़ी मां, मैं तुम्हारे हाथ जोड़ती हूं...।"

गिरिबाला की हालत देखकर बड़ी बहू घबरा गई।

"ओ मां, बूड़ी, ऐसे पछाड़ क्यों खा रही है? क्या हुआ है? मिजाज ठंडा कर। क्या कह रही है, तू? समझ में नहीं आ रहा है। जरा शांत हो जा, फिर बोल।"

गिरिबाला की उत्तेजना एक पल में शांत हो गई। उसकी जगह अवसाद ने ले लिया। खाट के ऊपर निढाल होकर आंखें मूंदे लेट गई और हांफने लगी। बड़ी बहू उसकी पूरी देह पर और सिर पर प्यार से हाथ फिराने लगीं।

एक पल बाद रुआंसी आवाज में गिरिबाला ने कहा, "दुहाई है, बड़ी मां, अन्नो जो चीज ले आई है, वह पीने के लिए मुझे मत देना।"

बड़ी बहू और भी चकित हुईं।

"क्या लाई है अन्नो? मैं तो कुछ समझ ही नहीं पा रही हूं।"

उसके स्मरण मात्र से गिरिबाला के पेट में जैसे एक बगूला-सा उठा। उसने फिर दो बार ओक्-ओक् किया। मगर इस बार उल्टी नहीं हुई। इतने से परिश्रम में गिरिबाला हांफ उठी। धौंकनी की तरह उसकी छाती उठने-गिरने लगी। पेट पर दो-तीन बार तेज दबाव महसूस हुआ।

हांफते-हांफते गिरिबाला बोली, "जुलाहा बहू के पांव धोकर जो पानी लाई है अन्नो, उसकी बात कर रही हूं। मैंने जुलाहा बहू को देखा है। उसके दोनों पांव सड़े हुए हैं। उनमें से मवाद चूता रहता है।...ओक्-ओक्...वह मैं मर कर भी नहीं पी सकूंगी...ओक्...।"

गिरिबाला के पेट में हल्का-सा मरोड़ उठा। माथे पर पसीने की बूंदे छलक आईं। बड़ी बहू ने आंचल से गिरिबाला का मुंह पोंछ दिया और पंखें से हवा करने लगीं।

फिर बोलीं, "देखो तो इस लड़की का तमाशा ! ओ चम्पा, एक लोटा पानी ले आ और फूली की मां को बोल, यहां सफाई कर जाए। बूड़ी, डर मत, वह सब गंदगी मैं तुझे भला क्यों पिलाऊंगी?"

अब कहीं गिरिवाला की जान में जान आई। एक अज्ञात आतंक से उसकी शिराएं धनुष की तरह तनी हुई थीं। अब वे शिथिल हो आईं। चम्पा पानी ले आई। बड़ी बहू ने थोड़ा-थोड़ा पानी हाथ में लेकर गिरिबाला का मुंह, आंखें, माथा, गर्दन और कानों के पीछे धो दिया। फूली की मां आकर कमरा साफ कर गई।

बड़ी बहू ने पूछा, "ओ फूली की मां, रसोई बन गई?"

फूली की मां ने गर्दन हिलाकर 'हां' कही।

"तो फिर जाओ, मझले मालिक को खाने को बोलो। छोटी बहू को स्नान कराने को कह देना। एक मिनट रुको, अपनी तंबाकू की डिबिया जरा दिखाना।"

फूली की मां ने पिसी हुई तंबाकू की डिबिया आंचल से खोलकर बड़ी बहू की ओर बढ़ाई। बड़ी बहू ने थोड़ा-सा तंबाकू लेकर दांतों को अच्छी तरह मला, फिर आंगन में थूक आई। फिर तंबाकू की डिबिया फूली की मां के हाथ में थमाकर गिरिबाला के पास आ बैठीं और बड़े प्यार से चम्पा को पुकारा–

"रानी बेटी, जाओ, नहा लो। आज तुम्हें अपने मन से नहाना होगा, समझी न? दीदी की तबीयत खराब है। मैं अभी इसके पास ही बैठती हूं।"

बड़ी बहू बोल रही थीं तो तंबाकू का चूरा फुस-फुस करके उनके मुंह से उड़ रहा था।

यह देखकर खिलखिलाती हुई चम्पा बोली, "बड़ी मां, बात मत करो, नहीं तो तुम्हारे मुंह से तंबाकू उड़कर बड़ी दीदी की आंख में पड़ जाएगा।"

बड़ी बहू एक पल को शरमाई, फिर हंस पड़ीं और बोलीं, "दिन पर दिन यह लड़की बड़ी सयानी होती जा रही है। फालतू बात छोड़ और जो कह रही हूं उसे ध्यान से सुन। पूरी देह में अच्छी तरह तेल लगाना, समझी? तेल लगाकर पहले मुझे दिखाना, फिर नहाने जाना।"

बड़ी बहू की बातें खत्म होते ही चम्पा वहां से चटपट खिसक गई। बड़ी बहू का मन भीतर ही भीतर कसमसाने लगा। पता नहीं, यह लड़की ठीक से तेल लगाएगी या नहीं? तेल और पानी से ही तो यह शरीर स्वच्छ होता है। इत्ती-सी तो लड़की है। वह भला अपने आप तेल कहां लगा पाएगी?

बड़ी बहू ने पुकारा, "ओ चम्पा, तू मेरे पास ही आ जा। तेल की बोतल भी ले आ।"

बेचारी चम्पा ! सोचा था, आज के दिन बड़ी मां के हाथों से रिहाई मिली, मगर बड़ी मां कहां छोड़ने वाली हैं। उनका हुक्म सुनकर मुंह बिदकाए हाथ में तेल की बोतल लिए चम्पा हाजिर हुई। गिरिबाला लेटी-लेटी यह तमाशा देख रही थी। बड़ी मां के हाथों से तेल लगवाना कितनी बड़ी सजा है, यह बात गिरिबाला अच्छी तरह जानती है। बड़े भैया भी जानते हैं। मगर बड़े भैया तो कलकत्ते जाकर बच गए हैं। ससुराल जाकर वह भी बच जाएगी। तब सारा छार-भार चम्पा पर आ पड़ेगा।

बड़ी मुश्किल से इस बीच बड़ी बहू ने चम्पा की चोटी खोल डाली थी। उसके बालों में कंघी कर रही थीं। मुंह फुलाए और उसे दोनों घुटनों पर टिकाए चम्पा बैठी थी।

गिरिबाला को हंसी आ रही थी।

बोली, "ओ चम्पा, चेहरा बैंगन-जैसा क्यों बना रखा है?"

उसकी बात का जवाब न देकर चम्पा चीख उठी, "ओ बड़ी मां, बड़ा दुख रहा है।"

चम्पा की हालत देखकर गिरिबाला को मन ही मन हंसी आ रही थी।

चम्पा को चिढ़ाने के लिए उसने कहा, "दुख-उख कुछ नहीं रहा है। इस लड़की को तो फूल मारने से भी मुरछा आती है।"

चम्पा गुस्से से बोल पड़ी, "देखो बड़ी दीदी, तुम बीमार हो, बीमार की तरह रहो। ज्यादा फुटानी झाड़ने की जरूरत नहीं है, समझी?"

बड़ी बहू ने उसे धमकाया, "अरे चुप कर। देखो तो लड़की की बातें ! वह भला रोगी क्यों होने लगी?"

चम्पा चुप लगा गई। गिरिबाला आंचल में मुंह ढक कर हंसने लगी। इन बातों की ओर ध्यान न देकर बड़ी बहू चम्पा के बालों की लटें छुड़ाती रहीं। कंघी के कई दांत टूटे हुए थे। कभी-कभी कंघी बालों में फंस जाती थी और खींचने पर पट्-पट् कर बाल टूटने लगते थे। दर्द होने पर भी मारे गुस्से के चम्पा मुंह बंद किए बैठी रही। [illegible]-ऊह भी नहीं की। जानती है, उसका कोई फायदा नहीं। बाघ भी पकड़ ले तो कभी-कभी आदमी को मुक्ति मिल जाती है, मगर बड़ी मां के चंगुल से छूटने का कोई उपाय नहीं। चम्पा जानती है कि अभी पूरे शरीर में अच्छी तरह तेल घिसा जाएगा। इसके बाद बेसन और हल्दी से घिस-घिसकर उसे छुड़ाना होगा। इसके बाद पोखरे के पानी में उतर कर दो तीन डुबकियां लगानी होंगी, बस। देह पर जितना मर्जी पानी डालो, घंटा आधा घंटा गले तक पानी में डूबे रहो, मगर सिर पर ज्यादा पानी नहीं डाला जा सकता। बालों में जो तेल लगा है, उसे धोने की इजाजत नहीं है। सिर रूखा होने से बालों का रंग उड़ जाएगा। वह बाल ही क्या जो एकदम काला न हो? छोटे-छोटे बालों को तो बड़ी बहू बाल ही नहीं मानतीं, गले की फांसी कहती हैं। इन चीजों की तरफ वे कड़ी नजर रखती हैं।

चार

कड़ी नजर तो छोटी बहू की भी है।

उन्होंने ऑयल-क्लाथ को अच्छी तरह बिछाकर बच्चे को उस पर लिटा दिया। राजकुमार सो गया। वह सोता ही रहता है। पंखे से हवा करते-करते छोटी बहू ने सोचा—एक तरह से यह अच्छा ही है। डायनों और चुड़ैलों की आंखों से दूर तो रहेगा। अगर वे जान गईं तो उनसे इसे कौन बचा सकेगा? राजकुमार को फाड़कर खा ही जाएंगी। इसीलिए छोटी बहू इतनी सतर्क रहती हैं, इसीलिए वे इतनी कड़ी नजर रखती हैं।

एक सुंदर कथरी लेकर छोटी बहू ने सिर से पैर तक राजकुमार को ढक दिया। वे थोड़ी निश्चिंत ही हुई थीं कि कड़कड़ाकर बिजली गिरी। चौंक उठीं छोटी बहू और राजकुमार की देह पर प्यार से हाथ फेरने लगीं। अगर चौंक कर उठ जाता तो? अगर वह डर कर रोने लगता, तो फिर क्या होता? तो और क्या होता, इन डायनों को सुविधा हो जाती। रुलाई की आवाज सुनकर वे इस कमरे में इकट्ठी हो जातीं। उसके बाद राजकुमार का गला मरोड़ देतीं। मटर की कच्ची फुनगियों की तरह ये हरामजादी उसे तोड़ फेंकतीं।

अचानक छोटी बहू के दिमाग में एक बात कौंधी। वह फुसफुसाकर बोल उठीं, “मगर गला पाएगी कहां से? हूं ! हूं ! नहीं है, तभी तो खा रही हो, होती तो कहां पाती? देख, खोज के देख, कहां है राजकुमार? कहां है ढूंढ़ तो?” अचानक छोटी बहू उठ खड़ी हुई और ताली बजाकर नाचने लगीं। फिर गाना भी शुरू किया। ‘खोजो खोजो ना रे, जो पा जाए उसी का होरे।’ गाते-गाते एकाएक छोटी बहू रुकीं और जैसे हवा को संबोधित करते हुए बोलीं, “खोज हरामजादी, खोज। सोचती है, खाट पर सोया है। ले देख...।” और हाथ से खींचकर कथरी परे फेंक दी।

वहां एक छोटी सी तकिया पड़ी थी।

फिर उन्होंने पुकारा, “कहां गई? आ, काट गला।” फिर खिलखिलाकर हंस पड़ीं और हंसते-हंसते रुककर बड़बड़ाने लगीं, “ठेंगा ले, ठेंगा ले ! दुर-दुर !”

एक बार फिर कड़कड़ाकर बिजली गिरी। छोटी बहू एक छलांग में खिड़की के पास जाकर, आसमान की ओर देखकर जोर से चीखीं, “ओय चुप कर !”

छोटी बहू के दरवाजे पर बैठकर नरा चिलम सजा रहा था। पीछे से छोटी बहू की आवाज सुनकर वह चौंका और उठकर भाग चला। दौड़कर सीधे अपने बाप के पास पहुंचा।

रामकिष्टो ने पूछा, “क्या हुआ रे?”

डर से थर-थर कांपते हुए नरा ने छोटी बहू के कमरे की ओर उंगली दिखाकर कहा, “पागल!”

रामकिष्टो ने कहा, "तो उससे क्या हुआ?"

नरा ने कहा, "लगता है, आज बहुत बढ़ गया है।"

रामकिष्टो बोला, "तो बढ़ने दे, तुझे उससे क्या?"

नरा ने डरते हुए कहा, "अगर मारें तो?"

रामकिष्टो को बहुत तेज गुस्सा आया। बूनोपाड़ा से कई सरदार आ पहुंचे थे। कई लोगों के लग जाने से तेजी से काम चल रहा था। भयंकर परिश्रम करके उन्होंने झोंपड़ी खड़ी कर दी थी। चारों ओर नालियां काटकर उन्होंने आंगन का काफी पानी बहा दिया था। अब बस इतना काम बाकी था कि अच्छी तरह एक मचान बांध दी जाए और निश्चिंत हो जाया जाए। रामकिष्टो के पास इस तरह की छोटी-मोटी बातें सुनने का समय न था। रामकिष्टो मन ही मन अपनी पत्नी को गाली देने लगा। हरामजादी ने अच्छा पोंगा पैदा किया है। साला डर से ही मरा जा रहा है।

रामकिष्टो ने नरा के गाल पर एक जोरदार चांटा मारने की अपनी इच्छा को बड़ी मुश्किल से दबाया। दांत पीसकर बोला, "देख, अगर लात न खाना चाहे तो मेरे सामने से हट जा।"

नरा डर के मारे बाप के पास से हट गया और सुलेमान के पीछे-पीछे घूमने लगा।

आंगन में खड़ी की गई नई झोंपड़ी पर छोटी बहू की भी नजर पड़ी। बहुत गंभीर भाव से ध्यान देकर वे कारीगरों का काम देखने लगीं। शुरू-शुरू में उनकी समझ में ही नहीं आया कि वे वहां इकट्ठा होकर क्या कर रहे हैं। बेकार में क्यों भीग रहे हैं? भीगते हैं तो भीगने दो, मेरा क्या? दरवाजा बाहर से बंद है, सांकल चढ़ी हुई है। नहीं तो बारिश में थोड़ा भीगने का उनका भी मन था। सर्वनाश! पलक झपकते ही छोटी बहू की समझ में सारी बात आ गई। ये लोग तो झोंपड़ी बना रहे हैं ! इसका मतलब है, एक और राजकुमार आ रहा है।

कोई चीज, कोई यातना जैसे छोटी बहू के अंदर से बाहर आने को छटपटा रही है, मगर आ नहीं पा रही है। मानसिक जटिलता के गोरखधंधे में वह बात चक्कर काट रही है। बात साफ नहीं हो पा रही है, यातना बढ़ती जा रही है। जाने कैसी व्यग्रता छोटी बहू को घेर रही है। बहुत देर से वे शांत रही हैं, पर अब मन अशांत होता जा रहा है। खिड़की के पल्लों पर अपनी छाती दबाकर वे भीतर से उठती सनसनाहट को शांत करना चाहती हैं। धारासार वृष्टि हो रही है। टर्र...टर्र...पिछवाड़े के पोखर से मेढकों का एकतान स्वर गूंज रहा है। गुहाल से लाली गाय की आवाज सुनाई दे रही है। छोटी बहू जैसे सब कुछ नए सिरे से सुन रही हैं। यहां तक कि गोदाम के पास वाले हजारी पेड़ के रसभरे कटहल भी छोटी बहू की आंखों के सामने एक नए सपने की तरह उद्भासित हो रहे हैं।

हां, हल्के-हल्के जैसे उनके मन के ऊपर पड़ा भारी पर्दा खिसकता जा रहा है। दस

साल पहले भी इसी तरह का एक समारोह इस घर में हुआ था। इसी तरह की एक झोंपड़ी बनाई गई थी घर के आंगन में। छोटी बहू को उस झोंपड़ी में रखा गया था। उसके बाद? हां, उसके बाद क्या हुआ था? क्या हुआ था उसके बाद? याद नहीं आ रहा है। याद नहीं आ रहा है। ओह ! उसके बाद कुछ भी याद नहीं आ रहा है। मन के भीतर जैसे एक मटका है जिसमें सारी बातें डाल दी गई हैं और ऊपर से एक पत्थर रख दिया गया है। भारी पत्थर। एक अजाना उद्वेग छोटी बहू के मन में पड़े उस मटके को पूरी ताकत से हिलाने की कोशिश कर रहा है। उनके मन के किसी अंधेरे कोने में यंत्रणा की एक धारदार छुरी जैसे झूल रही थी। झकझोरने से वह छुरी खुलकर उसी जगह जा गिरी। साथ ही एक प्रचंड आघात से छोटी बहू की अंतरात्मा दो फांक हो गई। आह ! कैसी भयंकर यंत्रणा है! कितनी असह्य जलन है !

अचानक जैसे छोटी बहू के दिव्यचक्षु खुल गए। सब कुछ याद आ गया। सब कुछ। उनकी गोद में एक राजकुमार आया था। जलन से सारी औरतों की छाती फट गई थी। क्यों न फटती? और सभी की गोदों में बंदर के छौने थे, केवल उनकी गोद में राजकुमार उतरा था। उनसे यह कैसे बर्दाश्त होता? सबसे बदजात तो वह ननद है। असल में वह एक डायन है। पूत-भतार खाकर इस घर में आ गई है। इसी डायन ने तो उसके राजकुमार की गर्दन मरोड़कर उसका सारा खून चूस लिया था। फिर बावड़ी के कीचड़ में राजकुमार की देह को गाड़ आई थी। मगर राजकुमार तो मरते नहीं। वे मरते नहीं, केवल देह बदल लेते हैं। बावड़ी में ये जो टह-टह लाल कमल खिलते हैं और सुंदर धवल कुइयां खिलती हैं, ये सब क्या हैं? ये ही तो वे राजकुमार हैं। कुमुद कुमार, कमल कुमार।

छोटी बहू का शांत मस्तिष्क फिर से अस्थिर होने लगा है। माथा गरम होने लगा है। डायनों पर उनका आक्रोश फट पड़ने को होता है। उन्हें मारने के तरह-तरह के उपाय उनके मन में तैरने लगते हैं। ये डायनें तो यों ही नहीं मरेंगी। भुतही पोखरी के पश्चिमी कोने पर पानी के नीचे चांदी का एक कटोरा गड़ा हुआ है। कटोरे में एक बेहद काला भौंरा बैठा है। उसी भौंरे में डायन की जान है। अमावस्या की अंधेरी रात में बाल खोलकर एक सांस में डुबकी लगाकर कटोरा बाहर निकालना होगा। फिर उसमें से भौंरे को निकालकर दो अंगुलियों से उसकी गर्दन मरोड़कर फेंक देनी होगी। बस, सारी बिपदा समाप्त। छटपटाकर मर जाएगी डायन। छोटी बहू का मन खुशी से भर गया। मन हल्का हो गया। खिड़की के पल्लों को झकझोरते हुए वे अपने आप ही-ही करके हंसती रहीं। तभी दूर से नरा ने डरते-डरते छोटी बहू की ओर देखा।

नरा पर नजर पड़ते ही छोटी बहू ने हांक लगाई, “ऐ बरकंदाज, इधर आ।”

नरा अपनी जान लेकर भाग खड़ा हुआ।

पांच

दिन रहते ही गिरिबाला को दर्द होना शुरू हो गया था। शुरू-शुरू में उसे अपनी यंत्रणा से ज्यादा लज्जा ही महत्वपूर्ण लगी थी। इसीलिए उसने किसी से कुछ कहा नहीं। जाने कैसा एक अज्ञात आतंक उसके भीतर घिर आया था। धीरे-धीरे वह अपने को असहाय महसूस करने लगी। कई बार पाखाना गई, मगर चैन नहीं आया। आकर बिस्तर पर लेट गई। बीच-बीच में दोनों हाथों से पेट को दबाती रही, मगर कोई लाभ न हुआ। आखिर में परेशान हो उठी।

गिरिबाला को लगा जैसे कोई ज्वालामुखी उसके पेट में फट गया है। पहले भ्रूण, फिर धीरे-धीरे अंकुर पुष्ट हुआ था। पुष्ट होकर जैसे अंकुर ने उसका पेट फाड़कर निकल पड़ने लायक शक्ति का संचय कर लिया था। वह अब कोई बाधा क्यों मानेगा? बाधा देगा भी कौन? वह बाहर की रोशनी, हवा और मुक्ति के लिए व्यग्र हो उठा है। वह क्या अब व्यर्थ ही भीतर की अंधेरी गुफा में समय काटना चाहेगा? अब उसे बाहर निकलने का रास्ता चाहिए। उसी रास्ते की खोज में वह व्यस्त है।

गिरिबाला धीरे-धीरे कातर होने लगी। वह भयंकर वेदना उसकी सहनशक्ति की सीमाएं लांघने लगी। आज सवेरे से ही वह वेदना उसके साथ आंखमिचौनी खेल रही है। पहले-पहल बहुत धीमे कदमों से उसका आगमन शुरू हुआ था। तब गिरिबाला इसका परिणाम समझ नहीं पाई थी। किसी से कुछ कहा भी नहीं था। केवल एक बार जब पेट में मरोड़ उठी थी, तब लाज से सिर झुकाए उसने बड़ी मां से वह बात बता दी थी। उसके बाद से ही बड़ी मां उस पर बराबर नजर रखे हुए है। बाद में पता नहीं, वह दर्द कहां छुप गया। काफी देर तक गिरिबाला को उसका कोई आभास नहीं मिला। गिरिबाला ने सोचा—चलो, लगता है दर्द से छुट्टी मिली। मन हल्का हो आया। खुशी मन से उसने खाना खाया।

तीसरे पहर गिरिबाला को दर्द का एक प्रचंड आघात लगा। इस अचानक आक्रमण से वह भौंचक रह गई। संभलते-संभलते एक दर्द का झोंका और आया। उसे लगा, इन दो झोंकों ने ही उसके मर्मस्थल को उखाड़ फेंका है। भयंकर वेदना से वह चीख उठी। उसकी आंखों के सामने अंधेरा छा गया। चेहरे पर मृत्यु का आतंक फैल गया।

गिरिबाला समझ नहीं पाई कि क्या करने से इस यातना से मुक्ति मिलेगी। वह समझ नहीं पाई कि उसे अब क्या करना चाहिए। धीरे-धीरे, रुक-रुक कर वेदना की लहरें एक के बाद एक आती गईं और उसे निढाल करती गईं। हर बार उसे लगता, वह यातना उसकी छाती चीरकर बाहर आ जाएगी। गिरिबाला छटपटाने लगी। उठ कर बैठ गई। फिर लेट गई। चित लेटी। फिर पेट के बल लेटी। दुबारा चित हुई। घुटने मोड़कर पैरों को पेट पर

दबाकर यंत्रणा शांत करने की कोशिश की। फिर बाहर निकली। थोड़ी देर चहलकदमी करती रही। पाखाने गई। किसी तरह भी उसे चैन नहीं आया, वह फिर आकर बिस्तर पर लेट गई। लेटे-लेटे कराहने लगी। बड़ी बहू पास के कमरे में बैठकर कथरी सिल रही थीं। पास ही चम्पा पड़ी सो रही थी। बीच-बीच में बड़ी बहू हाथ हिलाकर उसकी देह पर बैठी मक्खियों को उड़ा देती थीं। गिरिबाला की अस्पष्ट कराह उनके कानों में गई। हड़बड़ा कर वे उठ खड़ी हुईं और गिरिबाला के पास जा बैठीं। उन्होंने देखा, गिरिबाला का चेहरा सूख गया है। उसके कपड़े तुड़-मुड़ गए हैं। गिरिबाला के माथे से तर-तर पसीना चू रहा है।

"रानी बेटी, दर्द उठा है क्या?"

गिरिबाला कुछ बोल न सकी। उसने बड़ी बहू का एक हाथ पूरी ताकत से पकड़कर दबाया।

बड़ी बहू ने घबराकर ननद को आवाज दी, "ओ मझली दीदी, जरा इधर तो आना। लगता है, बूड़ी को उतारना होगा।"

शुभदा निकिल का चश्मा लगाए 'भागवत' पढ़ रही थीं। चश्मा उतारते-उतारते वे दौड़ी आईं।

उन्होंने कहा, "बड़ी बहू, अन्नो को बुलाओ। साध की साड़ी ले आओ। और महि से कहना, पंडित जी को बुलाने आदमी भेज दें।"

बड़ी बहू के चले जाने के बाद शुभदा गिरिबाला के पास जा बैठीं। आंचल से पसीना पोंछते हुए उन्होंने उसे तसल्ली दी।

कहा, "डरने की कोई बात नहीं है, बेटी। सभी औरतों को यह दिन देखना पड़ता है। कोई डर नहीं है।"

उन्होंने गिरिबाला की चोटी खोल दी और गर्दन पर गांठ बांध दी। शरीर के सारे गहने उतार दिए। तभी अन्नो दरवाजे पर आकर खड़ी हो गई।

शुभदा ने उससे कहा, "अन्नो, जा, झोंपड़ी को ठीक-ठाक कर दे। अंगीठी में आग सुलगा दे और फूली की मां को पानी गरम करने को बोल।"

मझले मालिक घबराए हुए आए। डर और दुश्चिंता से उनका मुंह सूख गया था। दाढ़ी पर तेजी से हाथ फेरते जा रहे थे।

उन्होंने पूछा, "बूड़ी कैसी है?"

उनके स्वर में गहरी उत्कंठा थी। डर के मारे बिस्तर पर पड़ी लड़की की तरफ देखने की हिम्मत न हुई।

शुभदा ने जवाब दिया, "दर्द उठा है। चिंता की बात नहीं है। तुमने पंडित जी को बुलाने के लिए आदमी भेज दिया?"

मझले मालिक ने कहा, "हां। अच्छा, मझली दीदी, इतनी बारिश हो रही है, झोंपड़ी तो भीगकर सराबोर हो रही है। बूड़ी को उसमें न रखने में कोई हर्ज है? न हो, तो गोदाम के पश्चिमी बरामदे में घेरकर आड़ कर दिया जाए और बूड़ी को वहीं रख दिया जाए और कोई डाक्टर बुला लाते हैं। अठारोखादा के गोविन्द डाक्टर का नाम-यश अच्छा है।"

शुभदा ने उत्तर दिया, "महि, तू क्या सचमुच बेटी की चिंता में पागल हो गया है? क्या इस घर में कम बाल-बच्चे हुए हैं? बता तो, कौन सा बच्चा झोंपड़ी छोड़कर घर के कमरे में पैदा हुआ है? समाज की रीति-नीति माननी होगी कि नहीं? हां, न हो तो डाक्टर बुला ही लो। उससे बूड़ी को कोई फायदा हो न हो, तेरा माथा जरूर ठंडा रहेगा। तो फिर देर मत कर, अभी आदमी भेज दे।"

मझले मालिक ने और कुछ न कहा। आदमी भी नहीं भेजा। खुद ही अठारोखादा की ओर तेजी से चल पड़े। आकाश का क्रोध तनिक भी कम नहीं हुआ था।

गिरिबाला झोंपड़ी में कटे हुए पशु की तरह छटपटा रही थी। उसके मुंह से निकलती एक अनवरत कराह सुनाई पड़ रही थी। अंतहीन यंत्रणा के अकूल सागर में वह डूब-उतरा रही थी। एकदम अकेली। उसकी इस वेदना का उत्स क्या है? कहां से शुरू हो रही है यह वेदना? पेट में से या पेट के निचले हिस्से से, गिरिबाला को इसका कुछ भी एहसास न था। असहाय होकर उसने वेदना के आगे, मृत्यु के आगे, आत्मसमर्पण कर दिया था। गिरिबाला जानती है, उसकी मृत्यु में अब ज्यादा देर नहीं। तो फिर मृत्यु हो जाए जल्दी। देर क्यों हो रही है? वह अब और बर्दाश्त नहीं कर सकती। उसके प्राण जैसे किसी भारी चक्की के दो पाटों के बीच पड़ गए थे। धीरे-धीरे वह चक्की उसके प्राणों को पीसे डाल रही थी।

शुभदा झोंपड़ी में जाकर बैठ गई थी। उन्होंने गिरिबाला के बालों की गांठ भी खोल दी थी और उसे किसी चीज से बांध दिया था। बड़ी बहू ने रजाई और तकिए की खोल निकाल दी। जहां जो भी बंधन था उसे खोल दिया गया। बाहर के बंधन खोल देने से शायद गिरिबाला के पेट के अंदर का भी बंधन खुल जाए और प्रसव जल्दी हो जाए। बक्से का ताला खोल दिया गया और लकड़ी की संदूक के ढक्कन भी खोल दिए गए। औरतों की जानकारी में जो भी नीति-नियम थे सबका पालन किया गया। पर कुछ नतीजा नहीं निकला। रिदय ठाकुर ने आकर मंत्र पढ़ा—

अस्ति गोदावरीतीरे, जंभोली नामा राक्षसी,

तस्य स्मरणमात्रेण सुख प्रसवं भवेत्।।

मगर जंभोली नामक राक्षसी का बार-बार स्मरण करने पर भी प्रसव नहीं हुआ। सारे टोटके बेकार गए।

शुभदा लगातार निर्देश देती रहीं, "अरे अन्नो, बूड़ी को सहारा देकर खड़ा कर और चला-फिरा। अब बूड़ी को चित लिटा दे और धीरे-धीरे उसके तलपेट को थपथपा। अब बूड़ी के बालों का गुच्छा उसके मुंह में डालकर उसे उल्टी करा। कमर पर धीरे-धीरे थप्पड़ मार।"

सब कुछ किया गया, मगर कोई उपाय काम नहीं आया।

सब प्रक्रियाएं व्यर्थ गईं। धीरे-धीरे गिरिबाला निर्जीव-सी होने लगी।

शाम बीती। रात हुई। छोटी बहू अपने कमरे में खड़ी-खड़ी उनके सारे कार्यकलाप देखती रहीं। उन्होंने देखा, डायन ने फिर अपने कार्यकलाप शुरू कर दिए हैं। फिर एक राजकुमार आ रहा है। फिर उसकी गर्दन मरोड़ देने का आयोजन चल रहा है।

छोटी बहू अस्थिर हो उठीं। प्रबल उत्तेजना से उनका शरीर कांपने लगा। ठहरो, अभी मजा चखाती हूं। उन्होंने ढूंढ़-ढांढ़कर अपने कमरे के कोने से पुराने जमाने का एक जंग खाया खांड़ा निकाला। दरवाजे पर भीतर से लगातार लात मारने लगीं। अंततः सांकल खुलकर गिर गई।

दबे पांव वे झोंपड़ी के दरवाने के पास जा खड़ी हुईं। उस क्षण अन्नो झोंपड़ी में अकेली थी। थोड़ी देर पहले ही शुभदा गरम पानी लेने गई थीं। खांड़ा हाथ में लिए—"हरामजादी मैं तेरा खून पी जाऊंगी।" के हुंकार के साथ एक छलांग में छोटी बहू झोंपड़ी के भीतर जा पहुंची। देखते ही अन्नो के प्राण उसके नखों में समा गए। बाप रे ! ओ मां ! करती हुई वह भाग खड़ी हुई। पलक झपकते ही छोटी बहू गिरिबाला को गोद में उठाए अपने कमरे में आ गई। उसे बिछौने पर सुलाकर उन्होंने झट अंदर से सांकल् लगा दी।

छह

मामले को ठीक से समझने में सभी को थोड़ा वक्त लगा। शुभदा और बड़ी बहू की डांट खाने के बाद हाउ-माउ करती हुई पगलाई-सी अन्नो ने असली बात बताई। फिर भी उसका कांपना बंद नहीं हुआ।

मामला जब समझ में आया तो सभी की अक्ल गुम हो गई। बड़ी बहू डर और दुश्चिंता के मारे थर-थर कांपने लगीं। शुभदा को जैसे काठ मार गया हो।

अचानक शुभदा ने कहा, "अन्नो, एक मोटी-सी लाठी ला दे तो। आज मैं इसका पागलपन उतार देती हूं।"

मारे गुस्से के शुभदा की आंखें बाघ की तरह जल रही थीं।

उन्होंने फिर कहा, "और जा, जल्दी से रामकिष्टो को भी बुला ला। घर में एक मर्द का होना जरूरी है। बड़ी बहू, तुम मेरे साथ आओ।"

दोनों महिलाएं छोटी बहू के कमरे की ओर चलीं।

छोटी बहू को भयानक चिंता ने घेर लिया था। चारों ओर शत्रु थे। सोच रही थीं, राजकुमार को कैसे बचाएं। एक बार दौड़कर वे गिरिबाला के पास जातीं, उसके शरीर पर हाथ फिरातीं—"डरना नहीं, डरना नहीं"—कहकर उसे ढाढ़स बंधातीं। दूसरे ही पल खांड़ा हाथ में लेकर दरवाजे के पीछे जा खड़ी होतीं। कोई घुसा नहीं कि खचाक से एक ही बार में उसके दो टुकड़े।

इसी बीच उन्होंने जैसा सोचा था वैसा ही शुरू हुआ। बाहर से दरवाजे पर धड़ाम धड़ाम करके चोटें पड़ने लगीं। यह उसी डायन का काम है। हां, उसी डायन का। तभी शुभदा की आवाज सुनाई पड़ी।

"ओ हरामजादी, खोल दरवाजा। भला चाहती है तो तुरंत दरवाजा खोल दे। नहीं तो मार-मार कर भूसा कर दूंगी।"

छोटी बहू ने भीतर से दहाड़ा, "कमरे में घुसी नहीं कि खचाक से दो फाड़ कर दूंगी। खून पीने की तेरी लत हमेशा के लिए छुड़ा दूंगी। डायन कहीं की ! कमरे में घुसके देख तो, मेरे हाथ में मंतर पढ़ा हुआ खांड़ा है।"

यह सुनकर शुभदा के मुंह से चीख निकल गई।

"महि, जल्दी आ। सर्वनाश हो गया। पगली बूढ़ी को सौरी से उठाकर अपने कमरे में ले आई है। खांड़ा हाथ में लेकर दरवाजे में खड़ी है। पता नहीं, अंदर क्या सत्यानाश हुआ है।"

"क्या कहती हो?" मझले मालिक आर्तनाद कर उठे। उनके पांव तले से जमीन खिसक गई।

अब उपाय क्या है?

उपाय छोटी बहू ने खुद बता दिया। मझले भसुर पर उनको बड़ा भरोसा है। खिड़की खोलकर उन्होंने भसुर को पुकारा।

बोलीं, "मैं दरवाजा खोल रही हूं, मगर खबरदार, ये डायनें अंदर न आएं। अब और मैं उन्हें किसी का खून पीने नहीं दूंगी। बताइए, फिर वचन दीजिए कि उन्हें इस कमरे में घुसने नहीं देंगे। चाहें तो बड़ी बहू अंदर आ सकती हैं, मगर मैं उस डायन को किसी भी तरह अंदर घुसने नहीं दूंगी।"

डूबते को किनारा मिला। मझले मालिक ने छुटकारे की सांस ली।

बोले, "हां ! छोटी बहू, तुम जैसा कह रही हो वैसा ही होगा। वह तो तुम्हारी ही बेटी

है। तुम जो कहोगी वहीं करूंगा।''

छोटी बहू खुश हो गई और दरवाजा जल्दी से खोल दिया। सभी लोग तेजी से कमरे में घुसने ही जा रहे थे कि मझले मालिक ने रोक दिया। वे डाक्टर को साथ लेकर अंदर घुसे। इसके अलावा अंदर आई अन्नो दाई। और किसी को उन्होंने कमरे में घुसने नहीं दिया।

जो भी हुआ गिरिबाला को कुछ भी पता नहीं था। असह्य वेदना से वह बेहोशी की सी हालत में थी। एक पल चेतना जागती थी और दूसरे ही पल बेहोशी की गहराई में डुबकी मार जाती थी।

अब उसके शरीर में थोड़ी-सी भी ताकत नहीं थी। उसके मुंह से कराह भी बहुत धीमी निकल रही थी। उसकी आंखों से आंसू की धारा बह रही थी। बीच-बीच में उसका अस्फुट स्वर सुनाई देता—"मां, मां, अब और नहीं।" छोटी बहू की आंखों में आंसू थे।

बाहर प्रकृति का हिंस्र तांडव चल रहा था। वर्षा और आंधी का पागलपन बरकरार था।

डाक्टर ने गिरिबाला की परीक्षा की। उन्होंने मझले मालिक से कहा, "आप बाहर जाइए। और तेज रोशनी का प्रबंध कीजिए।"

फिर उन्होंने अन्नो से कहा, "गरम पानी और साबुन ले आओ। थोड़ा सफेद धुला हुआ कपड़ा भी।" फिर वे एक पल छोटी बहू को देखते रहे। बोले, "खांड़ा मझले बाबू को दे दीजिए। खबरदार! जरा भी गड़बड़ मत कीजिएगा।"

छोटी बहू ने एक शिशु की तरह डाक्टर का कहना मान लिया। उनके मझले भसुर तो साक्षात शिव हैं, भोलानाथ।

डाक्टर के अभ्यस्त और निपुण हाथ प्रायः अचेतन गिरिबाला के शरीर को इधर-उधर स्पर्श करने लगे।

गिरिबाला वेदना के सागर में पालहीन नौका की तरह डूब-उतरा रही थी। उठती थी, गिरती थी और पानी में गोते खाते थी। पता नहीं, कितनी देर से ऐसा हो रहा था। अचानक उसे महसूस हुआ कि किसी ने पुंजीभूत वेदना के स्तूप पर से हल्का-सा धक्का देकर उसे आराम और वेदनाहीनता के निश्चिंत आश्रय में पहुंचा दिया है। उसकी सारी देह जैसे एक पल में पंख की तरह हल्की हो गई है। अवसाद तथा आराम के एक अंतहीन गह्वर में धीरे-धीरे वह उतरती जा रही है। केवल एक बात जैसे स्वप्नावस्था में उसके कानों में गई—'बेटा'।

गिरिबाला के सूखे होठों पर एक टुकड़ा कोमल मुस्कान एकादशी के चांद की तरह तैर उठी। वह एक सलज्ज, फिर भी सृजन के कृतित्व से गर्भित मुस्कान थी।

बाहर आंधी रुक गई थी। अभी बारिश मूसलाधार हो रही थी। दुरंत, दुर्निवार वृष्टि। समस्त विश्व करुणाप्लुत।

सात

उसके पास कोई न था। वह अकेला था। इस विशाल पृथ्वी पर एक अंतहीन शून्य के समुद्र में दिशाहीन होकर वह भटक रहा था। अकेला उतराता जा रहा था। वह किसे पहचानता? उसे कौन पहचानता है? अकेलेपन के विशाल महासागर में वह ऊबचुभ हो रहा है। कभी गुडुप् से ऊपर उठता है तो कभी टुप से गहरे अतल में डूबता चला जाता है। वह नहीं जानता कितनी दूर, कितने गहरे, किस अतल में वह चला जा रहा है। वह इस तरह डूबना नहीं चाहता। प्राणपण से वह हाथ-पांव फेंकता है। शायद प्रतिवाद करता है। अपनी नन्ही-नन्ही कोमल मुट्ठियों से शून्य को ही बार-बार पकड़कर वह आश्रय पाना चाहता है। मगर क्या शून्य किसी को आश्रय दे सकता है? उसे भी आश्रय नहीं मिलता। वह अनिच्छा से डूबता जाता है, असहाय-सा। अचानक उसे डर लगता है। भयंकर डर। किकियाकर वह रो उठता है। किहां-किहां...

उसके चारों ओर गाढ़ा अंधकार है। डर उसके सिरहाने घात लगाए बैठा है। संशय अपना हिंस्र पंजा उठाए मौके की तलाश में उसके पैरों के पास खड़ा है। संदेह अस्थिर पांव से पूंछ हिलाता उसके चारों ओर घूम रहा है। वह कहां जाए? किसका आश्रय लेकर इनसे अपना बचाव करे? उसे उस स्थान का पता नहीं मालूम, क्योंकि वह अभी यहां नया-नया आया है। सब कुछ उसके लिए अपरिचित है। उसे लगता है कि शायद यह उसके शत्रुओं का नगर है। षड्यंत्र और मृत्यु उसके आसपास जाल बुन रहे हैं। वह कहां आ गया? यहां क्यों आया? डर से वह आंखें मूंद लेता है। आंखें मूंदकर केवल रोता है। किहां...किहां...किहां...

डर से वह कांप उठता है। उठकर भाग जाना चाहता है। पूरी ताकत से हाथ-पांव चलाता है। मगर उसकी गतिहीन कोमल देह बिछौने की बंदी बनी हुई है। तिल-भर भी नहीं खिसकती। मृत्यु और भय के सान्निध्य से वह जरा भी परे नहीं हट पाता और असहाय होकर केवल रोता है। किहां...किहां...किहां...

अकस्मात उसका अपना गुदागुदा हाथ उसके मुंह में टिक जाता है। अपनी देह की उष्णता का स्वाद पाकर वह खुद ही चरम विस्मय से अवाक हो जाता है। वह इस आत्मीयता के स्पर्श से मुक्ति नहीं पाना चाहता। चूस-चूस कर उस उष्णता को सारा का सारा आत्मसात कर लेना चाहता है। अपनी मुट्ठी पूरी ताकत से मुंह में भर कर चुक-चुक करके चूसता है। गर्मी और ज्यादा गर्मी पाकर वह खुश होता है। खुशी से एक नन्हे पशु की तरह वह आवाज करता है चप...चप...चप...

इतनी देर से डर के मारे उसने आंखें मूंद रखी थीं। अब वह आंखें खोल कर चारों ओर देखता है। उसे कोई दिशा नहीं मिलती। फिर वही शून्य...शून्य...शून्य...। दिगदिंगत

तक व्याप्त महाशून्य के बीच उसकी दृष्टि रास्ता भूल जाती है। कमरे की छत बहुत दूर है। दीवारें तो और भी कई योजन दूर हैं। इतनी दूर भला उसकी कच्ची नजर पहुंच सकती है! उसे केवल भय नहीं है, कौतूहल भी है। उस अनजाने परिवेश को जान लेने का आग्रह भी। केवल अंधकार ही नहीं है, उसमें रोशनी की नन्ही झलक भी है। मृत्यु का आतंक ही सत्य नहीं है, प्राणों की बलवती प्रेरणा भी सत्य है। आंखें खोलते ही सूर्य का उज्ज्वल आलोक उसकी आंखों से अंधकार और मन से मृत्यु-भय को दूर कर देता है। उसके प्राणों में तेज का संचार होता है। रंगों के समारोह में वह पुलकित होता है। खुशी की हंसी उसके चेहरे और उसकी आंखों से छलक पड़ती है। वह अकारण ही हंसी की लहरें उठाकर जीवन के नए-नए छंदों की रचना करता रहता है, अपनी ही कल्पना में डूबा हुआ।

केवल जागते हुए वह ऐसे करता है, यह भी नहीं। सोते हुए भी वह अपनी रचना करता रहता है। उसकी निद्रा और जागरण के सीमांत पर अभी तक किसी ने कठोर हाथों से कोई प्राचीर खड़ी नहीं की है। इसीलिए दोनों ही राज्यों में उसका अबाध आवागमन संभव है। घोर निद्रा में भी वह डर कर रोता है और खुश होकर हंसता है।

सिर के नीचे सरसों-भरा तकिया और दोनों बगलों में रूई के नरम तकिए लगाकर उसे सुलाया गया है। काफी देर सोकर वह अभी-अभी उठा है। वह बहुत निस्संग अनुभव कर रहा है। उसके नीचे की कथरी भीग गई है। उसे बहुत बुरा लग रहा है। शरीर के किसी भाग में जैसे थोड़ी वेदना भी अनुभव कर रहा है और उसे भूख भी बहुत तेज लगी है। अभी दिन-रात उसके पेट में धू-धू करके आग जलती रहती है। अभी भी उसके पेट में आग जल रही है। उसे जरा भी अच्छा नहीं लग रहा है। दो-एक बार वह हल्के-हल्के रोता है। कोई उसकी रुलाई नहीं सुनता। कोई उसके पास नहीं आता। तब वह रूठकर बुरी तरह रोना शुरू करता है। इस संसार में उसके दुख का साथी कोई नहीं है, कोई नहीं। वह अकेला है, अकेला, नितांत अकेला।

चम्पा दौड़ती हुई आई। देखी, बच्चा रो-रोकर बेहाल हो रहा है। जल्दी से उसके मुंह के पास अपना मुंह ले जाकर 'ओ ओ' करके उसको दुलार करने लगी।

"मेरा सोना, मेरा मणि, रो मत, रो मत, क्या हुआ, क्या हुआ, ओ ओ ओ, मुन्ना को किसने मारा, मेरे सोना को किसने मारा, मैं उसे पीटूंगी, ले ये दिया एक थप्पड़, रो मत, रो मत, मेरे मुन्ना, मेरे सोना, ना ना, भला इतना गुस्सा करते हैं, तोता लेगा, झुनझुना लेगा?"

चम्पा झुनझुना लेकर उसके मुंह के पास हिलाने लगी। एक अद्भुत-सी आवाज सुनकर वह पहले थोड़ा भौंचक हुआ फिर रोना बंद कर दिया। मगर उसके शरीर की वेदना उसे कोंच रही थी, वह दोगुने जोर से रोने लगा। कोई उसकी रुलाई को समझ रहा है, उसकी रुलाई को महत्व दे रहा है, इन हरकतों से उसे एक सहजात बोध हो गया है। इसीलिए

वह और भी सुविधा पाने के लिए और जोर से किकिया-किकिया के रोने लगा है। उसकी रुलाई न रोक पाने से चम्पा परेशान हो उठी। बड़ी कठिनाई से उसके गोल-मटोल, भारी शरीर को अपनी गोद में उठा लिया। इसके बाद घुटने हिला-हिलाकर उसे चुप कराने की कोशिश करने लगी।

"अरे ओ ओ, मेरे सोना, मेरे सोना, मेरे मणि, मेरे मणि, मेरा मुन्ना चुप हो जा, चुप हो जा, अमरस खाएगा, अचार खाएगा, ओ दीदी! जल्दी आ। ना ना ना, रोते नहीं, रोते नहीं, इतना क्यों रोता है, छी छी, नहीं नहीं, मैंने नहीं डांटा बाबू को, ओ मेरे मुन्ना, ओ मेरे सोना। नहीं चुप होता, जा मर।"

इस बार चम्पा नाराज हो गई।

"अच्छा लड़का है ! कन्हैया जी एक बार बांसुरी बजाने लगें तो रुकने का नाम नहीं। ओ दादी, ओ बड़ी मां, क्या सब लोगों ने कानों में रूई ठूंस रखी है? इधर बच्चा रो-रोकर हलकान हो रहा है।"

इतने भारी बच्चे को चम्पा ठीक से हिला भी नहीं पाती। इतनी देर तक गोद में लेने से उसके पांव में झुनझुनी शुरू हो गई थी, इसीलिए उसे संभालते-संभालते ज्यों ही वह हल्के-से हिली, बच्चा उसकी गोद से खिसककर फर्श पर जा गिरा। एक बार 'कें' की आवाज करके वह चुप लगा गया। चम्पा जोर से रो पड़ी।

"दीदी रे, जल्दी आ, लगता है तेरा बच्चा मर गया।"

गिरिबाला खाना खा रही थी। बच्चे की रुलाई उसके कानों में पड़ रही थी। उठ कर जाने की बात सोचकर भी उठ नहीं पा रही थी। आजकल उसे बहुत भूख लगती है। वैसे भी वह बड़ी शर्मीली है। खुद लेकर खाना तो दूर, खाना मांगने में भी उसे लाज लगती है। बार-बार खाने की बात करना उसे पसंद नहीं। इसीलिए दोपहर को वह थोड़ा ज्यादा ही खाती है। बड़ी मां सामने बैठी रहती हैं, बुआ भी जोर देकर खिलाती हैं। गिरिबाला लाज के मारे जैसे अपनी थाली में समा जाना चाहती है।

आज खाना भी बहुत बढ़िया बना है, खासकर बड़ी के साथ टाटकिनी मछली की रसदार सब्जी बहुत अच्छी बनी है। गिरिबाला को यह मछली बहुत पसंद है। इसीलिए वह आराम से खाए जा रही थी। अचानक चम्पा की चीख सुनकर उसके मुंह का कौर मुंह में ही रह गया। उसका बच्चा मर गया ! धड़ाम से जैसे किसी ने उसके सिर पर कोई भारी चीज पटक दी हो। एक बार जैसे पूरी दुनिया ही घूम गई। गिरिबाला ने उठने की कोशिश की। पहली कोशिश में उठ भी नहीं पाई। दूसरी बार पूरा दम लगाकर उठ खड़ी हुई और पागलों की तरह दौड़ पड़ी।

हांफते-हांफते गिरिबाला अपने कमरे में घुसी, मगर देखा कमरा खाली है। न वहां चम्पा है और न बच्चा। वह कुछ समझ नहीं पाई। आंखें फाड़कर बच्चे के बिछौने की

ओर देखती रही। उसका दिल बुरी तरह धड़क रहा था। लग रहा था कि कोई उसके दिल पर हथौड़े मार रहा है। उसका पूरा शरीर थर-थर कांपने लगा। वह क्या करे, उसे क्या करना चाहिए—कुछ उसकी समझ में नहीं आ रहा था।

तभी चम्पा कमरे में घुसी। उसकी आंखों का पानी अभी सूखा नहीं था। गिरिबाला की ओर देखकर अपराध-भाव से चम्पा हंसी और बोली, "धन्य है बेटा तुम्हारा, दीदी ! हमारी गोद में जरा भी चुप नहीं हो रहा था। रो-रोकर एकदम ऐंठा जा रहा था। मगर ज्यों ही छोटी काकी ने आकर उसे गोद में लिया वह एकदम चुप हो गया। अब देखो, हाथ-पांव हिला-हिलाकर कैसे खेल रहा है !"

चम्पा ने क्या कहा ! जल्दी-जल्दी क्या बोल गई ! छोटी काकी की गोद में खेल रहा है। हाथ पांव हिला रहा है। इसका मतलब है, वह मरा नहीं, जिंदा है। मेरा बेटा जिंदा है। गिरिबाला बड़ी मुश्किल से अपने उलझे विचारों को क्रम दे सकी। इसका मतलब, उसका बच्चा जिंदा है। अब वह साफ-साफ यह बात समझ गई थी। फिर भी उसकी मानसिक यंत्रणा, उसकी घबराहट शांत नहीं हो रही थी। उसके दिल पर हथौड़ा और भी तेज बजने लगा, उसकी देह और तेज कांपने लगी। अगर वह तुरंत बैठ न जाती तो चक्कर खाकर गिर पड़ती। वह खाट के किनारे बैठ गई। उसका बच्चा जिंदा है। आह ! हे भगवान ! हे भगवान ! हे भगवान !

उसके हृदय के भीतर से यंत्रणा की जो आंधी अभी तक चक्कर खाती उठ रही थी, वह एक गहरी सांस के साथ बाहर निकल गई और पल-भर में ही उसका मन हल्का हो गया। सारी दुश्चिंता, सारा भय और सारा आतंक गल कर उसकी दोनों आंखों से टप-टप करके चूने लगा। ओह! कितनी शांति, कितनी शांति !

दीदी का रोना देखकर चम्पा की हंसी होठों पर ही रुक गई। उसने सोचा, लड़के को गिरा दिया, इसीलिए दीदी नाराज है। एक ही पल में उसकी आंखों में भी आंसू भर आए।

बहन की गोद में मुंह घुसा कर रोते-रोते वह बोली, "सच्ची दीदी, विश्वास कर, मैंने जानबूझकर उसे नहीं गिराया। चुप कराने के लिए मैंने उसे गोद में उठाया था। मगर वह इतना भारी है कि मैं उसे संभाल ही नहीं पाई। उसने इतनी जोर का झटका मारा कि हम दोनों खाट से नीचे आ गिरे। भगवान की दया है कि उसे कुछ हुआ नहीं। बता, इसमें मेरी क्या गलती है?"

गिरिबाला के मन के बादल छंट गए थे। वह स्नेह से चम्पा के सिर पर हाथ फिराने लगी। नहीं, अब गिरिबाला के मन में कोई यंत्रणा नहीं। अब केवल एक इच्छा उसके भीतर तीखी प्यास की तरह उठ रही है। दूध के दबाव से उसकी छातियां फूल उठी हैं। अब एक बार बच्चे को अपनी छाती से लगाकर दूध पिलाने की उसकी इच्छा हो रही है और दूध पीते हुए अपने मुन्ने को एकटक देखने की इच्छा हो रही है। बस, और कोई इच्छा

उसके मन में नहीं है। सोचा, बच्चे को ले आने के लिए चम्पा से कहे। फिर सोचा, नहीं, वह खुद छोटी काकी के पास से उसे ले आएगी। वह कोई मामूली बच्चा नहीं है, खूब मोटा-तगड़ा तंदुरुस्त बच्चा है। उसके पांव भी बड़े शुभ हैं। पैदा होते ही उसने छोटी काकी का पागलपन दूर कर दिया। अब पोते को लेकर वह मस्त हैं।

अचानक चम्पा नाराज होकर बोली, "तू भी दीदी, बहुत गंदी है। अभी तक हाथ भी नहीं धोया और वही जूठन से सना हाथ मेरे सिर पर फेरकर मेरा सारा सिर गंदा कर दिया। छिः।"

गिरिबाला थोड़ा अन्यमनस्क हो गई थी। चम्पा की डांट खाकर उसे होश आया तो उसने पाया कि सचमुच उसने हाथ मुंह नहीं धोया था। छि : ! छि : ! यह क्या किया मैंने! बुआ जी को पता चलेगा तो कितनी नाराज होंगी !

गिरिबाला ने चम्पा की चिरौरी की, "मुन्नी, मैं तेरे पांव पड़ती हूं, चीख मत। मैं अभी हाथ-मुंह धोकर आती हूं। मैं बड़ी होकर छोटी के पांव पड़ी, यह बात भी किसी से मत कहना। अगर कहेगी तो बहुत बुरा होगा। तेरे पांव में कीड़े पड़ेंगे, समझी?"

आठ

यह उसका बच्चा है ! उसी का अंश ! सोचकर गिरिबाला को आश्चर्य होता है। बहुत आश्चर्य।

वह बुद्धू की तरह अपलक सोते हुए बच्चे का मुंह देखती रहती है। उसे पलक झपकाने की भी इच्छा नहीं होती।

आसपास लोग होते हैं तो वह परे हट जाती है। अभी भी उसको लाज आती है। पिता हों या बड़ी मां, चाहे बुआ जी हों, यहां तक कि चम्पा के सामने भी वह सहज नहीं हो पाती।

उसे गोद में नहीं उठाती। पास-पड़ोस का कोई व्यक्ति या कोई उसकी हमउम्र लड़की आकर उससे बच्चे की बात करती है तो उसका चेहरा शर्म से लाल हो जाता है। वह धीरे-से वहां से हट जाती है। मगर खिसक जाने पर भी जान बचती है क्या? कोई न कोई डाकू की तरह उसे ढूंढ़ ही निकालता है और जबरदस्ती बच्चे को उसकी गोद में सुलाकर मजा लेता है। ऐसे में गिरिबाला न बच्चे को संभाल पाती है, न खुद को।

सबसे ज्यादा मुसीबत होती है जब दूसरे टोले से ग्वालिन दीदी आती है। गांव के रिश्ते से वह उसकी दीदी लगती है। मगर उसके पोपले मुंह में कोई लगाम नहीं है। हंसी-

मजाक में वह उम्र की हदें पार कर जाती है। गिरिबाला ग्वालिन दीदी से दस हाथ दूर ही रहना चाहती है। बुढ़िया गिरिबाला को प्यार भी करती है। बहुत प्यार। जब भी आती है हंड़ियां में घी लाती है, मक्खन लाती है। कहती है, "बच्चे वाली औरत के पेट में भूख की आग लगी रहती है। रावण की चिता की तरह वह आग आठों पहर जलती रहती है।" आते ही बुढ़िया उसे पास बुलाती है। पास बिठाकर बच्चे को उसकी गोद में दे देती है। फिर चाहे खीर हो, मक्खन हो, या फिर छेना, थोड़ा-थोड़ा करके अपने हाथों उसके मुंह में डालती रहती है। एक दिन चम्पा ने कहा था, "ओ ग्वालिन दीदी, मुझे थोड़ा छेना दो।" सुनकर बुढ़िया ने कसकर उसे डांट पिलाई थी, "अरे वाह री छोकरी ! बड़ी चली है छेना खाने। पहले दीदी की तरह बच्चा जन, फिर ग्वालिन दीदी के पास लाड़ जताने आना।"

मगर ग्वालिन दीदी की सौगात खाकर भी हजम करना बड़ा मुश्किल था। गिरिबाला को उस दिन की याद आई जिस दिन ग्वालिन दीदी उसे बच्चे को दूध पिलाने का ढंग सिखा रही थी। क्या तमाशा किया था उसने! गोद में बच्चा रो रहा था। गिरिबाला समझ रही थी कि उसे भूख लगी है, मगर उस समय वहां औरतों की भीड़ इकट्ठा थी। इतने लोगों के बीच मर कर भी गिरिबाला बच्चे को छाती नहीं पकड़ा सकती थी। और वह उठ भी नहीं पा रही थी। ग्वालिन दीदी उसके बालों की लटें छुड़ा रही थी। वहां से उठने की बात उसके होठों पर आती थी, मगर वह बोल नहीं पा रही थी। तभी ग्वालिन दीदी ने उसे डांटा, "क्यों रे, तेरा मन किस राज में बिचर रहा है? बच्चे का गला सूखा जा रहा है चीख-चीखकर। उसे चूंची धरा।" गिरिबाला शर्म से काठ हुई मुंह नीचे किए बैठी रही। इस पर ग्वालिन दीदी ने व्यंग्य किया, "बिटिया को शरम आ रही है! बलिहारी तेरी शरम की! भतार की गोद में सोते हुए शरम नहीं आई थी, अब बेटे को चूंची धराने में शरम आ रही है। एक थप्पड़ में तेरा छिनालपना झाड़ दूंगी मैं। चल चूंची धरा बच्चे को।"

कैसी बातें करती है ग्वालिन दीदी? जो मुंह में आता है बक देती है। बड़ी मां, बुआ जी और मुहल्ले की तमाम औरतें सामने बैठी हैं। गिरिबाला का चेहरा और कान लाल हो उठे। मन ही मन उसने प्रार्थना की, हे धरती मां ! तू फट क्यों नहीं जाती? मगर गिरिबाला को छोड़कर उस मजलिस की किसी दूसरी औरत को ग्वालिन दीदी के मंतव्य पर कोई एतराज नहीं हुआ, न ही वे गिरिबाला की तरह विचलित हुई। उल्टे, गिरिबाला को शरमाते देखकर सभी को मजा ही आया।

ब्याह के पहले गिरिबाला को इस मजलिस के पास फटकने भी नहीं दिया जाता था। बड़ों का ऐसा ही हुक्म था। संयोग से अगर कोई काम आ भी पड़ता तो बड़ों का मुंह बंद हो जाता, मजलिस स्तब्ध हुई रहती। साफ पता चलता कि उसका प्रवेश वहां निषिद्ध है। उसने वहां अनधिकार प्रवेश किया है। डरती हुई वह काम की बात करके वहां से खिसक जाती। बाहर जाकर महसूस करती, चलो जान बची। उसी गिरिबाला को अब महिलाओं

की उस सभा में अबाध प्रवेश मिल गया है। अब उसका अधिकार लड़की का नहीं, मां का है। उसकी पदोन्नति हो गई है।

गिरिबाला अब मां है। दुनिया की सभी मांओं की पंगत में बैठने का उसे अधिकार मिल गया है। किस जादू के बल पर ऐसा आश्चर्यजनक परिवर्तन घटित हुआ है?

यही है वह जादू। यही सोना मेरा वह जादू है। यही है वह मेरा जादूगर।

गिरिबाला सोते हुए बच्चे के कोमल मुख को अपलक देखती रही। कितना छोटा, कितना नन्हा-सा है यह जीव। कितनी जल्दी-जल्दी इसकी छाती उठ-गिर रही है। गिरिबाला खुद को ही पुकारकर खुद ही अपने बच्चे को दिखाने लगी। वह देखो, वह देखो, कैसे होंठ चला रहा है ! ईश्वर से बातें कर रहा है ! दोनों के बीच खूब बातें होती हैं। उसका मन करता है, बच्चे से पूछे, क्या बातें करते हो तुम? गिरिबाला पागल है क्या? क्या बच्चे ने आदमी के साथ बात करना सीखा है कि बता देगा? अभी तो उसकी बातें देवताओं के ही साथ होंगी। वह देखो, वह देखो, बड़े आदमी की तरह मुंह चला रहा है। अब देखो, चेहरे पर गुस्से का भाव है। लगता है, मेरी शिकायत कर रहा है। क्यों बाबू, मेरी शिकायत क्यों कर रहे हो? मैं क्या तुम्हें तकलीफ देती हूं, परेशान करती हूं? मुझे तो नहीं याद कि मैंने कभी ऐसा किया हो। जो भी हो, अनजाने में कोई गलती हो तो हे षष्ठी मां, मेरे अपराध क्षमा करना। अपनी दासी का हमेशा मंगल करना। जो प्रार्थनाएं गिरिबाला ने बचपन से हजारों बार बड़ी मां और बुआ जी के मुंह से सुनी हैं, उन्हें ही बड़े भक्ति-भाव से षष्ठी देवी के लिए हाथ जोड़कर दुहराती है।

नहीं, जानबूझकर उसने कोई गलती नहीं की है, जैसे गिरिबाला ने षष्ठी मां को सुना कर कहा। बच्चे की देखभाल में कोई लापरवाही नहीं की है। लगा, जैसे षष्ठी देवी ऊंचाई पर न्यायाधीश के आसन पर बैठी हैं। फरियादी है उसका अपना बेटा, उसका अपना सोना और गिरिबाला अपराधी है। दुनिया की तमाम औरतों की ओर से वह जैसे बयान देने आई है।

मैं कभी अधीर नहीं हुई, कभी लापरवाह नहीं हुई। मुन्ना क्या कम परेशान करता है? कम जलाता है? पहले छोटा था। रात-दिन सोता रहता था। बीच-बीच में भीगा बिछौना बदल देने पर वह बिना कुनमुन किए पड़ा रहता था। जितना चाहो हिलाओ-डुलाओ, नहलाओ, काजल लगाओ, दुलार करो, कुछ नहीं बोलता था। वह उसकी सोने की उमर थी। मगर तब भी क्या मैं निश्चिंत रह पाती थी? उसका चुपचाप सोना देखकर कभी-कभी मन अचानक डर जाता था। इतनी देर से न हिला, न डुला, न रोया, तो क्या वह मर गया? बेकार के भय से जैसे मैं मुर्दा हो जाती थी। मां षष्ठी, सच कह रही हूं, तब प्यार करने के बहाने उसका गला टीप कर, उसके अनगिनत चुंबन लेकर मैंने उसकी नींद में बाधा पहुंचाई है। नींद टूट जाने से परेशान होकर कितनी ही बार वह होंठ बिदका कर रोया है।

उसकी रुलाई सुनकर मेरी जान में जान आई है। फिर मैंने इसे जल्दी से सुला दिया है। दो मिनट बाद देखती हूं कि वह होंठ बिचका-बिचकाकर मेरे खिलाफ तुमसे नालिश कर रहा है। एक अनाड़ी मां की आशंका यदि अपराध है, तो मैं मानती हूं, मैंने वह अपराध किया है। रात में बिना कोई आवाज किए वह सोता रहता है। मैं बगल में लेटी रहती हूं, मगर मुझे नींद तो आती नहीं। मुझे डर लगता है, कहीं कथरी उसके मुंह पर न आ पड़ी हो, कहीं मेरी भारी देह के नीचे उसका कोमल शरीर दब कर कुचल न गया हो ! क्या बताऊं, कितनी तरह के डर मुझे घेरे रहते हैं? कितनी ही बार मुझे उठना पड़ता है। कितनी ही बार मैं अपनी उंगली उसकी नाक के आगे लगाती हूं, यह देखने के लिए कि उसकी सांस चल रही है कि नहीं। एक बार लगता है सांस चल रही है, दूसरे ही क्षण लगता है, नहीं। सांस बंद हुई पड़ी है। तब मन की क्या हालत होती है, तुम्हें क्या बताऊं! तब मेरे होशहवास गुम हो जाते हैं। कुछ सूझ नहीं पड़ता। उसकी छाती पर झुककर, कान लगाकर उसकी धुकधुकी सुनने की कोशिश करती हूं। कुछ समझ नहीं पाती। एकदम समझ नहीं पाती। तब एक झटके में अपने मुन्ने को उठाकर छाती से लगा लेती हूं। उसकी नींद टूट जाती है। अचानक उसकी नींद टूटती है तो वह खिन्न होता है। बहुत जोर से रो पड़ता है। आह! क्या कहूं, उसी शब्द को सुनकर मैं मरते-मरते जिंदा हो उठती हूं। तुमसे वह मेरी जो शिकायत करता है वह एकदम झूठ भी नहीं है। सच, मैं उसे बहुत परेशान करती हूं। अपराधी गिरिबाला निष्कपट भाव से अपना दोष स्वीकार करती है। कभी-कभी पक्के वकील की तरह उल्टी जिरह भी करती है। न्यायाधीश को ही कटघरे में खड़ा कर देती है। कहती है, देवी मां, यह तुम्हारी ही गलती है। सब दोष तुम्हारा है। तुम मां की गोद में संतान देती हो, उसके हृदय में स्नेह का सागर देती हो, फिर क्यों उसके मन में ताकत और भरोसा नहीं देती? क्यों उसे निश्चिंत नहीं कर पाती? हमेशा वह अपनी प्रिय वस्तु के खो जाने की आशंका में डूबी रहती है। क्यों तुम उसे नाकों चने चबाने को छोड़ देती हो?

इसका कोई जवाब षष्ठी माता ने गिरिबाला को नहीं दिया। शायद उन्होंने मुन्ने के कान में कुछ कहा हो। गिरिबाला की नजर अपने मुन्ने पर पड़ी तो उसने देखा, मुन्ना बड़े मजे में मुस्करा रहा था।

गिरिबाला का मन छोटे बच्चे की तरह व्याकुल हो उठा। उसने मुन्ने को उठाकर अपनी छाती में भींच लिया और पागलों की तरह उसे चूमने लगी।

बोली, “क्यों रे दुष्ट, पाजी कहीं के, षष्ठी मां के साथ मिलकर अपनी मां को कटघरे में खड़ा करता है? क्यों?”

नौ

गिरिबाला सपना देख रही थी

भूषण आया है। कोई चिट्ठी नहीं, पत्री नहीं, संदेशा नहीं, झट से हाजिर हो गया है। भूषण। टट्टू पर सवार होकर आया है। दो-कच्छी धोती पहने हुए है। फतुए को भी धोती के अंदर खोंस रखा है। उसके ऊपर खुले गले का कोट डाट रखा है। कोट के भीतरी पाकेट में से स्टैथिस्कोप की पीली डंडी के ऊपर हाथी दांत के मनके झांक रहे हैं। उसके पांव में गाटर लगे मोजे हैं और डरबी के जूते। सिर पर सोला हैट। घोड़े की पीठ पर रखी नई जीन की एक तरफ दवाओं का काला बक्सा झूल रहा है। गिरिबाला उस बक्से को पहचानती है। वह उसका वही चिरसंगी होमियोपैथिक दवाओं का बक्सा है। मगर जीन की दूसरी ओर वह क्या चमक रहा है? गिरिबाला को आश्चर्य होता है। गौर से देखने पर पता चलता है, वह साइनबोर्ड है। सुनहरे और रूपहले अक्षरों में लिखा साइनबोर्ड धूप में चकमक कर रहा है। 'आर्तकल्याण दातव्य चिकित्सालय'। कलकत्ता कालेज गोल्ड मेडलिस्ट का भूतपूर्व हाउस फिजीशियन डा. भूषणचन्द्र वसु एम.बी. (होमियो)। साइनबोर्ड बांग्ला में लिखा है, इसीलिए गिरिबाला को पढ़ने में कोई असुविधा नहीं हो रही है। मगर गिरिबाला की विद्या सभी शब्दों के अर्थ बताने में असमर्थ है।

मगर ऐसे साइनबोर्ड तो दुनिया-भर की दुकानों में टंगे होते हैं। गिरिबाला तो यही देखती रही है। मगर घोड़े की पीठ पर कौन साइनबोर्ड लटकाता है? वह भी ससुराल जाते समय?

नहीं-नहीं, भूषण ससुराल में विज्ञापन देने नहीं आया है। झिनैदा के एक पेंटर को असाध्य रोग हुआ था। वह भूषण की चिकित्सा से अच्छा हुआ। डाक्टर को पैसा कौड़ी दे नहीं पाया था। उसने बड़े प्यार से यह साइनबोर्ड बनाकर दिया है। दस गांवों से होकर डाक्टर साहब गुजरेंगे। लोग देखें, कौन जा रहा है।

चलो, यह भी अच्छा है। भूषण की कैफियत सुनकर गिरिबाला ने राहत की सांस ली। बेटे को देखकर भूषण बहुत खुश हुआ। भूषण के अनुसार, [illegible] एकदम उसी पर गया है। क्या पता, हो भी सकता है। मगर गिरिबाला कुछ समझ नहीं पाती। इस जरा-से बच्चे को देखकर क्या कुछ समझा जा सकता है?

मगर अब दस लोगों के मुंह से यही बात सुनते-सुनते उसे भी विश्वास हो गया है कि शायद मुन्ना देखने में अपने बाप की तरह ही है। मुन्ना चाहे जिसकी तरह हो देखने में, मगर उसे देखकर भूषण को खुशी हुई है, इससे ही गिरिबाला खुश है।

उसी दिन भूषण उन्हें लेकर रवाना हो गया। उसने जरा भी प्रतीक्षा नहीं की। उसके मझले भाई कलकत्ता रहते हैं। वे मुन्ना को देखना चाहते हैं। अभी वे कलकत्ते

जाएंगे। वापस आकर भूषण झिनैदा में नई डिस्पेंसरी खोलेगा। इसीलिए उसके पास समय नहीं है।

आंधी की तरह भूषण आया और तूफान की तरह उन्हें साथ लेकर चला गया। वहां से झिनैदा तक भूषण घोड़े पर गया और वे दोनों पालकी में। झिनैदा से चूयाडांगा तक वे तीनों बस में गए। चूयाडांगा से कलकत्ता जाने के लिए उन्हें रेल की सवारी करनी थी, ढाका मेल से जाना था।

रेलगाड़ी काफी देर से नहीं आ रही है। गिरिबाला बच्चे को गोद में लिए प्लेटफार्म पर बैठी है। भूषण उसके पास आकर ज्यों ही खड़ा होता है, बच्चा भूषण की गोद में जाने के लिए लपकता है। तभी भयंकर आवाज करती हुई गाड़ी आ जाती है और इंजन झपटकर जैसे गिरिबाला की गोद से बच्चे को खींच ले जाता है। स्टेशन के सारे लोग, "गया, गया", "पकड़ो, पकड़ो", चिल्ला उठे ओर इंजन के पीछे छौड़े।

गिरिबाला ने देखा, इंजन का धुआं अपने काले-काले हाथ निकालकर मुन्ना को अच्छी तरह लपेटकर अपने चोंगे में छुपा लेता है। मुन्ना जान छोड़कर रो रहा है। लोग गला फाड़कर चिल्ला रहे हैं और भूषण मुन्ने को पकड़ने के लिए हाथ बढ़ाए दौड़ रहा है, मगर पकड़ नहीं पा रहा है। पता नहीं, किसने गिरिबाला को जैसे प्लेटफार्म के साथ कीलें मारकर जोड़ दिया है। वह उठ नहीं पा रही है। उठने के लिए वह आप्राण चेष्टा कर रही है, सिर धुन रही है। मगर जरा-सा भी हिल नहीं पा रही है, पूरी कोशिश करके भी नहीं। गिरिबाला के शरीर से तर-तर पसीना चू रहा है। गला सूखकर कांटा हो रहा है। दम बंद हो रहा है। छाती जैसे फट कर टुकड़े-टुकड़े हो जाना चाहती है। गिरिबाला और बर्दाश्त नहीं कर पा रही है। थोड़ी हवा चाहिए उसे।

ऐसे में गिरिबाला की नींद टूट जाती है।

वह पसीने में नहाई हुई है। कमरे में अंधेरा है। लालटेन न जाने कब बुझ गई है। गिरिबाला हांफ रही है। हांफते-हांफते अभ्यासवश उसने मुन्ना के बिस्तर पर हाथ रखा। मुन्ना नहीं है। धक-से हो उठा उसका दिल। उसने हाथों से चारों ओर अच्छी तरह टटोला। मुन्ना कहीं नहीं था। क्या हुआ? तड़पकर उठ बैठी गिरिबाला। बैठकर बिस्तर पर चारों ओर अच्छी तरह फिर टटोला। कहां गया मुन्ना? गिरिबाला हतबुद्धि रह गई और दोगुने वेग से उसे पसीना छूटने लगा।

अचानक खाट के नीचे से मुन्ने की रोने की आवाज सुनाई पड़ी। सत्यानाश ! मुन्ना तो नीचे गिर पड़ा है। झट से झुककर मुन्ना को उठा लिया। छाती से चिपकाकर उसे चुप कराया। छाती का दूध पिलाकर सुला दिया। अपनी लापहरवाही को सौ बार धिक्कारा, अपनी नींद को शाप दिया। किस्मत अच्छी थी, इसे कुछ हुआ नहीं, लेकिन कुछ हो जाता तो कौन बचाता? गोद में झुला-झुलाकर और थपकियां दे-देकर गिरिबाला ने बच्चे को सुला

दिया। बच्चे की आंखों में नींद आ गई, नींद नहीं आई तो सिर्फ गिरिबाला की आंखों में। बच्चे की बगल में लेटकर उसने सो जाने की चेष्टा की, मगर नींद थी कि आ ही नहीं रही थी। कौन उसकी नींद छीन ले गया है? और कौन छीनेगा भूषण के अलावा?

गिरिबाला ने सपने में मुन्ना को खोया था और भूषण को पाया था। नींद टूटने पर उसने मुन्ने को पा लिया और भूषण को खो बैठी।

यह एक आश्चर्यजनक अवस्था है उसकी। वह गिरिबाला कोई और थी जो जन्म लेने के बाद से विवाह होने तक वही गिरिबाला बनी रही। एक घर, एक परिवार को लेकर उसकी सारी धारणाओं का निर्माण हुआ था। वह तब दीवान कोठी की लड़की थी। इसी एक घर के सुखों के साथ उसके सुख और दुखों के साथ दुख थे। इसी एक घर की आशाओं-आकांक्षाओं के साथ उसकी अपनी आशाएं-आकांक्षाएं भी जुड़ी हुई थीं।

ज्यों ही उसकी शादी हुई गिरिबाला ने पाया वह दो घरों में बंट गई है। वह जैसे एक तस्वीर बन गई है, जिसे एक ओर से देखने पर जो कुछ दीखता है दूसरी तरफ से देखने पर उससे भिन्न कुछ दिखाई देता है। अब उस घर के लिए भी उसे चिंता होती है, और इस घर के लिए भी। उस ओर से काटने पर भी वह घायल होती है और इस ओर से काटने पर भी। विवाह के पहले जैसे गिरिबाला एक फौव्वारा थी। उसका आधार एक ही था। विवाह के बाद गिरिबाला नदी हो उठी। जिसके दोनों ओर तट थे और इनमें से एक तट था पिता का घर और दूसरा तट था पति का घर।

यह भी एक तरह से ठीक था। गिरिबाला ज्यों ही मां बनी, त्यों ही उसके व्यक्तित्व में एक और जादूगरी घटित हुई। इस बार वह खुद ही दो रूपों में बट गई—मुन्ने की मां और भूषण की पत्नी के रूप में।

ठीक-ठीक कहें तो वह भूषण की पत्नी ही है। पहले वह भूषण की पत्नी बनी, तभी तो वह मुन्ने की मां बन सकी। इतने दिनों से वह सिर्फ मुन्ने को लेकर मस्त थी। इतने दिनों तक उसके मन में जो जगह केवल भूषण के नाम लिखी थी, उस जगह से उसने भूषण को कब उखाड़ फेंका, इसका उसे पता भी नहीं चला। इसीलिए लगता है, भूषण रूठ गया है। वह आया नहीं, न अभी आ रहा है। खोज-खबर भी नहीं ले रहा है।

जैसे इतने दिनों से भूषण की बहू गिरिबाला के मन के किसी एक टूटे बक्से के भीतर आश्रय लिए हुई थी। अब मौका पाकर उसने मुन्ने की मां को ठेल-ठेलकर उस कोने में पहुंचा दिया है।

वही गिरिबाला अब मुन्ने की ओर से मुंह फेरकर करवट के बल लेटी हुई, अंधकाराच्छन्न आकाश में खिले सहस्रों नक्षत्रों के चेहरों में बहुत दिनों से न देखे गए अपने पति के चेहरे को देखने की कोशिश करने लगी। यह गिरिबाला भूषण की वही पत्नी थी।

कब सवेरा होगा? इस समय कितनी रात है?

खेतों-मैदानों में झिल्ली झनकार कर रही थी। कभी-कभी चमगादड़ अथवा उल्लू पंख फड़फड़ाते थे। तक्खक्-तक्खक् कहीं पर तक्षक बोल उठा। कितनी तरह की आवाजें गिरिबाला के कानों में पड़ रही थीं। मगर वह तनिक भी डरी नहीं। और पहले? बाप रे! रात होते ही दुनिया का डर उसे घेर लेता था। और घुग्घू की आवाज सुनाई पड़ती तो डर से उसकी आत्मा शरीर का पिंजड़ा तोड़कर बाहर निकलने को हो जाती। कितनी बार नहीं उसने बड़ी मां को ऐसे समय में अपनी दोनों बाहों में जकड़ा होगा !

क्यों, सुहागरात में क्या उसने भूषण का गला नहीं जकड़ लिया था।

गिरिबाला को जब यह बात याद आई, दीवाल पर बैठी छिपकली बोल उठी। धप् से कोई भारी चीज जैसे मच्छरदानी की छत पर जा गिरी हो। मच्छरदानी के भीतर अंधेरा था। उसे लगा कि मच्छरदानी के भीतर बहुत सारे मच्छर घुस आए हैं। मच्छरदानी के भीतर मच्छर भनभना रहे थे। गिरिबाला ने सोचा, उठकर एक बार मच्छरदानी झाड़कर मच्छरों को बाहर कर दे, मगर उठ नहीं सकी। कैसा तो आलस लग रहा था उसे। डर? अब गिरिबाला को डर नहीं लगता। डर भगाने का मंत्र उसे मिल गया है। उसके पास यह जो नन्हा-मुन्ना लेटा है, यही तो उसका डर भगाने वाला मंत्र है।

चुपचाप लेटी हुई वह भूषण के बारे में सोचने लगी। उसे सपने में देखे हुए साइनबोर्ड की याद आई। क्या सचमुच भूषण वैसे ही आएगा? उसके लिए असंभव कुछ भी नहीं है। हो सकता है, सचमुच किसी साइनबोर्ड वाले की उसने जान बचाई हो और उसने पैसों के बदले में साइनबोर्ड लिख कर दे दिया हो।

गहर निकिरी को भी तो भूषण ने ऐसे ही बचाया था। गहर ने भी पैसे नहीं दिए थे। जुगाड़ भिड़ाकर उसकी शादी करवा दी थी।

वाकई, गिरिबाला की शादी बड़े अद्भुत ढंग से हुई थी। गहर उनकी प्रजा था। गिरिबाला के गांव में रहने वाले निकिरी मल्लाओं का उस अंचल में बड़ा नाम है। क्रिया-कर्म में मछली पहुंचाने का बयाना दूर-दूर के गांवों से उनके पास आता था। उस पर भी गहर निकिरी लोगों का मुखिया था। राजाओं की तरह ही उसका अपनी बिरादरी पर हुक्म चलता था।

दो साल पहले एक दिन गहर भूषण के गांव के पास ही किसी गांव में मछलियां देने गया था। वहां भोज में उसने कुछ ज्यादा ही खा लिया था। मौसम भी कुछ अच्छा नहीं था। गहर को हैजा हो गया। गहर की वह यात्रा अंतिम यात्रा होने वाली थी, मगर भूषण ने उसे बचा लिया। उम्र कम होने से क्या होता है, भूषण बाबू असली डाक्टर हैं। गिरिबाला जानती है, इसी तरह की बातें कर-करके गहर ने उसके पिता, ताऊ और चाचा का मन भूषण की ओर फिरा दिया। भूषण के नाम पर गहर फूलकर कुप्पा हो जाता था। अक्सर आकर गिरिबाला के ताऊ से कहता, "बड़े बाबू, दीदी का ब्याह उस घर में कर दीजिए। वहां ब्याह होगा तो दीदी बहुत सुखी रहेंगी।"

खबर पाकर गिरिबाला के पिता भी गांव आ गए। गहर ने उन्हें बताया था, "डाक्टर बाबू चार भाई हैं। सबसे छोटे वही हैं। सबसे बड़े भाई और डाक्टर बाबू घर पर रहते हैं। मझले भाई कलकत्ते में हैं। संझले भाई जसोर में नौकरी करते हैं।" गहर की बातों को लेकर घर में इतनी बातचीत हुई थी कि गिरिबाला को लगभग सब कुछ रट-सा गया था।

और तब सबसे ज्यादा तमाशा किया था चम्पा ने। किसी के मुंह से कुछ सुन लेती तो उसे लेकर घर में ऐसा तमाशा करती कि सभी लोग हंसकर लोटपोट हो जाते।

एक दिन सभी लोग खाना खाने बैठे थे। अचानक बीच में पक्की गिरस्थिन की तरह चम्पा ने पूछा था, "तो लेंगे-देंगे क्या?"

पहले-पहल कोई समझ नहीं पाया था कि वह क्या कह रही है। चम्पा ने खुद ही अपनी बात का खुलासा किया था।

बूढ़ों की तरह गंभीर भाव से सिर हिलाकर फिर पूछा था, "मैं कहती हूं, लड़की का ब्याह तो कर रहे हो, मगर वे लोग क्या मांगते हैं, यह भी पता किया है?"

इस पर सभी लोग हंसकर बेहाल हो गए। तभी से चम्पा का एक और नाम पड़ गया था—'लेंगे-देंगे क्या'। मगर इस नाम से पुकारने पर क्या नाराज होती थी चम्पा ! तब चम्पा की उम्र ही क्या थी? सात भी पूरे नहीं हुए थे। तभी से वह ऐसी ही टरटराने वाली है।

वह सिर्फ श्यामू डाकिए से ही डरती है। श्यामू डाकिए को देखते ही चम्पा छिपने के लिए जगह ढूंढ़ने लगती है। इधर बहुत छुटपन से ही गिरिबाला का श्यामू डाकिए के साथ बहुत लगाव है। गिरिबाला बहुत छोटी थी तो उसकी बैठक में ही पोस्टआफिस था। कुछ ही साल पहले वह बदलकर हाट में चला गया है। इन दिनों शायद मिद्दा साहब की गद्दी पर चला गया है—पोस्टआफिस। गिरिबाला ने देखा नहीं, सिर्फ सुना है।

जब पोस्टआफिस उनके घर में था तभी से श्यामू डाकिए के साथ गिरिबाला का लगाव था। श्यामू डाकिए के पास एक बल्लम था। उसमें घंटियां बंधी हुई थीं। बल्लम के दूसरे किनारे से डाक की थैली लटका कर झुन-झुन करता हुआ श्यामू डाकिया दौड़ता था और वापस आकर जब वह खाने बैठता था तब कितनी ही कहानियां सुनाता था। उसी के मुंह से तो अनेक प्रकार के विवरण संग्रह करके आसपास की दुनिया के बारे में गिरिबाला ने एक भौगोलिक धारणा बना रखी थी।

उसे पता था कि उसके गांव से कुछ ही दूर जाने पर मधुपुर नाम का एक गांव है। वहां पर ट्वीडी नाम का एक गोरा साहब रहता था। उसके बाबा उसी साहब की कोठी में दीवान थे, उसके पड़बाबा भी। मधुपुर पार करके थोड़ा आगे जाने पर धोबीघाट आता है। वहां पर एक ऐसा भंयकर दह है, जिस पर आज तक कोई पक्का पुल नहीं बनवा पाया है। साहब लोग भी नहीं। उसके आर-पार जाने के लिए रस्सी से खींची जाने वाली

नावों का सहारा लेना पड़ता है। धोबीघाट के बाद ही झिनैदा शहर है। ये सारी बातें सबसे पहले गिरिबाला ने श्यामू डाकिए के मुंह से सुनी थीं। उसके काफी दिनों बाद जब वह अपने पिता के साथ डोमार गई थी, या ब्याह के बाद ससुराल गई थी तब वह सब उसने अपनी आंखों से देखा था। अचानक गिरिबाला को याद आया, श्यामू डाकिया बहुत खाता था। वह अकेला पलक झपकते पूरा का पूरा कटहल हजम कर जाता था। पता नहीं, छिलका और बीज फेंकता था कि नहीं।

गिरिबाला के पिता जिस दिन विवाह पक्का करने गए थे, उस दिन शायद कोई स्नान-पर्व था। उस दिन घर के सारे लोग स्नान करने जा रहे थे। बड़ी मां और दूसरे लोग आगे चले गए थे। गिरिबाला और चम्पा पिछड़ गई थीं। मुख्य रास्ते पर पांव रखते ही उन्हें झुन-झुन शब्द सुनाई पड़ा। श्यामू डाकिया दौड़ता हुआ आ रहा था। बहुत दिनों से गिरिबाला ने उसे देखा नहीं था। गिरिबाला के रुकते ही चम्पा मारे डर के उसकी पीठ से सट गई थी।

गिरिबाला की आंखों में एक के बाद एक अनेक तस्वीरें उभर रही हैं। श्यामू डाकिया गिरिबाला के सामने रुक गया है। पसीना पोंछते हुए उसने कहा था "दीदी, तुम्हारा ब्याह होगा न ! सुनकर बड़ी खुशी हुई।" अपने व्याह की बात सुनकर गिरिबाला शर्म से सिर झुका लेती थी, मगर श्यामू डाकिए के मुंह से वह बात सुनकर उसे जरा भी अजीब नहीं लगा था। बल्कि मजा ही आया था। उसने बड़े सहज भाव से पूछा था, "तुमने किससे सुना?" श्यामू डाकिए ने कहा था, "जिस घाट पर गहर नाव में छप्पर बांध रहा है वहीं से होकर मझले मालिक आज वर देखने गए हैं। बहुत अच्छी बात है। दीदी, भगवान तुम्हें सुखी रखे।" श्यामू डाकिया अब और न रुका। झुन-झुन घंटी बजाता, धूल के बगूले उड़ाता गिरिबाला की आंखों से ओझल हो गया।

स्नान करके वापस आते समय किसी ने देखा मझले मालिक और गहर सज-धज कर घाट की ओर जा रहे हैं। लाज से गिरिबाला आंखें नीची किए हुए, रास्ते के एक किनारे से अपनी कुंवारी देह को बड़ी कठिनाई से खींचती हुई चल रही थी, मगर चम्पा इतनी असभ्य है कि उसने चीखकर पूछा था, "ओ मझले काका, कहां जा रहे हो?" उसका जवाब दिया था गहर ने, "वर खोजने जा रहे हैं, ओ छोटी दीदी।" चम्पा दोनों हाथों से ताली बजाकर नाचने लगी थी और बोली थी, "जानती हूं जी, जानती हूं। बड़ी दीदी भी जानती हैं। क्यों बड़ी दीदी?" कैसी पाजी हो गई है यह लड़की, गुस्से से गिरिबाला सिर से पांव तक जल उठी थी। मन ही मन दांत पीसती हुई बोली थी, "तू पहले चल घर, तब तेरा नाचना-कूदना निकालती हूं।" मगर उसकी बातों की ओर चम्पा का ध्यान न था। वह लगातार चीखती हुई कहे जा रही थी, "एकदम टक लाल वर ले आना, मगर देखना एकदम ठीक हो। कहीं से टूटा-फूटा होगा तो मैं नहीं लूंगी, समझे?" चम्पा की बातों से सभी हो-हो करके हंस

पड़े थे। उस दिन बड़ी मुश्किल से चम्पा का मुंह बंद करके उसे लेकर गिरिबाला घर पहुंची थी।

बच्चे की आवाज सुनकर गिरिबाला ने करवट बदली। घाट के रास्ते पर से, अतीत के चित्रों के बीच से वह वर्तमान में आ गई, एकदम मच्छरदानी के नीचे अपने बच्चे की बगल में। बच्चा कुनमुना रहा था। गिरिबाला ने हाथ बढ़ाकर देखा तो पता चला कपड़े भिगो लिए हैं। सिरहाने मोड़कर कई कपड़े रखे हुए थे। लेटे-लेटे ही उनमें से एक सूखे कपड़े को खींचकर गिरिबाला ने निपुण हाथों से गीला कपड़ा बदल दिया। कुछ ही दिनों में गिरिबाला एकदम पक्की हो गई थी। शुरू-शुरू में कपड़ा बदलना उसे बड़ा झंझट का काम लगता था। अनाड़ी हाथों का खोंचा लगने से बच्चे की नींद भी टूट जाती थी। कितनी ही और गलतियां होती थीं उससे। मगर दो-ढाई महीने बीतते न बीतते वह सारे कामों में उस्ताद हो गई है। अब बच्चे को कुछ भी पता नहीं चलता है और वह गीले कपड़े बदल देती है।

हाथों का काम खत्म होते ही वे स्मृतियां जो हाथों की सक्रियता से तितर-बितर हो गई थीं फिर साकार हो-होकर वापस आने लगीं। जैसे अंधेरे में बिस्तर पर पड़े-पड़े गिरिबाला छायाचित्र देख रही हो।

...गिरिबाला की शादी हो रही है। घर में नाते-रिश्तेदार, नौकर-चाकर भरे हुए हैं। पाइकपाड़ा, पलेनपुर से छोटी-बड़ी बुआ आई हैं। बिनेदपुर से मामी और मौसी लोग भी आई हैं। छत्तरपाड़ा से आए हैं जाति-बिरादरी और कुटुंब के ढेर सारे लोग। चारों ओर आमोद-प्रमोद हो रहा है, कभी-कभी दिवंगत परिवारजनों के बारे में चर्चा के साथ अश्रुवर्षा भी हो रही है। दूसरे ही क्षण सुविधा-असुविधा को लेकर लोग आपस में झगड़ भी रहे हैं। इस सारी चख-चख के बीच सिर्फ गिरिबाला अलग-थलग हुई पड़ी है। उसे कुछ भी अच्छा नहीं लग रहा है। क्यों, यह कौन बता सकता है? यह खिन्नता क्यों है, किसकी परेशानी है? यह भी गिरिबाला नहीं जानती। वह इतना जानती है कि उसे कुछ अच्छा नहीं लग रहा है।

...अच्छा, उसके ब्याह को लेकर घर के सारे लोग इतना परेशान क्यों हो उठे थे? क्या वह लोगों को सींग मार रही थी कि मेरा ब्याह कर दो? तो फिर? उसे अपने पिता पर बहुत गुस्सा है। ताऊ जी, बुआ और बड़ी मां तथा चाचा पर भी। बड़े भैया भी कम नहीं हैं। वे भी उसी दल में मिल गए हैं। इन सबका स्नेह-प्रेम सिर्फ दिखावा है। असल में गिरिबाला उनके गले का कांटा है। तभी तो उसे खिसकाने के लिए उस बिलौटे को इतनी खातिर करके लाया जा रहा है। बिलौटा कौन? क्यों, वही आदमी, जिसका नाम भूषण है, जिसे इतना आदर-सत्कार करके यहां लाया जा रहा है कि वह गले के इस कांटे को निकाल ले जाए।

...ब्याह होते ही यहां से उसका अन्न-जल उठ जाएगा? यह घर, यह बरामदा, यह आंगन, यह गांव, गिरिबाला की जानी-पहचानी दुनिया जो उसकी अपनी दुनिया है, और जिसके सहारे ही वह इतनी बड़ी हुई है, जिसके साथ एक शिशु की तरह वह नाभिनालबद्ध है, वह सब कुछ पराया हो जाएगा? बड़ी मां, बुआ जी, और सभी परिचित लोगों के लिए वह पराए गांव की बहू हो जाएगी।

...इन्हें छोड़कर, इस परिचित दुनिया को छोड़कर, गिरिबाला जिंदा रह सकती है, यह बात कभी भूल से भी उसके मन में नहीं आई थी। भगवान जानते हैं कि इनके अलावा उसने कभी किसी और की बात सोची हो। तो फिर?

...तो फिर ये लोग उसे किसी पराए घर में ठेल देने के लिए क्यों इतने व्यग्र हो उठे हैं? उसे पराई बना देने की इतनी जल्दबाजी इन्हें क्यों है? क्या उसने कोई गलती की है? क्या अपने बुजुर्गों के प्रति कोई अपराध किया है? गिरिबाला यह बात जानना चाहती है। बीच-बीच में एक तेज छटपटाहट उसके भीतर तूफान उठा देती है। उस समय गिरिबाला किसी भी तरह अपने को संभाल नहीं पाती है और मृत्यु के समय मां को फूलों से सजाकर जो फोटो ली गई थी उसी धुंधली, छोटी फोटो के नीचे वह आकर खड़ी हो जाती है तथा उसकी आंखों से एक अजस्र अश्रुधारा बहने लगती है। रो-रोकर वह अपने मन को हल्का कर लेती है।

...गिरिबाला नहीं जानती कि क्यों, पर ऐसे अवसरों पर उसे मृत्यु बड़ी निकट और बड़ी आत्मीय मालूम पड़ने लगती है। एक पल के लिए भी उसे और जीने की इच्छा नहीं होती। न जाने कैसे उसके मन में यह धारणा जड़ जमा चुकी थी कि ब्याह के पहले ही वह मर जाएगी। मर कर मां के पास आश्रय लेगी। हमेशा के लिए निश्चिंत करने वाला आश्रय। मगर गिरिबाला मरी नहीं। ऊपर से वह भयावह दिन धीरे-धीरे पांव बढ़ाता उसके निकट आने लगा। ब्याह के कई दिन पहले उसने एक विकट दुःस्वप्न देखा। वह स्वप्न आज भी उसके मन पर अंकित है। शायद हमेशा रहेगा। गिरिबाला ने सपने में देखा : एक विशालकाय मेढक ने उसकी छाती के ऊपर से छलांग लगाते हुए उसके मुंह के पास आकर, लपलपाती जीभ वाला अपना मुंह आकाश से पाताल तक फैला दिया है। अब वह उसे निगल लेगा। भय से विवर्ण होकर गिरिबाला अपनी आंखें बंद करने ही जा रही थी कि उसकी नजर मेढक के सिर की ओर चली गई। उसके सिर पर एक मौर रखा हुआ था। अच्छा, तो यही उसका वर है! गिरिबाला फफककर रो पड़ी। अचानक नींद टूटते ही वह दौड़ी हुई बड़ी मां के पास गई थी और उनकी गोद में सिर टिकाकर रोने लगी थी।

...शुभदृष्टि के समय उसने अपनी आंखें नहीं खोलीं। सुहागकक्ष में भी नहीं। वह जानती थी कि आंखें खोलते ही उसे मेढक का मुंह देखने को मिलेगा। कितनी बुद्धू थी गिरिबाला। कहां भूषण और कहां मेढक!

बाजनदार टोले से मुर्गे की बांग सुनाई दी। चलो, रात तो बीती। कितनी बेकार की चिंताओं में रात कट गई! थोड़ा उजाला हो जाए तो गिरिबाला की जान बचे। वह बिस्तर छोड़ सके।

मगर गिरिबाला को अभी भी स्मृतियों के हाथ से छुटकारा नहीं मिला। जितना ही वह उन्हें ठेलकर परे करती, उतना ही सेवार की तरह स्मृतियां उसके मस्तिष्क में घिर आतीं।

...भूषण भी अजीब आदमी है ! गिरिबाला को उसका हाव-भाव, उसका आचरण सब कुछ बड़ा विचित्र लगता है। ब्याह के दूसरे दिन उसने आश्चर्यजनक कांड किया था। गहर एक मन मछली पकड़कर दे गया था। जैसे यह उसकी कर्ज अदायगी थी।

...बड़ी बहू का भोजन बनाने में बड़ा नाम है। दामाद को खिलाने के लिए अकेले उन्होंने रसोई संभाल रखी थी। सात-आठ तरह के तो मछली के ही व्यंजन थे। एक बड़ी थाली के चारों ओर कटोरों में सब कुछ सजाकर नाते-रिश्तेदारों की भीड़ में ज्यों ही दामाद के सामने परोसा आया वह उठकर खड़े हो गए। लगा, जैसे उनके सामने कोई विषधर सांप छोड़ दिया गया हो। "हां हां ! क्या करते हैं, क्या करते हैं !" दामाद चीख उठे, "मछली-मांस तो छूना भी मना है।" यह क्या, यह बात तो पहले किसी ने बताई ही नहीं थी? वहां उपस्थित सभी लोगों के मुंह सूख गए थे। लगता है, भोज बेकार चला जाएगा। कितनी शर्म की बात है ! मगर तभी भूषण ने हाथ जोड़कर कहा, "गलती हम लोगों की है। आप लोग उदारतापूर्वक हमें क्षमा करें और खाने बैठें। मैं भी बैठता हूं। मुझे निरामिष भोजन ला दीजिए।" दामाद की विनम्रता से सभी खुश हुए थे। केवल गहर का चेहरा दुख से काला पड़ गया था। उसका सारा परिश्रम व्यर्थ गया था।

...छोटी-बड़ी और भी अनेक नाटकीय घटनाएं भूषण ने घटित की हैं। आज ढाई महीने हो गए उसकी कोई खबर ही नहीं है। लड़का हुआ, दूसरे सभी लोग आकर देख गए। यहां तक कि ससुराल से जेठ का लड़का भी आकर चला गया। मगर भूषण का पता नहीं। कोटचांदपुर पता नहीं कहां है? जेठ का लड़का भी ठीक से नहीं जानता। कैसे आदमी हैं ये !

गिरिबाला का हृदय दुखी हो उठा। उसकी आंखों में आंसू आ गए। चलो, माना कि गिरिबाला की उन्हें फिक्र नहीं, मगर राजा-मुन्ना? क्या उसकी याद भी भूषण को नहीं आती? क्या उसे देखने की इच्छा भी नहीं होती? आंखों से टप-टप आंसू गिरकर तकिए को भिगोने लगे। मुन्ने की देह पर हाथ रखकर गिरिबाला ने मन ही मन कहा, "तेरा बाप मुझे बहुत रुलाता है, तू भी क्या ऐसा ही करेगा? हैं रे मुन्ना?"

इस बीच बच्चा जाग गया था और हाथ-पांव फेंक-फेंक कर खेल रहा था। गिरिबाला ने उसका चुंबन लेते हुए कहा, "मेरे मुन्ना, मेरे सोना, अपने पिता को बुला के ला नहीं सकता?"

दस

ऐसा कोई बहुत बड़ा बोझा सोना मियां ने उसकी गाड़ी पर नहीं लादा था। पांच मन भी पाट था कि नहीं, इसमें भी संदेह है। अभागे बैल इतना बोझ भी नहीं खींच पा रहे थे। सोना मियां गुस्से से कसमसा रहे थे। "देखो तो, देखो तो, इस साले बैल को देखो, क्या कर रहा है।" सोना मियां ने परेशान होकर कहा। बाईं तरफ के बैल की पूंछ ऐंठकर दाहिनी ओर के बैल के पेट में एड़ी मारी "ऐ बेटा, बां बां, बां बां, तत् तत्, हेइ हेइ" करके भी गाड़ी को आगे बढ़ाने की कोशिश में बैलों ने कोई सहयोग नहीं किया। फिर मार खाकर उन्होंने गाड़ी जोर से खींचनी शुरू की, मगर सीधी राह न चलकर उसे लिए-दिए गड्ढे में पहुंच गए। भादो महीने की कड़ी धूप में एक बैल की पीठ पर जो दाद का बड़ा चकत्ता था, उसमें असह्य जलन होने लगी थी। लग रहा था जैसे कोई उसकी पीठ पर आरा चला रहा हो। पसीने की बूंदें पड़ने से ऐसा लग रहा था, जैसे उस पर कोई नमक छींट रहा हो। इसीलिए बैल दर्द से तड़पकर इधर-उधर भाग रहा था।

गाड़ी के गड्ढे में गिर जाने पर सोना मियां के सिर पर खून सवार हो गया। वे गाड़ी से छलांग लगाकर कूद पड़े। गाड़ी पर रखी एक बड़ी लाठी उन्होंने निकाली और दोनों हाथों से पकड़कर पूरे जोर से धमाधम दोनों बैलों को पीटने लगे। हड्डियों के ढांचे-जैसी दोनों बैलों की गर्दनें नीचे की तरफ झूल गईं। उन्होंने शरीर की बची-खुची ताकत लगाकर एक बार आगे बढ़ने की कोशिश की। बैलों ने प्राणपण से गाड़ी खींचनी चाही। मगर गाड़ी के चक्के गहरे कीचड़ में धंस गए थे। बाल बराबर भी वे उसे नहीं हिला सके। बाईं ओर के बैल की पीठ पर बड़े-बड़े घाव थे। उनमें से खून चूने लगा। दाहिनी ओर के बैल ने पूरा जोर लगाया, मगर गाड़ी कहां खिसकने वाली थी।

सोना मियां की हालत भी उन दोनों बैलों से कोई बेहतर न थी। बार-बार मलेरिया के हमले से, जिले के दूसरे किसानों की तरह उनकी हड्डियां भी बाहर निकली हुई थीं। बैलों को लाठी से मारने की मामूली मेहनत में ही वे भी बुरी तरह से हांफने लगे थे।

बैलों की बनावट भी बड़ी अद्‌भुत थी। लगता है, ईश्वर ने पहले बीच में खूब मोटा और दोनों तरफ पतला नारियल जैसा कुछ बनाया था। उसके बाद उनके मन में आया कि क्यों न इन नारियलों को ही बैल बना दें। बस उन्होंने एक तरफ सिर, दूसरी तरफ पूंछ जोड़ दी और नीचे की तरफ खुरों वाले चार पांव बिठा दिए।

निश्चय ही, सोना मियां को इसके लिए कोई पश्चाताप नहीं हुआ। उनके शरीर में ताकत भले ही कम हो, पर गुस्सा कम नहीं हुआ था। कारण यह कि और थोड़ा रास्ता कट जाता तो वे खेयाघाट पहुंच जाते और सवेरे-सवेरे पहुंच जाने से उनके पाट की नई गद्दी में बिक्री हो जाती। नई गद्दी वालों को पाट बेचने में एक सुविधा थी। दाम नगद

मिल जाता था। और, पुराने घाघ आढ़तियों के मुकाबले वे लोग आदमी भी अच्छे होते हैं। दाम भी दो-चार आने ज्यादा देते हैं।

पाट आढ़तियों में सबसे बड़ा घाघ है वह काना मारवाड़ी अग्रवाल। उस साले को देखकर सोना मियां की पित्ती जल जाती है। निश्चय ही इसका एक और भी कारण है और वही प्रमुख कारण है। दरअसल सोना मियां को अग्रवाल के कुछ पैसे देने हैं, जो उन्होंने पिछले आठ सालों से नहीं दिए हैं। लड़ाई के समय पाट का दाम 'दिन दूना, रात चौगुना' बढ़ रहा था। कहा जाए तो पाट उन दिनों सोने के भाव बिक रहा था। उन दिनों सोना मियां का भी बोलबाला था। उन्होंने बीबी के लिए पायल-कंगन खरीदे थे, कांसे के थाल में भोजन किया था, भाई को साइकिल खरीद कर दी थी, मकान का छप्पर उतार कर उसकी जगह टिन की छत डलवाई थी और मिस्त्री लगाकर टिन का ही मोर बनवाकर छत पर बिठा दिया था। उन दिनों सोना मियां पक्के मियां की तरह ही उठते-बैठते थे। पश्चिम से चार-चार कीमती बधने मंगवाए थे। अपने घर में लोगों को दावतें दी थीं। उन दिनों वे बड़े आदमी हो गए थे। यूनियन बोर्ड के मेंबर थे। कोई मामूली आदमी न थे। अपने गांव में सिल्क की लुंगी, जूते और इसटाकिन का चलन उन्होंने ही शुरू किया था। एक चश्मा खरीदने का भी मन था। जैसा चश्मा मिद्दा साहब पहनते हैं, उसी किस्म का। सोना मियां का सिर्फ यही शौक पूरा न हो सका।

उसके पहले ही उनके नसीब में आग लग गई। लड़ाई बंद हो गई। पाट का दाम घटने लगा। चार साल में ही देखो तो क्या हालत हो गई!

उनके अच्छे दिनों में अग्रवाल मारवाड़ी ने सोना मियां को एकदम अपने कलेजे से लगा रखा था। मुंहमांगा पैसा देता था। जितना चाहो टिन देता था, साइकिल, घड़ी, लालटेन—लो न, जिसे जो चाहिए, लो। उसकी बही में दस्तखत करो, या फिर अंगूठे की छाप लगा दो। माल लेकर जाओ और पाट देकर दाम चुका दो।

उसने ही अंगूठे की छाप लगवा-लगवाकर सोना मियां को अपने जाल में फंसा लिया था। शुरू-शुरू में तीन रुपए का उधार था। बढ़ते-बढ़ते अब साठ पर पहुंच गया है। उधार की रकम का दबाव डालकर हर साल वह सोना मियां से सस्ते में पाट खरीदता है। एक तरह से जबरदस्ती करता है। बाजार भाव बीस रुपए होते हैं तो साला मारवाड़ी अठारह रुपए ही देता है। काना साला है बड़ा दिमागदार। कहा है न—'एक आंख का काना, पेट में उसके दाना'। सारी हाट में साले ने अपने आदमी बिछा रखे हैं। आंख बचाकर किसी और को माल बेचकर खिसक जाने का रास्ता भी बंद कर दिया है।

पलेनपुर का बदू कलू इस व्यापार में नया-नया उतरा है। सोना मियां की उसी से बातचीत हुई है। तय था कि हाट में न घुसकर सोना मियां दूसरे रास्ते से खेयाघाट जाएंगे। वहीं बदू कलू को माल दे देंगे। बदू कलू ने थोड़ा सवेरे-सवेरे ही आने को कहा था। उसके

पास पूंजी कम है। जिसका माल पहले मिलेगा उसे ही खरीद लेगा। तब? अगर इसी बीच उसने किसी और का माल खरीद लिया हो तो?

सोना मियां के सिर पर फिर खून सवार होने लगा। उन्होंने लाठी किनारे रख दी और गैंती उठा ली। दाहिने बैल को उसी से उन्होंने कोंचा। बैल के पुट्ठे से मांस कटकर लटक गया। फिर भी गाड़ी का चक्का एक धुर भी आगे न बढ़ा। सोना मियां पागल की तरह सटाक-सटाक दोनों बैलों को पीटते चले गए और पागलों की तरह चीखने लगे, "रुको हरामजादो, घर चलकर आज तुम दोनों को जिबह न किया तो मेरा भी नाम नहीं ! बैल न होता तो इतने दिनों में पांच बच्चों का बाप हो जाता, मगर आज तक तुझे दायां-बायां पता न चला। गाड़ी गड्ढे में डालकर तूने समझ लिया है कि आज का काम हो गया। अब बैठ के पगुराएगा। खींच गाड़ी। भला चाहता है तो जल्दी गाड़ी गड्ढे से निकाल। नहीं तो आज या तो तुम सब रहोगे या मैं रहूंगा।"

सोना मियां पीटते जा रहे थे और दोनों बैलों की पीठ पर गैंती से चोट मारते जा रहे थे। दोनों बैलों की पीठ पर अनगिनत सांटें पड़ गई थीं। बैलों की सफेद पीठों पर काली-काली सांटें ऐसी लग रही थीं, जैसे किसी ने सफेद कथरी में काले सूते से सिलाई की हो। दोनों बैलों ने यथासंभव गाड़ी खींचने की बार-बार कोशिश की। उनके मुंह से फेन निकलने लगा, मगर वे गाड़ी को जरा-सा भी बाहर न कर सके। अचानक दाहिनी ओर के बैल के दोनों घुटने मुड़ गए और वह जमीन पर लेट गया। गैंती के भोथरे हिस्से से सोना मियां ने बैल को खींचकर उठाने की कोशिश की। मगर उठा न सके। तब सोना मियां घुटनों के बल बैठ गए और बैल के पेट में लगातार गैंती से चोट करने लगे। उस समय वे पूरी तरह होशोहवास खो बैठे थे।

रामकिष्टो हाथ में चारेक केंडे[1] और एक बड़ी सी लबनी[2] लिए बाजार जा रहा था। सोना मियां की हरकत देखकर वह बुरी तरह डर गया। हाथ की चीजें सड़क के किनारे रखकर दौड़ता हुआ गया और उसने सोना मियां का हाथ पकड़ लिया। "क्या करते हो, क्या करते हो?" कहते हुए उसने सोना मियां के हाथ से गैंती छीन ली।

उसने सोना मियां को फटकार लगाई, "अरे बुद्धू, तू किसान का बेटा है। बैल मर जाएगा तो तू क्या जिंदा बचेगा? देख तो, क्या किया है तूने? बैल को पीट-पीट खत्म ही कर दिया है।"

हांफते-हांफते सोना मियां ने कहा, "मारूं न तो क्या करूं? सालों ने गाड़ी गड्ढे में गिरा दी। देर से बाजार में पहुंचूंगा तो यह माल किसके उस में ठूंसूगा, अपने या इन बैलों के?"

---

1. मिट्टी का छोटा गोल बर्तन।

2. मिट्टी का बड़ा बर्तन, जिसका मुंह संकरा और पेट बड़ा होता है।

रामकिष्टो ने समझाते हुए कहा, "सोना भाई, अगर ताकत ही न हो तो क्या पीटने से बैल गाड़ी निकाल पाएंगे? बांझ औरत को मेवा खिलाने से क्या उसके पेट में बच्चा हो जाएगा?"

अभी रामकिष्टो बोल ही रहा था कि दाहिनी ओर का बैल गर्दन टेढ़ी करके चारों खाने चित हो गया। उसकी आंखें ऊपर को निकल आईं। गले की रस्सी अभी भी गाड़ी के जुए से बंधी थी। खिंचाव पड़ने से गला बुरी तरह कस गया। बैल की आंखों से कीचड़, मुंह से फेन और नाक से पानी निकलने लगा।

रामकिष्टो ने जल्दी से कहा, "सोना भाई, गले की रस्सी खोल दो। जल्दी करो।"

रामकिष्टो ने जल्दी से जुआ ऊंचा कर दिया। सोना मियां ने रस्सी खोलकर दोनों बैलों को अलग कर दिया। रामकिष्टो ने दाहिने बैल की आंखों और मुंह में फूंकें मारनी शुरू कीं। मामला समझ में आया तो सोना मियां भी घबरा गए। उनके प्राण सूख गए। मन ही मन उन्होंने कहा, या अल्ला, बैल मर जाएगा क्या ! फिर तो सत्यानाश हो जाएगा! बाएं का बैल इतनी देर से अपने साथी पर होते अत्याचार को देख रहा था। अब अपनी डबडबाई बड़ी-बड़ी आंखों से मृतप्राय साथी को देख रहा था। क्या जाने अचानक उसके मन में क्या आया, शायद अपने साथी को हांक लगाने के लिए ही, उसने डरे-डरे, भर्राए गले से आवाज लगाई, 'बा-बां'। साथी की ओर से कोई जवाब न पाकर वह धीरे-धीरे रास्ते के किनारे की तरफ खिसक गया और घास चरने लगा। एक चील कर्कश स्वर में रिरियाती हुई उनके ऊपर से उड़ गई। बादल का एक टुकड़ा उनके सिर पर हल्की छाया करता हुआ गुजर गया।

फूंक मारते-मारते रामकिष्टो का मुंह दर्द करने लगा। अब सोना मियां फूंक मारने के लिए आगे आए।

रामकिष्टो ने कहा, "जाकर इन बर्तनों में पानी भर लाओ। लगता है, बैल को चक्कर आ गया है। पीट-पीट कर तुमने उसकी जान ही निकाल ली है। छिः... ।"

सोना मियां ने रामकिष्टो की भर्त्सना का जरा भी बुरा न माना। उन्होंने गलती की है। उन्होंने अपराध किया है। अगर रामकिष्टो इस समय जुतिया भी दे तो वे मुंह खोलकर प्रतिवाद नहीं करेंगे।

सोना मियां पानी लाने के लिए बर्तन उठाने ही जा रहे थे कि अचानक रामकिष्टो को कुछ ध्यान आया।

रामकिष्टो चीख उठा, "अरे रुको, रुको, सोना भाई ! ये बर्तन बाबू लोगों के हैं। छूना मत। तुम इधर आओ, बैठकर इसे फूंक मारो, इसके तलपेट को धीरे-धीरे सहलाओ। मैं पानी लाता हूं।"

सोना मियां परेशान होकर लौट आए। रामकिष्टो बर्तन लेकर पानी लाने दौड़ा। सोना

मियां बैल के पास बैठकर कभी उसकी आंखों और मुंह में फूंक मारते, तो कभी तलपेट पर धीरे-धीरे हाथ फेरते, और कभी उसके गूमड़ को सीधा करने की कोशिश करते, बड़े ही यत्न से। उनका गुस्सा अब शांत हो गया था। एक भय रह-रहकर उनके मस्तिष्क में शूल चुभा रहा था। धीरे-धीरे सहानुभूति की एक अव्यक्त वेदना सोना मियां के मन में जन्म लेने लगी।

तीसरा पहर हो गया था, मगर धूप अभी तेज थी। गद्दी के सामने के पेड़ की डालियों में से आती हुई तेज धूप का एक टुकड़ा मिद्दा साहब की आंखों पर जा पड़ा। रोज ही पड़ता है। साहबी ठाठ वाला मन कुनमुना उठा। उनकी समझ में आ गया कि चाय-पानी का समय हो गया है। चमकदार रोल्डगोल्ड का चश्मा बाएं हाथ से उन्होंने उतार लिया। साथ ही पके हुए बाल वाली उनकी दोनों भौंहें आंखों पर थोड़ा झुक आईं। कटहल की लकड़ी की एक मजबूत डेस्क उनके सामने थी। डेस्क पर खुली हुई बही रखी थी। उन्होंने चश्मा खोल में बंद करके बही पर रख दिया। फिर गद्दी से उतर कर सुनहरे रंग का चमकदार बधना हाथ में लेकर चट्टी पहनकर मैदान की दूसरी ओर चले गए। बहुत देर से बैठे थे। पेडू में तनाव हो गया था। अब थोड़ा हल्के होने की जरूरत महसूस हो रही थी।

यह उनका रोज का नियम है। लौटकर वे गद्दी पर बैठेंगे तो कोई काम नहीं करेंगे। शाम तक सिर्फ गप-शप चलेगी। वे यूनियन बोर्ड के प्रेसीडेंट भी हैं। इस समय थोड़ा-बहुत बोर्ड का भी काम होता है। दफादार और चौकीदार इसी समय हाजिरी बजाने आते हैं। लगातार चाय-पानी और तंबाकू के दौर चलते हैं। आज हाट का दिन है। भीड़ थोड़ी ज्यादा ही होगी।

मिद्दा साहब कलकत्ते की आदमजी हाजी दाऊद कंपनी के एजेंट हैं। उस इलाके का जितना भी पाट उक्त कंपनी की चटकल में जाता है सारा का सारा मिद्दा साहब के ही द्वारा भेजा जाता है। लड़ाई के पहले उनकी आर्थिक स्थिति कोई खास अच्छी न थी। मगर लड़ाई के दौरान अल्ला मियां की रहमत और अपने नसीब के बल पर हालात ने पलटा खाया। इस समय वे बाईस नंबर यूनियन के पंद्रह गांवों के प्रधान हैं।

नदी तट पर मिद्दा साहब के दो बड़े-बड़े पाट के गोदाम हैं। पहले माल उनके भीतर नहीं अंटता था और अब कंपनी का इरादा मिद्दा साहब की समझ में ही नहीं आता था। इसीलिए दिल खोलकर पाट भी खरीद नहीं पा रहे हैं। गोदाम में बहुत-सी जगह खाली पड़ी है। लड़ाई के दिनों में तीन-चार हजार मन माल भेजने पर भी कंपनी मना नहीं करती थी। और माल भेजो, और माल भेजो, का हुक्म झाड़कर उनकी जान सांसत में डाल देती थी। और अब, हजार-पांच सौ मन माल भेजते ही टेलीग्राम आ जाता है—'बस करो, और माल नहीं चाहिए'। वे देख रहे हैं, साल-दर-साल माल की मात्रा कम होती जा रही है।

पिछले साल जो माल खरीदा गया था वह भी अभी तक गोदाम में पड़ा है। इस साल के माल की आवक का समय भी हो चला है। आज भी कलकत्ते से कोई साफ हुक्म नहीं आया। मिद्दा साहब बड़ी मुश्किल में पड़ गए हैं। अग्रवाल जरूर माल खरीद रहा है। मगर उसके साथ टक्कर लेने की हिम्मत अभी भी मिद्दा साहब में नहीं है।

अग्रवाल के साथ उनकी तुलना भी नहीं हो सकती। बेटा एक नंबर का चश्मखोर है। आंखों में कोई लिहाज-शर्म नहीं है। माल खरीदने और बेचने के मामले में वह जितना सख्त रुख अपनाता है, क्या मिद्दा साहब ऐसा कर पाएंगे? अग्रवाल का इस गांव से क्या रिश्ता है? कुछ नहीं। यहां के लोगों के साथ उसका क्या संपर्क है? अग्रवाल का मूल मंत्र है—पैसा फेंको, माल उठाओ। अग्रवाल जानता है कि उसके पास पैसा है। किसान चाहे जितना भी अकड़े, शुरू-शुरू में तेज दिखाए, मगर आखिर में उसे उसके ही पांव पड़ना होगा। वह जो दाम कहेगा, उसी दाम पर किसान को उसे माल देना होगा।

मगर मिद्दा साहब यहीं के रहने वाले हैं। हालांकि वे मन ही मन जानते हैं कि अग्रवाल का रास्ता ही व्यापार का ठीक रास्ता है, फिर भी उस रास्ते वे आराम से पांव नहीं बढ़ा सकते। अगर ऐसा कर सकते होते, तो पिछले साल इतना माल वे न खरीदते। माल तो अग्रवाल ने भी खरीदा है और उनसे बहुत कम दाम में ही खरीदा है, पर वे कोशिश करके भी किसान को इतना कम दाम नहीं दे पाते हैं। कैसे दें? आजकल वे इत्र लगाते हैं। मिल्लाद की महफिल में शेख फसीउल्ला के गुलाबजल का छिड़काव करवाते हैं। इसके बावजूद उनके शरीर से जो पसीना निकलता है उसमें वही महक होती है जो यहां के किसानों के पसीने में होती है। ये बेवकूफ और दुखी किसान उनकी आत्मा के साथी हैं, इस सच्चाई को अभी भी वह जिबह नहीं कर पाए हैं।

मगर मिद्दा साहब यह भी समझते हैं कि इस तरह व्यापार करने से उन्हें जल्दी ही लाल बत्ती जलानी होगी। तब वे क्या करेंगे, यह बात उनकी समझ में नहीं आ रही है।

मिद्दा साहब ने देखा, नदी में पाट से लदी नावें एक कतार में लंगर डाले खड़ी हैं। नदी के किनारे बैलगाड़ियों में भी ढेर सारा पाट लदकर आया है।

मिद्दा साहब बधना नीचे रखकर, सिर पर रखी डिजाइनदार गोल टोपी को बाएं हाथ से ऊपर उठाकर, दो पल अपने गंजे सिर में हवा का ठंडापन महसूस करते रहे। उन्होंने फिर अपनी दाहिनी हथेली से गंजे सिर को कई बार सहलाया। उन्होंने देखा, उनका गुमाश्ता तूफान मियां मलमल का कुर्ता और तहमद पहने, मुह में हवागाड़ी सिगरेट लगाए, बगुले की तरह उचक-उचककर देखता हुआ रंडियों के कमरों के आसपास घूम रहा है। उन्होंने सोचा, 'बेटा के बड़े पंख उग आए हैं। इसका मतलब है, पैसे बना रहा है।'

उन्होंने आवाज लगाई, "ऐ तूफान !"

मालिक की आवाज से चौंककर पीछे देखते ही तूफान मियां की सिट्टी-पिट्टी गुम हो

गई। तुरंत जली हुई सिगरेट उंगलियों की फांक से नीचे सरक गई। उसने मन ही मन कहा, 'साले बुड्ढे की सब ओर निगाह रहती है।' तुरंत बुद्धू जैसा चेहरा बनाकर, छोटी-छोटी आंखों से मिद्दा साहब की ओर देखते हुए तूफान मियां मेंहदी से रंगे अंगूठे का नाखून चबाने लगा।

मिद्दा साहब ने धमकाया, "क्यों रे हरामजादे, यहां क्या कर रहे हो?"

तूफान मियां ने तड़ से जवाब दिया, "हुजूर, माल की आवक देख रहा था।"

'छोकरा है बड़ा रसिया। जनाब यहां आवक देख रहे हैं !' न जाने क्यों तूफान मियां का जवाब सुनकर मिद्दा साहब को मजा आया। गुस्सा झट से कम हो गया। उन्होंने टोपी फिर से सिर पर रखी। शायद अपना महत्व बढ़ाने के लिए।

उन्होंने गंभीर स्वर में पूछा, "कैसी आवक देख रहे हो?"

"कोष्टा की आवक देख रहा हूं, हुजूर।"

मिद्दा साहब ने कहा, "हूं ! ठीक है, देखो। मगर लाली के अलावा दूसरा माल छूना भी मत और थोड़ा देखभाल करके लो।"

गद्दी की ओर पांव बढ़ाए ही थे कि देखा मझले मालिक जा रहे हैं।

उन्होंने हांक लगाई, "अरे मझले बाबू, अस्सलाम अलैकुम। नाती को पाकर हम लोगों को तो भूल ही गए, आप।"

मझले मालिक ने कहा, "सलाम, प्रेसीडेंट साहब।"

मिद्दा साहब ने कहा, "लगता है, नाती हमेशा आपकी ही गोद में बैठा रहता है। आप तो एकदम गूलर के फूल हो गए हैं।"

मझले मालिक ने कहा, "गोद में बैठना तो दूर, नाती मेरा चेहरा देखकर ही डर जाता है। दाढ़ी का यह जंगल साफ हुए बिना बाबू मेरी गोद में आएगा, ऐसा तो नहीं लगता।"

मझले मालिक की बात पर मिद्दा साहब हो-हो कर हंस पड़े।

"हा...हा...हा, तब तो उस छोटे बदमाश ने आपको बड़ी मुश्किल में डाल दिया है। फिर हा...हा...हा... शौक से रखी दाढ़ी और जान से प्यारा नाती, देखा जाए किसका जोर ज्यादा है? क्या कहते हैं? हा...हा...हा... !"

मिद्दा सहाब की हंसी से मझले मालिक को भी हंसी आ गई।

बोले, "लगता है, प्रेसीडेंट साहब के सामने इसका फैसला करवाने के लिए आना होगा।"

मिद्दा साहब ने कहा, "इसकी क्या चिंता? मैं तो हमेशा हाजिर हूं। चलें, एक प्याला चाय हो जाए।"

इस गांव में चाय पीने की प्रथा मिद्दा साहब ने ही शुरू की है। शाम होते ही उनकी गद्दी पर चाय की बैठक शुरू हो जाती है और गद्दी बंद होने तक चलती रहती है। एक बड़ी-सी बटलोई में पानी हमेशा उबलता रहता है। चाय बनाने के लिए एक आदमी नियुक्त

है। उसे पांच रुपए महीने मिलते हैं।

हिंदुओं के गण्यमान्य लोगों में से कोई भी इस चायशाला में कदम नहीं रखता। हां, छोकरों के दल जरूर आकर इकट्ठा हो जाते हैं। मझले मालिक का इस बारे में कोई विशेष आग्रह नहीं है। यह तो चाय है, अपने कालेज जीवन में कलकत्ते के दोस्तों के संग मुस्लिम होटलों में उन्होंने और भी कई अखाद्य चीजें खाई हैं।

हिंदुओं के सरगना इस काम को बड़े संदेह की निगाह से देखते हैं। बूदो भुइयां की धारणा है कि यह लोगों की जात मारने का एक तरीका है, जो मिद्दा साहब ने जानबूझकर शुरू किया है। ऊपर से वह कुछ नहीं कहता। प्रेसीडेंट साहब पहुंच वाले आदमी हैं। बार-बार शहर जाते हैं। एस.डी.ओ., मुंसिफ, एस.पी., डी.एस.पी. के साथ उनका उठना-बैठना है। इसीलिए बूदो उनके सामने कुछ नहीं कहता। पीठ पीछे खिचड़ी पकाता रहता है।

इसी बात को लेकर मातंगिनी टेलरिंग हाउस के प्रोपराइटर सुशील दत्त के साथ प्रायः उसकी नोंक-झोंक होती रहती है। बूदो भुइयां कहता है, "उस कटुए के साथ रोज जाकर तू जो बैठक करता है, उससे तुझे क्या मिलता है, बता तो?" सुशील दत्त हंसकर जवाब देता है, "अरे बूदो दादा, तुम इतना भी नहीं जानते? मैं वहां इत्र की सुगंध लेने जाता हूं। तुम भी अगर दो-चार दिन मिद्दा साहब के साथ सटकर बैठो तो तुम्हारी देह से जो कीचड़ की महक आती है वह गुलाब की खुशबू में बदल जाएगी।" इस पर बूदो नाराज होकर कहता, "इतनी घिसा-घिसी अच्छी नहीं है, सुशील बाबू, समझे न? एक दिन अगर मुल्ला के कहने पर यह मिद्दा तुम लोगों को कलमा पढ़ाकर न छोड़े तो मेरे नाम से कुत्ता पाल लेना। तब समझ में आएगा कि इस उम्र में सुन्नत कराने से कैसा लगता है।" सुशील नाराज नहीं होता। कहता है, "तुम अपने को संभालकर रखो, उसी से हम सभी के धर्म की रक्षा हो जाएगी।" इसके बाद दुकान में हंसी का जो फव्वारा छूटता है वह बूदो की बर्दाश्त के बाहर हो जाता है। गुस्से से फूलकर वह सुशील दत्त की सिंगर मशीन के ऊपर रखे बीड़ी के बंडल में से एक बीड़ी निकालता है और विश्वेश लोगों की दुकान की ओर बढ़ जाता है।

ग्यारह

मिद्दा साहब की बैठक में लोग लगातार बढ़ रहे हैं।

चाय-पान समाप्त होते ही उस दिन दफादार 'भक्त घोष' गद्दी में घुसा। सिर झुकाकर उसने मिद्दा साहब को सलाम किया और मझले मालिक के पांव की धूल ली। फिर हाथ

की बड़ी-सी लाठी को गद्दी के छक्का-पंजा की छपाई वाले आपल पेपर बिछे फर्श पर रखकर एक किनारे उकड़ूं बैठ गया।

फिर मिद्दा साहब से हंसकर बोला "हुजूर, क्या थोड़ी सी चाय इस गुलाम की किस्मत में है?"

उसके बात करने के तरीके से गद्दी के सारे लोग हंस पड़े।

मिद्दा साहब ने हंसत-हंसते कहा, "हमारे दफादार साहब विनम्रता में एकदम मां बदौलत गुसाईं हैं। दफादार न होकर तुम वैरागी ही हुए होते तो अच्छा था।"

इसके जवाब में भक्त बोला, "हुजूर, इच्छा तो वही थी, मगर गांव के वैरागी को कोई भीख भी नहीं देता, इसीलिए दफादार बनना पड़ा और इसीलिए हाथ में बांसुरी की जगह बांस पकड़ना पड़ा। रामनामी की जगह सिर पर सरकार की लाल पगड़ी बांधनी पड़ी और कंधे पर झोली के बदले यह नीले रंग का झोला रखना पड़ा। देख तो रहे हैं, हुजूर, दफादार का झोला एकदम श्याम वरण का होता है, समझ लीजिए इसी झोले में श्याम बिराजे हुए हैं।"

एक बार फिर सभी लोग हो-हो कर हंस पड़े।

मिद्दा साहब ने हंसते-हंसते कहा, "भक्त के साथ बातों में कोई नहीं जीत सकता। अरे, भक्त के लिए थोड़ी चाय ले आ।"

एक जर्मन सिलवर के गिलास में तुरंत भक्त के लिए चाय आ गई। गिलास एकदम गर्म था। हाथ से न छू पाने के कारण भक्त ने अपनी पगड़ी का एक सिरा खोल लिया और उसी से गिलास पकड़ फूंक मारकर चाय सुड़कने लगा।

मिद्दा साहब ने कहा, "अब जरा काम की बात बताओ। झिनैदा गए थे?"

चाय पीते-पीते भक्त ने सिर हिलाकर 'हां' कही।

"दारोगा जी से मुलाकत हुई?"

"जी हां, हुजूर।"

चाय का गिलास ठक से जमीन पर रखकर भक्त ने जवाब दिया, "आपके बाघ का हिसाब चुकता कर आया। सुनकर हुजूर खुश होंगे कि आपकी यूनियन के अलावा और कोई हिसाब समझा ही न सका। दारोगा साहब उन लोगों पर बहुत नाराज हैं।"

यह समाचार पाकर मिद्दा साहब वाकई खुश हुए।

बोले, "जरा विस्तार से बताओ। सुनूं, क्या हुआ।"

भक्त थोड़ा हिल-डुलकर आराम से बैठ गया। उसने चाय के गिलास से एक और चुस्की ली। फिर बोला, "हुजूर, जाकर मैंने देखा, दफादारों की भीड़ थाने में भरी हुई है। एक-एक आदमी दारोगा साहब के घर में घुस रहे हैं और ठीक से हिसाब न दे पाकर, दारोगा साहब की डांट खाकर, मुंह काला किए बाहर आ रहे हैं। मैं बुलाया गया तो दारोगा साहब

मुझे देखते ही दहाड़ उठे, 'क्यों, हिसाब नहीं लाए हो न?' मैंने हाथ जोड़कर कहा, 'यह क्या कह रहे है, हुजूर? आप माई-बाप हैं। आपने हुक्म दिया, तो मेरी क्या मजाल कि मैं हुक्मउदूली कर सकूं? साफ-साफ हिसाब ले आया हूं।' इस पर दारोगा साहब कुर्सी से पीठ सटाकर आराम से बैठ गए और बोले, 'ठीक है, बताओ तुम्हारी यूनियन में बाघों की संख्या कितनी है?' मैंने जवाब दिया, 'हुजूर, पहले सात थे, अभी छह हैं।' दारोगा साहब ने पूछा, 'सातवां कहां गया'? मैंने कहा, 'हुजूर, यह बात मैं ठीक-ठीक नहीं बता सकता। फिर भी उसके पांव के निशान देखकर मैंने अंदाज लगाया है कि वह इक्कीस नंबर की तरफ गया होगा।' दारोगा साहब ने पूछा, 'क्यों, तुम्हारी यूनियन से वैराग्य क्यों हुआ उसे?' मैंने कहा, 'हुजूर, उसे जोड़ा नहीं मिल रहा था।' हमारी यूनियन की बाघिनें बड़ी सती-साध्वी हैं न ! शायद इसीलिए वह चला गया। दारोगा साहब ने कहा, 'ठीक है, यह बताओ, जो बाघ तुम्हारी यूनियन में हैं, उनमें कितने बाघ और कितनी बाघिनें हैं?' मैंने कहा, 'सीधा हिसाब है, हुजूर, तीन बाघ और तीन बाघिन।' दारोगा साहब ने डांटकर पूछा, 'ठीक-ठीक जानता है न? या यों ही बक रहा है।' मैंने कहा, 'हुजूर, ठीक-ठीक नहीं जानता, तो बताता कैसे?' दारोगा साहब ने कहा, 'हां यह बात तो है।' इस पर खुश होकर दारोगा साहब ने दो रुपए बख्शीश दी और कहा, 'अपने प्रेसीडेंट साहब को मेरा सलाम कहना'।"

भक्त घोष का विवरण सुनकर मिद्दा साहब भी बहुत खुश हुए। उन्होंने भी उसे दो रुपए बख्शीश दी। मझले मालिक बाघों का हिसाब समझ नहीं पा रहे थे, इसीलिए उन्होंने पूछा, "बाघ के हिसाब का क्या मतलब है?"

मिद्दा साहब ने खिन्न होकर कहा, "सरकार की खामख्याली है, और क्या? एक दिन एकाएक हुक्म आया—देश में कितने बाघ हैं, गिनती करो। गिनकर एक सप्ताह के अंदर थाने में जाकर उसकी रिपोर्ट दी। सरकारी हुक्म का कोई सिर-पैर तो होता नहीं है। मगर हुक्म आ गया तो उसे बजाना लाजिमी है। जितना सब झमेला है, हम लोगों के ही तो सिर पर है।"

भक्त ने कहा, "हुजूर, असलियत चाहे जो भी हो, मुख्य बात है हिसाब समझाना। हिसाब न समझा सको तो झमेला ही झमेला है। सरकारी काम का रवैया ही यही है। जिसने समझा दिया उसकी छुट्टी।"

मिद्दा साहब ने कहा, "तू ठीक कहता है।"

मझले मालिक ने कहा, "भक्त ने एकदम सारतत्व समझ लिया है।"

भक्त ने कहा, "हुजूर, झिनैदा में एक नई बात सुनकर आ रहा हूं। वकील बाबू लोगों में उसे लेकर खूब वाद-विवाद छिड़ा हुआ है। कलकत्ता में कुछ हुआ है, शायद हिंदू-मुस्लिम पैक्ट या ऐसा ही कुछ। सुनते हैं, अब चुनाव होगा।"

मिद्दा साहब और मझले मालिक दोनों ही उसकी बात गौर से सुनने लगे।

मिद्दा साहब उत्तेजित होकर बोल उठे, "जरा खुलासा करके बोल न।"

भक्त घोष बोला, "हुजूर, हम हैं निरे बैल। हमारी बुद्धि की दौड़ कितनी है, यह तो आप अच्छी तरह जानते हैं। वही, मियां की दौड़ मस्जिद तक। मैं भला बाबू लोगों की सब बातें समझ सकता हूं? ऊपर से वकील बाबू लोगों की बात को समझना और भी मुश्किल है। बाप रे ! वे लोग तो अपनी बातों के पेंच में आदमी को पागल बनाकर छोड़ते हैं।"

भक्त एक मिनट के लिए रुका। उसने खाली हाथों से चाय का गिलास छूकर देखा कि सहने लायक हुआ है कि नहीं। फिर उसने सुड़-सुड़ करके दो बार में गिलास की चाय खत्म कर दी। फिर पगड़ी के कोने से अच्छी तरह मुंह पोंछा।

फिर बोला, "खुशहाल के मामले को समझने के लिए मैं योगेन वकील के पास गया था। देखता क्या हूं कि वकील बाबू लोग एक अखबार के ऊपर सिर से सिर जोड़े बैठे हुए हैं। गुड़ के डले पर जैसे मक्खियां बैठती हैं वैसी ही शोभा हो रही थी और मेढकी की पूंछ की तरह उनके मुहर्रिर अपने-अपने वकील की पीठ पर झुके हुए थे। अभय बोस, बकुल बख्शी और रामतारण वकील का जूनियर गुड़गुड़ी चक्कोत्ती वगैरह सिर जोड़े तूफान की गति से कुछ बोले जा रहे थे। सोचा, कहीं दुनिया उलट तो नहीं रही है? आखिरकार पता चला, वह सब कुछ नहीं, कलकत्ता में हिंदू और मुसलमानों के बीच पैक्ट या कैक्ट, ऐसा ही कुछ हुआ है। चुनाव होगा। बाबू लोग कौंसिल में जाएंगे। हिंदू लोग हिंदू को वोट देंगे और मुसलमान मुसलमान को। हिंदू-मुसलमान की इससे एकता हो जाएगी। मैंने जो समझा है उसके हिसाब से यही कुल कहानी है। हां, एक बात और, यह सब किसी सी.आर. दास नाम के आदमी के हुकुम से हो रहा है। जो जानता हूं बता दिया। हुजूर, आप लोग समझदार हैं, असली बात खुद ही समझ लीजिए।"

भक्त घोष का बयान खत्म होने पर कुछ क्षणों के लिए गद्दी पर बैठे सभी लोग लगभग अवाक हो गए। इधर की बात खत्म होते ही हाट का कोलाहल सुनाई पड़ने लगा। हाट उस समय अपनी जवानी पर थी। खरीद-फरोख्त, मोल-भाव, छोटे-मोटे वाद-विवाद चल रहे थे। सारी आवाजें मिलकर एकाकार हो रही थीं। कभी-कभी एक ध्वनि-समूह के साथ किसी और ध्वनि-समूह की टकराहट शुरू हो जाती। फिर प्रचंड आघात पाकर शोरगुल का एक बहुत बड़ा पिंड जैसे चूर-चूर होकर छोटी-छोटी ध्वनियों का रूप ले लेता। दूसरे ही क्षण चूरमार हुए शब्दों के अंश, नए-नए शब्द-समूहों को अपने में समेटकर नई-नई अर्थहीन आवाजों में बदल जाते।

मझले मालिक अन्यमनस्क भाव से अपनी दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए भक्त घोष की बातों का मर्म समझने की चेष्टा कर रहे थे।

मिद्दा साहब ने पूछा, "क्यों, मझले बाबू, क्या समझे?"

ये सब राजनीति की बातें मझले मालिक अच्छी तरह समझ नहीं पाते थे। जिस तरह

अनाड़ी शिकारी जंगल में धायं-धायं बंदूक की गोलियां दागकर ग्रामीण लोगों के मन में आदर और भय का संचार करते हैं, राजनीतिक लोगों के क्रियाकलाप ठीक वैसे ही हैं; मझले मालिक को तो ऐसा ही लगता था।

मिद्दा साहब के सवाल पर मझले मालिक धीरे से मुस्कुराए।

बोले, "मैं तो यही समझ रहा हूं कि तमाशे का एक और दौर शुरू हो रहा है।"

"क्यों, मझले बाबू, आप इसे तमाशा क्यों कह रहे हैं?" शफीकुल मुल्ला ने शांत स्वर में पूछा। मगर उत्तर की प्रतीक्षा न करके खुद ही बोल पड़ा, "मैं तो ऐसा नहीं समझता। मेरे हिसाब से इतने दिनों बाद हिंदुओं की अक्ल में बात आई है। अगर वाकई वोट अलग-अलग पड़ें तो मुसलमानों को इससे फायदा होगा। उनकी तरक्की होगी। नौकरी-चाकरी पाने में हम लोगों को थोड़ी सुविधा हो सकती है।"

मझले मालिक ने कहा, "वह तो अभी भी हो सकती है, फटिक मियां।"

शफीक कड़वी हंसी हंसा।

बोला, "पागल हुए हैं, मझले बाबू, हमें कौन नौकरी देता है? हमारे शरीर से प्याज की बदबू जो निकलती है। इसके अलावा आप लोगों के यहां घर-घर में आई.ए, बी.ए., एम.ए. बैठे हैं। मुसलमान का बच्चा अगर एंट्रेंस भी पास कर ले तो अपने को बड़ा पीर मान बैठता है। सीधे रास्ते से आप लोगों की लगाम पकड़ने में हम लोगों के दो-तीन जन्म बीत जाएंगे। इतना लंबा इंतजार कौन करना चाहेगा?"

मिद्दा साहब ने कहा, "देखता हूं, मास्टरी करते-करते फटिक मियां की बुद्धि के चिराग में रोशनी आ गई है। बात तो तुमने बहुत अच्छी कही। यह जो हमारा दामाद है वह मुख्तारी पास करके झिनैदा की कोर्ट में कुर्सी तोड़ रहा है। कोट-पतलून की धुलाई के पैसे भी जुटा नहीं पा रहा है। मुसलमान मुख्तार के हाथ में हिंदू तो अपना केस देते ही नहीं, मुसलमान भी नहीं देते। उन्हें भरोसा ही नहीं होता। इसीलिए तो जैसे-तैसे करके मैंने नूरू को कलकत्ते भेज दिया। बोला, जाओ बाबू, कम से कम ग्रेजुएट होकर आओ।"

शफीकुल ने कहा, "खुदा आपकी मुराद पूरी करे। मगर जैसा वक्त आ गया है उससे लगता है कि अपनी तरक्की के लिए खुद ही कोशिश न करने से आदमी को मार खानी पड़ती है। मुसलमानों के लिए अलग से इंतजाम करने की वाकई बहुत जरूरत थी।"

आजकल मझले मालिक तर्क-वितर्क में कम ही पड़ते हैं। शफीकुल की बात सुनकर उन्हें लगा, यह आदमी जो विश्वास करता है, वही कह रहा है। ऐसे लोग किसी बात को भीतर से देखकर समझने की कोशिश नहीं करते। अगर उनके किसी सम्माननीय व्यक्ति ने कोई बात उन्हें पकड़ा दी तो वही उनके लिए अंतिम बात हो जाती है। नौकरी-नौकरी करके ये लोग पागल हो रहे हैं। सिर्फ ये ही क्यों, चाकरी का फल तोड़ने के लिए हिंदू-मुसलमान सभी दौड़ लगा रहे हैं। मगर इस देश में नौकरियां हैं कितनी।

मझले मालिक ने कहा, "जानते हो, हमारी गलती क्या है। हम हवा में बहुत रहते हैं। किसी बात को ऊपर से पकड़कर नाच-कूद करते रहते हैं। किसी भी चीज को भीतर तक देखना-परखना नहीं चाहते। फटिक मियां, क्या तुम जानते हो बंगाल में सरकारी नौकरियों की कुल संख्या कितनी है?"

फटिक ने 'नहीं' में सिर हिलाया। वह सचमुच नहीं जानता था।

मझले मालिक ने कहा, "सरकारी हिसाब से, जहां तक मुझे याद पड़ता है, कुल संख्या है तीन लाख इक्कीस या बाईस हजार। चलो चार लाख ही मान लो। और बंगाल की जनसंख्या इस समय पांच करोड़ है। इसमें से मान लो, मुसलमान हैं पौने तीन करोड़। अब तुम ही बताओ, अगर ये चार लाख कुल नौकरियां मुसलमानों को दे दी जाएं, एक भी नौकरी हिंदू को न दी जाए, तो क्या बंगाल में मुसलमानों की समस्या हल हो जाएगी? तब भी तो दो करोड़ पैंतीस लाख मुसलमानों की समस्या रह ही जाएगी। उनकी व्यवस्था कैसे करोगे?"

मिद्दा साहब और शफीकुल मियां एक साथ बोल उठे, "क्या कह रहे हैं, मझले बाबू? ऐसी बात तो पहले किसी ने कही नहीं।"

मझले मालिक ने कहा, "क्या हमारी असली समस्या यही है कि किसकी किस्मत में कितनी नौकरियां पड़ेंगी? समस्या कहीं उससे ज्यादा जटिल है। समस्या यह है कि इन पांच करोड़ लोगों के लिए अन्न-वस्त्र कैसे जुटाया जाए? यही है असली समस्या। अब बताओ, सरकारी नौकरियों का बंटवारा कर लेने से ही क्या बंगाल के सभी लोगों को दूध-भात खिलाने की व्यवस्था हो सकती है? देश की असली समस्या गरीबी है। उसका समाधान न करके कलकत्ता में बैठकर कालनेमि की लंका का बंटवारा हो रहा है। कलकत्ता में बैठकर फतवा देने से, जो भी दे, मेरे हिसाब से देश का एक तिल भी उपकार नहीं होगा। चाहे पैक्ट करो या जो भी कर लो।"

बहुत दिनों बाद मझले मालिक थोड़ी गर्मी से बोल रहे थे। बहुत दिनों से मन में बहुत सी बातें जमा थीं। धीरे-धीरे वे अब बाहर निकलने लगी थीं।

एक पल रुक कर वे फिर बोले, "आश्चर्यजनक चीजें घटित हो रही हैं। बाहर से देखने पर उनका कोई मतलब समझ में नहीं आता। इस पाट की ही बात लो। सोचकर मैं चकित होता हूं। बंगाल के अलावा दुनिया के किसी और देश में पाट नहीं होता। दुनिया के सभी देशों में बंगाल के इस पाट की मांग है। जो किसान यह पाट पैदा करता है, यदि उसे पाट का उचित दाम दिलाने की व्यवस्था की जाती, तो इसी एक फसल से, मैं समझता हूं, आज बंगाल के आधे लोगों के चेहरे खिल जाते। यह तो दूर की बात, आज पाट के बोझ से हमारे किसान की जीभ बाहर निकली जा रही है। एक ओर तो यह हालत है, दूसरी ओर चटकल के मालिक लोग करोड़ों रुपए कमा रहे हैं।"

मझले मालिक की बात सुनकर शफीकुल चुप लगा गया। मिद्दा साहब, भक्त घोष

और गद्दी में बैठे दूसरे लोग मझले मालिक की ओर एकटक देखते रहे।

मझले मालिक ने फिर कहा, "मैंने अंग्रेज कंपनी का काम भी एक साल किया है। सब कुछ मेरा जाना हुआ है। अगर देश में लोगों की तकलीफ समझने वाले होते, अगर ऐसे नेता होते, जो आकर किसानों को अभयदान देते, समझाकर कहते कि तुम्हारे पसीने से तैयार फसल से दूसरे लोग मोटी कमाई कर रहे हैं। लो, हम पाट का उचित दाम तय कर दे रहे हैं। इससे कम में तुम में से कोई पाट नहीं बेचेगा। तुम सभी अगर एकजुट हो जाओ, तो उन्हें इसी दाम पर पाट खरीदना होगा। अगर नहीं खरीदते तो उन्हें अपने कारखाने बंद करके घर लौट जाना होगा। मगर अंग्रेज बनियों की जात है। जान जाने पर भी अपना व्यापार बंद नहीं करेगा। इन्हीं दामों पर मजबूर होकर पाट खरीदेगा। दृढ़ आदमी के सामने अंग्रेज भी झुकता है। अगर ऐसा होता तो तुम देखते, देश की किस्मत बदल जाती। किसी नेता ने एक दिन के लिए भी इस बात को लेकर सिर खपाया है, ऐसा तो सुना नहीं मैंने। देश के लोगों से ही तो देश बनता है। ये किसान भी तो देश के लोग हैं। इनकी दुर्दशा को कम करने की बात सोचे बिना, इनकी सुख-सुविधा की व्यवस्था किए बिना, देश-देश चिल्लाना अगर तमाशा नहीं, तो तमाशा और किसे कहते हैं? एक बार कहते हैं—हिंदू के लिए हिंदू वोट और मुसलमान के लिए मुसलमान वोट, साथ ही कहते हैं—हिंदू-मुस्लिम एकता की बात। इस बैरिस्टरी बाजीगरी से कौंसिल में भले ही घुसा जा सके, इससे ज्यादा कुछ हो सकता है, ऐसा तो मुझे नहीं लगता।"

मझले मालिक को अचानक लगा कि जैसे वे स्टेज पर खड़े होकर लेक्चर दे रहे हों। वही उनका पुराने जमाने का रोग। जैसे उन्हें यह आभास हुआ, वे चुप लगा गए। मन में अनेक बाते जमा थीं। मगर नहीं, अब और लेक्चरबाजी नहीं। वे दिन चले गए। साथ ही मझले मालिक ने सोचा—लोग जो कहते हैं कि मरने पर भी स्वभाव नहीं बदलता, वह ठीक ही कहते हैं।

शफीकुल की आंखों में एक दूसरी ही तस्वीर तैरने लगी। यह तस्वीर देखने का वह आदी नहीं है। मगर मझले मालिक की बातें इतनी स्पष्ट हैं कि फटिक उन्हें उड़ा नहीं दे सकता था। लगा, जैसे उसके मन में ये बातें किसी नुकीली कलम से लिख दी गई हैं।

मझले मालिक उठ खड़े हुए, बोले, "देर हो रही है। बाजार का काम निबटाने में रात हो जाएगी।"

रास्ते में श्यामू डाकिए ने उन्हें दो चिट्ठियां दीं। मझले मालिक ने देखा, एक चिट्ठी सुधामय की है, जो कलकत्ता से आई है। दूसरी चिट्ठी भूषण की है। कहां से आई है, यह समझ में नहीं आया। सुधामय घर आ रहा है। भूषण ने भी लिखा है कि वह जल्दी ही आएगा।

शाम गहराती जा रही है। मिद्दा साहब की नमाज का वक्त हो रहा है। मिद्दा साहब

नियम से पांचों वक्त की नमाज पढ़ते हैं। थोड़ी देर में ही वे उठकर सिर पर कपड़े की एक टोपी पहनेंगे, फिर चटाई और बधना उठाकर चल देंगे। सीधे नदी किनारे जाएंगे। बधना में पानी लेकर वजू करेंगे। फिर एक साफ जगह चटाई बिछाकर आधा घंटे तक नमाज पढ़ेंगे। किसी फकीर ने उन्हें एक माला दी थी। नमाज के बाद माला जपते-जपते लौट आएंगे।

शफीकुल भी जाने की तैयारी कर रहा था। उसके दिमाग में मझले मालिक की बातें उस समय भी चक्कर काट रही थीं।

तभी सोना मियां ने गद्दी में प्रवेश किया। उनका चेहरा सूखा हुआ था।

"सलाम अलैकुम, बड़े मियां।" उन्होंने मिद्दा साहब को सलाम किया।

''वालेकुम अस्सलाम।'' मिद्दा साहब ने पूछा, "क्या खबर है, सोना मियां?"

सोना मियां का दिल धड़कने लगा। कैसे बात को आगे बढ़ाएं। वे बदू कलू को पकड़ नहीं सके थे। रामकिष्टो की मदद से बड़ी कठिनाई से बैल को चंगा करके और कीचड़ में फंसी गाड़ी को निकालकर, जब वे खेयाघाट पहुंचे तो वहां का तामझाम उठ चुका था। कहां बदू कलू और कहां कौन? सोना मियां की आंखों के सामने अंधेरा छा गया। अग्रवाल के खप्पर में पड़ने की उन्हें इच्छा न हुई। गाड़ी को किसी और को देखने के लिए कहकर वे इधर-उधर नए खरीदार की तलाश में घूम रहे थे कि तभी मिद्दा साहब के गुमाश्ता तूफान मियां के साथ उनकी मुलाकात हुई। लाली पाट देखकर उसने सोना मियां को गद्दी पर जाने के लिए कहा। इसीलिए वे इधर आ गए। पैसों की उन्हें बड़ी जरूरत है। आज उनकी किस्मत भी साथ नहीं दे रही है। क्या पता, क्या लिखा है उनके नसीब में?

हिम्मत जुटाकर सोना मियां ने कहा, "जी, पांच-एक मन पाट था।"

सोना मियां की बात खत्म होते न होते मिद्दा साहब, "सुभान अल्लाह" कहते हुए उठ खड़े हुए।

बोले, "नमाज का वक्त हो गया है, मियां। इस साल पाट खरीद सकूं, इसके लिए जाकर अल्लाह ताला के सामने अर्जी पेश कर आऊं। जो वक्त आ गया है कि अगर ऊपर वाले की मेहरबानी न हुई तो यह सब खरीद-फरोख्त बंद कर देनी होगी।"

आखिरी मौका भी हाथ से निकलते देख सोना मियां की समझ में नहीं आया कि वे क्या करें। मिद्दा साहब के नीचे उतरते ही वे उनके पांव पर गिर पड़े और फफककर रो पड़े।

बोले, "बड़े मियां, अगर आप मेहरबानी नहीं करेंगे तो मैं मारा जाऊंगा।"

"अरे—पांव छोड़, पांव छोड़, बेवकूफ।" मिद्दा साहब परेशान होकर बोले, "अरे गुनाह होगा, पाप चढ़ेगा मुझ पर। मुसलमान अल्लाह-रसूल का बंदा होता है। किसी के पांव में हाथ लगाने से उसे दोजख में जाना पड़ता है। पागल कहीं का !"

सोना मियां पांव छोड़कर उठ खड़े हुए। उनकी दोनों छोटी-छोटी आंखों के कोनों से मोटे-मोटे आंसुओं की धारा उनकी छातियों की हड्डियों को भिगोने लगी, जैसे किसी ऊबड़खाबड़ जमीन पर कोई पानी की धारा ऊपर-नीचे होती हुई बहती है।

बोले, "गुस्ताखी माफ कीजिएगा, बड़े मियां। आज मेरा मन ठीक नहीं है। घर में बीवी मरने-मरने को है। झिनैदा के बड़े डाक्टर को नहीं दिखाया तो मर जाएगी। सरकारी डाक्टर को दिखाना होगा। साठ-सत्तर रुपए लग जाएंगे। खुदा की दुहाई, मेरा पाट ले लीजिए। एकदम लाल पाट है। खुद अपनी आंखों देख लीजिए।"

मिद्दा साहब ने कहा, "मियां, तुमने तो बड़ी मुश्किल में डाल दिया। बिक्री हो नहीं रही है, केवल खरीदता ही जा रहा हूं। खैर! अल्लाह की मर्जी। आज का बाजार भाव तो जानते हो न? साढ़े तीन रुपए है।"

सोना मियां आतंकित हो उठे, "क्या कह रहे हैं, बड़े मियां? मैं तो लुट जाऊंगा। ये तो लाल पाट है। एकदम रेशम की तरह मुलायम। और लंबाई हमारे सिर से भी ऊंची है। ऐसे माल का दाम सिर्फ साढ़े तीन रुपए?"

मिद्दा साहब अब थोड़ा नाराज हुए, "तुम तो बड़े चालाक हो, मियां। मैं तुम्हें जानता-पहचानता तक नहीं। आज मुश्किल में फंसे हो तो तुम्हें मिद्दा साहब याद आए हैं। सोचते होगे, आंखों के पानी की तरह फिसलकर सरसराते हुए निकल जाओगे? अच्छे दिनों में तो अग्रवाल तुम्हारा बाप था। अब वह बाप तुम्हारा ख्याल क्यों नहीं करता? ऐं? अग्रवाल के पास जाकर तो तुम लोग चूं तक नहीं करते। मेरे पास ऐसे तड़प रहे हो? कहा है न, बिल्ली भी नरम मिट्टी में ही हगती है।"

एक पल को रुक कर मिद्दा साहब ने फिर कहा, "देखो मियां, बहस के लिए वक्त नहीं है। नमाज का वक्त बीता जा रहा है। देना हो तो माल दे दो। पैसा लेकर जाओ, बीवी का इलाज करो। नहीं समझ में आता हो तो अपना रास्ता देखो।"

अब रास्ता भी क्या था? सोना मियां ने माल तोल दिया और पैसे गिनकर लुंगी की खूंट में बांधते हुए सोचा, पहली बार सोचा, 'इस पाट का दाम क्या अग्रवाल सचमुच इतना कम देता?'

शफीकुल भी बैठा-बैठा सोच रहा था। कुछ देर पहले ही मझले बाबू इसी कमरे में बैठकर कह गए हैं, पाट के भार से इस देश का गरीब किसान मरा जा रहा है। मझले बाबू ने जो कुछ कहा था उसे सोना मियां शफीकुल की आंख में उंगली डालकर दिखा गए हैं। वह सोच रहा था, सोना मियां और मिद्दा साहब क्या दोनों ही मुसलमान हैं? एक ही मुसलमान?

ऐसी बात शफीकुल ने पहले कभी नहीं सोची थी। यह सोचने का एक नया ढंग था, जो मझले मालिक उसे दिखा गए थे।

बारह

मछली-हाट जाकर रामकिष्टो ने सुलेमान को ढूंढ़ निकाला। उसने देखा, सुलेमान, श्रीपद केवट और बूनोपाड़ा के बिधु सरदार इकट्ठा हैं। वह समझ गया, तीनों मिलकर आज मछली पकड़ने गए थे। रामकिष्टो ने लबनी आगे बढ़ाई तो सुलेमान ने लेकर उसे अपने पास रख लिया।

रामकिष्टो ने कहा, "मझले बाबू की लबनी है। क्या मछली पकड़ी है आज?"

सुलेमान ने कहा, "इन दो मुस्टंडों के चक्कर में पड़कर आज जान निकल गई है, चाचा। सारा दिन जाल ढोते-ढोते हाथ पिरा गए और मिली सिर्फ सोल और सरपूंटी। सोल तो घर ले जाकर पकाऊंगा। सारा बाजार सोल से भरा पड़ा है। खरीदेगा कौन? सरपूंटी मछलियों का ही भरोसा है। अच्छी बड़ी-बड़ी हैं। चार-पांच आना की टोकरी भी अगर बिक जाएगी तो दो ढाई रुपए हो जाएंगे।"

रामकिष्टो ने कहा, "किस पाली में गया था?"

सुलेमान ने चुटकी ली, "ये जो श्रीपति महाशय हैं, इन्होंने ही आकर खबर दी कि अठारोखादा में रोहू, कतला खूब भरी पड़ी हैं। यही इतनी बढ़िया मछलियां पकड़ने के लिए ही श्रीमान जी छटपटा रहे थे...।"

श्रीपद ने कहा, "सुलेमान, तू तभी से मेरे पीछे पड़ा हुआ है। अब तो मेरी जान छोड़। अच्छा रामकिष्टो दादा, तुम ही बताओ, पानी के मन में क्या है कोई बता सकता है? सभी कहते हैं कि अठारोखादा ताल में बड़ी मछलियां हैं। सोचा, एक बार देख लेते हैं। इसीलिए तीनों जने वहां जाल डालने गए थे। सच्ची, पूरा दिन खराब हो गया।"

कहकर श्रीपद बुद्धू की तरह हंसने लगा, सुलेमान के बदन में आग लग गई।

बोला, "बोल मत, बोल मत, श्रीपद, बातें मत बना। लोग तेरी जात पर शक करेंगे। पानी देखकर मछलियों का पता नहीं लगा सकता, फिर कह रहा है यह बात। तू असली केवट का बेटा तो है?"

इस बार श्रीपद एकदम नाराज हो उठा।

वह चीख पड़ा, "देख सुलेमान, आगे एक भी शब्द तेरे मुंह से निकला तो चाकू से तेरा मुंह फाड़ दूंगा।"

बिंधु सरदार बोला, "लो भाई, लो बीड़ी पीओ, मिजाज ठंडा करो। लो रामकिष्टो भाई, तुम भी एक बीड़ी जलाओ। झगड़ा करने से सोल और पूंटी तो रोहू-कतला होने से रहीं।"

बीड़ी जलाकर रामकिष्टो ने कहा, "एक लबनी सरपूंटी रख लेना, सुलेमान, मझले मालिक से पूछकर मैं अभी आ रहा हूं।"

लबनी हाथ में लेकर रामकिष्टो भीड़ में से मझले मालिक को खोजने विश्वेश की दुकान की तरफ चल पड़ा। विश्वेश की दुकान, इस हाट की ही नहीं, पूरे इलाके की सबसे बड़ी दुकान है। प्रायः तीस साल पहले अनुकूल विश्वेश ने इस दुकान की नींव रखी थी। उनके लड़के मकर विश्वेश ने खून-पसीना बहाकर इस दुकान को इतना बड़ा बनाया। मकर विश्वेश अब बूढ़े हो गए हैं। लोहाजांगा के जुलाहों के वे सरगना हैं। हाट के दिन बहुत भीड़ होती है दुकान पर। उनका लड़का गोपाल विश्वेश बहुत लायक है। वही दुकान का कामकाज देखता है। फिर भी बाजार के दिन भीड़ के कारण बुढ़ऊ भी दुकान पर बैठ जाते हैं।

लोग कहते हैं, मकर विश्वेश के पास अकूत पैसा है। बूढ़ा बड़ा कंजूस है। उसके हाथ से एक दमड़ी निकालना भी मुश्किल है। विश्वेश लोग अपना पैसा कहां रखते हैं, इसका पता किसी को नहीं चलता। कई बार घर में डकैती पड़ चुकी है, मगर तांबे का एक सिक्का भी किसी के हाथ नहीं लगा। दुकान भी दो बार लूटी जा चुकी है, मगर माल छोड़कर फर्श खोद डालने पर भी नगद पैसा नहीं मिला।

विश्वेश की दुकान के तीन हिस्से हैं। एक हिस्से में कपड़ा-लत्ता है, दूसरे में मनिहारी का सामान, साइकिल और तेल; तीसरे हिस्से में बिसाती का सामान।

गोपाल विश्वेश जवान है। उम्र होगी तीस-बत्तीस साल, मगर चाल-ढाल में प्रौढ़ता है। काला-कलूटा और मोटा है। उसकी देह पर छप्पन इंच की महीन धोती होती है। फिर भी धोती घुटनों के ऊपर ही आती है। वह मलमल का कुर्ता पहनता है, जिसके बटन कंधे तक लगे होते हैं। उसमें सोने की चेन वाले सोने के बटन लगे होते हैं। अंगूठों को छोड़कर, दोनों हाथों की बाकी उंगलियों में अंगूठियां होती हैं। गले में भी पतली-सी सोने की चेन होती है। सिर के बाल अच्छी तरह कटे होते हैं और साफ-सुथरी मांग कढ़ी होती है। वह पान भी बहुत खाता है।

दुकान के बीचोंबीच एक ऊंची वेदी है। पहले इसी जगह आठ हाथ की मोटी धोती और फतुआ पहनकर मकर विश्वेश अकेला बैठता था। अब वहां गोपाल नवरत्नों की सभा लगाए रहता है। जात का जुलाहा होतें हुए भी, वही अब इस इलाके के हिंदू-समाज का मुकुट है। सरकार महाशय, सेन कविराज, बूदो भुइयां, यहां तक कि रिदय ठाकुर भी गोपाल की इस सभा के नियमित सदस्य हैं। अग्रवाल को मान्यता नहीं देता गोपाल। यहां उसकी जड़ें तो हैं नहीं। वह यहां व्यापार करने आया है। व्यापार कर रहा है। उसकी बातों की क्या कीमत? उसे कौन मानता है? यहां उसका समाज नहीं है। बीच-बीच में मिद्दा साहब की गद्दी की ओर ही गोपाल तिरछी निगाहों से देखता है। वह आदमी यहां के एक और समाज का सरगना है। केवल धन-दौलत में ही नहीं, मान-मर्यादा में भी यह आदमी दिन पर दिन आगे बढ़ रहा है। सरकार के यहां भी मिद्दा साहब की खूब इज्जत है। गोपाल

यहीं पर मिद्दा साहब से कमजोर साबित होता है। वर्ना उसका मुकाबला करने वाला कौन है? इस हाट की इजारेदारी उसकी है, खेयाघाट की इजारेदारी भी उसी की है, मिट्टी के तेल की सोल एजेंसी भी उसी ने ले रखी है। समाज के ऊंची जाति वाले यानी ब्राह्मण-कायस्थ उसका मुंह जोहते हैं। वह चाहे तो उंगली के इशारे पर उन्हें उठा-बिठा सकता है। मगर गोपाल ऐसी इच्छा नहीं करता, कभी करेगा भी नहीं। ब्राह्मण जातियों में सबसे ऊंची है। यही विधि का विधान है और गोपाल इस विधान को मानता है। जानता है कि वह व्यापारी है। रिदय ठाकुर ने निर्णय लिया है कि वैश्य का छुआ पानी विशेषकर उस वैश्य का जो लक्ष्मी का प्रेमभाजन है, समाज पी सकता है। उसका पानी पवित्र माना जाएगा। यहां गोपाल अपने बाप से आगे बढ़ गया है। उसने अपने परिवार को समाज में ऊपर उठाया है। उसके बेटे के अन्नप्राशन में ब्राह्मणों ने उसके घर आकर निमंत्रण खाया है। कायस्थों और वैद्यों ने उसकी पंगत में योगदान किया है और सबसे बड़ी बात यह है कि इसके लिए गोपाल को कोई अनुष्ठान नहीं कराना पड़ा, पैसा खर्च करके शुद्धि नहीं करानी पड़ी, एक भिक्षुक की तरह किसी के आगे हाथ नहीं फैलाना पड़ा। केवल एक बार उसने विनयपूर्वक अपनी इच्छा प्रकट की थी। समाज ने विधिवत उसे अपनी गोद में उठा लिया था। सच कहा जाए तो अब गोपाल ही यहां के समाज का मुकुट है। जिस तरह हाट की और खेयाघाट की इजारेदारी, मिट्टी का तेल, टिन की चादरों और सीमेंट की सोल एजेंसियां उसकी हैं वैसे ही, गोपाल जानता है, यह समाज भी उसका है। अब केवल उसकी एक ही इच्छा है कि सरकार के साथ भी उसकी कुछ जोड़-गांठ बैठ जाए, मगर वहां वह मिद्दा मियां पहले से ही जमा बैठा है। लोग जो कहते हैं कि नसकटे सरकार के पांव चाटने वाले कुत्ते होते हैं, यह बात एकदम झूठ नहीं है। आजकल तो मिद्दा बेटा सभी के सिर पर पांव रखकर चल रहा है। मझले मालिक ने दुकान में घुसते ही देखा कि गोपाल की महफिल जमी हुई है। बूदो भूइयां हाथ झटकारकर कुछ कह रहा था। मझले मालिक को देखते ही वह खिल उठा।

"आइए, आइए, मझले मालिक। आइए, बैठिए। गोपाल, तुम्हारे यहां तो चाय-पानी का बंदोबस्त है नहीं कि बड़े लोग तुम्हारे यहां आएं? आखिर क्या करने आएंगे? तुम एक काम करो, मझले चाचा के लिए तुम्हें कुछ न कुछ व्यवस्था करनी ही होगी।"

गोपाल ने गंभीर स्वर में हुक्म दिया, "अरे कोई है, मझले बाबू के लिए तंबाकू ले आओ।"

बूदो भूइयां ने कहा, "सिर्फ धुआं उड़ाने से आजकल काम नहीं चलेगा, गोपाल, समझे कि नहीं? चाय-पानी की भी व्यवस्था कर डालो। सचमुच, मिद्दा साहब की तुलना में हमारी बैठक बड़ी सूखी जाती है। क्या कहते हैं, सेन महाशय?"

मझले मालिक ने हंसकर यह व्यंगबाण झेल लिया।

बोले, "बूदो, तुमने भी चाचा की शागिर्दी शुरू कर दी है क्या? लगता है, आखिरकार सभी को उसी दल में शामिल करने का तुम्हारा इरादा है।"

बूदो चक्कर खा गया। उसकी समझ में कुछ नहीं आया।

बोला, "क्यों चाचा जी, ऐसा क्यों कह रहे हैं?"

मझले मालिक ने कहा, "एक चा दो बार मांगने से ही तो चाचा हो जाता है।"

सभी लोग हो-हो कर हंस उठे। बूदो भूइयां भी बेवकूफ की तरह हंसने लगा।

सरकार महाशय ने कहा, "मझले बाबू ने तो एक ही चाल में हमारे बूदो बाबू को मात कर दिया।"

मझले मालिक ने कहा, "गोपाल, दो मन चावल मेरे यहां भिजवा देना।"

सरकार महाशय ने कहा, "क्या कह रहे हैं, मझले बाबू? आजकल दीवान कोठी की यह हालत हो गई है? अभी से चावल खरीदकर खाना पड़ रहा है?"

मझले मालिक ने कहा, "अब दीवान कोठी के ताल में पानी बहुत कम हो गया है। उसमें घड़ा भी नहीं डूबता। गोपाल, एक टिन मिट्टी का तेल भी भेज देना।"

गोपाल ने कहा, "चाचा जी, अगर मिट्टी का तेल परसों भेज दें तो बहुत असुविधा तो नहीं होगी? सफेद तेल खत्म हो रहा है। कोठी के साहबों के यहां चार रात जात्रा चलेगी। सवेरे ही आदमी भिजवाकर बारह टिन उठवा ले गए हैं।"

गोपाल की बात खत्म होते ही सभी लोग पूछने लगे, "कहां का दल आया है, कहां का दल आया है?"

गोपाल ने कहा, "कह रहे थे, श्रीचरण भंडारी का दल है।"

तभी एक आदमी चिलम दे गया। मझले मालिक ने दो कश ही खींची थीं कि रामकिष्टो आकर हाजिर हुआ।

बोला, "मझले मालिक, दूध खरीद लिया है। सुलेमान अच्छी सरपूटा ले आया है। मैं टोकरी उसके पास रख आया हूं। कहिए तो सरपूंटी ले आऊं?"

मझले मालिक ने कहा, "ठीक है, तुम चलो, मैं आता हूं।"

रामकिष्टो के जाते ही दुकान के कर्मचारियों ने आकर बताया कि मझले मालिक को बड़े मालिक बुला रहे हैं।

दुकान के जिस हिस्से में कपड़ा बिक्री होता है उसी में आजकल मकर विश्वेश बैठता है। मझले मालिक उसके पास पहुंचे तो उसने आदर से उन्हें अपने पास बिठाया। अभी भी उसके शरीर पर पहले जैसे ही कपड़े थे, वही आठ हाथ की धोती और फतुआ।

मकर विश्वेश ने कहा, "आओ आओ, महि, अहि की क्या खबर है? आजकल बाहर नहीं निकलते क्या? बहुत दिनों से दिखे नहीं।"

मझले मालिक ने कहा, "मलेरिया ने भाई साहब को बहुत कमजोर कर दिया है। जब तक कोई खास काम न हो बाहर नहीं निकलते।"

मकर विश्वेश ने पूछा, "शीतल आजकल कहां है? सुना है, उसकी बहू थोड़ी ठीक हो गई है। ऐसा ही कोई कह रहा था।"

मझले मालिक ने कहा, "शीतल आजकल कालीगंज के थाने में है। लिखा तो है कि जल्दी ही मागरो में उसका तबादला होगा। तब वह एक बार घर आएगा। मगर उसकी बात... ।" मझले मालिक एक पल को रुके, फिर बात पलट दी और बोले, "छोटी बहू का मामला भी बड़ा आश्चर्यजनक है। पिछले दस सालों में इतनी दवाइयां दी गईं, मगर कोई फायदा नहीं हुआ। और अब बूड़ी का लड़का हुआ तो पता नहीं क्या हुआ कि अचानक एकदम से ठीक हो गई।"

मकर विश्वेश ने कहा, "सब ईश्वर की कृपा है। किस चीज से क्या बनाता है वही जाने, इसे समझना आदमी के वश की बात नहीं। तुम्हारे नाती की विदाई कब है? नाती को देखने जाने को कई दिन से मन कर रहा है, मगर वक्त नहीं मिल रहा है। दामाद आए हैं?"

मझले मालिक ने उत्तर दिया, "चिट्ठी तो उनकी आई है। बस आने ही वाले हैं।"

मकर विश्वेश ने पूछा, "तुम्हारी छुट्टी और कितने दिनों की है?"

मझले मालिक ने कहा, "छुट्टी तो कब की खत्म हो गई। मगर अब नौकरी करने की इच्छा नहीं है। इस उम्र में परदेश में अकेले पड़े रहना अच्छा नहीं लगता। सोचता हूं, इस बार जाकर इस्तीफा दे आऊंगा।"

मकर विश्वेश ने कहा, "तब तो मैंने बहुत समय से तुम्हें बुलाया है। देखता हूं, भगवान भी मेरा सहाय हो रहा है। देखो महि, बहुत दिनों से एक बात मन में आ रही है। हम लोगों के आसपास कोई स्कूल नहीं है। या तो मागरो जाओ या नदी पार करके हरिशंकरपुर। स्कूल के अभाव में आसपास के लड़के मूर्ख हो रहे हैं। हम चाहते हैं कि इधर एक स्कूल बन जाए। रुपए जो भी लगेंगे, चार-छः हजार, वह मैं दूंगा। मैं सोच रहा था, यह काम किसे सौंपूं। अब तुम्हारी बात सुनकर लगता है, भगवान यह काम तुम्हारे ही हाथों कराना चाहते हैं। नौकरी छोड़ने की बात तो तुमने सोच ही ली है। अब यह बताओ, यह काम तुमसे होगा कि नहीं?"

मकर विश्वेश इतना कहकर चुप हो गए। मझले मालिक इस अप्रत्याशित प्रस्ताव का जवाब झट से नहीं दे सके। इस गांव में स्कूल हो, यह उनका भी बहुत दिनों का सपना है, मगर इतने दिनों तक मकर विश्वेश चुप क्यों लगाए रहे? अब उनकी उम्र ढलान की तरफ है, उत्साह और उद्यम भी कम हो रहे हैं। शरीर यंत्र के नट-बोल्ट अलग हो रहे हैं। यह शिथिल शरीर लेकर क्या इतना बड़ा दायित्व वे अपने कंधों पर उठा सकेंगे?

मकर विश्वेश ने फिर कहा, "इधर जितने भी आदमी हैं उनमें से एकमात्र तुम्हीं इस काम को कर सकते हो। तुम जरा सोचकर देखना। नौकरी पर जाने के पहले जैसा हो मुझे बता देना।"

मझले मालिक इसके उत्तर में कुछ कहने ही जा रहे थे कि तभी हाट में बड़े जोर का शोरगुल शुरू हो गया।

सुलेमान को लेकर ही वह हंगामा शुरू हुआ था।

हाट का गुमाश्ता निरापद रिदय ठाकुर का दूर का रिश्तेदार है। वह जैसा शराबी है वैसा ही लालची भी है। उसके विरूद्ध हाट के सभी व्यापारियों के मन में गुस्सा जमा हुआ है। दो प्यादे साथ में लेकर वह पूरे हाट में घूमता-फिरता है और जो भी अच्छी चीज उसे दीखती है, उठा-उठाकर अपने प्यादों को थमाता जाता है।

सुलेमान के डाले में बड़ी-बड़ी सरपूंटी मछलियां देखकर निरापद अपना लोभ संवरण न कर सका। झट से उसने चार बड़ी मछलियां उठा लीं। सुलेमान ने "अरे अरे, क्या कर रहे हो?" कहकर उसके हाथ से मछलियां छीन लीं।

बोला, "अच्छी मछली देखकर हाथ मारने का मन करता है न! सारी क्या तुम्हीं मार ले जाओगे?"

निरापद बड़े नशे में था। गुस्से से लाल हो उठा।

चीखकर बोला, "साले मल्लाह, तेरी इतनी हिम्मत कि मेरी ही हाट में बैठकर तू मेरी देह में हाथ लगाएगा? बौना होकर चांद को हाथ लगाना चाहता है ! अभी तेरा मछली बेचना भुलवा देता हूं।"

निरापद ने लात मारकर डाले की सारी मछलियां जमीन पर उलट दीं। एक और लात मारकर छोटी टोकरी में पड़ी मछलियों को भी जमीन पर बिखेर दिया। इसके बाद बड़ी-बड़ी सरपूंटी मछलियों को दोनों पावों से कुचलने लगा।

और साथ ही चीखने लगा, "बेच साले मछली, बेच। बेच हरामजादा, बेच मछली।"

इस आकस्मिक हमले से सुलेमान काठ हो गया। उसकी समझ में कुछ नहीं आ रहा था। उसकी आंखों के सामने चमकती हुई साफ-सुथरी मछलियां मिट्टी में मिली जा रही थीं। यह क्या कर रहा है, लात मार-मारकर मछलियों की क्या हालत बना रहा है? एक मिनट पहले ये मछलियां उसके डाले में थीं। सरपूंटी मछलियां चांदी की तरह चमचमा रही थीं। धूप पड़ने से उनकी देह से क्या चमक निकल रही थी ! सुलेमान ने देखा, पलक झपकते ही उसके डाले की मछलियां पिचपिची कीचड़ में जा पड़ीं। छोटी टोकरी की मछलियां भी कीचड़ में फेंक दी गईं। कितनी निर्दयता से यह आदमी उन्हें पांवों तले कुचल रहा है! हाय ! चांदी जैसा शरीर कीचड़ से काला हो रहा है। वह देखो, पट-पट करके कैसे उनकी

आंतें बाहर निकली आ रही हैं। अभी तक उसे लग रहा था, वह एक तटस्थ दर्शक है। अचानक उसे याद आया—अरे ! ये तो उसकी ही मछलियां हैं। इन्हीं पर आज उसके और उसके परिवार का पेट पलेगा। और उनकी यह दशा देखकर सुलेमान का विस्मय रोष में बदलने लगा। यह शराबी, बदमाश, उसकी आंखों के सामने उसके सारे दिन के हाड़तोड़ परिश्रम का फल लतियाकर बर्बाद कर रहा है ! उसकी मछलियों की यह दशा बना दी इसने?

वह क्या खाएगा? श्रीपद का हिस्सा उसे कैसे देगा? बिधु सरदार से क्या कहेगा?

अचानक एक पल को सुलेमान का मस्तिष्क शून्य हो गया। उसका दिमाग खाली हो गया। एक, दो, तीन, कई पल ऐसे ही बीते। फिर भयानक क्रोध की ज्वाला सुलेमान के भीतर जल उठी। चैत के महीने में जैसे फूस की झोंपड़ी में आग लगती है, वैसे ही पल-प्रतिपल वह आग भीषण होने लगी। उसकी शिराओं-उपशिराओं में पलक झपकते ही वह आग फैल गई। उसकी आंखों से शोले फूटने लगे। सिर पर खून सवार हो गया।

बाघ की तरह हुंकार भर कर सुलेमान दौड़ा, "साले बाभन, तेरी ऐसी की तैसी।"

और वह बाघ की तरह निरापद पर टूट पड़ा। एक जोरदार थप्पड़ खाकर निरापद 'बाप रे' चिल्लाता हुआ गिर पड़ा। सुलेमान उसकी छाती पर चढ़ बैठा और उसका गला दबाने लगा। पहले तो दोनों प्यादे भौंचक रह गए। फिर उन्हें होश आया तो वे एक साथ सुलेमान पर टूट पड़े। मार-पीटकर किसी तरह उन्होंने निरापद की सुलेमान के हाथों से रक्षा की। लोगों की भीड़ बढ़ने लगी। कई लोग तमाशा देखने के लिए आगे बढ़ आए। चालाक लोग दस हाथ दूर हट गए। लोगों के पांवों के नीचे सुलेमान का डाला, टोकरी और मझले मालिक की छोटी टोकरी चूरमार हो गए। इधर-उधर छिटकी पड़ी मछलियों में से कुछ बुरी तरह कुचली गईं, कुछ हाथों-हाथ चालाक लोगों ने उठा लीं।

थोड़ी दूर पर एक पागल जैसा आदमी उठकर नाचने और बगूलें बजाने लगा। नाचते-नाचते वह गा रहा था, "लग जा रे भेलकी लग जा, घूम फिर कर इसी में लग जा। बोलो भाई किसकी आज्ञा से? बाबा नारद की आज्ञा से। अरे भाई बाबा नारद की आज्ञा से।"

नाचते-नाचते पागल का पांव फिसल गया और वह गिर पड़ा। भीड़ में से कुछ लोग उधर दौड़े, कुछ लोग सिर पर पांव रखकर भागे।

दोनों हाथों से भीड़ को ठेलता हुआ जब रामकिष्टो मछलीहाट पहुंचा तब तक सुलेमान की हालत बहुत बुरी हो चुकी थी। उसका सिर फट गया था और खून बह रहा था। यमदूत जैसे दोनों प्यादे उसे टांग कर विश्वेश की दुकान की ओर ले जा रहे थे। निरापद का एक गाल सूजा हुआ था। उसका नशा हिरण हो चुका था। वह भोकार छोड़कर रो रहा था और प्यादों के आगे-आगे चल रहा था। सुलेमान जैसे पत्थर हो गया था। सिर्फ उसकी दोनों

आंखों से अभी भी लपटें निकल रही थीं।

विश्वेश की दुकान के सामने अपार लोगों की भीड़ थी। तिल रखने की जगह न थी। दोनों प्यादों ने सुलेमान के दोनों हाथ पीछे मोड़कर उसी के गमछे से बांध रखा था।

निरापद ने रोते हुए नालिश की, "सुलेमान दस्तूरी देना नहीं चाहता था। मैंने बड़ी शराफत से कहा कि अगर तुम दस्तूरी नहीं दोगे तो हाट के मालिक को मैं क्या जवाब दूंगा। इसके जवाब में सुलेमान ने मेरे और आपके बाप-दादों को गालियां दीं और मुझे पीट डाला। प्यादे अगर न होते तो मेरी तो आज जिंदगी ही खत्म थी।"

सुनते ही बूदो भुइयां कर्कश स्वर में बोल उठा, "क्या? नसकटा होकर बाभन के ऊपर हाथ चलाया? इतनी हिम्मत हो गई है नसकटों की? लगता है, अब हमें यहां से उजड़ जाना होगा। गोपाल, इसका फैसला तुम्हें करना ही होगा।"

निरापद की बातें सुनकर गोपाल को पूरा विश्वास हो गया था कि इसके पीछे मिद्दा बेटा का हाथ है, वर्ना एक मामूली मल्लाह दस्तूरी देने से मना करे ! इतनी हिम्मत उसमें आई कहां से !

गोपाल दुकान से नीचे उतर आया और चीखकर बोला, "साले, तूने समझ क्या रखा है? मुझे मालूम है तेरी रस्सी किस पेड़ से बंधी हुई है। निरापद, मार साले के सिर पर दस जूते।"

सुलेमान कुछ कहने जा रहा था, "बाबू...।"

बूदो भुइयां ने हुंकार भरी, "चौप साला !!"

निरापद बड़ी बहादुरी के साथ जूते से पटापट सुलेमान का सिर पीटने लगा। सुलेमान एक शब्द भी न बोल सका। उसने कोई प्रतिवाद नहीं किया।

इसी बीच मझले मालिक आ गए और उन्होंने निरापद को उसके वीरतापूर्ण कार्य से बीच में ही रोक दिया। उनका चेहरा गंभीर था और लाल हो रहा था।

मझले मालिक ने गोपाल की ओर देखकर कहा, "गोपाल, उसे छोड़ने को बोलो। विचार करके ही अपराधी को सजा दी जाती है। न्याय-अन्याय का विचार गरम मिजाज से नहीं होता। उसमें थोड़ा समय लगता है।"

मझले मालिक के स्वर में ऐसा कुछ था कि गोपाल उनकी बात टाल न सका। उसने सुलेमान को छोड़ देने का हुक्म दिया। मुक्ति पाकर भी सुलेमान [illegible]-थर कांपता रहा।

मझले मालिक ने कहा, "सुलेमान, बैठ जा।"

सुलेमान आंखें फाड़े मझले मालिक की ओर देखता रहा। उसकी दोनों आंखें डबडबाई हुई थीं। कुछ कहने जा रहा था, मगर पता नहीं क्या सोचकर चुप रह गया। भयंकर अपमान और लज्जा से सिर नीचा किए, उत्तप्त मन और शरीर को घसीटते हुए वह हाट की भीड़ में खो गया।

तेरह

दोनों भाई आमने-सामने बैठे थे। काफी देर से यों ही बैठे थे। बातें जैसे समाप्त हो गई थीं। अब विश्राम कर रहे थे। दोपहर बाद की धूप आलस्य की वर्षा कर रही थी। औरतों का भी दोपहर का काम खत्म हो चुका था। अपने कमरों में चटाई बिछाए सोई पड़ी थीं। केवल दोनों भाई आमने-सामने बैठे थे। बड़े मालिक वैसे भी दुबले-पतले हैं। अब मलेरिया ने उन्हें और भी कमजोर कर दिया है। उनके भी सिर पर बाल नहीं हैं, मगर चांद सिर्फ ऊपर के हिस्से में है। किनारे-किनारे काफी बाल हैं। नाटक मंडली में जिस तरह के नकली बाल मंत्री लगाते हैं, कुछ-कुछ वैसे ही। उनके कानों से भी बालों का एक गुच्छा बाहर झांक रहा है और छाती पर तो बालों की बहार है। सभी बाल सफेद होने लगे हैं।

बड़े मालिक चुपचाप अपनी छाती में पुराना घी मल रहे हैं। छाती में बलगम जम जाने से पिछले कई दिनों से उन्हें बहुत कष्ट हो रहा था। रात में सो भी नहीं पा रहे थे।

मगर उस बात को लेकर बड़े मालिक चिंतित नहीं हैं। शरीर है तो रोग-व्याधि तो लगा ही रहेगा। कहते हैं–'शरीरं व्याधिमंदिरं'। जितनी ही उम्र बढ़ेगी, उतने ही रोग घेरेंगे। यह तो मानी हुई बात है। नहीं, इसके लिए बड़े मालिक चिंतित नहीं हैं। वे हाजराहाटी की सात बीघा जमीन की बात सोच रहे हैं। बहुत अच्छी जमीन है। उसे हाथ में रख पाते तो कम से कम चालीस-पचास मन चावल हर साल मिलता, मगर वह जमीन लगता है, अब हाथ में नहीं रह सकेगी। इस उम्र में, यह शरीर लेकर छः-सात मील दूर उस जमीन पर खेती कराना और उसकी देखभाल करना उनके वश की बात नहीं है। और बिना खुद देखभाल किए तो खेती होती नहीं।

पिछले तीन-चार सालों से बड़े मालिक धीरे-धीरे कमजोर हो गए हैं। उनकी चलने-फिरने की ताकत कम होती जा रही है। इसीलिए जब से उन्होंने ढील दी है, उसी क्षण से चारों ओर फैली जमीन-जायदाद आवारा बच्चे की तरह व्यवहार करने लगी है। धीरे-धीरे उन्हें काबू रखना कठिन होता जा रहा है। परिवार की आय कम होती जा रही है। जब तक बड़े मालिक का स्वास्थ्य अटूट था, तब तक घर में पैसों की बाढ़-सी आई रहती थी। किसी को चिंता करने की जरूरत न थी। उन्होंने जी-जान से कोशिश की थी कि उनके भाइयों को किसी प्रकार की चिंता न करनी पड़े। बूड़ी के विवाह में उधार लेना पड़ा था, छोटी बहू की चिकित्सा के लिए भी पैसे उठाने पड़े थे और पैतृक दुर्गापूजा भी कर्ज लेकर ही चलाई जा रही थी। इसकी थोड़ी-बहुत खबर महि को है, मगर पूरी बात या तो बड़े मालिक जानते हैं या बूढ़ा मकर विश्वेश।

अचानक कलकत्ता से एम.ए. की पढ़ाई छोड़कर महि गांव आ गए थे। गांव में उन्होंने एक खैराती स्कूल चलाने का प्रयास किया था। छोटी जाति के लोगों की उन्नति के लिए

उनके मन में बड़ा उत्साह थम। उन्होंने कमर कस ली थी कि जाति-भेद को समाप्त करके ही दम लूंगा। करीब दो साल गांव में रहे। क्या भाषण देते थे ! केवल भाषण देते तो शायद इतना हंगामा न होता, मगर वे जो बोलते थे, उसे करके भी दिखाना चाहते थे। गांव-गांव में घूमकर वे डोम, चमार और मोची के हाथ का पानी पीते थे। मुसलमानों के घरों में खाना खाते थे। उनके कार्यकलापों से उनके पिता की कमर टूट गई। समाज हाहाकार कर उठा। चारों ओर बात फैल गई कि महि ब्रह्मसमाजी हो गए हैं। शायद कलकत्ते में एक ब्रह्मसमाजी लड़की के साथ ब्याह करने का मन भी बना लिया है। मगर ऐसा कुछ नहीं हुआ। ब्रह्मसमाजी लड़की के साथ नहीं, बल्कि पिता द्वारा तय की गई लड़की के साथ ही उन्होंने विवाह किया। उन्होंने दुखी होकर एक दिन गांव भी छोड़ दिया। वर्कमायर कंपनी में मामूली सी नौकरी लेकर डोमार चले गए। लौटकर कलकत्ते नहीं गए। यह भी एक रहस्य है। कलकत्ते गए होते तो कोई अच्छी नौकरी भी पा सकते थे। योग्यता उनमें कम तो न थी।

निश्चय ही कलकत्ता जाने पर भी गांव छोड़ना पड़ता। डोमार जाकर भी वही हुआ। उनके पिता ने मधुपुर के गोरे साहब से सिफारिश कराके शीतल को पुलिस की नौकरी में घुसा दिया। घर-गृहस्थी का भारी जंजाल उनके कंधों पर डाल दिया। वही भारी जुआ वे इतने दिनों से ढोए जा रहे हैं। मुंह बंद करके यह काम वे करते आए हैं। अब आगे करना मुश्किल लग रहा है।

केवल शरीर की ओर से ही नहीं, मन की ओर से भी वे दुर्बल हो रहे हैं। अब उन्हें लगता है, हिसाब में उनसे कहीं कोई भूल हुई थी। जमीन पर जोर न देकर अगर वे कोई व्यापार कर लेते तो शायद अच्छा होता। मकर और उनकी उम्र तो एक ही है। एक ही साथ उन्होंने जीवन शुरू किया था। और देखो तो, उम्र बीतते न बीतते मकर ने कैसा जमा लिया? वे क्या कर पाए?

जो चिंता उन्हें आज हो रही है, वह जीवन के शुरू में उन्हें क्यों न हुई? अब उन्हें बहुत अफसोस होता है।

जमींदारी करने की साध उनके मन में कभी न जागी थी। फिर भी वे सारा जीवन जमीन के पीछे इसलिए भागते रहे कि वे बिना किसी प्रयास के निश्चिंत होकर अपने परिवार को सुखी जीवन दे सकें। अपने खेत के धान का भात खाएंगे, घर के तालाब से निकालकर मछलियां खाएंगे, अपने मवेशीखाने की गाय का दूध पीएंगे और बैठक में बैठकर शतरंज खेलेंगे। कोई झंझट न होगा। इसी आशा में उन्होंने यह सब किया था। मगर यह आशा एक मृगमरीचिका सिद्ध होगी, यह तो वह नहीं जानते थे। जब उन्हें इसका पता चला, तब वे अपने ही बनाए जाल में बुरी तरह फंस चुके थे। जाल काटकर बाहर निकलने का कोई रास्ता न था।

धीरे-धीरे बहुत कुछ उन्होंने सीखा। उनकी समझ में आ गया कि जो भद्र गृहस्थ हैं, जो अपने हाथ से हल की मूंठ नहीं पकड़ सकते, भविष्य में भी नहीं कर सकते, वे यदि अपनी गृहस्थी ठीक से चलाना चाहें तो उन्हें दया, धर्म, भद्रता सब कुछ त्याग देना होगा। किसान को ऐसे दबाकर रखना होगा कि वह अपनी रीढ़ की हड्डी सीधी न रख सके। आंखों में जाबा लगाए कोल्हू के बैल की तरह किसान को विवश किए बिना उस हरामजादे से काम करवाना अब संभव नहीं। बड़े मालिक का मन नरम है। अपनी प्रजा से वे कभी भी अपना पुराना हिसाब नहीं वसूल सके। उनकी भलमनसाहत और ममता का फायदा उठाकर किसानों ने बड़े मालिक को खूब ठगा है। शैतान, पूरे शैतान हैं सब। महि तो पागल है, इन सब स्वार्थी और कुटिल लोगों का भला करने की आशा में व्यर्थ ही अपना समय नष्ट कर रहा है। महि की धारणा है कि ये सब किसान बड़े सीधे-सादे हैं, धुले हुए तुलसी के पत्तों की तरह! हुं !

आज के बड़े मालिक जैसे उस पुराने जमाने के नासमझ बड़े मालिक को सीख देने बैठे हैं। तुम्हारे अपने किसानों को तुम्हें ऐसे रखना होगा कि वे भर पेट खाना न खा सकें। उनके पेट की आग को जलाए रखना होगा, जिससे एक जून का खाना और पाने की आशा में वे तुम्हारा काम करते रहें। उन्हें पेट भर खाना दिया नहीं कि तुम मरे। पेट भर जाने पर वह थोड़ा लेटना चाहेगा। बैठकर तंबाकू पीना चाहेगा और दो चार लोगों के साथ बैठकर गप-शप करके समय काटना चाहेगा। तुम्हें चाहिए कि कर्ज देकर उसे बंधुआ गुलाम बनाए रखो। तभी किसान की जात को सर कर सकोगे। तभी तुम्हारे गोले अनाज से भरे होंगे। बूदो भुइयां को देखो, सरकार महाशय के कार्यकलापों पर ध्यान दो। बूदो भुइयां के पास तुम से बहुत कम जमीन है और सरकार महाशय की जमीन भी बहुत खराब है, मगर वे किसान को पहचानते हैं, अच्छी तरह पहचानते हैं। उन्होंने भद्रता छोड़ दी है, इसीलिए उनके गोलों में से अनाज उपटा पड़ रहा है।

लेकिन बड़े मालिक को अपनी गृहस्थी डुबानी पड़ रही है, क्योंकि वे बड़े भद्र हैं। दया-माया अभी तक त्याग नहीं पाए हैं। किसान उनके पास से जो पैसे उधार ले जाते हैं, हमेशा वह वसूल नहीं कर पाते। ठीक मौके पर सालों की हालत खराब हो जाती है, और ऐसी खराब होती है कि आदमी का दिल पत्थर का न हो तो वह पैसों की बात मुंह पर भी नहीं ला सकता। ठीक है, कुसमय में पैसा नहीं दे पाए, मगर तुम्हारा भी तो अच्छा वक्त आता है, जब तुम्हारे हाथ में पैसे होते हैं, उसी समय दे दो। मगर तब बेटा लोगों की धूल भी नहीं दिखाई देती। बंटाई वाले किसान बीज ले जाएंगे, खाद का पैसा भी ले जाएंगे, फिर भी जहां तक उनका वश चलेगा जमीन पर हल की नोक नहीं लगाएंगे। बीज-खाद के पैसे खा-पीकर खत्म कर देंगे। फिर आकर पांव पड़ेंगे। ये बदमाश जानते हैं कि गांव में यही एक आदमी है, जिसके पांव पकड़ लेने पर किसी भी अपराध की माफी मिल सकती है।

और कृतज्ञता के बदले ये सारे किसान न उन्हें धान देते हैं, न मटर-सरसों देते हैं, न और कोई पैदावार। तो फिर देते क्या हैं? सामने पड़ते ही सलाम करते हैं, देवता की तरह इज्जत करते हैं। ये लोग उन्हें ही फसल का हिस्सा देते हैं, जो इनसे कड़ाई से पेश आते हैं। लेन-देन के मामले में जरा भी चालाकी करने पर जो बांस डालकर इनसे अपना हिस्सा ले लेते हैं, और जिन्हें सुबह-शाम बिना गाली दिए ये किसान पानी भी नहीं पीते, उन्हें ही समय से फसल का हिस्सा मिल जाता है। ऐसे हैं हमारे ये किसान लोग !

यह सब जानते हुए भी बड़े मालिक क्यों जमीन की लालच में पड़े रहे? क्यों एक के बाद एक जमीनें खरीदते चले गए? गलती तो गलती है, आदमी चाहे जानबूझकर करे या भूल से हो जाए। शायद उन्होंने सोचा था, हाथ में ज्यादा जमीन होना अच्छा होता है। थोड़ी-थोड़ी फसल अगर सारी जमीनों से आती रहे तो शायद, कहावत के अनुसार, बूंद बूंद से समुद्र बन जाए।

अब वे समझ गए हैं कि इस मामले में भी उनसे गलती हुई थी। इसीलिए पिछले कई वर्षों से उन्होंने जमीनें बेचनी शुरू कर दी हैं। पहले दूर-दूर की जमीनें बेच रहे हैं और बेच कर कर्ज चुका रहे हैं।

हाजराहाटी की यह जमीन महि के पैसों से खरीदी गई थी। बड़े मालिक जानते हैं कि महि इन सब मामलों में मुंह नहीं खोलेगा। फिर भी वे महि की राय जानना चाहते हैं। इसलिए नहीं कि वह जमीन महि के पैसों से खरीदी गई थी, बल्कि इसलिए कि मझले मालिक मौके पर मौजूद हैं। बड़े मालिक के फैसले का कोई प्रतिवाद मझले मालिक ने नहीं किया।

बातचीत खत्म हो गई। दोनों भाई चुपचाप आमने-सामने बैठे हैं। बड़े मालिक लगातार छाती में पुराना घी मले जा रहे हैं। घी की गंध से कमरे की हवा बोझिल हो रही है। एक छोटी-सी चौकी पर तांबे के बर्तन में कुछ नरम-नरम मदार के पत्ते रखे हैं। घी की मालिश खत्म होने पर पत्ते का इस्तेमाल शुरू होगा।

बड़े मालिक धड़-धड़ करके खांस उठे। छाती का पंजर खांसी के जोर से फूलने-पिचकने लगा। फोड़े का घाव, जो सूख गया था, फिर से टीसने लगा। उनके पूरे शरीर में एक हताशा जैसा भाव फैल गया। घी मलते-मलते हाथ भी बोझिल हो रहे थे।

मझले मालिक ने धीरे-से अंगीठी अपनी ओर खिसका ली और मदार का एक पत्ता आंच पर गरम करके बड़े मालिक को थमा दिया।

फिर बोले, "अब घी रगड़ना बंद कीजिए, लीजिए पत्ते की सेंक दीजिए।"

बड़े मालिक ने गरम पत्ता हाथ में लेकर अपनी छाती पर दबा लिया। खांसी का एक और दौरा आया, मगर इस बार बड़े मालिक उसे दबा ले गए। उन्हें खुशी हुई। पत्तों की गर्मी से उन्हें बहुत आराम मिल रहा था।

कोई कुछ बोल नहीं रहा था। दोनों आमने-सामने चुपचाप बैठे थे।

जमीन-जायदाद के मामले में मझले मालिक ने कभी भी कुछ नहीं कहा था, उस दिन भी कुछ नहीं बोले। वह चीज उनके दिमाग में एकदम नहीं घुसती। बड़े मालिक जो भी कहेंगे चुपचाप सिर झुकाकर हां कर देना ही उन्होंने सीखा है। सब कुछ न जानते हुए भी एक बात वे जानते हैं कि परिवार पर कर्ज का एक बहुत बड़ा बोझ बैठा हुआ है।

नौकरी छोड़ देने पर कंपनी उन्हें एक मोटी रकम देगी। सावधानी से चला जाए तो सुधामय के काम में लगने तक उन पैसों से काम चल सकता है। हां, बीच में एक और खर्चा है, चम्पा की शादी। मगर अभी उसमें देर है, तीन-चार साल तो हैं ही। इस बीच तो सुधामय अपने पैरों पर खड़ा हो ही जाएगा। इस साल उसका इंजीनियरिंग का फाइनल है। और कितने दिन हैं ही !

सुधामय बहुत बुद्धिमान लड़का है। मझले मालिक को उसको लेकर कोई परेशानी नहीं।

मझले मालिक को किसी और बात को लेकर चिंता हो रही है। आज सवेरे गहर ने जो खबर दी है वह कोई अच्छी खबर नहीं है। तभी से वे उसी बात को लेकर चिंतित हैं।

सुलेमान का मामला बहुत दूर तक जाएगा। कितनी दूर जा सकता है, यही बात मझले मालिक सोच रहे हैं।

गोपाल के आदेश पर जब दस आदमियों के सामने निरापद सुलेमान को जूतों से पीट रहा था, तब मझले मालिक की आंखों में उस कृत्य की बर्बरता ही महत्वपूर्ण हो उठी थी। सुलेमान ने कोई अपराध किया है या नहीं, यह बात वे नहीं जानते। यह बात उनके लिए बहुत महत्वपूर्ण भी न थी। एक आदमी का बहुत ही क्रूरतापूर्ण तरीके से अपमान किया जा रहा है, दस आदमियों के सामने एक कमजोर आदमी के मुंह पर प्रबल पक्ष का एक आदमी तड़ातड़ जूते मार रहा है, यही उनके लिए महत्वपूर्ण हो उठा था। इसीलिए उन्होंने सुलेमान को छोड़ देने के लिए गोपाल से कहा था। कहा था, पहले विचार करो, फिर सजा दो। देखा जाए तो गोपाल ने एक तरह से उनके दोनों अनुरोध मान लिए थे। उसने तुरंत सुलेमान को छोड़ दिया था। और बाद में उसने सुलेमान को सजा भी दी थी, विचार करके ही दी थी। निरापद का अभियोग था कि सुलेमान ने वसूली देने से इंकार किया था और हाट के इजारेदार के गुमाश्ते को पीटा था। निरापद के साथ गए दोनों प्यादों ने एक स्वर में कसम खाकर गवाही दी थी कि निरापद का कथन अक्षरशः सत्य है। और चूंकि ये दोनों ही बड़े अपराध थे, इसलिए बहुत सोच-विचार कर गोपाल ने सुलेमान को नाममात्र की सजा दी थी। और वह सजा यह थी कि सुलेमान भविष्य में उस हाट में नहीं बैठ सकता।

मझले मालिक सोच रहे थे कि गोपाल ने जो फैसला किया है उसे बर्बरता माना जाए

या नहीं? बहुत सोच-विचार करने के बाद भी वे उसे बर्बरता नहीं मान पाए। गोपाल ने एकदम सभ्य समाज में प्रचलित तरीके से न्याय किया है। अंग्रेजों की अदालतों में भी कई बार इसी तरह का सूक्ष्म न्याय किया जाता है। उसने मझले मालिक को और कुछ कहने का मौका नहीं दिया।

मगर इस न्याय से निकिरि समाज में भयानक असंतोष फैल गया। एकजुट होकर वे गोपाल के दरबार में हाजिर हुए। गोपाल ने उन लोगों को भगा दिया। अब निकिरि समाज की शिकायत है कि सुलेमान को अकारण पीटा गया, उसकी मछली नष्ट की गई, उसका अपमान किया गया और सजा भी उसे ही दी गई। अच्छा न्याय है !

इस मामले में मध्यस्थ बनने के लिए गहर मझले मालिक के पास आया था। निकिरि समाज का मझले मालिक पर अगाध विश्वास है। उन्हें भरोसा था कि मझले मालिक किसी का पक्ष लेकर बात नहीं करेंगे। गवाह-सबूत देखकर और विचार करके जो राय मझले मालिक देंगे, उसे गहर और उसके साथी बिना किसी प्रतिवाद के मान लेंगे।

मझले मालिक मध्यस्थ बनने को राजी नहीं हुए। गहर निराश होकर वापस लौट गया। मझले मालिक गहर को यह बात नहीं समझा सके कि मध्यस्थ बनने के लिए एक पक्ष की आस्था काफी नहीं है, दोनों पक्षों की आस्था जरूरी होती है। उन्होंने सलाह दी कि गहर और उसकी बिरादरी के लोग किसी ऐसे आदमी को मध्यस्थ बनाए जिसकी बात दोनों तरफ के लोग मानें।

कहना न होगा कि गहर इस बात से खुश न हुआ। कौन जाने उसने क्या सोचा? कहीं उसने यह न सोचा हो कि चूंकि झगड़ा गोपाल के साथ है, इसीलिए मझले मालिक चालाकी से इसमें से निकल गए हैं। क्या सचमुच उसने ऐसा ही सोचा होगा? उनके मन में यह बात चुभने लगी। बूढ़ा होने पर आदमी बड़ा डरपोक हो जाता है। गहर यह बात भी तो सोच सकता है। मगर यह भी कोई तसल्ली देने वाली बात नहीं है। मझले मालिक अपने ऊपर खिन्न हो उठे। सोचा, जो आदमी संकट के समय सामने न आ सके, उसके मुंह से क्या बड़ी-बड़ी बातें शोभा देती हैं? मझले मालिक ने खुद को धिक्कारा।

जाते समय गहर कह गया था, "सुलेमान के अपमान को उसकी बिरादरी के सभी लोगों ने अपना अपमान माना है। कहीं ऐसा न हो कि तिल का ताड़ हो जाए !"

तीसरे पहर बूदो भुइयां हड़बड़ाता हुआ आया और बोला, "क्यों मझले चाचा, आपने क्या गहर से कहा है कि गोपाल ने अन्याय किया है। जब तक सही न्याय न हो, तुम लोग हाट में न बैठो?"

बूदो भुइयां की बात सुनकर मंझले मालिक के सिर से पांव तक आग लग गई। बड़ी मुश्किल से उन्होंने अपने को संभाला। गुस्से में कहीं कोई बेफाट बात मुंह से न निकल जाय, इसीलिए वे चुप ही रहे।

बूदो भुइयां ने आगे कहा, "गोपाल के गुमाश्ते का अपमान करना और गोपाल का अपमान करना एक ही बात है। बैठूं तेरी गोद में, उखाड़ूं तेरी दाढ़ी—ऐसा कहीं होता है? और जो फैसला गोपाल ने दिया है उसमें ऐसा अन्याय भी क्या है? जिसे जेल भेजना चाहिए था, उसे सिर्फ हाट में बैठने से मना किया गया है। मैंने तो गोपाल से पूछा, गोपाल, 'तुमने उस हरामजादे खूनी को इतने सस्ते में कैसे छोड़ दिया है? साले नसकटे की इतनी हिम्मत की बाभन की देह में हाथ लगाए ! मौका अच्छा था, उसके जहरीले दांतों को तोड़ डालने का अच्छा वहाना था।' इस पर गोपाल ने मुझसे कहा, 'भाई साहब, अगर उन लोगों की तरह हम लोगों में भी एकता होती तो देखते मैं क्या करता। मझले चाचा, लगता है, उस दिन मुझसे थोड़ा असंतुष्ट ही हुए।' मैंने कहा, 'अरे नहीं रे, यह तुम्हारी भूल है।' आज ऐसी बात सुनी, तो सोचा, तुमसे पूछ लूं, मामला क्या है?"

मझले मालिक ने भीतर की खिन्नता को दबाकर कहा, "लगता है, गोपाल की नजर तुमसे ज्यादा तेज है। मगर अब लग रहा है, तुम्हारी आंख में ही नहीं, कानों में भी कोई दोष है।"

मझले मालिक की बात से बूदो भुइयां का मन थोड़ा बुझ गया।

थोड़ी हिचकिचाहट के साथ बोला, "क्यों चाचा जी, इसमें मेरे कानों का क्या दोष देखा आपने?"

मझले मालिक ने पूछा, "मैंने यह बात गहर से कही है, यह तुमने किससे सुना? गहर से?"

बूदो भुइयां को अब थोड़ा जोर मिला।

उसने कहा, "गहर के मुंह से सुनने की क्या बात है? क्या गहर हमारा दोस्त है या गुरु है? मैंने जो बात कही है, उसे बाजार के सभी लोग जानते हैं। आप क्या कहना चाहते हैं, बाजार के सभी लोगों के कानों में कोई दोष है?"

मझले मालिक ने इस बात का कोई जवाब नहीं दिया। संभवतः इस बात से उन्हें थोड़ी परेशानी हुई। क्या सभी लोगों ने उनके खिलाफ कोई षड्यंत्र शुरू कर दिया है? क्या एक बार फिर उनके साथ सभी की लड़ाई शुरू होने वाली है? मगर क्यों? इस बार उनका अपराध क्या है? अब किसी का भला करने की कोई इच्छा तो उनके अंदर है नहीं। उनके दिमाग में बैठा वह कीड़ा कबका मर चुका है। उनकी जवानी भी बीत चुकी है। अब तो वे ऐसे घोड़े की तरह हैं जिसके घुटने टूट चुके हैं।

नहीं-नहीं, अब किसी के साथ कोई विरोध, कोई झंझट वे नहीं चाहते। अब जीवन के बाकी बचे दिन वे शांति से काटना चाहते हैं। ये थोड़े से दिन बिना किसी परेशानी के इसी गांव में, परिचित लोगों की अत्यंत घनिष्ट मंडली में वे काट देना चाहते हैं। जब तक उनके अंदर तेज था, जवानी थी, मन में अपार बल था, तब तक इस गांव के खिलाफ

उनके मन में एक प्रबल अभियोग जीवित था। उस जमाने में इन लोगों के प्रति उनके मन में एक गहरी विद्वेष-भावना भी थी। उन्होंने सोचा था, अब कभी इस गांव में पांव न रखेंगे। अपने कर्म-स्थल डोमार को ही अपना लेंगे। मगर जब उम्र ढली, पत्नी की मृत्यु हुई तो अचानक उन्होंने पाया कि जिस जगह उन्होंने अपने जीवन के इतने दिन काट दिए वह उनके लिए एकदम परदेश है। वहां उनकी जड़े नहीं हैं। जिस मिट्टी में उनका जन्म हुआ है वही उनकी अपनी मिट्टी है। अकेले, एकदम अकेले, परदेश में रहना उन्हें अच्छा नहीं लगा। इसीलिए उन्होंने तय किया था कि वे गांव में आकर रहेंगे।

बूदो भुइयां की बात सुनकर, इसीलिए मझले मालिक कुछ शंकित-से हो उठे।

उन्होंने कहा, "बाजार के लोग क्या कह रहे हैं, मैं नहीं जानता। तुमने जो कहा, अगर यही बात बाजार में फैली है, तो मुझसे भी सुन लो, मैंने इसका एक शब्द भी नहीं कहा है।"

अपनी बात खत्म करते ही उन्हें लगा जैसे वे कैफियत दे रहे हो। कोई भी आदमी उनके बारे में कुछ भी उड़ा दे तो क्या उन्हें जिस-तिस को इसके लिए जवाब देना होगा? क्यों, क्या वे कोई चोरी करते हुए पकड़े गए हैं? इसके अलावा, यह बूदो कौन है? एक सड़ा हुआ, देहाती, अशिक्षित गंवार। इसमें साहस भी तो कम नहीं है। अचानक उनका पारा चढ़ गया। मन हुआ किया उसी पल बूदो भुइयां के सामने से उठकर चल दें।

मगर बूदो भुइयां ने पलक झपकते ही गिरगिट की तरह रंग बदला। ख़ुशी से हंसता हुआ वह बोला, "यही तो, क्या मैं अपने चाचा को पहचानता नहीं ! यह बात सुनते ही मैंने गोपाल से कह दिया था कि मझले चाचा ऐसी बात कह ही नहीं सकते। वे जानते हैं कि गोपाल का अपमान हम सभी का अपमान है। उन्होंने मुझसे यह बात कही भी है।"

मझले मालिक अत्यंत विस्मय से बोले, "मैंने तुमसे ऐसी बात कब कही?"

बूदो भुइयां ने अपनी एक आंख टीपते हुए कहा, "ओ हो ! आप क्यों कहेंगे? आपकी ओर से मैंने ही गोपाल से कही है। मगर यह बात तो गलत नहीं है। गोपाल अब हमारे समाज का मुकुट है। उसका मान-अपमान हम सभी का मान-अपमान है। है कि नहीं?"

मझले मालिक की प्रबल इच्छा हुई कि एक जोरदार चांटा वे बूदो भुइयां के गाल पर जड़ दें। मगर वे ऐसा नहीं कर सके। नहीं कर सके, इसीलिए उनका पारा और चढ़ गया। उन्होंने फिर सोचा, इसे अपने घर से बाहर निकाल दें। मगर ऐसा भी वे न कर सके। बूदो भुइयां अकड़ा हुआ उनके सामने बैठा रहा। फिर उन्होंने तय किया, इसे जो बकना हो बके, उनके लिए चुप लगा जाना ही ठीक है।

बूदो भुइयां ने कहा, "मैं सारी खबर रखता हूं। निकिरि लोगों को मिद्दा ने उकसाया है। सुना है, उनमें से कोई भी अब मछली बेचने हाट में नहीं बैठेगा। फिर तो भारी नुकसान होगा। फिर भी देखते हैं, ऐसा कितने दिन चलता है। गोपाल ने कहा है कि वह दूसरी

जगह से केवटों को हाट में बुलाएगा। उनसे एक पैसा भी हाट वसूली नहीं लेगा। देखता हूं, मियां लोग कितने दिन टिकते हैं। तुम लोग अगर हमारी जाति मारने की कोशिश करोगे, तो हम तुम्हारा भात बंद कर देंगे।"

सत्यानाश ! बूदो क्या कह रहा है? तो यह सब बदमाशी चल रही है ! मझले मालिक ने कहा, "सुनो बूदो, क्या तुम लोग कोई हंगामा किए बिना नहीं मान सकते?"

बूदो उछलकर मझले मालिक के एकदम पास आ गया।

उनके कान के पास मुंह ले जाकर धीमी आवाज में उसने पूछा, "क्या वाकई ये लोग ऐसी कोशिश में हैं? मिद्दा बेटा के मन में क्या है, जरा बताइए तो, मझले चाचा?"

मझले मालिक अचानक बहुत ठंडे हो गए। बहुत गंभीर स्वर में बोले, "देख बूदो, थोड़ा हिसाब से बोलना सीख। मिद्दा के मन में क्या है, मैं क्या जानूं? इस तरह की बात पूछने की तेरी हिम्मत कैसे हुई?"

बूदो भुइयां बोला, "आप मेरे ऊपर गुस्सा करें या जो चाहे करें, मगर बूदो उचित बात कहने से नहीं डरता। गोपाल का कहना है कि मिद्दा की हांड़ी में कैसी खिचड़ी पक रही है यह बात इस गांव में एकमात्र मझले बाबू जानते हैं। गोपाल कोई झूठ बोलने वाला आदमी तो है नहीं। आपका उठना-बैठना हमारे संग तो होता नहीं, जो भी होता है उसी मिद्दा के संग। खैर छोड़िए। यह बताइए, क्या सचमुच वे लोग कोई हंगामा करने के जुगाड़ में हैं? तो फिर इस बार हो ही जाए दो-दो हाथ। मियां लोगों को भी बता देंगे कि मुंगड़ी से चूरा कैसे बनाया जाता है।"

इतनी देर बाद मझले मालिक की समझ में आया कि पानी कितना ऊपर चढ़ चुका है। मामला कहां से कहां तक पहुंच गया है। उनका गुस्सा तुरंत शांत हो गया। गुस्से की जगह दुश्चिंता ने ली ली।

एक पल सोचकर उन्होंने कहा, "सुनो बूदो, एक मामूली-सी बात को लेकर तुम लोगों ने यह क्या पागलपन शुरू कर दिया है। इससे तो अच्छा है, तुम लोग सुलेमान का मामला किसी मध्यस्थ को सौंप दो। जिन लोगों ने अपनी आंखों से उस घटना को देखा है उन सभी को बुलाकर, अच्छी तरह सारी बातों का पता लगाकर, इस पर विचार हो। जिसकी गलती सामने आए, उसे सजा दी जाए।"

बूदो भुइयां अचानक अकारण उत्तेजित हो उठा और बोला, "इस मामले को आप जितना मामूली समझ रहे हैं, उतना मामूली नहीं है। इसके भीतर ढेर सारी बड़ी-बड़ी चीजें छुपी हुई हैं। शायद आप यह नहीं जानते। बताने पर समझेंगे भी नहीं। मझले चाचा, आपका जन्म भले इस गांव में हुआ हो, मगर आप इस गांव के लिए अभी भी अजनबी ही हैं। अगर आप हमारे समाज के आदमी होते तो समझते कि हमारी छाती में कैसी आग जल रही है। जो हमेशा से हमारे पांव-तले पिस रहे थे, वे जब दल बनाकर आंखें लाल करते

हैं, तो आदमी के मन में अपमान का कैसा तीर चुभता है यह आप कैसे समझेंगे? जमीन का लगान मांगने पर जब वे ही लोग आंखें निकाल कर बातें करते हैं, जब फसल का हिस्सा मांगने पर वे न्याय-अन्याय का विचार करना चाहते हैं, हमारी लड़कियों को उठा ले जाते हैं, तब हमारी छाती में कैसी आग जल उठती है, उसकी आंच का पता आप कैसे पाएंगे? अगर आप उसका पता पाते तो यह मामला आपके लिए मामूली नहीं होता, इसे तुच्छ मानकर उड़ा देने की बात आप न सोचते। सोचकर देखिए, कैसे दिन आ गए हैं? एक मामूली केवट के बेटे, हरामजादे सुलेमान की इतनी हिम्मत बढ़ गई है कि वह निरापद के ऊपर हाथ उठा देता है ! और आप कहते हैं कि मामूली बात है। हां, आपके लिए यह मामूली बात हो सकती है, क्योंकि आप जात-पात तो मानते नहीं, हमारे समाज की आपको परवाह नहीं है। अगर आपको परवाह होती तो उन लोगों के सरगना, भेड़ों के उस दल के भेड़िए, उस मिद्दा के यहां बैठकर बड़े आराम से चाय पीने में आपको दिक्कत होती, उनके पक्ष से बातें बनाने में भी आपको परेशानी होती। हम लोगों के मन में छोटी-बड़ी कई लपटें जल रही हैं। छोटी लपट भी जलाती है और बड़ी लपट भी। किसी को भी मामूली मानना ठीक नहीं है।"

बूदो भुइयां गुस्से से तिलमिला कर उठ खड़ा हुआ। मझले मालिक पढ़े-लिखे हैं, इसीलिए बूदो उनकी इज्जत करता था। श्रद्धा की उस दीवार में अब दरारें पड़ गई थीं। आज वह दीवार डोल रही थी। यह एक कायर और पाखंडी बूढ़ा है। बूदो ने सोचा। यह मिद्दा का जासूस भी हो सकता है। घर का भेदी विभीषण। क्या लिखाई-पढ़ाई का यही अंजाम होता है? छी छी ! उसके स्वर्गवासी पिता ने उसे लिखना-पढ़ना नहीं सिखाया, इसके लिए कृतज्ञता के साथ, बड़े भक्ति-भाव से उसने उनके निराकार पांव की धूल सिर से लगाई।

बूदो भुइयां के पेट में इतनी बातें हो सकती हैं, और वह इस तरह से प्रकट कर सकता है, इसकी आशा न थी मझले मालिक को। बूदो भुइयां के बारे में उनकी धारणा थोड़ी बदल गई। बूदो का अभियोग संभवतः अस्पष्ट है, मगर उस अभियोग ने जिस विद्वेष को जन्म दिया है वह उसके मन में बहुत स्पष्ट है। बूदो भुइयां का जो इल्जाम है, वह प्रायः इस गांव के सभी लोगों का इल्जाम है, खासकर गांव के बड़े लोगों का। किसान लोग पैसा देना नहीं चाहते। उनके खेतों में फसलें उगाकर, जो हिस्सा उन्हें मिलना चाहिए उसे दूसरों को बेच देते हैं और जब भी इसे लेकर कोई हंगामा होता है तो तरह-तरह से अपना असंतोष प्रकट करते हैं। कुछ ऐसे भी दुष्ट लोग हैं जो कभी-कभी स्त्रियों का अपहरण भी कर लेते हैं और उन पर अमानवीय अत्याचार करते हैं। यह सब सच है। इस गांव के, इस महकमे और इस जिले के अधिकांश किसान मुसलमान ही हैं। इसीलिए अधिकांश मामलों में अपराधी भी मुसलमान ही हैं। मझले मालिक जानते हैं कि यह भी सच है। मझले मालिक के मन में एक बात आई। उन्होंने सोचा, जिन जगहों पर मुसलमान नहीं है, उन सब जगहों

पर भी तो इस तरह के अपराध होते ही हैं (बूदो की आंखों में जो गंभीर अपराध है)। हां, होते हैं। अगर बूदो उन जगहों के बारे में जानता होता, तो क्या वह इतनी जोर से मुसलमानों के खिलाफ बोल पाता? उन जगहों पर वह किसके विरुद्ध जिहाद की घोषणा करता?

मझले मालिक को शफीकुल की भी याद आई। शफीकुल के मन में भी हिंदुओं के विरूद्ध बहुत रोष है। उसकी धारणा है कि सरकारी नौकरी सारी की सारी हिंदुओं को मिलती है। उनके हिस्से कुछ नहीं पड़ता। व्यापार का भी असली गूदा हिंदू खा रहे हैं। ऊपर से कभी लगान के नाम पर, तो कभी सूद के नाम पर मुसलमानों के मुंह का कौर वे जबरदस्ती छीन ले रहे हैं।

निरापद ने सुलेमान का अपमान किया, गोपाल ने सुलेमान को सजा भी दी। न्याय करे अथवा अन्याय, इसका सारा दायित्व तो निरापद और गोपाल के हाथ में ही है। मगर गहर इस बात को नहीं मानेगा। उसके लिए सुलेमान कोई नहीं है और न गोपाल और निरापद। उसने मान लिया है, विश्वास कर लिया है, कि हिंदू-मुसलमानों पर अत्याचार कर रहे हैं। कहना मुश्किल है, पर हो सकता है, मिद्दा साहब भी इसी बात पर विश्वास करते हों। ये लोग इसी तरह से सोचने के आदी हैं। यही विश्वास लेकर जन्मे हैं ये और इसी विश्वास की गोद में सिर रखकर मरना भी चाहते हैं।

सुलेमान और गोपाल। ये दोनों अलग-अलग आदमी हैं। दोनों के स्पष्ट अवयव हैं। देहधारी इन दोनों व्यक्तियों को पकड़ा जा सकता है, छुआ जा सकता है। इनके साथ बातें की जा सकती हैं। कहा जा सकता है, "गोपाल, सुलेमान ने अपराध नहीं किया है। समझने में तुमसे भूल हुई है। सुलेमान को बुलाओ। गलती से तुमने जिसे सजा दी है, उसे पास बुलाकर उससे दो मीठी बातें करो। उसे समझाकर कहो—सुलेमान, निरापद के ऊपर हाथ उठाना तुम्हारे लिए उचित नहीं था। निरापद ने अन्याय किया था। तुम्हारी मछलियों को नष्ट कर दिया था, तो तुम आकर उसके खिलाफ हमसे नालिश करते। तुम्हारी मछलियों के दाम मैं उससे दिलवा देता। बात इतनी नहीं बढ़ती। निश्चय ही सुलेमान अपनी गलती मान लेता और दोनों हाथ जोड़कर विनम्र भाव से कहता—हुजूर, कसूर हो गया, माफ कर दीजिए। वही थोड़ी सी मछलियां हमारी पूंजी थी। उनकी दुर्दशा देखकर दिमाग खराब हो गया। मेरे घर में उपवास चल रहा है, हुजूर। सुलेमान की आंखों में आंसू होते। उसका ऐसा ही स्वभाव है। गोपाल, उसकी बात सुनकर तुम्हारा दिल भी पसीज जाता। तुम निरापद को फटकार देते। मामला वहीं खत्म हो जाता। आदमी का दुख कम करने में आदमी को और कितना समय लगता है !

मगर आदमी तो आदमी रहना नहीं चाहता। नमक का पुतला बनना उसे अच्छा लगता है। समुद्र के नमकीन पानी में घुल जाने का उसके भीतर प्रबल आग्रह होता है। ऐसा करके

वह आसानी से प्रबल गर्जन कर सकता है और लहरों की टक्कर से सब कुछ अस्थिर कर सकता है। एक निराकार समष्टि के बारे में सभी के मन में एक भयंकर आतंक का भाव जगा सकता है।

इसीलिए गोपाल, गोपाल नहीं बना रहा। वह हिंदू समाज के विस्तीर्ण समुद्र के जल में नमक के एक पुतले की तरह गल गया। इसी तरह सुलेमान भी मुसलमान समाज में समाहित हो गया।

मझले मालिक जानते हैं, जैसे तर्क-वितर्क से विश्वास की दीवार को नहीं हिलाया जा सकता, उसी तरह नमक के पुतले को तर्क देकर नहीं समझाया जा सकता।

तो अब उन्हें क्या करना चाहिए?

बूदो भुइयां ने झूठ नहीं कहा था। सचमुच वे इस गांव में अतिथि हैं। पहले यह बात उन्हें याद न थी। अब बूदो भुइयां की नुकीली बातें सुनकर उन्हें याद आ गया है कि वाकई वे इस गांव के कुछ नहीं लगते। कुछ भी नहीं? क्या यह उनका गांव नहीं है? तो फिर वे किस गांव के आदमी हैं? मझले मालिक यह बात नहीं जानते, मगर इतना समझ गए हैं कि वे इस गांव के कोई नहीं हैं। मगर क्यों, वे क्यों कोई नहीं हैं? क्या यहां उनका जन्म नहीं हुआ? क्या यहां उनका घर नहीं है? हां, यह घर उन्हीं का है। तो फिर?

क्या गांव केवल एक घर और जन्म लेने की एक छोटी-सी जगह होता है? गांव के लोग, गांव का समाज, इन्हीं से गांव बनता है। ये ही गांव हैं। इनके साथ मझले मालिक की समानता कहां है? क्या यहां के सुख-दुख को लेकर बूदो की भांति वे विचलित होते हैं? नहीं। क्या वे यहां की चिंताओं और भावनाओं में शरीक होते हैं? नहीं। क्या वे इनके सिद्धांतों के प्रति हामी भर सकते हैं? नहीं, नहीं। तो फिर, इनके साथ उनका मेल कहां है? इस मिट्टी में उनकी जड़ें कहां हैं?

मझले मालिक को लगा, सचमुच यहां उनकी कोई जड़ नहीं है। नहीं है, इसीलिए यहां की घटनाओं की तैरती हुई नाव में उनकी भूमिका एक असहाय यात्री की है। अच्छा-बुरा जो कुछ भी यहां घटित हो, उसमें से किसी एक को भी बदलने की उनके पास ताकत नहीं। बूदो भुइयां की जड़ें इसी मिट्टी में हैं, बहुत मजबूत जड़ें। चाहे जितनी भी भयंकर हो, वह इस मिट्टी में किसी घटना की सृष्टि कर सकता है। मिद्दा साहब भी कर सकते हैं। क्योंकि वे सब नमक के पुतले हैं। अपने-अपने समाज के समुद्र में कूदकर वे आसानी से गल सकते हैं।

मगर मझले मालिक ऐसा नहीं कर सकते। उनकी शिक्षा-दीक्षा, उनके आचार-विचार और उनके विवेक ने उन्हें एक समूचा व्यक्तित्व दिया है, जो समाज के समुद्र में गल नहीं पाता। इसीलिए तो समाज के संग मिलकर वे एकाकार नहीं हो पाते। और समाज का

समुद्र उन्हें हजम नहीं कर पाता, लहरों की ठोकर से उन्हें किनारे ठेल देता है। इसी कारण वे यहां पर अछूत हैं। इनके अपने आदमी नहीं है। सिंदबाद जहाजी की कहानी के उस रहस्यमय वृद्ध की तरह व्यक्तित्व का यह बोझ मझले मालिक के कंधों पर पड़ा हुआ है। यह कलकत्ते का अवदान है। एक समय यही बोझ उनके लिए गर्व की वस्तु था। आज जब वे बूढ़े हो गए हैं, उनकी देह में ताकत कम हो गई है, अकेले हो गए हैं, तो ऐसे में यह बोझ उनके लिए कितना दुर्वह हो गया है!

मझले मालिक को इसने एकदम अकेला कर दिया है। इसी बोझ ने, जो उनकी गर्दन पर सवार है। उन्हें अपने गांव से, अपने समाज से, अपने लोगों से किसने दूर कर दिया है? इसी, इसी दैत्य ने। जिसे तुम लोग विवेक कहते हो, व्यक्तित्व कहते हो, मनुष्यता कहते हो—उसी असाध्य रोग ने।

अब इस बुढ़ापे में वे कहां जाएं? कहां जाकर शांति से आश्रय ले सकें? क्या ऐसी कोई जगह है, जहां उन्हें अपना समाज मिल सकेगा? कोई ऐसा राज्य है, जिसका मापदंड विवेक है? नौटंकी का विवेक नहीं, तर्क और न्याय का पुत्र विवेक।

क्यों, कलकत्ता तो है। कलकत्ता? कलकत्ता में भी तो नमक के इन्हीं पुतलों का राज्य है। मूल रूप से इनमें और उनमें कोई भेद नहीं है। गांव के लोगों में विद्या कम है, वे अपने चेहरे पर मुखौटा नहीं लगा पाते, कलकत्ते ने तो मुखौटे पहनने का कौशल अच्छी तरह ग्रहण कर लिया है। प्रायः तीस साल पहले ही उन्होंने कलकत्ते के इस छल को पकड़ लिया था। वह जानकारी कितनी यंत्रणादाई थी ! मझले मालिक के लिए एक समय सभ्यता और कलकत्ता का एक ही मतलब था। जिस रोशनी को उन्होंने नए जीवन का पथ दिखाने वाली रोशनी माना था, वह एक रंगीन मशाल के अलावा कुछ नहीं है, यह बात उन्होंने जिस दिन जाना, उसी दिन उन्होंने कलकत्ता छोड़ दिया। उस दिन उनके कलेजे में कैसी दारुण हूक उठी थी ! अब वह व्यथा नहीं है। मगर उसका आतंक अभी भी जिंदा है। किसी अपरिचित कमरे में अकेले रात बिताने का जैसा आतंक एक शिशु-मन पर होता है, वैसा ही आतंक। अब वे कहां जाएं?

मझले मालिक को पता ही न चला कि कब शाम उनके कमरे में चुपके से घुस आई। यह भी अच्छी परेशानी है। दिन में काफी रोशनी होती है। यह दुनिया तब कितनी बड़ी लगती है, दूर-दूर तक फैली हुई। और शाम उस लंबी-चौड़ी दुनिया को समेटते-समेटते कितना संकरा, कितना छोटा कर देती है कि वह एक कमरे में समा जाती है। सारी पृथ्वी उनके इस छोटे-से कमरे में सीमित हो जाती है। नहीं, ऐसा भी नहीं। अंधेरा और भी बढ़ता है, दुनिया और भी छोटी होती जाती है। एक समय ऐसा आता है जब वह मच्छरदानी से घिरे एक खाट की चौहद्दी में समा जाती है। मझले मालिक का दम रुकने लगता है। अकेलापन

असह्य हो उठता है। असह्य ! असह्य ! तब बहुत मन होता है कि कोई आकर उनके पास बैठे। उनकी पीठ पर, देह पर हाथ फेर दे। किसी देह का उत्ताप पाकर अकेलेपन का यह भय दूर हो जाए। कोई आकर उनसे दो बातें करे। उनके क्षत-विक्षत मन को एक कोमल स्निग्ध प्रलेप से सहला दे।

घर के सभी लोग इस समय व्यस्त हैं। महिलाएं रसोईघर में हैं। लगता है, भैया को नींद आ गई है। बड़े मालिक को शाम को ही नींद आ जाती है। सिर्फ मझले मालिक इस समय बेकार हैं। बेकार और अकेले।

अचानक उन्हें अपने नाती की याद आई। दामाद की चिट्ठी की भी याद आई। अब किसी भी दिन वे यहां आ सकते हैं। इसका मतलब है, लड़की के भी जाने के दिन आ गए। उनका कलेजा सनसना उठा।

घर कुछ दिनों के लिए सूना-सूना-सा हो जाएगा। नन्हे-से एक शिशु ने इतने दिनों से पूरे घर को व्यस्त कर रखा है। अब सारे घर के लोग अचानक एकदम बेकार हो जाएंगे।

वह नन्हा-सा डकैत इस घर का सर्वस्व लूटकर यहां से भाग जाएगा। मझले मालिक को लगा, जैसे उनकी भी दशा राजा भरत जैसी हो गई है। माया के मृगछौने की जंजीर उनके पांवों में भी पड़ गई है। वे समझ गए, अब उनके कर्मों का नाश हो जाएगा।

अचानक मझले मालिक की इच्छा हुई, जाकर उसे देख आएं। इच्छा हुई, एक बार उसे कसकर कलेजे से लगा लें। फिर सोचा, देखने को है ही क्या! कितने घरों में नाती रहते हैं? रहते भी हैं तो कितने दिन? यह तो नियम है कि एक दिन लड़की को अपने घर जाना होता है और साथ में नाती को भी। जाना है तो जाए। तो क्या वह चला जाएगा? अभी भी वह नाती को गोद में नहीं ले सकते? एक दिन भी वह बदमाश उनकी गोद में आने को राजी नहीं हुआ।

वे तो जानते ही थे कि एक दिन उनको यहां से चले जाना है, मगर इसके बावजूद, दामाद की चिट्ठी पाने के एक क्षण पहले तक उन्हें इस दारुण सत्य का आभास नहीं हुआ था। अगर उन्हें आभास होता तो क्या वे नाती को प्यार करने के मामले में खुद को इतनी ढील देते? एकदम नहीं। उससे दूर रहने की, उसके प्रति निस्संग होने की पूरी कोशिश करते और देखते, इसका क्या फल होता है।

मझले मालिक अब वहां बैठे नहीं रह सके। धीरे-धीरे नाती के कमरे की ओर चल पड़े। उस समय कमरे में कोई न था। उसे सुला दिया गया था, मगर पता नहीं कब नींद को भगाकर वह अपने-आप खेल रहा था। मझले मालिक ने देखा, कमरे में और कोई नहीं है। लालटेन की लौ को और थोड़ा तेज करके वे धीरे-धीरे उसके बिछौने के पास गए और उसे झट से उठाकर चूम लिया। अचानक दाढ़ी के जंगल में मुंह के डूब जाने से बच्चा जोर से चीखकर रो पड़ा। बगल के कमरे से, “क्या हुआ, क्या हुआ” करती हुई छोटी बहू

आई और बच्चे को मझले भसुर की गोद में देखकर, जीभ काटती हुई घूंघट खींचकर बाहर भाग गई। साथ ही किसी और कमरे से बड़ी बहू और गिरिबाला भी आ पहुंची।

गिरिबाला ने देखा, नाना की दाढ़ी को दोनों मुट्ठियों में पकड़े आंखें मूंदे बच्चा चीख रहा है और वे न तो बच्चे को गोद से उतार पा रहे हैं, न गोद में रख पा रहे हैं। उन लोगों को देखकर मझले मालिक और भी हतप्रभ हो गए, जैसे चोरी करते हुए पकड़े गए हों। बाप का अपराधी चेहरा देखकर गिरिबाला खिलखिलाकर हंस पड़ी।

बड़ी बहू भी हंसने लगीं।

बोली, "ओ, तुम हो ! चलो, अच्छा है। मैंने तो सोचा था, बच्चे को बाघ ने दबोच लिया है। मगर तुम यहां आए क्या करने? चोरी से नाती को दुलारने चले आए? मझले बाबू, अब तुम मुश्किल में फंस गए हो। लगता है, अब इस दाढ़ी को तुम्हें मुड़ाना ही पड़ेगा, समझे? अगर नाती को गोद में लेने का शौक हो तो परमानिक नाई को बुलाओ और यह जंगल कटवा डालो।"

एक जरा-सी बात इतनी दूर चली जाएगी, यह देखकर शुरू-शुरू में मझले मालिक थोड़े असमंजस में पड़े थे। उसके बाद मन ही मन उन्हें गुस्सा आया। उनका गुस्सा उस बिच्छू पर था।

बड़ी बहू की बात के जवाब में उन्होंने कहा, "मुझे क्या पड़ी है दाढ़ी मुड़वाने की! लाट ''ाहब, मामूली आदमी की गोद में ही नहीं चढ़ना चाहते। तो लेटे रहें पलंग पर।"

बिछौने पर सुलाते ही बच्चे की रुलाई बंद हो गई। बड़ी-बड़ी आंखों से वह मझले मालिक को देखने लगा। उसकी उस स्निग्ध दृष्टि में जाने ऐसा क्या था कि मझले मालिक का सारा व्यक्तित्व जैसे हिल उठा। वे उदास मन से बाहर निकल गए।

मन को समझाया—तुम्हारे इन्हें अपना मानने से क्या होगा? असल में इस संसार में कोई किसी का नहीं है। कितने आश्चर्य की बात है, इस निष्कर्ष पर पहुंचने के साथ ही उन्हें तंबाकू पीने की इच्छा प्रबल हो उठी। बड़े बेकार के कामों में दिन बीता था। इतनी देर बाद एक ढंग का काम याद आया।

चौदह

उस कुवेला में घोड़े पर सवार होकर दनदनाता हुआ जो व्यक्ति वहां पहुंचा, उसके आने की उम्मीद उस घर में किसी को न थी।

सबसे पहले रामकिष्टो की नजर ही उस पर गई, मगर वह पहचान न सका। घोड़ा

जब गोहाल के पास से निकल कर आ रहा था तब रामकिष्टो को सवार का चेहरा दिखाई नहीं दिया था, पेड़ की आड़ में छिप गया था।

घर के सभी लोग खा-पी चुके थे, रसोई बढ़ाई जा चुकी थी। तीन-साढ़े तीन का वक्त हो चुका था। शुभदा को छोड़कर बाकी सभी लोग अपने-अपने कमरे में कमर सीधी कर रहे थे। बड़े मालिक को भी झपकी आ गई थी। मझले मालिक 'प्रवासी' पत्रिका पढ़ रहे थे। इसी बीच नींद आ जाने से खुली हुई पत्रिका उनकी छाती पर पड़ी हुई थी। बड़ी बहू अपने कमरे में फूली की मां के साथ बैठी गप कर रही थीं। थोड़ी देर पहले, चम्पा और फूली में लगातार छेड़खानी चल रही थी, मगर अब सब कुछ बंद था। फूली की मां की नाक बज रही थी और बड़ी बहू की आंखें बंद होती जा रही थीं। होठों की फांक से सामने के दोनों दांत दिखाई पड़ रहे थे। चम्पा और फूली एक-दूसरे के गले में बांहें डाले सोई पड़ी थीं। फूली के मुंह से लार की एक मोटी धार बह रही थी। एक बड़ी मक्खी बार-बार फूली के गाल पर बैठती थी, मगर साथ ही फूली का गाल हिल उठता था और मक्खी उड़ जाती थी।

गिरिबाला एक अलग कमरे में अपने बच्चे के साथ सोई थी। छोटी बहू भी उनके पास ही लेटी हुई थीं। गिरिबाला गहरी नींद में थी। छोटी बहू सो रही थीं कि नहीं, कहना मुश्किल है। मगर वे भी एकदम शांत पड़ी थीं।

एकमात्र छोटा बच्चा हाथ-पांव हिला-हिलाकर पूरी ताकत से नींद का प्रतिरोध कर रहा था। बड़े लोग जिस नींद के हमले से बेकाबू हो गए थे, उसी नींद को वह शिशु अपने कोमल हाथों और पांवों से मार-मारकर बेदम कर चुका था। एक-दो बार पता नहीं किसको उसने धमकाया भी—'बो बो'। पता नहीं, उसे कैसी असुविधा महसूस हो रही थी। 'मृ मृ मृ मृ' बोलकर उसने वह बात बतानी चाही। किसी ने उसकी बात की तरफ कान न दिया। किसी की नींद न टूटी। उसके शरीर में परेशानी बढ़ती जा रही थी। उसे बहुत बुरा लग रहा था। तकलीफ हो रही थी। अब वह धीरे-धीरे रो पड़ा। इस पर भी किसी ने उसकी तरफ ध्यान नहीं दिया। अब वह शायद अपनी रुलाई का वाल्यूम बढ़ाने जा रहा था, मगर तभी उसकी असुविधा अपने चरम पर पहुंचकर जैसे शांत हो गई। वह चुप हो गया। बिछौने को बुरी तरह गीला करके वह बड़े आनंद से अपना अंगूठा चूसन .. ा। नहीं, अब उसे कोई परेशानी, कोई कष्ट नहीं है। बल्कि मजा ही आ रहा है।

इस घर में दिन का काम समेटने में सबसे ज्यादा देर शुभदा को होती है। विधवा औरत हैं। कामकाज खत्म करके नहाते-धोते रोज ही उन्हें देर हो जाती है। उस दिन भी वे सांकल चढ़ाकर बरामदे में उतर रही थीं कि उन्होंने घोड़े की टापों के शब्द घर के बाहर रुकते हुए सुने। वे चौखट पकड़कर खड़ी रह गईं। इस समय कौन आया? उचककर उन्होंने आंगन की चारदीवारी के उस पार झांका तो अवाक रह गईं।

और साथ ही खुशी से प्रायः चीख उठीं, "ओ मां, शीतल ! अरे ओ बड़ी बहू, बड़ी बहू, उठो, उठो, शीतल आया है।"

शुभदा की चीख से बड़ी बहू की नींद टूट गई। कौन? छोटे देवर जी? ओ मां ! हड़बड़ाकर वह उठ बैठीं, आंचल ठीक किया, जल्दी से बिखरे बालों को समेटा और एक बड़ी-सी जंभाई ली। इसके बाद फूली की मां को ठेलकर उठाया।

बोलीं, "ओ फूली की मां, आग जला, छोटे देवर जी आए हैं।"

बड़ी बहू ने फिर जंभाई ली।

फूली की मां से उन्होंने कहा, "थोड़ा-सा चूरा दे तो दांत में लगा लूं।"

फूली की मां डिबिया खोलने ही जा रही थी कि बड़ी बहू की आवाज सुनाई दी, "अरे छोटी बहू, उठ देख, छोटे देवर जी आए हैं। बड़ी बहू की बातें छोटी बहू के कानो में गईं तो जरूर, मगर उनका मतलब साफ समझ में नहीं आया। उनके मन में किसी प्रकार की चंचलता नहीं जागी। कोई आया है, यह तो वे समझ गईं, मगर कौन आया है, यह बात साफ न हुई। वे वैसी ही लेटी रहीं। जल्दी से उठने का कोई कारण उनकी समझ में नहीं आया।

कौन आया है? बड़ी दीदी ने कहा था—छोटे देवर जी? हां, अब छोटी बहू को याद आ रहा है। धीरे-धीरे, थोड़ा-थोड़ा करके उन्हें याद आने लगा कि बड़ी दीदी छोटे मालिक को इसी नाम से पुकारती हैं। इसका मतलब है, छोटे मालिक आए हैं। अब छोटी बहू को बात समझ में आ गई थी। फिर भी छोटे मालिक को लेकर उनके मन में कोई उत्सुकता क्यों नहीं पैदा हो रही है? कोई चंचलता, कोई उत्साह, कोई गर्मी छोटी बहू के ठंडे मन में क्यों नहीं पैदा हो रही है? दस साल पहले तक छोटे मालिक के साथ छोटी बहू का जैसे एक जीवंत संबंध बना हुआ था। हल्का-हल्का सा उसका अंदाजा अभी भी उन्हें है। उसके बाद अचानक जाने क्या हुआ कि विराट, बोझिल, भयंकर काला आवरण उनके मन पर आ गिरा। पुराने दिन, पुराने संबंध सब जैसे एकबारगी उसके पीछे छुप गए। वे सारी बातें आज उनके मन में स्पष्ट नहीं रह गई थीं।

और फिर एक दिन अचानक छोटी बहू ने गिरिबाला के बच्चे को किसी झोंक में अपनी गोद में उठा लिया। साथ ही साथ जैसे उनके अस्वस्थ मन पर कोई ठंडा तेल चुपड़ उठा हो। कोई एक ज्वाला थी जो एकदम से ठंडी हो गई। वह एक आश्चर्यजनक घटना थी। इससे ज्यादा आश्चर्यजनक बात यह थी कि ज्यों ही वह अहर्निश जलने वाली आग ठंडी हुई, त्यों ही अंधकार का वह भारी पर्दा फटकर टुकड़े-टुकड़े हो गया। दस साल बाद फिर उनके मन में धीरे-धीरे प्रखर आलोक की रश्मियां घुसने लगीं। फिर से भूली हुई चीजें याद आने लगीं। फिर भी सारा अंधेरा अभी छटा न था। अभी भी छोटी बहू के मन के कुछ अंधेरे कोने हैं, जहां काफी कालिमा जमी हुई है। यह बात वे समझती हैं। वे समझती हैं

कि इसी कारण उनके मन में सभी जगह समान भाव से रोशनी नहीं फैलती। शायद इसी कारण शीतल की स्मृति जिस कोने में है वह भी अंधकाराच्छन्न है।

शायद इसी कारण उनके मन में शीतल का चित्र स्पष्ट होकर नहीं उभर रहा है। अथवा थोड़ा-थोड़ा उभर रहा है, पूरा नहीं। मन के जिस आईने में प्रियजनों की तस्वीरें साफ-साफ उभरती हैं, उसका दस वर्ष तक उपयोग न होने से, जैसे जगह-जगह उस आईने का पारा निकल गया है।

इसीलिए छोटी बहू उस आईने में, जी-जान से कोशिश करके भी, शीतल की तस्वीर को साफ-साफ नहीं देख पा रही हैं। कहीं मुंह का एक कोना, कहीं नाक का हल्का-सा आभास और कहीं माथे के एक कोने का भग्नावशेष वे देख पा रही हैं। इसी कारण छोटी बहू के मन में कोई आग्रह, कोई उत्साह या कोई उष्णता पैदा नहीं हो रही है।

गिरिबाला के बच्चे की आवाज सुनते ही छोटी बहू ने उसकी ओर करवट बदली। देखा, वह गीले बिस्तर में पड़ा कसमसा रहा है। देखो तमाशा, कथरी भिगोए बैठा है ! उसी क्षण छोटी बहू की नसों में ठंडा पड़ा रक्त जैसे बिजली के वेग से दौड़ पड़ा। उनके मन में उत्साह, आग्रह और तत्परता जाग उठी। उन्होंने झटपट बच्चे के नीचे से गीला बिछौना निकाल कर सूखा बिछा दिया।

घोड़े से उतरकर छोटे मालिक ने एक बार चारों ओर देखा। रामकिष्टो अथवा नरा कोई उन्हें दिखाई न पड़ा। तब खुद ही उन्होंने घोड़े की पीठ पर से जीन उतार दी। जीन के खुलते ही घोड़े की पीठ की गरम भाप उनके शरीर में लगी। बाएं हाथ से घोड़े की पीठ पर दो बार प्यार से थपकी लगाते हुए उन्होंने जीन को बैठक के बरामदे में ला रखा। इसके बाद घोड़े को पेड़ की छाया में खूंटे से बांध दिया। अभी भी लगाम घोड़े के मुंह में लगी हुई थी। पूंछ से मक्खियां उड़ाते हुए घोड़े ने खट-खट करके कई बार जमीन पर पांव ठोंके, सिर ऊपर करके दो बार गर्दन को जोर से हिलाया और फिर निश्चिंत होकर लगाम के लोहे को कड़ाक-कड़ाक चबाने लगा।

छोटे मालिक ने पीछे मुड़ते ही देखा, आंगन की चारदीवारी के ऊपर से शुभदा का हंसी से उज्ज्वल चेहरा दिखाई दे रहा है। छोटे मालिक का मन खुशी से भर उठा। डेढ़ वर्ष बाद आज वे घर लौटे थे।

शुभदा ने पूछा, "ओ शीतू, तेरा स्वास्थ्य तो ठीक है न?"

छोटे मालिक ने हंसते-हंसते कहा, "दारोगा का शरीर इस्पात का बना होता है, मझली दीदी। वह न आग में जलता है और न पानी में पड़ने से उसमें जंग लगता है। तुम अपने लोगों की बात बताओ, सब कुशल तो है न?"

शुभदा ने जल्दी से कहा, "हां हां, घर में आ, कपड़े उतार, हाथ-मुंह धो ले। धूप में जलकर तेरा चेहरा एकदम काला पड़ गया है।"

शुभदा की बात खत्म होते न होते बड़ी बहू गोदामघर का दरवाजा ठेलकर मुस्कराती हुई बाहर आई।

बोलीं, "क्यों जी साहब बहादुर, इतने दिनों पर आज घर की याद आई है? आज सूरज किधर से उदय हो रहा है?"

छोटे मालिक हो-हो करके हंस उठे, "हूरों और परियों की नेक नजर मेरी तरफ तो है नहीं, भौजी, घर आकर कौन-सा सुख पाना था?"

बड़ी बहू ने हंसते हुए टिप्पणी की, "समझ गई। ज्यों ही तुम्हें खबर मिली कि तुम्हारी हूर फिर से सही सलामत हो गई है, लगता है, त्यों ही खुशी से झूमकर गरुड़ की तरह झपट्टा मारकर उससे मिलने दौड़ पड़े हो। तो ठीक है, जाकर मेल-मिलाप कर आओ।"

शुभदा ने टोका, "अब रहने भी दो, बड़ी बहू, हंसी-मजाक बाद में कर लेना। शीतू को कपड़े तो उतार लेने दो।"

छोटे मालिक ने कहा, "रुको, मझली दीदी, पहले बूड़ी के बच्चे को देख आऊं। देखूं तो साला कितना बड़ा बहादुर जन्मा है? चलो तो, भौजी।"

कमरे में छोटे मालिक के घुसते ही छोटी बहू हकबकाकर उठ बैठीं। छोटे मालिक को एक बार गूंगी नजरों से देखकर, मुंह पर घूंघट डाल, वे कमरे से बाहर चली गईं। गिरिबाला एक किनारे शर्म से काठ हुई खड़ी रही। पहले वह मन ही मन चाचा से डरती थी। अब उसके साथ लज्जा भी आ जुड़ी थी।

छोटे मालिक ने एक नजर छोटी बहू पर डाली, फिर नाती की ओर मुखातिब हुए। शायद दारोगा की अद्भुत पोशाक के कारण या एकदम अपरिचित होने के कारण, बच्चे ने बड़ी-बड़ी आंखें उठाकर बड़े मनोयोग से छोटे मालिक पर अपनी एकटक नजर टिका दी।

"अच्छा मोटा -तगड़ा बेटा है बूड़ी का। चेहरा-मोहरा भी बहुत सुंदर है। और साले में साहस भी कम नहीं है। कैसे देख रहा है गोल-गोल आंखें करके। जरा भी रो नहीं रहा है।"

छोटे मालिक को नाती बहुत पसंद आया था।

"आ तो साले" कहकर छोटे मालिक ने बच्चे की कोमल गुदगुदी देह को अपने विशाल कंधे पर बिठा लिया। बैठते ही बच्चे ने अपकर्म कर डाला। परम प्रतापी अंग्रेज सरकार बहादुर की मोहर वाली खाकी पोशाक के ऊपर से उस अपकर्म का तरल साक्षी नीचे की ओर बह गया। रोब-दाब वाले दारोगा साहब इस अवांछित आकस्मिक घटना से थोड़े विमूढ़-से हो गए।

बड़ी बहू और शुभदा दोनों हंसने लगीं। शुभदा होंठ दबाकर और बड़ी बहू

खिलखिलाकर। केवल गिरिबाला का मुंह सूख गया। डर से उसका कलेजा धक-धक करने लगा।

बड़ी बहू ने हंसते-हंसते कहा, "क्यों दारोगा साहब, अब समझे, कैसा है नाती !"

नकली गंभीरता मुंह पर लाकर छोटे मालिक बोले, "ये तो बड़ा शातिर निकला। दारोगा की गर्दन पर हगने वाला ये साला कोई मामूली आदमी नहीं होगा।"

कहते ही छोटे मालिक हो-हो करके कमरे की दीवारों को प्रकंपित करने वाली हंसी हंस पड़े। बिचारा बच्चा भी अपकर्म करने के बाद थोड़ा असुविधा महसूस कर रहा था। छोटे मालिक की उस दीवार-फोड़ू हंसी से डर कर वह जोर से रो पड़ा।

छोटे मालिक ने बच्चे को गिरिबाला के हाथ में देते हुए कहा, "बड़ा जबरदस्त लड़का हुआ है रे तेरा। जा इसे धो-पोंछकर ले आ।"

छोटे मालिक के स्वर में प्रसन्नता की ध्वनि पाकर गिरिबाला की जान में जान आई। तो इसका मतलब है, चाचा जी बच्चे के ऊपर गुस्सा नहीं हैं! हे भगवान !" गिरिबाला ने निश्चिंतता की गहरी सांस ली।

बच्चे को दोनों हाथों से झुलाकर उठाए-उठाए गिरिबाला उस पर नाराज हुई। देखो तो कितनी हिम्मत है इसकी ! क्या गंदा काम किया इसने ! और उसकी आंखों के सामने दो पल पहले का दृश्य नाच गया। फिक-फिक करके वह हंसने लगी। "सच्ची मुन्ने, बीच-बीच में तू भी कमाल का काम करता है !" गिरिबाला स्नेह से बच्चे के भोले-भाले चेहरे को देखती रही।

घर में असमय शोरगुल सुनकर मझले मालिक की नींद टूट गई। वे उठकर बाहर आए तो उन्हें मालूम हुआ, शीतल आया है। अपने कमरे में कपड़े बदलने गया है। घर के बाहर निकलकर उन्होंने देखा, शीतल का घोड़ा पूंछ ऊंची करके लीद कर रहा है और जिस खूंटे से बंधा है उसी से अपनी गर्दन खुजला रहा है।

मझले मालिक ने रामकिष्टो को जोर से हांक लगाई। गोहाल से रामकिष्टो की आवाज आई।

मझले मालिक ने कहा, "जरा इधर आना तो।"

रामकिष्टो के हाथ में बहुत काम था। उसने सोचा, शायद मझले बाबू को तंबाकू की हुड़क लगी है। उसने सोचा, बेटे को भेज दे, मगर राम जाने वह उल्लू का पट्ठा इस समय है कहां।

फिर भी, यह सोचकर कि शायद यहीं कहीं हो, उसने हांक लगाई, "ओ रे नरा, नरा रे !"

नरा वाकई पास में ही था। गोपालभोग आम के पेड़ के नीचे एक साफ-सुथरी जगह पर बैठकर बड़े मनोयोग से चींटियों का आना-जाना देख रहा था। नरा का चींटियों के संबंध

में बड़ी प्रबल जिज्ञासा है। मौका पाते ही वह इन अद्भुत क्षुद्र प्राणियों के क्रियाकलाप मन लगाकर देखता है।

बहुत दिनों से इनके क्रियाकलाप लक्ष्य करने के दौरान उसने इनकी ढेर सारी गतिविधियों का गंभीर ज्ञान प्राप्त कर लिया है। वे अपना घर कैसे बनाती हैं? कोई बच्चा पूछता तो नरा उत्साहित होकर बताने लगता है, "सुन, मैंने जो देखा है वह तुझे बताता हूं। इनके बीच कुछ बड़ी-बड़ी चींटियां होती हैं। लगता है, वे इनकी सरदार हैं। वे सूंड हिला-हिलाकर जो कहती हैं, बाकी सब उसे ही मानती हैं। बरखा के पहले ये बड़ी बड़ी चींटियां गोपालभोग के पत्ते-पत्ते पर घूमकर कुछ खोजती हैं। तू बता सकता है, क्या खोजती हैं? घर बनाने की जगह खोजती हैं। ज्यों ही घर बनाने की जगह तय हो जाती है, जगह का मतलब क्या है, आम के पेड़ के कुछ पत्ते। ऐसे ही पत्ते जैसे पंडितजी पूजा के समय घड़े के मुंह पर रखते हैं।" अपने इसी निरीक्षण द्वारा नरा को पता चल गया है कि किस तरह के पत्तों में चींटियां अपना घर बनाती हैं और कहां नहीं बनातीं। वे इस मामले में बहुत सावधान हैं।" बड़ी-सी डाल पर कड़े और रूखे पत्तों में जहां तक हो सकता है वे अपना घर नहीं बनातीं। और एकदम कच्चे पत्तों में भी नहीं। ताकतवर जवान पत्तों और नरम डाल में ही वे अपना घर बनाती हैं। नरा को अगर आम के पत्ते लाने को कहा जाए तो वह ऐसी डाल कभी नहीं तोड़ता। बाप रे! ये तो किशन जी के जीव हैं ! इनके घर तोड़ना कोई ऐसी-वैसी बात है! पाप नहीं लगेगा !"

नरा आगे बताता है, "सुन, घर बनाने के पत्ते जब चुन लिए जाते हैं तो सरदार चींटियां बाकी चींटियों को कुछ आदेश देती हैं। इसके बाद जिन पत्तों में घर बनाया जाना है, उन पर दल की दल चींटियां आकर घूमने लगती हैं। घूमती ही जाती हैं। दिन-रात केवल घूमना फिरना चलता रहता है। इसके बाद एक दिन अचानक तुम देखोगे कि आम के पत्ते मुड़कर एक-दूसरे की पीठ से सटते जा रहे हैं। धीरे-धीरे वे गोलाई में फूलते जाते हैं और मुड़कर इस तरह जुड़ जाते हैं कि एक बड़ा-सा झोंपा बन जाता है।"

गोपालभोग की जड़ पर लेटे-लेटे नरा ने ये अद्भुत दृश्य कितने दिन देखे हैं, इसका कोई अंत नहीं। ऐसे समय में वह खाना पीना भी भूल जाता है। कामकाज में उसका मन नहीं लगता। उसके प्रति उसके बाप की नाराजगी बढ़ जाती है। उसे गालियां खानी पड़ती हैं। अक्सर उसकी पिटाई भी होती है। फिर भी उसका यह नशा नहीं उतरता। वह सोचता है, बड़े लोग कुछ भी नहीं देखते, कुछ देखना ही नहीं चाहते। वे तो सिर्फ थप्पड़ मार सकते हैं। क्या बापू बता सकता है कि आम के पत्ते एक दिन इस तरह गोल होकर कैसे आपस में जुड़ जाते हैं? किस तरीके से ऐसी विचित्र बात होती है? अगर मैं पूछ दूं तो बापू का मुंह एकदम बुद्धू जैसा दीखेगा।

चींटियां जब पत्ते-पत्ते पर, पत्ते के किनारों पर हजारों बार घूमती हैं, तो क्या तुम समझते

हो वे यों ही, बेकार में घूम रही हैं? जी नहीं, वे सब यूं ही नहीं घूमती हैं। घूम-घूम के वे पत्तों पर गोंद पोत रही होती हैं। एक दिन नरा ने हाथ से छूकर देखा था, इसीलिए यह बात वह जान सका। वह गोंद जैसे-जैसे सूखता है, वैसे-वैसे ही आम के पत्ते मुड़कर एक-दूसरे से जुड़ते जाते हैं। जुड़ने के साथ-साथ वे फूल उठते हैं। एक दिन जब पत्तों के बीच की खाली जगह अच्छी तरह बंद हो जाती है और एक गोलाकार झोंप-सा बन जाता है तब अपना माल असबाब मुंह में उठाए सारी चींटियां इसके भीतर घुस जाती हैं। दो-चार चींटियां बाहर पहरे पर खड़ी होती हैं। लगता है, तब भीतर की चींटियां अंडे दे रही होती हैं।

उस दिन भी नरा लेटे-लेटे चींटियों को ही देख रहा था। मगर उस दिन वह चित होकर नहीं लेटा था। वह पेट के बल लेटा था और उसके सामने एक पत्ते पर एक बड़ा-सा चींटा बैठा था। चींटे को चोट लग गई थी, इसलिए वह हिल-डुल नहीं पा रहा था। चींटा नरा की पीठ के नीचे दब गया था, इसीलिए नरा को बहुत दुख हो रहा था। नरा ने ही उसे उठाकर पत्ते पर रख दिया था।

चींटा बार-बार चलने की कोशिश करते हुए गिर जा रहा था, खड़ा नहीं हो पा रहा था। उल्टा होकर पांव को ऊपर उठाए छटपटा रहा था। नरा को नहीं मालूम कि ऐसी हालत में क्या करने से चींटा स्वस्थ हो जाएगा। चींटियों के रोग की दवा भी होती है, ऐसा उसने कभी नहीं सुना था। हो सकता है, बापू को पता हो, मगर इस मामले में उससे कुछ पूछना निरापद है कि नहीं, यह बात वह समझ नहीं पा रहा था। बापू के हाथों के थप्पड़ इतने सख्त और चुटीले होते हैं और नरा की पीठ पर उन चांटों के गिरने के कारण भी चारों ओर ऐसे बिखरे होते हैं कि बेचारा नरा अकेले उन्हें संभाल नहीं पाता। इसीलिए वह अपनी ओर से बापू को एक और मौका नहीं देना चाहता था। अचानक चींटा पत्ते पर उठ खड़ा हुआ। उत्तेजना से नरा की धड़कन बढ़ गई। लो उठ गया ! उसमें ताकत आ गई !

चींटा उठ तो गया, मगर एक कदम भी आगे नहीं बढ़ सका। वह प्रायः एक घंटा खड़ा रहा। बीच-बीच में अपने पांवों के बीच में सूंड घुसाकर जाने क्या करता रहा। अपने टूटे हुए पांव की मरम्मत कर रहा है क्या? घुटनों के बल झुका हुआ नरा केवल आंखों से ही नहीं, अपनी देह की एक-एक नस से देखने की कोशिश कर रहा था कि चींटा क्या कर रहा है। कुछ भी दिखाई नहीं पड़ रहा था। नरा थोड़ा निराश हुआ।

दूसरे ही क्षण नरा ने देखा, चींटा अपनी पूंछ नीचे-ऊपर कर रहा है। बाप रे ! हगेगा क्या? नरा की हताशा में एक बार फिर आशा का संचार हुआ। बहुत दिनों से नरा के मन में यह जिज्ञासा थी—चींटियां टट्टी-पेशाब करती हैं या नहीं? आज उसके इस प्रश्न का निराकरण कराने के लिए भगवान ने यह चींटा उसके हाथ में दे दिया है। जय भगवान!

ठीक-ठीक किस जगह से चींटियां टट्टी-पेशाव करती हैं, इसे देखने के लिए जब नरा बड़े मनयोग से आंख गड़ाए हुए था, तभी अचानक उसके कान में बाप की पुकार तीर की तरह आ धंसी। बाप की आवाज से नरा को लग रहा था कि बाप का मिजाज गरम है। और उसे पता है कि इस दुनिया में गरममिजाज बाप ईश्वर से भी ज्यादा शक्तिशाली होता है, इसीलिए नरा ने भगवान की कृपा को उनके ही हाथों में छोड़कर दुखी मन से बाप के हुक्म की तामील करने को दौड़ लगाई।

नरा को देखकर रामकिष्टो के मन में जरा भी वात्सल्य नहीं जागा। कारण यह कि गोबर उठाने के साथ-साथ उसे गोहाल की सफाई में हाथ बंटाना पड़ा था। सड़े हुए गोबर और भीगी मिट्टी को कुदाल से इकट्ठा करके टोकरी में उठाकर घूर पर फेंकने का काम पर्याप्त परिश्रम-साध्य था। उसकी कमर और पीठ दर्द करने लगी थी। मिजाज ठीक होने की बात भी न थी। साली गाएं भी बड़ी बदमाश हो गई हैं।

दूध तो देती नहीं। बाजार से खरीदकर रोज लाना पड़ता है। क्या दूध बंद होने के साथ-साथ इनका चारा बंद नहीं किया जा सकता? ऐसा हो जाता तो रामकिष्टो को इतनी तकलीफ नहीं उठानी पड़ती। हरामजादी दूध तो देती नहीं, और चारा खाती हैं दो-गुना।

जिस समय रामकिष्टो के मन की ऐसी हालत थी, ठीक उसी समय नरा उसके सामने बेजार चेहरा लिए आकर खड़ा हो गया। रामकिष्टो उसे देखकर जल उठा। पेट भर के ठूंसने को दो, बिस्तर बिछाकर सुलाओ तब तो इस छोकरे के मुंह पर हंसी होती है और काम की गंध पाते ही इसके चेहरे पर अमावस्या उतर आती है। मन करता है, मारूं साले के मुंह पर एक लात !

निश्चय ही रामकिष्टो ने लात नहीं चलाई, वरन पर्याप्त भद्र व्यवहार ही किया बच्चे के साथ। उसने गोबर से सने हाथों से नरा के बाल पकड़कर दो बार झकझोरे और दांत किटकिटाकर बोला, "एक बार तो बुलाने से बाबूजी का आना नहीं होता, कहां मन बंधा हुआ है? ऐं? जा, मझले बाबू बुला रहे हैं। लगता है तंबाकू पीएंगे। जाकर चिलम सजा दो। बाद में यहां भी एक चिलम तंबाकू ले आना। और अगर देरी की तो मारकर पीठ सीधी कर दूंगा। समझा कि नहीं?"

झकझोरे जाने के कारण नहीं, बल्कि सड़े हुए गोबर की दुर्गंध से नरा के पेट में हूल उठी। एक जोरदार रुलाई उसके भीतर धक्के मारने लगी। मझले बाबू के सामने जाना है, इसीलिए उसने अपने को संभाल लिया। मगर बुरी तरह चिढ़ गया उन पर। कैसे आदमी हैं जी ! जब देखो तब इनको तंबाकू पीने का मन हो जाता है ! वक्त-बेवक्त कुछ भी नहीं देखते ! उसने एक मुट्ठी सेवड़े का पत्ता तोड़ लिया और सिर पर रगड़ता हुआ मझले मालिक के सामने जा खड़ा हुआ।

मझले मालिक ने पूछा, "नरा, तेरा बाप कहां है रे?"

मिनमिनाते हुए नरा ने बताया कि वह गोहाल साफ कर रहा है।

मझले मालिक बोले, "अरे ! क्या तू वह घोड़ा मैदान में बांध आ सकता है?"

घोड़ा ! नरा चौंक उठा। क्या कह रहे हैं, मझले बाबू ! किसका घोड़ा? नरा ने इधर-उधर नजर दौड़ाई तो उसने देखा कि एक बड़ा-सा घोड़ा घर के पूर्वी हिस्से में बंधा हुआ है। देखते ही वह पहचान गया, छोटे मालिक का घोड़ा है। कब आए छोटे बाबू? नरा को याद आया, थोड़ी देर पहले उसे घोड़े के टाप सुनाई पड़े थे। तब उसने ध्यान नहीं दिया था।

मझले बाबू उससे इसी घोड़े को मैदान में बांध आने को कह रहे हैं ! नरा की अक्ल गुम हो गई। बाप रे ! यह तो घोड़ा नहीं भूत है, भूत। ऐसा जवान मर्द है बड़े बाबू का बेटा, मगर इसने उसे भी उठाकर पटक दिया था। नरा इसके पास गया तो वह छोड़ेगा नहीं। देखो न, कैसे जमीन पर भड़ाक-भड़ाक लात मार रहा है? ऐसी ही एक लात उसके पेट पर पड़ गई तो सब दाल-भात बाहर निकल आएगा।

मझले मालिक की बात सुनकर नरा की कंपकंपी छूट गई।

बड़ी मुश्किल से किसी तरह बोला,"बाबू, बापू को बुला लाऊं?"

मझले मालिक ने कहा, "ठीक है।"

सुनते ही नरा सिर पर पांव रखकर भागा। उसे डर था कि कहीं मझले मालिक अपना हुक्म बदल न दें।

हांफते-हांफते गोहाल के दरवाजे पर जाकर उसने पुकार कर कहा, "बापू रे, जल्दी आ, छोटे बाबू आए हैं।"

रामकिष्टो गोहाल से बाहर आया तो उसने देखा, नरा का मुंह सूखा हुआ है और वह थर-थर कांप रहा है।

रामकिष्टो को ताज्जुब हुआ।

वह बोला, "छोटे बाबू आए हैं तो फिर तेरी जान क्यों निकली जा रही है? तूने क्या खून पीया है कि तुझे छोटे बाबू जेल भेजेंगे?"

हांफते हुए नरा ने कहा, "छोटे बाबू का वह घोड़ा भी आया है। मझले बाबू ने मुझसे कहा, नरा, घोड़े को मैदान में बांध देना।"

अब कहीं जाकर रामकिष्टो को नरा के कांपने का कारण मालूम हुआ। यह लड़का बड़ा डरपोक है। इतना बड़ा हो गया मगर इसका डर नहीं गया। मगर रामकिष्टो को इस बार बेटे पर गुस्सा नहीं आया। जीवन में यह कुछ कर नहीं पाएगा, उसने सोचा, मां के दुलार ने इसे एकदम बबुआ बना दिया है। नरा का भविष्य देखकर रामकिष्टो को बहुत दुख हुआ। जाने कैसा तो बुद्धू-सा हो रहा है यह लड़का। बेटे पर उसकी करुणा उमड़ आई।

उसने अचानक गोबर से सने हाथों से ही बेटे के गाल सहलाते हुए कहा, "अरे मेरे ताड़ पत्ते के सिपाही ! तेरी उम्र में तो मैं अकेले भैंस चराने जाता था, समझा?"

गालों पर सड़ा गोबर लगने से नरा गुस्सा हो उठा। उसने रुंआसी आवाज में कहा, "क्या करते हो? छी ! बदबू ! थू थू।"

नरा दोनों हाथों से अपने गाल घिसकर साफ करने लगा। लड़के का हाल देखकर हो-हो करके हंस उठा रामकिष्टो। बाप को हंसते देखकर नरा पहले थोड़ा अवाक हुआ, फिर दूसरे ही क्षण खुश हो उठा। पिता को हंसते देखकर नरा को बहुत मजा आता है। आश्चर्य की बात है कि नरा के मन में खुशी आते ही सड़े हुए गोबर की बदबू भी अब उसे पहले जैसी विकट नहीं लग रही थी। वह भी बाप के साथ ही फिक-फिक करके हंसने लगा।

रामकिष्टो ने कहा, "चल देखते हैं, तेरा घोड़ा कहां है।"

रामकिष्टो का हाथ पकड़कर नरा ठुमकता हुआ बैठक की ओर चल पड़ा। उस समय वह दुनिया में किसी से डरने वाला न था। न मझले बाबू से, न छोटे बाबू से, यहां तक कि घोड़े से भी नहीं।

पंद्रह

इस अंचल में बहुत कम ऐसे लोग हैं जो छोटे मालिक से डरते न हों या उनका रोब न मानते हों। बड़े दक्काक आदमी हैं छोटे बाबू। जाने-माने दारोगा हैं। असुर की तरह उनका डील-डौल है। थोड़े छोटे कद के हैं, मगर उनका शरीर जैसे लोहे को पीटकर तैयार किया हुआ है। रंग काला, दोनों आंखें रक्तिम और नांक के नीचे खूब चौड़ी बड़ी-बड़ी मूछें। गले की आवाज ऐसी जैसे बादल गरज रहे हों। कौन कह सकता है कि वे चालीस पार कर चुके हैं।

छोटे मालिक बहुत दिनों बाद घर लौटे हैं। आकर जो देखा उससे उन्हें अच्छा ही लगा। पर उनकी नजर इस बात की ओर भी गई कि दिन पर दिन जैसे घर की रौनक कम होती जा रही है। पहले जैसी नहीं रह गई है। लगता है, घर बूढ़ा हो रहा है। पहले गोदामघर के कमरों में प्रायः हर साल पुताई होती थी, पूरा कोठा चम-चम करता रहता था। अब जाने कैसा उदास सा दिख रहा है। जाने कितने दिनों से उसकी पुताई नहीं हुई है। सीमेंट की सीढ़ियों के दोनों ओर हाथी के सूंड के बार्डर बने हैं। बड़े भैया ने बड़े शौक से बनवाया था। हाथी के सिर पर लगा हुआ सीमेंट मरम्मत के अभाव में टूट-टूटकर गिर रहा है। एक

हाथी का दांत भी टूट गया है। सूंड के अगले हिस्से में चोट दिख रही है। सीढ़ियां भी जैसे एक दूसरे पर ऊबड़खाबड़ हुई लेटी हैं। मजबूत दरवाजे में लगी मोटी-मोटी कीलों के सिरों पर जंग लग गया है। डिजाइन का रंग उड़ गया है। कब्जे ढीले हो गए हैं। चौखट में दीमक लगने से कई जगह उनके द्वारा खाई गई लकड़ी के चूरे के ढेर लगे हैं। पहले यह दरवाजा और इसकी डिजाइन कैसी चमकती रहती थी।

पहले ढेंकी-घर के चारों किनारों पर सुंदर बेड़ा था। अब दो तरफ के बेड़े टूट गए हैं। धान उबालने के लिए जो मिट्टी के बड़े-बड़े नाद रखे थे उनमें से एक भी अब साबुत नहीं है।

उनके अपने कमरे की हालत भी कुछ अच्छी नहीं है।

मझले भैया का कमरा तो काफी पहले ही गिर गया था। बेचारे ने गोदाम में आश्रय लिया है।

छोटे मालिक ने सोचा, शायद बड़े भैया की नजर में ये चीजें इसलिए नहीं पड़तीं कि वे लगातार यहीं रहते हैं और फिर उनकी उम्र भी काफी हो गई है। ये सब चीजें इनकी नजर में पड़ें भी तो वे इन सबकी लगातार मरम्मत कराने की ताकत अपने अंदर नहीं जुटा पाते। मझले भैया तो हमेशा से ही घर-गृहस्थी से उदासीन रहे हैं।

इतने बड़े मकान की देखभाल करने का काम किसी जवान आदमी के वश का ही है। छोटे मालिक ने सोचा। उनके पास समय होता तो वे इस काम में हाथ लगाते, मगर क्या वे जवान हैं? जवान नहीं हैं तो और क्या? उम्र बढ़ रही है, क्या इसीलिए उनके मन में यह प्रश्न, यह संदेह उभर रहा है? तो बढ़े न उम्र। उम्र बढ़ने से ही कोई आदमी बूढ़ा हो जाता है क्या? इस समय भी वे एक सांस में तीस-चालीस मील घोड़ा दौड़ा सकते हैं। जरा भी उनकी सांस नहीं फूलेगी। आज भी उनके हाथों की रगड़ खाकर बड़े-बड़े जांबाज गुंडों-बदमाशों की आंखों के सामने अंधेरा छा जाता है। एक बैठक में वे एक पूरे बकरे का मांस अभी भी खा सकते हैं। पूरी एक बोतल विलायती शराब हजम करने के बाद भी उनके कर्तव्य में जरा भी त्रुटि नहीं होती है। कालीगंज में उन्होंने दो रखैलें रख छोड़ी हैं। नहीं, बूढ़े होने का कोई लक्षण नहीं है, और न ही समय है। वे भला किस दुख से बूढ़े होंगे।

उनके पास वक्त नहीं है, वर्ना इस घर की रौनक को वापस ले जाते। फिर भी छोटे मालिक ने मन ही मन तय किया कि अगर वे कालीगंज की तरह लंबी अवधि के लिए झिनैदा रह पाए, उनकी बदली जल्दी नहीं हुई, तो वे इस घर को फिर से दर्शनीय बना देंगे। यह भी कोई बात है ! वे सभी भाई अभी जीवित हैं। अभी से उनका मकान किसी अनाथ विधवा की संपत्ति जैसा क्यों हो जाए? इस घर की हालत अगर अभी से इतनी खराब हो जाएगी तो बुढ़ापे में खड़ा होने का ठौर कहां मिलेगा? बाल-बच्चे कहां रहेंगे?

बाल-बच्चे? छोटे मालिक के मन में हल्की-सी कचोट उठी। मगर वह एक पल के लिए ही टिक सकी। उन्होंने उसे फूंक मारकर उड़ा दिया। मन ही मन जल्दी से बोल उठे, 'सुधा, सुधामय ही तो इस घर का उत्तराधिकारी है। अगर हम लोगों के रहते इस मकान का यह हाल हो जाए, तो फिर सुधामय कहां खड़ा होगा?

नहीं, यह नहीं चलेगा। बड़े भैया को बोल जाना होगा कि जैसे भी हो घर की मरम्मत करा डालें। जितने दिन हमलोग जीवित हैं, उतने दिन यह दीवान कोठी, दीवान कोठी ही बनी रहेगी।

इसके पहले भी तो छोटे मालिक बीच-बीच में घर आते रहे हैं। आते तो रहे हैं, मगर कितनी देर टिके हैं इस घर में। छोटे मालिक के प्राणों को खींचने वाली रस्सी तब कहीं और, किसी और पेड़ से तनी हुई बंधी थी। कहीं और। किसी और बात की ओर मन फिराने की फुर्सत ही कहां थी उन्हें?

इस बार वह नियम टूट गया। उन्हें लगा, जैसे वे इस मकान को पहली बार देख रहे हैं। घूम-घूमकर मकान के चप्पे-चप्पे को वह गौर से देखने लगे। घूमते-घूमते वे कुएं पर आ गए। काफी चौड़ी जगत थी कुएं की। अन्य कुओं से दो-गुनी, मगर टूटते-टूटते वह जिस हाल में पहुंच गई थी, उसमें डर लगता था कि किसी दिन यह एकदम धंस न जाए। कुएं के नीचे ढेंकी साक का जंगल उग आया था। जिस बांस में बाल्टी बांधकर पानी खींचा जाता था, वह इतना पुराना, इतना टेढ़ा-मेढ़ा हो गया था और पानी भरते समय ऐसे मच-मच करता था कि लगता था कि सब कुछ लिए-दिए सिर पर आ गिरेगा। देखकर छोटे मालिक अवाक हो गए। इस कुएं में तो किसी दिन गिरकर कोई मर जाएगा। नहीं-नहीं, यह सब नहीं चलेगा। बड़े भैया को एक पक्का कुआं बनाने के लिए कह जाना होगा। ऐसा कुआं जो आराम से पचास-साठ साल टिक जाए। कुएं में एक हैंड पंप लगा दिया जाएगा। फिर बांस की इस ढेंकुल की जरूरत नहीं पड़ेगी। पानी निकालने में किसी का हाथ दर्द नहीं करेगा और बांस टूटकर गिरने से किसी की मौत का भय भी नहीं सताएगा। सुधामय की वहू आकर आराम से पानी ले जाएगी। उसे जरा भी कष्ट नहीं होगा। सुधामय के नाती-पोते भी उसी कुएं का पानी पीएंगे। सुनेंगे कि उनके दादा-बाबा ने यह कुआं बनवाया था। उनके क्या नाम थे अहि, महि और शीतल। तीनों भाई ऐसे थे, जैसे तीनों शरीरों में एक ही आत्मा हो। छोटे मालिक ने सोचा, अगर कुएं की जगत पर तीनों भाइयों के नाम खुदवा दिए जाएं तो कैसा रहे? जितने दिन कुआं रहेगा उतने दिन अपने वंशधरों के बीच वे जीवित रहेंगे। जाने कितनी पुश्तों तक?

छोटे मालिक को एक नई अनुभूति का स्वाद मिल रहा है। दिन-रात चोर-उचक्का डाकू, खून-खराबा, जालसाजी-बटमारी, जांच-पड़ताल, नालिश-मुकद्दमा और कोर्ट-कचहरी में ही उन्हें लिप्त रहना पड़ता है। उन्हें लगातार एक हिंस्र, नृशंस और क्रूर दुनिया में रहना

पड़ता है। दिन-रात की इस क्रूरता ने धीरे-धीरे उनके भीतर से स्नेह, प्रेम और कोमल भावनाओं को कब का विदा कर दिया है।

मगर आज यह क्या हुआ? बूड़ी के बच्चे को गोद में लेते ही उसने उनकी पोशाक पर टट्टी कर दी। उसने उन्हें पोशाक उतारने को बाध्य कर दिया। और जैसे उस नन्हे से शिशु ने बलपूर्वक उनकी दारोगागीरी की खोल को भी उनके अस्तित्व पर से नोंच फेंका और भीतर से किसी और स्नेही, ममतामय शीतल को खींचकर बाहर निकाल लाया। इस नए शीतल में कहीं भी दारोगापन के लक्षण नहीं थे। यह शीतल अब पूरी तरह एक गृहस्थ, एक नाना बन गया था।

छोटे मालिक को अपने जीवन में एक नया स्वाद मिल रहा था, एक नया रंग, एक नया गंध, एक नया अर्थ। पहली बार उनकी समझ में आया, अचानक उनकी समझ में आया कि केवल दारोगागीरी करके ही, केवल उस गंदे परिवेश में ही उनका जीवन समाप्त नहीं होगा। यदि उनकी मृत्यु हो जाए, तो भी उनके पारिवारिक जीवन की धारा विलुप्त नहीं होगी। आज बूड़ी का बच्चा हुआ है, कल सुधामय के बच्चे होंगे और परसों चम्पा के। फिर उनके नाती-पोते होंगे। अनेक झरनों का जल जैसे विभिन्न स्रोतों से होता हुआ एक बड़ी नदी में मिलता है, और फिर विभिन्न शाखाओं-प्रशाखाओं में बहाकर ले जाता है, उसी प्रकार वे सब भी छोटे मालिक के वंश की धारा को बहाकर हजारों परिवारों में मिल जाएंगे। इन हजारों परिवारों में उनका छोटे से छोटा अंश मिला हुआ होगा। इनमें कहीं छोटे मालिक का भी अंश होगा। बहुत दिनों तक बना रहेगा, संभवतः सृष्टि के अंत तक। इनमें किसी न किसी के चेहरे में किसी अज्ञात, रहस्यमय प्रक्रिया के फलस्वरूप जब कोई समानता दिखाई देगी तब उस समय उनके वंश के लोग आपस में बातें करते हुए कहेंगे—अरे ! इसका चेहरा तो देखो, एकदम शीतल दारोगा की तरह है। वही आंखें, वही मुंह, वही गर्दन ! हूबहू वही ! कौन शीतल? अरे वही जो गांव में हमारे पुश्तैनी मकान के बाहर कुआं बना हुआ है, उसकी जगत पर जिन तीन भाइयों का नाम खुदा है, उन्हीं में से एक।

छोटे मालिक की शिक्षा कोई विशेष न थी। इसी कारण वैज्ञानिक दृष्टि से यह विचार ठीक है या नहीं, इस बारे में उनके मन में कोई प्रश्न नहीं उठा। अतएव बिना किसी दुविधा के उनके मन ने यह बात स्वीकार कर ली और इससे उन्हें सुख मिला।

शाम होते ही एक कटोरा गरम दूध पीकर मूछों पर जीभ फेरते हुए वे बैठक में आ गए। बड़े मालिक पहले से ही पासा बिछाकर बैठे थे। केवल शीतल के आने पर उनका खेल जमता है। बड़े मालिक के मन-मुताबिक खेल शीतल ही खेलते हैं। पहले ढेर सारे लोग यह खेल जानते थे। उन सभी के मर-खप जाने के बाद बड़े मालिक ने पासे की गोटियां और पाटी उठाकर रख दी थीं। अनाड़ियों के साथ खेलने में उन्हें मजा नहीं आता।

शीतल के आकर बैठते ही खेल शुरू हो गया। दो-चार दांव फेंकने के बाद ही खेल में गर्मी आ गई।

छोटे मालिक की इच्छा थी कि खेल के समय मकान की मरम्मत की बात बड़े भैया से करेंगे, मगर उसके पहले ही बड़े मालिक ने ऐसे ताबड़तोड़ दांव मारे कि खेल को संभालने की चिंता में वह बात छोटे मालिक के मन से उतर गई।

बहुत दिनों बाद शीतल घर लौटे हैं। उनका तबादला मागरो होने वाला था, मगर अंत में बदली होकर झिनैदा आ गए। बड़े मालिक सोच रहे थे—अच्छा ही हुआ, देर-सवेर मिलना-जुलना होता रहेगा। शीतल ने बताया था कि उनकी बदली टेंपरेरी है। अचानक कब कहां जाना पड़ जाए, कुछ ठीक नहीं। बड़े मालिक की इच्छा थी कि वे शीतल से पूछें—झिनैदा में उसकी पक्की बदली हो सकती है या नहीं। मगर बाप रे! क्या कर रहा है शीतल? एक के बाद एक ऐसे कड़े दांव फेंक रहा है कि बड़े मालिक एकदम परेशान हो उठे हैं। लगता है, शीतल उनकी पक्की गोटियां भी मार लेगा? और जल्दी ही बड़े मालिक पासे के खेल में पूरी तरह डूब गए।

भोजन के लिए बुलावा आया तो दोनों भाइयों का ध्यान टूटा। छोटे मालिक का आज खेल में हार का मुंह देखना पड़ा था। दो खेल बराबर रहे और एक में उन्हें हारना पड़ा। इसलिए इसे हार ही मानी जाएगी। छोटे मालिक हारते नहीं, अगर बीच-बीच में उनका मन इधर-उधर न भटकता। और मन इधर-उधर कतई न भटकता, अगर वे अपना गला थोड़ा तर कर सकते। यह उनका गला भिगोने का समय है। एक पाइंट देशी चढ़ाने के बाद अगर वह बैठते तो देखते कि कौन साला पासे के खेल में शीतल दारोगा को हराता। बड़े मालिक उनके बड़े भाई हैं। बड़े भाइयों के सामने आज भी शराब पीकर बैठने में उनका संस्कार आड़े आता है। अभी भी उनके अंदर इतनी चेतना बाकी है। इतनी चेतना बाकी है, इसीलिए वे पूरी तरह तैयार होकर खेलने के लिए नहीं बैठे और इसी कारण बार-बार उनका मन भटक गया है, खेल में पूरी तरह नहीं लग पाया है। अच्छे दांव फेंककर भी ठीक समय पर उन्होंने कोई न कोई गड़बड़ कर दी। इसीलिए तो हार गए हैं। यह तो प्रायः षड्यंत्र करके हराना हुआ। छोटे मालिक का मन खट्टा हो गया।

गुस्से से उन्होंने हारमोनियम की पुरानी रीडों की तरह हाथी-दांत के तीनों पासों को दोनों हथेलियों से इतनी जोर से घिसा कि वे कड़मड़ाकर आर्तनाद कर उठे। फिर उन्हें पाटी के ऊपर फेंककर मन की खिन्नता दबाए वे बाहर निकल गए।

खाना-पीना खत्म होने पर भी छोटे मालिक की खिन्नता दूर न हुई। एक खालीपन का भाव, एक खोया-खोयापन उनके भीतर सिर उठाने लगा। रात के नौ-साढ़े नौ बजे थे। कालीगंज थाने का हवलदार इस समय बसन्त साहू की दुकान में खूब मजे ले रहा होगा। वे तो वहां

हैं नहीं, अभी तो वह बेटा ही राजा बना बैठा होगा। और साली कालिन्दी ने भी अब तक गनपत बनिए के पहलवान छोकरे को अपनी छाती में भींच लिया होगा। मामूली शैतान नहीं है हरामजादी ! छोटे मालिक जानते हैं, आजकल वह छोकरा कालिन्दी के घर के खूब चक्कर लगा रहा है, मगर उनके भय से नजदीक आने की हिम्मत नहीं कर पाता। सभी जानते हैं कि तुरंत ब्यायी हुई बाघिन की गोद में सोना फिर भी आसान है मगर शीतल दारोगा की रखैल के पास—एकदम असंभव। मगर आज कालिन्दी को कोई डर नहीं है। बाघ हमेशा के लिए वहां से हट गया है। अब उसके झूले पर आराम से सियार और कुत्ते सवारी कर सकते हैं। इतना सोचते ही जैसे खिन्नता ने उनके शरीर में बिच्छू जैसी डंक मारी।

मरे साली कालिन्दी! जिसके साथ खुशी हो सोए! मगर आज की रात वे किसके पास जाएं? बहुत दिनों से उन्होंने गांव आना छोड़ दिया है। जो औरत उन्हें पसंद थी उसने बहुत पहले ही यह रास्ता छोड़कर धर्म का रास्ता पकड़ लिया है। पिछली बार वह अपनी आंखों यह सब देख गए हैं। तिलक लगाकर, कंठी पहनकर वह अब गोसांई साधुनी बन गई है। आजकल इस गांव में उसका मान-सम्मान बहुत बढ़ गया है। इस इलाके के जितने बदमाश और अपकर्मी हैं वे पाप की यंत्रणा से मुक्त होने के लिए उसके पांवों में गर्दन झुकाते हैं। छोटे मालिक के लिए यह एक अत्यंत आश्चर्यजनक घटना है। लोगों में ऐसा अद्भुत परिवर्तन कैसे होता है! छोटे मालिक को आदमी चराकर ही अपनी रोजी जुटानी होती है। असली और नकली में फर्क करने में उनसे कोई गलती नहीं होती। वे समझ गए थे कि गोसांई साधुनी के धर्म-कर्म में एक बूंद भी मिलावट नहीं है। पिछली बार उसे नए रूप में देखते ही वे यह बात समझ गए थे।

उस बार भी इसी तरह छोटे मालिक बहुत दिनों बाद घर लौटे थे। शाम के समय इसी तरह देह की पुकार से व्याकुल होकर वे गोपाल दासी के घर दौड़ गए थे, मगर गोपाल दासी के घर में पांव रखते ही उनकी समझ में आ गया था, वे कहीं और किसी और के पास आ पहुंचे हैं। केवल घर ही नहीं बदला था, आदमी भी बदल गया था। यहां तक कि उसका बूढ़ा पति भी बदल गया था।

घर में साधुओं का अखाड़ा बैठ गया था। गोपाल का मंदिर बन गया था। उस समय आरती हो रही थी। तरह-तरह के फूलों की सुगंध से पूरा घर मह-मह कर रहा था। पूरा आंगन एकदम धुला-पुछा था। कहीं गंदगी का छींटा भी न था।

वहां पहुंचकर छोटे मालिक अचानक ठमककर खड़े हो गए थे। जूते पहनकर आंगन में कदम रखने को भी उनका मन न हुआ। गोपाल दासी के लिए वे चौड़े पाड़ की मिल की महीन साड़ी लाए थे। एक साड़ी, एक बोतल शराब और गोपाल दासी की अद्भुत सुंदर एक देह, छोटे मालिक के लिए गांव आकर रात काटने के ये ही उपकरण थे। जब

भी छोटे मालिक गोपाल दासी के यहां जाते तो देखते, उसका बूढ़ा पति बरामदे में बैठा भुड़क-भुड़क तंबाकू पी रहा है। छोटे मालिक को देखकर एक पल के लिए जयराम अपनी भुड़क-भुड़क रोक देता। उसकी आंखों में विद्वेष, घृणा और हिंसा की एक अदृश्य तीखी छुरी की धार लप-लप करने लगती, मगर वह एक शब्द भी नहीं कहता। फिर दूसरे ही पल उसके हुक्के से भुड़क-भुड़क की आवाज आने लगती। मगर अपनी आंखों की वह हिंस्र छुरी और उसकी लपलपाती हुई धार वह समेटता नहीं था। उन धारदार नजरों को कुचलते हुए छोटे मालिक खट-खट करते गोपाल दासी के कमरे में घुस जाते। गोपाल दासी हंसती हुई आती। उनके जूतों के फीते खोल देती। छोटे मालिक की ही दी हुई एक धुली धोती वह उनके पहनने को देख देती। हाथ-मुंह धोने के लिए पानी लाकर बरामदे में एक छोटी-सी चौकी पर रख देती और एक साफ-सुथरा गमछा मांजे हुए गडुए के ऊपर मोड़कर रख देती। छोटे मालिक हाथ-मुंह धोते, कपड़े बदलते और गोपाल दासी के बिस्तर पर जा बैठते, जिस पर एक कसीदा की हुई, साफ-सुथरी बड़ी-सी चादर बिछी होती।

गोपाल दासी मुस्कराती तो छोटे मालिक की जान निकाल लेती। कहती, "लगता है, तुम्हें प्यास लगी है? छींके पर हांड़ी में गिलास रखा है। तुम लेकर तब तक अपनी प्यास बुझाओ। मैं हुक्का सजाकर लाती हूं।"

छोटे मालिक के आते ही गोपाल दासी की देह में प्यार का एक ज्वार उठता। प्रीत के इस प्रबल ज्वार की उत्ताल तरंगों पर एक नई नौका की तरह वह तैरती हुई पूरे घर के चक्कर लगाती और आश्चर्य की बात यह है कि उसे देखकर, उसकी प्रीत के ज्वार को महसूस करके, छोटे मालिक की देह की भूख एकदम शांत हो जाती। धीरे-धीरे उनके मन में जो नई अनुभूति जन्म लेती वह रुखी और राक्षसी नहीं होती थी, बल्कि बहुत स्निग्ध, प्राणों को बहुत जुड़ाने वाली और मन को भर देने वाली होती थी और तब छोटे मालिक के लिए उस सुंदर और ढली हुई देह का आकर्षण भी उतना प्रबल नहीं रह जाता था। गोपाल दासी इतने सुंदर तरीके से आंगन को बुहार सकती है, इतनी सुंदर कथरी सिल सकती है, छींके बिन सकती है, इतनी अच्छी बातें कर सकती है, इतनी सेवा कर सकती है, इतना आदर-यत्न करती है, यही बातें प्रमुख हो जातीं और गोपाल दासी 'पटरानी' का रूप धारण कर छोटे मालिक के मन के सिंहासन पर बिराजती रहती। उसकी माया-ममता और प्रेम के प्रवाह में छोटे मालिक न जाने कैसे अशक्त हो जाते, जैसे पंगू हो गए हों। अशक्त शिकार को लेकर जैसे बिल्ली खेलती है, उसी तरह छोटे मालिक के शिथिल व्यक्तित्व को लेकर गोपाल दासी इच्छानुसार खेला करती। अपने प्रीत के, पसंद के आदमी के हाथों में स्वेच्छा से खुद को इस तरह विलीन कर देने में जो अद्भुत सुख है, जो अपूर्व शांति है, उसे वह आदमी कैसे समझेगा जो गोपाल दासी की तरह अपने प्रिय के संसर्ग में कभी नहीं आया? उस सुख के सामने घर-संसार, धन-दौलत और सामाजिक मर्यादा का सुख,

छोटे मालिक को लगता, विलायती शराब की तुलना में बेल के रस जैसा फीका है।

गोपाल दासी तरह-तरह के बहानों से पल-भर को छोटे मालिक के पास आती, कुछ पल को घर के काम निबटाने चली जाती और अंत में जब वह आधी रात को अपने कमरे में आकर दरवाजा अंदर से बंद करती, तब जो आदमी एक मोटा तकिया गोद में लिए उनींदी अवस्था में गोल-गोल आंखों से उसे देख हुआ होता, वह निश्चय ही 'छोटे मालिक' नहीं होता। शराब के नशे और पुलक के आवेश में भीगा हुआ एक मिट्टी का लोंदा होता, जिससे गोपाल दासी अपने मन माफिक पुतला गढ़ सकती थी। और तब गोपाल दासी की कारीगरी से उस माटी में से एक नया पुतला जन्म लेता। गोपाल दासी की देह के उत्ताप से उस पुतले में नई प्राण-प्रतिष्ठा होती। रात के अंतिम प्रहर में, बंदरगाह से नए रंग-रोगन के साथ लौटे हुए जहाज की तरह, छोटे मालिक गोपाल दासी के घर से बाहर आते। पूरबी मुहल्ले के मुस्लिम-घर से रात का पहरेदार कुकड़ूं कूं करके उनका स्वागत करता।

मगर बहुत दिनों की अनुपस्थिति के बाद अभ्यासवश गोपाल दासी के घर में पांव रखते ही छोटे मालिक ने देखा, पहले की दुनिया के सारे सरंजाम वहां से लापता हो गए हैं। उनकी तरफ पीठ किए, गेरुए कपड़े पहने गोपाल दासी, नहीं-नहीं, गोसांई साधुनी, गोपाल की आरती कर रही है। भक्तगण उसे घेर कर बैठे हैं। बरामदे में जयराम भी बैठा है। उसकी वृद्ध जर्जर देह में भी इस परिवर्तन का रंग दिखाई दे रहा है। उसके पतले लंबे बाल पीछे से बंधे हुए हैं। देह पर राम नाम की चादर है और माथे पर तिलक, गले में तुलसी की माला। हुक्के का स्वर कहीं सुनाई नहीं देता। छोटे मालिक को देखकर जयराम हंसा। उसकी आंखों में झलकने वाली वह छुरी कहां गई? फूल और चंदन से सुवासित उस परिवेश में अनधिकार प्रवेश करके छोटे मालिक एकदम बुद्धू बन गए थे। उनके मुंह से निकलती शराब की गंध और देह से निकलती पसीने की गंध, जैसे चारों ओर से मार खाकर लौटे पालतू निरीह कुत्तों की तरह उन्हीं के आसपास घूमने लगीं। विलायती मिल की महीन धोती की मुलायम तह में छुपी हुई शराब की बोतल की कठोरता पहली बार उनके हाथों को महसूस हुई।

छोटे मालिक क्या करते, चुपचाप उसी आंगन के एक कोने में खड़े रहे।

आरती समाप्त हुई। सभी ने ईश्वर का नाम लेकर साष्टांग प्रणाम किया। चरणामृत का पात्र लेकर पीछे घूमते ही गोसांई साधुनी की आंखें छोटे मालिक की आंखों से जा टकराईं। तुरंत गोसांई साधुनी की आंखों में से निकलकर पूरे चेहरे पर हंसी की एक रोशनी फूट पड़ी। वह रोशनी बड़ी स्निग्ध थी। उसमें आभा थी, ताप न था। छोटे मालिक के लिए अपरिचित थी वह हंसी।

छोटे मालिक समझ गए, इस हंसी की उम्र और इसका चरित्र कुछ और ही है। जिस मनुष्य के चेहरे पर यह हंसी फूटी है, वह और जो भी हो, छोटे मालिक का वह पहले का

परिचित मनुष्य नहीं है। छोटे मालिक के मन में न क्षोभ उत्पन्न हुआ और न क्रोध। एक उम्मीद, एक प्यास लेकर यहां आए थे। उस उम्मीद के पूरी होने की कोई संभावना नहीं है, यह जानकर अचानक उनके मन में एक सूनापन साय-साय कर उठा। फिर प्रचंड भूख लगने पर भोजन न पाने से पाकस्थली में जैसे एक तीखा रस झरने लगता है, उसी तरह उनके सूने मन में वेदना का रस झरने लगा।

गोसांई साधुनी धीरे-धीरे भक्तों को चरणामृत बांटती हुई छोटे मालिक के सामने आ खड़ी हुई और बोली, "बहुत प्यास लगी है न? अपना हाथ फैलाओ तो। लो यह चरणामृत। देखो तो, तुम्हारी प्यास बुझती है कि नहीं?"

इतनी देर में छोटे मालिक को होश आया। क्या समझती है मुझे, उन्होंने सोचा। क्या मुझे भी इसने अपने ही दल में मिला लिया? या मेरा मजाक उड़ा रही है? एक प्रबल अट्टहास उनकी छाती में से उठकर गले की तरफ आने लगा। मगर नहीं, साधुनी ने मजाक नहीं किया था। उसके चेहरे पर, उसकी आंखों में, उसके होठों पर, कहीं भी कोई व्यंग्य नहीं था, विद्रूपता नहीं थी। इसके बदले वहां एक गंभीर विश्वास था। इसीलिए छोटे मालिक ने आसमान फाड़ने वाली अपनी हंसी को गले में ही रोक लिया। उन्होंने सोचा, साधुनी का यह गंभीर विश्वास जैसे एक चरम रसिकता है। यह बात वह बिचारी नहीं जानती है। शायद वह सोच रही है, दूसरे लल्लुओं, बुद्धुओं की तरह एक बूंद चरणामृत से छोटे मालिक का भी उद्धार हो जाएगा।

गोसांई साधुनी के चेहरे पर वही हंसी थी। उसने एक हाथ में एक पंचपात्र पकड़ रखा था जिसमें सुवासित चरणामृत की एक बूंद शिशिर कण की तरह झिलमिला रही है। उसने पंचपात्र छोटे मालिक की ओर बढ़ाया। भक्तगण अधीर होकर देख रहे थे कि आखिर में क्या होता है। छोटे मालिक को इस नाटक में बड़ा मजा आ रहा था। एक बार सोचा, उल्टे पांव लौट जाएं, मगर गोसांई साधुनी के मुंह की तरफ देखकर वह इच्छा समाप्त हो गई। छोटे मालिक के ऊपर गोसांई साधुनी की कितनी गहरी आस्था है, यह उसके चेहरे पर अंकित था। वह अगर चरणामृत के बदले जहर भी दे रही होती तो भी छोटे मालिक उसके हाथ से, चेहरे पर शिकन लाए बिना वह जहर स्वीकार कर सकते थे—यह बात साधुनी के चेहरे पर जैसे पक्की स्याही से लिखी हुई थी। इस विश्वास को तोड़ देने की बात मन में लाने में भी छोटे मालिक को तकलीफ हुई। अब उनकी उम्र हो गई है। वह सब लड़कपन करने की उनकी इच्छा न हुई। इसके अलावा उन भक्तों के सामने साधुनी को लज्जित करने का उनका मन न हुआ। उन्होंने हाथ बढ़ाकर चरणामृत ले लिया और मुंह में डाल लिया। फिर बड़ी आंतरिकता के साथ बोले, "नहीं जी, गोसांई साधुनी, हमारी प्यास इससे नहीं मिटेगी।"

गोसांई साधुनी यह सुनकर बहुत खुश हुई और हंसते हुए बोली, "आज भले न मिटे,

मगर गोपाल एक न एक दिन तुम्हारी प्यास जरूर मिटाएंगे। तुम देख लेना, मैं यह बात कह दे रही हूं।"

इसके बाद उनके हाथ में तह की हुई साड़ी को देखकर एक बच्ची की तरह वह ख़ुश हो उठी थी और बोली थी, "बड़ा सुंदर कपड़ा है। मुझे दो न। मैं इसे पहनूंगी।"

साड़ी हाथ में लेते ही साधुनी को पता चल गया कि इसके बीच शराब की बोतल भी है। उसने वैसे ही हंसकर कहा, "तुमने जो दिया है वह सब मैं रख लेती हूं और जय गोपाल कहकर साड़ी समेत दोनों हाथ जोड़कर प्रणाम किया।"

छोटे मालिक भी वहां से चल पड़े। उनके पीठ फेरते ही भक्तगण "जय जय राधे कृष्ण", "हरि हरि बोल" कहकर चीख उठे।

अब छोटे मालिक अपनी हंसी नहीं रोक पाए। बेटा लोगों ने सोच लिया कि उनकी गोसांई साधुनी ने एक और पापी को तार दिया। हा हा ! अच्छा मजेदार खेल है। हा हा! हंसते-हंसते उन्होंने पाया, वेदना की वह धार धीरे-धीरे क्षीण होने लगी है।

पुरानी बातें याद करके छोटे मालिक की खिन्नता थोड़ी कम हो गई। छोटे मालिक ने गोपाल दासी से जो सुख पाया था, वह कालिन्दी नहीं दे सकी। दूसरी कोई औरत वह सुख नहीं दे सकी और न दे सकेगी। पंप शू का मजा क्या कोई मामूली जूता या चप्पल दे सकता है? न मिले मजा, मगर चप्पल से भी पांव की बचत तो होती ही है। इसीलिए गोपाल दासी के धर्म-कर्म में मन लगाने और व्यर्थ में हा-हू करके समय काटने का उनका मन न हुआ। कालीगंज में बदली होने पर उन्होंने कालिन्दी को जुटा लिया था। इसके अलावा एक दूसरी औरत भी थी। कालीगंज छोड़ते समय उन्होंने उन दोनों को भी छोड़ दिया था।

आज गोपाल दासी की बात उन्हें याद आई, मगर उससे उनके मन में कोई बड़ी उथल-पुथल नहीं हुई। उससे मिलने को मन भी न हुआ। इस गांव में किसी और स्त्री से संबंध न था, इसीलिए वे खिन्न हो उठे थे। अब वह खिन्नता थोड़ी कम हो रही थी।

मगर शरीर की कसमसाहट दूर नहीं हो रही थी। हाजमे की दवा पेट में गई न थी। उधर उल्टा-सीधा कुछ खा लिया था उन्होंने और पेट इस समय गुड़गुड़ा रहा था। सारा शरीर जैसे ढीला हो रहा था। जैसे किसी बड़े बिस्तर को मजबूती से बांधे बिना कंधे पर ढोने में असुविधा होती है उसी तरह छोटे मालिक को अपने ढीले-ढाले शरीर को ढोने में असुविधा हो रही थी।

साथ में कुछ लाए न थे। यही एक बड़ी भूल हो गई उनसे। सोचा था, शाम होने पर नवीन जुलाहे के घर लोहाजांगा चले जाएंगे। नवीन छोटे मालिक का बहुत पुराना साथी है। उसके घर हमेशा पूरा इंतजाम होता है।

लोहाजांगा चले गए होते तो अच्छा ही था। बेकार के कामों में सारा समय नष्ट हो

गया। अब इतनी रात को जाएं तो कहां जाएं। इतनी दूर घोड़े की सवारी करके आने से शरीर में पीड़ा हो रही थी। अब कहीं बाहर निकलने का उनके अंदर उत्साह न था। दो-एक घूंट कहीं से मिल जाता तो उत्साह भी वापस आ जाता। ऐसी निरामिष रात बहुत दिनों से उन्होंने काटी न थी।

बैठक में तख्तपोज पर अपनी देह को उदास मन से ढीला छोड़कर उन्होंने रामकिष्टो को हांक लगाई। आवाज सुनकर रामकिष्टो दौड़ता हुआ आया। बाप रे! छोटे बाबू तो एकदम कच्चा चबा जाने वाले देवता हैं। पान में से चूना भी गिर जाए तो अनर्थ हो सकता है।

पास आकर रामकिष्टो ने पूछा, "आपने बुलाया, छोटे मालिक?"

छोटे मालिक ने कहा, "हां, थोड़ा हाथ-पांव दबा दे। बड़ा दर्द कर रहा है।"

रामकिष्टो छोटे मालिक के हाथ-पांव प्यार से दबाने लगा। छोटे मालिक को बहुत आराम मिला।

उन्होंने पूछा, "इधर की क्या खबर है, जरा बता तो। और तू कैसा है?"

रामकिष्टो ने इस प्रश्न के उत्तर में एक लंबी सांस ली।

फिर बोला, "खबर की क्या बात पूछते हैं, छोटे बाबू? जीवन में ऊंच-नीच तो लगी ही रहती है। धान और पाट का दाम एकदम गिर गया है। मलियारी हम लोगों को चबाकर खत्म किए दे रही है। हर आदमी कैसा मोटा-तगड़ा था और मलियारी होने के बाद से हाथ-पांव लकड़ी हो गए हैं। पेट फूलकर नगाड़ा हो गए हैं। आदमी क्या है जैसे ताड़ के पत्ते का सिपाही है। कहीं सुख नहीं है। इधर दंगा-फसाद नहीं होता था। देखता हूं, इस बार वह भी होकर रहेगा।"

दंगे का नाम सुनकर छोटे मालिक के कान खड़े हो गए। इतनी देर बाद पहली बार उन पर दारोगत्व सवार हो गया। मूंछों को ऐंठते हुए वे धीरे-धीरे सजग से हो उठे।

बोले, "दंगा! कौन लोग दंगा करने पर आमादा हैं?"

उनकी आवाज में सावन के बादलों जैसी कड़क थी।

रामकिष्टो ने कहा, "और कौन दंगा करेंगे? कुछ ऐसी ही स्थिति बनी है कि दंगा होने के आसार नजर आने लगे हैं।"

छोटे मालिक की सहनशक्ति जवाब देने लगी। इस आदमी में यही एक दोष है। असली बात पर आते-आते सारी रात बिता देता है।

छोटे मालिक ने धमकाते हुए रामकिष्टो से कहा, "बातों को दांतों के बीच न फंसाकर असली बात बता देगा तो क्या तेरी जात चली जाएगी? यह दंगा करने का शौक किन लोगों पर सवार हुआ है, साफ-साफ बताता क्यों नहीं?"

रामकिष्टो ने कहा, "निकिरि लोगों के साथ गोपाल विश्वेश का झगड़ा चल रहा है। अगली हाट के दिन निकिरि लोग अलग बाजार लगाएंगे। गोपाल बाबू के लोगों ने सोचा

है, उनके बाजार को तहस-नहस कर देंगे। भुइयां महाशय विश्वेश के दल के मुखिया बने हुए हैं। धनेश्वर गाती की तरफ से शायद नमशूद्दर लठैत भी बुलाए गए हैं। यही सब सुना है। लगता है, इस बार खूना-खूनी होकर रहेगी।"

छोटे मालिक के हाथ-पांव दबाते-दबाते रामकिष्टो, जो कुछ जानता था, उन्हें बता दिया। सारी बातें सुनकर छोटे मालिक दम साधे पड़े रहे। वे मझले मालिक की तरह विचलित नहीं हुए। मन ही मन उन्होंने तय किया—सालों से सुखपूर्वक रहा नहीं जाता, जूते खाने का शौक चढ़ा है। लगता है, सालों का मन बहुत बढ़ गया है। हर आदमी अपने को दादा समझ रहा है।

रामकिष्टो ने कहा, "छोटे बाबू, परसों ही हाट है। जिस तरह का जोड़-तोड़ देख रहा हूं, उससे लगता है खूना-खूनी हो सकती है। निकिरि लोग भी कोई बात मानने को तैयार नहीं हैं।"

अभी तक छोटे मालिक का दिमाग ठंडा था। रामकिष्टो के निपुण हाथों की सेवा से उन्हें बहुत आराम मिला था। रामकिष्टो की बातों से भी उनका मिजाज खराब नहीं हुआ था, मगर उसने जो आखिरी बात कही उससे ऊंघते हुए दारोगाजी की तंद्रा एकदम भंग हो गई। कह क्या रहा है ! परसों ही यहां दंगा होगा? खून-खच्चर होगा? इसका तो मतलब है सारी जिम्मेदारी उनकी ही गर्दन पर आ पड़ेगी। और तब तफतीश, अपराधियों का चालान करना, भगोड़ों के पीछे-पीछे कुत्तों की तरह सूंघते हुए घूमना, केस तैयार करना, मुकद्दमे की तदवीर बनाना, हजारों बखेड़े शुरू हो जाएंगे। अपने ही गांव का केस है, इसलिए आमदनी धेले की भी न होगी। कोई साला एक पैसा भी हाथ से छोड़ने तो तैयार न होगा। सिर्फ नाक और आंख से पानी चुआकर सब निकल जाएंगे।

एकाएक छोटे मालिक के शरीर में आग लग गई। हाथ कसमसाने लगे। मुट्ठियां बंध गईं। सालों ने समझ क्या रखा है? देश में कोई राजा ही नहीं है क्या? किसके राज में रह रहे हैं, ये भी साले भूल गए हैं? तो ठीक है, कल सवेरे ही शीतल दारोगा सबको अच्छी तरह समझा देंगे कि वे किसके राज में रह रहे हैं। शीतल दारोगा के साथ चालाकी?

दारोगा लोगों को दंगों और हंगामों से कोई परहेज नहीं होता। छोटे मालिक को भी नहीं है। कायदे-कानून सब उन्हें मालूम हैं। अधिकांश मामलों में हंगामा खत्म होने के बाद ही घटनास्थल से बुलावा आता है। इसी में उन्हें सुविधा होती है। आराम से जांच-पड़ताल होती है। जिनके खिलाफ कोई संदेह होता है उन्हें गिरफ्तार किया जाता है। इस मामले में मुख्य नियम यह है कि दारोगा जितना पुराना होगा, उतने ही अधिक निरीह लोग उसके हाथों गिरफ्तार होंगे। कारण यह कि लंबे अनुभव से पाया गया है, दुर्बल और निरीह लोगों में ही सरकार से नालिश करने की प्रवृत्ति ज्यादा देखी जाती है। अपनी रक्षा करने का उनमें दम नहीं होता, इसीलिए वे राजा का आश्रय पाने थाने पहुंच जाते हैं। राजा तो विलायत

में रहते हैं, वे कहां उनके हाथ आएं? इसीलिए ये दारोगा लोगों की ही सुख-शांति नष्ट करने पहुंच जाते हैं। दवा भी ईजाद करनी पड़ी है उन्हें। कारण यह कि ब्रिटिश राज कानून का राज है और कानून की निगाह में न कोई सबल है न कोई दुर्बल, सभी समान हैं। कोई मदद मांगने आए तो उसे मदद देनी ही होगी। न देने पर नौकरी खतरे में पड़ जाएगी। इसीलिए घाघ दारोगा मौका पाते ही निरीह लोगों को हथकड़ी लगाकर थाने खींच लाते हैं। इसके बाद कानूनी तरीके से उनके ऊपर ऐसी अमोघ औषधियों का प्रयोग करते हैं कि बाद में वे लोग जान जाने पर भी थाने की ओर मुंह नहीं करते, जिसके फलस्वरूप देशवासियों के मन में ईश्वरभक्ति बढ़ती है। वे लोग ईसा मसीह की तरह क्षमाशील हो जाते हैं। थाने के रजिस्टर में रपटों की संख्या शून्य हो जाती है। थाने में अपराध न होने पर दारोगा जी का प्रमोशन हो जाता है।

रामकिष्टो की बात सुनकर छोटे मालिक के गुस्सा करने के दो कारण थे। पहला कारण था, अगर हंगामा होने ही वाला है, तो उनके गांव में क्यों? क्या इस थाने में कोई और गांव न था? और दूसरा कारण है, अगर हंगामा उनके गांव में ही होना था, तो इतनी जल्दी क्या थी? अभी तो वे थाने जाकर अपनी कुर्सी पर बैठे तक न थे। छोटे दारोगा और हवलदार-सिपाहियों के साथ आपसी समझ भी नहीं बनी है। क्यों, क्या परसों का दिन पंचांग में दंगे के लिए सबसे शुभ दिन माना गया है कि उस दिन दंगा न हुआ तो महाभारत अशुद्ध हो जाएगा?

यह सब कुछ नहीं, असलियत यह है कि दंगा करके इन सालों ने छोटे मालिक को बेइज्जत करने का इरादा कर लिया है। मिद्दा बेटा का प्रिय दारोगा यहां से बदल दिया गया और उसकी जगह छोटे मालिक आए हैं तो बेटा को खबर जरूर मिली होगी। उसने सोचा होगा—अच्छा है, शीतल दारोगा को परेशान होने दो। और वह साला बूटो पक्का हरामी है, बिच्छु के डंक जैसा टेढ़ा। उसे तो बहुत दिनों से तलाश है कि कैसे दीवान कोठी के लोगों को मुसीबत में डाला जाए। इसके लिए वह कोशिश भी करता आ रहा है। बूटो जी, इस घर की उन्नति देखकर तुम्हारी छाती में लपट उठती है न? तुम्हारा बाप साला भी हम लोगों को खूब जलाया करता था। ठहरो, दिखाता हूं तमाशा। शीतल दारोगा क्या चीज है, इसका पता तुम्हें चल जाएगा। तुम्हें पता नहीं है कि शीतल दारोगा का सिर्फ नाम शीतल है, मार शीतल नहीं है। कितनी गरम है इसका भी तुम्हें इस बार पता चल जाएगा।

छोटे मालिक ने कहा, "रामकिष्टो, कल सवेरे उठते ही तू गहर के घर जाना। उससे कहना, छोटे बाबू बदली होकर झिनैदा थाने में आए हैं। ज्यों ही उन्हें यह खबर मिली है वे घर आ गए हैं। अगर जिंदा रहना चाहता है तो दो घंटे के अंदर मिद्दा की गद्दी पर हाजिर हो जाए। और बूदो से जाकर कहना कि वह विश्वेश की दुकान पर मुझे मिले। अब जा चिलम भरके मुझे दे जा।"

रामकिष्टो डरते-डरते चिलम भरने चला गया। समझ गया, छोटे बाबू का यह रूप कुछ और ही है। यह वही रूप है, जिसका नाम लेने से सारी दुनिया थर-थर कांपती है।

अच्छी तरह तंबाकू पीकर छोटे मालिक सोने चले गए। बहुत दिनों बाद, प्रायः दस साल बाद वे अपनी खाट पर सोने गए थे। उन्होंने लक्ष्य किया, उस दिन जोड़ा बिस्तर लगा था। न जाने क्यों उस दिन उस बिस्तर पर सोने में उनको हिचक-सी हुई थी। पिछले दस वर्षों में ऐसी-वैसी औरतों के साथ सोने की उन्हें लत पड़ गई थी। आज वह नियम भंग होने वाला था। बहुत दिनों बाद अपने पुराने अभ्यास में लौटना पड़ रहा है। जैसे दस साल पहले उपयोग में लाए गए जूते के अंदर नए सिरे से पांव घुसाना पड़ रहा था। जूते में पांव तो फिट हो रहा था, फिर भी जाने कैसी असुविधा-सी महसूस हो रही थी।

इस नई स्थिति में आकर छोटे मालिक के मन से कुछ समय के लिए दंगे की चिंता भाग गई थी। छोटी बहू अभी भी कमरे में नहीं आई थीं। अभी भी उनके कामकाज खत्म नहीं हुए थे। सारे दिन के परिश्रम और उत्तेजना के बाद अवसाद ने जैसे छोटे मालिक को घेर लिया था। यह बिस्तर किसने लगाया है, छोटी बहू ने? अगर छोटी बहू ऐसे करीने से बिस्तर लगा सकती हैं, तो लगता है सचमुच वह ठीक हो गई हैं। पहले की तरह हो गई हैं। छोटे मालिक का शरीर अलसा रहा था। मगर पागल होने के पहले छोटी बहू कैसी थीं? अरे ! यह कैसी बात है? मुझे उनकी कोई याद ही नहीं रही, ऐसा क्यों? छोटे मालिक ने एक लंबी जंभाई ली। अगर उन्हें यह याद नहीं रहा कि दस साल पहले छोटी बहू कैसी थीं, तो आज वह पहले जैसी हो गई हैं, यह बात वे कैसे समझेंगे? तब छोटी बहू कैसे बिस्तर लगाती थीं? पीने का पानी पहले से ढक कर रख जाती थीं या सोने आते समय साथ लाती थीं? कहां, कुछ भी तो याद नहीं आ रहा है। गोपाल दासी पानी का गिलास हाथ में लेकर आती थीं, यह बात मुझे याद है। कालीगंज की वे जो बदजात औरतें थीं उन्हें इन सबकी परवाह न थी। हरामजादियां शराब में चूर होकर बिस्तर में आ गिरती थीं। वे सब भी उन्हें याद हैं। मगर छोटी बहू क्या करती थीं, यह एकदम याद नहीं आ रहा है। कोशिश करने पर भी नहीं। गोपाल दासी कमरे में आने के बाद पान का एक बीड़ा उन्हें खिलाती थी। हंसकर कहती थी, "मुंह की बदबू कम किए बिना काम नहीं चलेगा।" कालीगंज की औरतें तो खुद ही शराब की एक-एक भट्टी थीं। उन्हें इन बातों की क्या परवाह? मगर छोटी बहू को तो इन बातों की परवाह थी। वे जिस दिन शराब पीकर आते थे उस दिन छोटी बहू उन्हें मुखशुद्धि के लिए पान खिलाती थीं, या मुंह दूसरी ओर घुमाकर पड़ी रहती थीं? कुछ भी याद नहीं आता। वे जिस दिन जगे होते उस दिन छोटी बहू क्या उनके साथ बातें करती थीं? जिस दिन सो जाते थे, उस दिन क्या वे उन्हें जगाती थीं? कितनी ताज्जुब की बात है कि उन्हें यह सब याद नहीं आ रहा है। छोटे मालिक

ने लगातार दो बार जंभाई ली और अपने दोनों हाथों की उंगलियों को चटकाया।

तो फिर? तो फिर वे कैसे समझेंगे कि छोटी बहू का पागलपन कितना दूर हुआ है? अभी तक वे उनके पास नहीं आई हैं। बस एक बार एक झलक मिली है। वे बूढ़ी के बच्चे के पास सोई हुई थीं। छोटे मालिक के कमरे में घुसते ही घूंघट करके वहां से हट गई थीं। शायद एक पल उनकी ओर देखा भी था। पता नहीं, देखा भी था या नहीं। मगर यह तो है कि वे अब एकदम पागल नहीं हैं। तो फिर वे इस कमरे में कैसे सोते, अगर वे एकदम पागल होतीं? यहीं इसी बिस्तर पर उन्हें जंजीरों से बांधकर रखा जाता था। जितनी बार वे घर आए हैं, उन्हें उसी हालत में देखा है। इसी कमरे में तो पिछले दस साल उस औरत ने जंजीरों के साथ लड़ते हुए बिताए हैं। कभी हंसी हैं, कभी रोई हैं, कभी खेल किए हैं और कभी चीख-चीखकर पूरे घर को सिर पर उठा लिया है। दर्जनों लोगों के सामने उन्मत्त होकर थिरक-थिरक कर नाची हैं वे। तब तो एकदम, पूरी पागल ही हो गई थीं।

पहली बार छोटी बहू की यह हालत देखकर छोटे मालिक का दिल ऐंठने लगा था। उन्हें बेहद तकलीफ हुई थी। क्या करें, कुछ समझ में नहीं आ रहा था। जो औरत उनकी पत्नी थी, वह अब पूरी तरह पागल हो गई थी। उन्हें लात मारने दौड़ती थी, पास जाने पर उनके ऊपर थूक देती थी और प्यार से वश में लाने की कोशिश करते तो काट खाती थी, मारती थी। पूरे घर को उसने अस्तव्यस्त कर डाला था।

छोटे मालिक को वह शर्मनाक घटना याद आई। वे लोग बाहरी बैठक में थे। ढेर सारे लोग वहां उपस्थित थे। दीदी और बड़ी भाभी शायद छोटी बहू को स्नान कराने ले गई थीं। अचानक उनसे हाथ छुड़ाकर छोटी बहू भागती हुई बैठक में आ गई थीं, खींचकर अपनी देह का कपड़ा उतार फेंका था और ऐसे कुत्सित व्यवहार करने लगी थीं कि छोटे मालिक को लगा था कि उन्होंने उनकी गर्दन ही काट फेंकी है। बड़े भैया दोनों हाथों से अपना चेहरा छुपाए आर्तनाद कर उठे थे, "शीतू-शीतू ! तू उसे अंदर ले जा!" छोटे मालिक समझ गए थे कि बड़े मालिक ने अपने स्वर में हृदय की सारी घृणा और लज्जा निचोड़ दी है। पीछे खड़े लोगों में से कोई भी अपनी हंसी नहीं रोक पाया था। छोटे मालिक को जाने क्या हो गया। छोटी बहू के लिए उस क्षण तक जो सहानुभूति और संवेदना की धारा उनके मन में बह रही थी वह जैसे उसी एक क्षण में सूख गई। छोटे मालिक ने देखा, उनकी पत्नी, वह औरत जिसके साथ उन्होंने सात फेरे लिए थे, उनकी आखों के सामने जैसे उस बैठक में से अचानक अदृश्य हो गई। और पलक झपकते ही जैसे किसी जादू के जोर से उसकी जगह एक मनुष्य आकृति वाला भयंकर जानवर आ खड़ा हुआ। छोटे मालिक तेजी से उस पशु की ओर बढ़े और बिना किसी दुविधा के उस जानवर की पतली गर्दन पर अपनी राक्षसी शक्ति वाले प्रचंड हाथों से जोरदार धक्का मारा। जानवर छिटककर मुंह के बल जमीन पर जा गिरा। छोटे मालिक ने अपने दोनों हाथों से उस जानवर को सिर के

ऊपर उठा लिया और घर के भीतर ले जाकर धान की एक बोरी की तरह उसे आंगन में पटक दिया। जानवर मिट्टी में धप से जा पड़ा। कहीं से खून निकल रहा था। शायद कहीं कट गया था या फिर उसके हाथ-पांव टूट गए थे। छोटे मालिक ने आंगन में जाकर खून से लथपथ उस मांसपिंड पर एक जोरदार लात जमाई थी। मांसपिंड उलटकर दूसरी ओर जा पड़ा था। उन्हें याद नहीं कि उन्होंने दुबारा लात चलाई थी या नहीं। कोई आदमी जब किसी कुत्ते या बिल्ली को मारता है तो क्या वह गिनता है कि उसने कितनी चोटें मारीं। इसीलिए छोटे मालिक को ठीक-ठीक याद नहीं कि उन्होंने दुबारा लात मारी थी या नहीं। अचानक कई लोगों ने (कितने लोग थे इसका भी ध्यान नहीं) उन्हें उस दिन पकड़ न लिया होता तो वे उस जानवर को लात मार-मारकर मार डाला होता या नहीं, उन्हें यह भी नहीं मालूम।

वे केवल इतना जानते हैं कि उस घटना के बाद से छोटी बहू के बारे में कोई उत्सुकता, कोई आग्रह, उनके मन में नहीं जागा। उनके लिए छोटी बहू का जीवंत अस्तित्व जैसे एक शिला में परिवर्तित हो गया था। छोटे मालिक का जो मन पत्नी के प्रति प्रेम और कोमलता से गर्म रहता था वह जैसे इस घटना के बाद एक बुझे हुए चूल्हे की तरह ठंडा हो गया।

शायद इसी कारण अब बिस्तर पर लेटे छोटे मालिक अपनी स्मृतियों को खंगालकर भी कोई ऐसा चिह्न या निशान ढूंढ़ नहीं पा रहे हैं, जिसके द्वारा पहले की छोटी बहू के साथ आज की छोटी बहू को मिलाकर देख सकें।

अचानक छोटे मालिक की सारी चिंताएं एक बंद गली में आकर ठहर गईं। एक क्षण के लिए बिना किसी तैयारी के वे नींद की गहराई में डूब गए। उनकी चेतना के ऊपरी हिस्से में जो भावनाएं अभी तक धूम मचाए हुए थीं उन्हें जैसे कोई एक भारी मछली खींचकर चेतना के अतल गर्भ में लिए चली गई थी। मगर दूसरे ही क्षण वह मछली चेतना की ऊपरी सतह पर आ गई। छोटे मालिक की नींद टूट गई।

वे फिर सोचने लगे—अगर उस दिन की उस अमानवीय मारपीट के लिए आज छोटी बहू उनसे जवाब-तलब करें, तो छोटे मालिक उसका क्या जवाब देंगे? इसी विचार ने, इसी आशंका ने उन्हें ठोकर मारकर जगा दिया था। वे क्या कहेंगे? उस मार के बाद हाथ-पैर तुड़वाकर बहुत दिनों तक छोटी बहू को बिस्तर थाम लेना पड़ा था। उन्होंने कभी कोई शिकायत नहीं की थी। घायल कुत्ता भी, और कुछ नहीं तो, कूं-कूं जरूर करता है, मगर छोटी बहू ने वह भी नहीं किया। उसके बाद से केवल यह होता था कि जब भी उन्हें छोटे मलिक के आसपास जाने का अवसर मिलता था तो हर बार छोटी बहू की आंखों की पुतलियां धीरे-धीरे गणित के शून्य की तरह प्राणहीन हो उठती थीं। उनकी देह तन जाती थी, जैसे किसी अचानक हुए हमले और असह्य अत्याचार को झेलने के लिए उनकी तमाम शिराएं प्रस्तुत हो रही थीं। इतने दिनों बाद, उसी क्षण जैसे छोटे मालिक ने इस सत्य का

आविष्कार किया।

लगता है, इसीलिए उस समय छोटी बहू ने ऐसी गूंगी दृष्टि उन पर डाली थी। पर क्या सचमुच छोटी बहू ने उनकी ओर देखा था? हां, छोटे मालिक को याद आया, छोटी बहू ने उनकी ओर देखा था। इसमें उनसे भूल नहीं हो रही है।

ओ ! बड़ी गर्मी लग रही है। हवा एकदम नहीं है। बाहर के वातावरण की तरह छोटे मालिक के मन में भी एक उमस छाई हुई थी। उन्हें बेहद परेशानी हो रही थी। अगर वक्त से दवा उनके पेट में पड़ गई होती तो यह यंत्रणा उन्हें भोगनी न पड़ती। नशे के सामने पुत्रशोक भी कोई चीज नहीं। न होता तो, शाम को नवीन के पास ही चले गए होते। वह उनका अकेला ऐसा मित्र है, पीने-पिलाने वाला यार है, जो अभी भी गांव में बना हुआ है।

उसके पास जा पाए होते तो सारी चिंताओं से निस्तार पा गए होते। मगर ऐसा न करके, कितनी ही अच्छी-अच्छी भावनाओं के मोह में पड़कर समय नष्ट किया, अब भोगें।

छोटे मालिक की नींद जरूर टूट गई है, मगर उन्होंने अपनी आंखें नहीं खोली हैं। आंखें बंद किए ही उन्होंने बिस्तर पर चारों ओर हाथ से टटोलना शुरू किया। शायद कोई पंखा कहीं पड़ा हो? नहीं, पंखा नहीं मिला। अगर छोटी बहू पंखा ले आएं, थोड़ी हवा कर दें तो छोटे मालिक तुरंत फिर सो जाएंगे। मगर कहां हैं छोटी बहू? आ क्यों नहीं रही हैं? इस समय कितनी रात होगी? क्या अभी भी घर के काम नहीं निबटे?

या कि छोटी बहू उनके पास आएंगी ही नहीं? शायद सोचा हो, पास जाने पर कहीं उस दिन की तरह फिर न मार खानी पड़े। क्या सचमुच छोटी बहू आज भी ऐसा ही सोचती हैं? तो फिर पागल और किसे कहते हैं?

क्या उस दिन वाकई छोटे मालिक ने छोटी बहू को मारा? उन्होंने तो एक पागल को मारा था। पागल क्या आदमी होता है? वह तो पशु जैसा होता है। पशु ही होता है। उस दिन छोटे मालिक ने वैसे ही एक पशु को मारा था। क्या आदमी को कोई उस तरह मार सकता है? जैसे बार-बार छोटे मालिक छोटी बहू को कैफियत देने लगे। नहीं-नहीं, छोटी बहू, तुम डरो मत। आओ, आओ निर्भय होकर तुम बिस्तर पर आ जाओ। मेरे पास खिसक आओ। मेरी तरफ मुंह करके मेरे पास लेटो। देखो, इन्हीं हाथों का तो तुम्हें डर है? तुम देखना, ये हाथ इस बार तुम्हें कितना दुलारते हैं? देखो, ये हाथ कितने कोमल, कितने स्नेहिल हैं! भला कोई आदमी अपनी पत्नी को इस तरह मार सकता है?

छोटे मालिक को पता ही न चला कि कब उनको नींद आ गई। सोते-सोते वे छोटी बहू से बातें करते रहे।

रसोईघर में औरतों के काम समाप्त हो गए। रसोई का काम खत्म करके, दरवाजे में ताला

बंद करके बड़ी बहू ने चाबी बंधे आंचल को झन से पीठ पर फेंककर खड़ी होते ही देखा कि अभी भी छोटी बहू हाथ में ढिबरी लिए उनकी ओर ताकती खड़ी हैं।

बड़ी बहू ने प्यार से कहा, "क्यों री छोटी, पान खाएगी?"

छोटी बहू ने कोई उत्तर न दिया। सिर्फ आज्ञाकारी बच्चे की तरह सिर हिला दिया। बड़ी बहू ने झुककर पनडिब्बा उठा लिया। एक पान छोटी बहू को देकर एक खुद अपने मुंह में भर लिया। फिर बोली, "खा लेना।"

छोटी बहू ने चुपचाप आदेश का पालन किया। बड़ी बहू ने दो और पान उनके हाथ में थमा दिए और कहा, "देवर जी अगर खाना चाहें तो उन्हें दे देना, क्यों?"

छोटी बहू ने तुरंत सिर नीचे कर लिया।

बड़ी बहू ने छोटी बहू की ठुड्डी पकड़कर हिलाते हुए कहा, "जाओ भाई, बहुत रात हो गई, जाकर सो जाओ, क्यों? मैंने बिस्तर लगा दिया है।"

आदेश पालन करके छोटी बहू तुरंत अपने कमरे की ओर चल पड़ीं। बड़ी बहू उनकी ओर देखती रहीं। उन्होंने देखा, आंगन में उतरते ही जैसे छोटी बहू अंधेरे में मिल गईं। जरा-सा आगे जाते ही वे दिखाई न पड़ीं। केवल मिट्टी के तेल की ढिबरी की मोटी बत्ती कांपती हुई पूरब वाले कमरे में घुस गई। और बड़ी बहू की छाती फाड़कर एक गहरी सांस निकल पड़ी। चतुर्दशी की रात। एकदम काली। आकाश में लाखों सितारों का मेला। अंधेरी रात में कितने तारे दीख पड़ते हैं ! बड़ी बहू को ऐसी रातें बहुत अच्छी लगती हैं। सितारे दिप-दिप कर रहे थे। लगता है, सितारे नहीं, लाखों सुहागिनों के माथे पर दमकती हुई विंदियां हैं! कैसी जीवंत हैं ये ! इनके मुकाबले पूर्णिमा के चांद की स्थिर रोशनी कुछ भी नहीं है, जैसे विधवा की सफेद धोती का थान हो। रसोईघर के पिछवाड़े कटहली चम्पा के पेड़ से तीखी खुशबू आ रही थी। इसी खुशबू को पाने के लिए उस पर सांप आते हैं। अंधेरे में जाने क्या 'सों' से सरक गया ! लगता है, कोई भटका हुआ कुत्ता है। 'धप' से किसी के बगीचे में नारियल का फल टूटकर गिरा। एक सितारा आकाश से टूटकर दूर तक फिसलता चला गया। ग्वालिन जेठानी के बाग में सियार बोलने लगा। घर के बाहरी गोशाले में छोटे मालिक का घोड़ा खट-खट अपने टाप से खूंदने लगा। बूड़ी का बच्चा हूं हूं करके रो पड़ा। नहीं, अब और नहीं, बड़ी बहू ने सोचा, अब जाकर सो जाती हूं, बहुत रात हो गई है। मगर मझली दीदी का काम पूरा हुआ या नहीं? और कितने पीठे बनाएंगी?

बड़ी बहू ने पुकारा, "ओ मझली दी, हुआ या नहीं?"

शुभदा ने दूध की कढ़ाई में कलछी चलाते हुए जवाब दिया, "बस, अब हुआ ही समझो, मणि। जरा सी देर है।"

बड़ी बहू ने निरामिष रसोईघर के बरामदे में जाकर भीतर झांका और कहा, "बाप रे ! मझली दी, आपने इतनी देर में कितने पीठे बना लिए? पूरा कमरा पीठों से भर गया

लगता है।"

शुभदा ने कहा, "शीतू का क्या भरोसा? हो सकता है, कल सवेरे ही उठकर घोड़े की जीन कस ले और कहे, मैं चला। इसीलिए सब सहेजकर रख दिया है।"

एक पीठा हाथ में लेकर बड़ी बहू की ओर बढ़ाते हुए शुभदा ने कहा, "चख के देख तो, बड़ी बहू, नरम बना है या नहीं?"

बड़ी बहू डरकर पीछे हट गई।

हंसते-हंसते बोलीं, "मैं क्या चम्पा या फूली हूं? इतनी रात गए यह सब पेट में गया तो, क्या समझती हैं, मैं सुबह जिंदा मिलूंगी?"

शुभदा ने कहा, "अरे ले ले, एक मिठाई खाने से तेरा कुछ नहीं बिगड़ेगा। चम्पा, फूली जगी होतीं तो मैं तुझे थोड़े न बुलाती।"

तभी बड़ी बहू के कमरे से चम्पा की आवाज आई।

"बुआ जी, मुझे बुला रही हो क्या?"

बड़ी बहू और शुभदा एक साथ ठठाकर हंस पड़ीं।

बड़ी बहू ने कहा, "लो, तुम्हारे चखने वालों की कमी तो मिट गई। मैं अब चलती हूं। देखना, कहीं रात न बिता देना बैठे-बैठे। जल्दी से खत्म कर लो।"

तभी चम्पा आंखें मलती हुई शुभदा के पास हाजिर हुई।

शुभदा ने कहा, "आओ आओ, मेरी लक्ष्मी बेटी। अभी तक मैं भी सोचती थी कि मेरा हाथ क्यों नहीं चल रहा है !"

छोटी बहू ने कमरे में घुसकर देखा, आज उनका बिछौना बहुत चौड़ा हो गया है। और छोटे मालिक का विराट शरीर उस बिछौने का अधिकांश भाग घेरे हुए पड़ा है। घर्र-घर्र करके उनकी नाक बज रही है। तो क्या, इससे कोई बहुत बड़ी समस्या नहीं आने वाली। जो थोड़ी-सी जगह किनारे बची है उतने में ही उनकी दुबली-पतली देह आराम से अंट जाएगी। अभी तक उनके सारे क्रियाकलाप बहुत अच्छी तरह नियंत्रित हो रहे थे। बड़ी बहू चला रही थीं और वे एक कठपुतली की तरह चल रही थीं। कहीं कोई परेशानी न थी। जिस ढंग से बहू ने कहा था, एक पान अपने मुंह में रखकर और दो पान हाथों में लिए, ठीक वैसे ही चलकर वे कमरे में पहुंच गई थीं। अब यह आदमी अगर फिर से कुछ करने को कहता तो अच्छा होता। वे वैसा ही करतीं। मगर यह तो सो रहा है। कुछ भी नहीं कह रहा है। छोटी बहू जिस नियंत्रित सड़क पर अभी तक चली जा रही थीं, वह यहां आकर खत्म हो गई थी। अब उन्हें अपनी बुद्धि से चलना होगा। यही तो समस्या है।

पहली समस्या है—ये दोनों पान। इन दोनों पानों का वे क्या करें। एक हाथ की ढिबरी जितनी आसानी से उन्होंने नीचे रख दी थी, उतनी आसानी से दूसरे हाथ में पकड़े पान

के बीड़ों को नहीं रख पाईं। बीड़े कुछ देर उनके हाथ में ही रहे। फिर पता नहीं क्या सोचकर उन्होंने पानों को ताख पर रखी तस्तरी में रख दिया। फिर जाकर दरवाजा बंद कर दिया। कमरे में मच्छर भिनभिना रहे थे। मसहरी गिराई नहीं गई थी। उन्होंने मसहरी गिरा दी। फिर फूंक मारकर ढिबरी बुझाने लगीं। पहली फूंक में ढिबरी की लौ हिलकर रह गई, बुझी नहीं। इस बार छोटी बहू ने सतर्क होकर फूंक मारी। जोरदार फूंक ढिबरी की लौ पर झपट पड़ी और उसने लौ की गर्दन मरोड़ दी। तुरंत कमरे में अंधेरा छा गया।

इसके बाद छोटी बहू बिस्तर पर चली गई। इस मामले में जैसे उनके मन में कोई आग्रह नहीं उठा, वैसे ही जरा भी दुविधा नहीं हुई। वे एक किनारे लेट गईं। उनकी बगल में एक विराट शरीर पड़ा हुआ था। अंधेरे में वह और भी विशाल दिखाई दे रहा था। उसकी नाक बज रही थी। उस भारी देह की सीमा-रेखाएं उसकी सांसों के साथ ताल मिलाकर उठ गिर रही थीं। छोटी बहू के कान के पास ही एक मच्छर भन-भन कर रहा था। उसकी इच्छा हुई कि उठकर मसहरी को अच्छी तरह झाड़ दें, वर्ना मच्छर के काटने से छोटा बच्चा जग जाएगा, आराम से सो नहीं पाएगा। दूसरे ही पल उन्हें याद आया, छोटा बच्चा यहां कहां है? वह तो अपनी मां की गोद में दूसरे कमरे में सो रहा है। यह बात याद आते ही उठकर मसहरी झाड़ने की इच्छा लुप्त हो गई। वहां जो दो व्यक्ति सो रहे थे उनकी मोटी चमड़ी पर मच्छरों के डंक इतनी आसानी से अपना काम नहीं कर सकेंगे। उनकी बगल में जिस व्यक्ति का यह विशाल शरीर पड़ा है, उसे क्या वे पहचानती हैं? क्या वह उनके लिए अपरिचित है? अगर यह शरीर उनके लिए अपरिचित होता, तो क्या वे इतनी आसानी से उसके पास बिस्तर पर लेट जातीं? यह आदमी उनका परिचित तो है ही। ये तो छोटे मालिक हैं, बड़ी बहू के छोटे देवर और छोटी बहू के पति। पति? मन ही मन इस शब्द को वे पकड़ना चाहती हैं, मगर वह उनके हाथ से फिसलता जा रहा है। मन में कोई तस्वीर साफ-साफ उभर नहीं रही है। इसीलिए छोटे मालिक अपरिचित जैसे नहीं लग रहे हैं, वैसे ही बहुत जाने-पहचाने भी नहीं लग रहे। और इसीलिए उनकी बगल में लेट जाने में जिस तरह उनको कोई दुविधा नहीं हुई थी, वैसे ही कोई इच्छा भी नहीं हुई थी।

छोटे मालिक की नींद देर से खुलती है। ऐसी ही आदत है। कालीगंज थाने में एक कांस्टेबुल था 'पांडे'। वह छोटे मालिक का खाना पकाता था। भोर के समय चाय बनाकर छोटे मालिक को देता था और जगाता था।

इस घर में जगाने वाला कोई सिपाही नहीं है, इसीलिए उस दिन छोटे मालिक के उठने में जरा ज्यादा ही देर हुई। आंखें खोलकर उन्होंने चारों ओर देखा, कमरे में रोशनी थी, मगर कोई दूसरा न था। क्या उन्होंने इस कमरे में अकेले रात बिताई है? उनकी नजर बगल के बिस्तर पर गई। उस समय वहां कोई न था, फिर भी यह समझने में उन्हें जरा भी मुश्किल न हुई कि वह बिस्तर खाली नहीं था। कोई व्यक्ति वहां सोया था। तकिए

के बीच में जो एक हल्का-सा गड्ढा है और रजाई की तह में एक दुबले-पतले शरीर का जो हल्का-सा हस्ताक्षर दिख रहा है, वह यों ही नहीं है। और जो वह लंबा निष्प्राण बाल का टुकड़ा वहां पड़ा है वह और किसका हो सकता है? छोटी बहू के अलावा और किसी का नहीं हो सकता! इसका मतलब है, छोटी बहू रात में आई थीं। उनकी बगल में सोई भी थीं। इसके बावजूद उनका वहां होना छोटे मालिक के लिए न होने जैसा ही बना रहा? जैसे पिछले दस वर्षों से बना रहा है। बड़ी मजेदार बात है। छोटे मालिक को उस मछली मारने वाले पगलेट सज्जन की कहानी याद आ गई। वे सारा दिन चारा लगाकर छीप पकड़े पोखर के किनारे बैठे रहते, पर पता नहीं क्यों जिस क्षण मछली आकर उनका चारा निगलती उस क्षण वे थकान से सो जाते। नतीजा यह होता कि रोज ही जब उनकी आंखें खुलतीं तो वे देखते कि मछली उनकी छीप लेकर भी चली गई है। क्या छोटे मालिक को भी वैसी ही मनोदशा ने आ घेरा है? उन्हें पता ही न चला, कब छोटी बहू आई और कब चली गई?

खैर, यह सब सोचकर बेकार में समय नष्ट करने का कोई कारण छोटे मालिक को दिखाई न पड़ा। वक्त काफी हो गया था। छोटे मालिक एक झटके में उठ खड़े हुए। आंख खुलते ही चाय पीने की आदत ने उनका मिजाज थोड़ा बिगाड़ दिया था।

खिन्न होकर बाहरी बैठक में आए तो रामकिष्टो से उनकी मुलाकात हो गई। रामकिष्टो बोला, "छोटे मालिक, आपने जैसा कहा था, मैं खबर दे आया।"

'किस बात की खबर?' छोटे मालिक को ध्यान नहीं आया। एक पल बाद उन्हें याद आया, कुछ लोग इस गांव में दंगा कराना चाहते हैं। और याद आते ही सिर से पांव तक उनकी देह से लपटें निकलने लगीं।

अचानक छोटे मालिक को लगा, यह गांव, इस घर के लोग, यहां तक कि इस मकान के कमरे और दालान तक जैसे उन्हें दबाकर रखना चाहते हैं। उन्हें दबाकर रखने में जैसे इन्हें खुशी होगी। कल घर आने के बाद से आज तक जो-जो घटनाएं घटी हैं उनका शुरू से अंत तक लेखा-जोखा लगाने लगे छोटे मालिक। घर आकर उन्होंने बूड़ी के बच्चे को बड़े मन से दुलार करने के लिए गोद में लिया तो बदले में उस छटंकी ने क्या कर दिया? उन्हें परेशान ही तो किया। यह हुआ एक नंबर खेल। दो नंबर का खेल इस मकान को लेकर हुआ। इस मकान ने भी उन्हें ठगा। मकान को देखकर उनके मन में जो भी अच्छे विचार उठे थे, उनके कारण नवीन के यहां जा पाने का समय उन्होंने गंवा दिया और एक दूसरी धोखेबाजी में पड़कर शाम की मौज-मस्ती से वंचित हो गए। उस अवसर का पूरा सदुपयोग किया बड़े भैया ने। छोटे मालिक की अन्यमनस्कता का लाभ उठाकर उन्होंने उसे पासे के खेल में हरा दिया। यह हुआ तीन नंबर का खेल। चार नंबर के खेल में मुल्जिम थीं स्वयं छोटी बहू। कल रात उन्होंने उनके साथ कैसा अद्भुत छल किया !

यह तो हुई वर्तमान की बात। क्या अतीत में गोपाल दासी ने उन्हें बुद्धू नहीं बनाया था? अब क्या बूदो और गहर साले भी एकजुट होकर उन्हें परेशान नहीं कर रहे हैं? भविष्य में उन्हें परेशान करने का भार इन सालों ने उठा लिया है। ठीक है, चखाता हूं मजा।

कल शाम से ही जो असंतोष, जो असुविधा, जो विरक्ति थोड़ा-थोड़ा करके मन में जमा हो रही थी, वह अब एक स्पष्ट लक्ष्य पाकर क्रोध का आकार धारण करने लगीं। सारा गुस्सा बूदो और गहर पर ही आ पड़ा। सालो, तुम्हारी दंगा करने की साध इस बार अच्छी तरह मिटाता हूं !

छोटे मालिक ने एक झटके में अपने भीतर के उस घरेलू भले मानुष को एक किनारे फेंक दिया और उसकी जगह मूंछें उमेठता हुआ पराक्रमी और दुर्दांत दारोगा आ खड़ा हुआ, जिसका शरीर पिटे हुए लोहे का वना हुआ था, जिसका आकार महिषासुर की तरह भयंकर था और जिसकी दोनों आंखें अंगारों की तरह लाल थीं।

उठकर खड़ा होते ही छोटे मालिक ने जोरदार हांक लगाई, जैसे बिजली गिरी हो, "रामकिष्टो, घोड़े की पीठ पर जीन बांध दे।"

इतना कहकर वर्दी पहनने के लिए वे घर के अंदर गए। खाकी हाफ शर्ट, हाफ पैंट और खाकी फुल मोजा ! चौड़ी बेल्ट कमर में बांधते ही मन के अंदर जो गिजगिजाहट का भाव था वह बहुत-कुछ दूर हो गया। वह पोशाक पहनकर केवल देह नहीं, उनका मन भी फिट-फाट हो उठा। क्रास-बेल्ट पहनकर भारी बूट पांवों में डालते ही मन ने कहा, किसी साले की परवाह नहीं। जरा भी तिड़बिड़ किया तो लात मारकर मुंह तोड़ दूंगा। इस समय मैं न किसी का बाप हूं, न किसी का चाचा और न ही दादा। प्रेम के जल में गले तक भीगा थप-थप करता मिट्टी का पुतला भी नहीं हूं। मैं एक दारोगा हूं। महामना सम्राट बहादुर जार्ज पंचम का एक दारोगा, जिसके राज्य में सूरज नहीं डूबता। मैं उसी का बंदा हूं, उसके द्वारा स्थापित ला ऐंड आर्डर का सदा जागते रहने वाला, कर्तव्यपरायण रक्षक।

छः गोलियों वाली पिस्तौल को कमर से लटकाकर, तमगा लगा एक खाकी रंग का पुलिसिया हैड सिर पर रखकर बाहर निकलने ही वाले थे कि उनकी निगाहें शुभदा से जा मिलीं।

शुभदा ने अवाक होकर पूछा, "ओ शीतू, यह क्या, जा कहां रहा है? खा के जाना। अभी थाली लगाती हूं।"

भारी गले से छोटे मालिक ने कहा, "अभी रख दो। समय नहीं है। वापस आने में देर हो सकती है।"

शुभदा और कुछ कहतीं इसके पहले ही छोटे मालिक उनकी बगल से निकल गए। एक पल बाद ही भौंचक शुभदा के कानों में घोड़े के टापों की आवाज आई और धीरे-धीरे हवा में मिल गई।

सोलह

छोटे मालिक अगर इतना कुछ न करते तो भी चलता। अंग्रेजी वर्दी धारण न करते तो भी कोई क्षति न थी। इस गांव के सभी लोग उनसे परिचित हैं। सभी को वे अच्छी तरह जानते-पहचानते हैं। गांव की हाट भी दीवान कोठी से ज्यादा दूर नहीं है। घोड़े पर चढ़कर जाने का भी कोई प्रयोजन न था।

मगर छोटे मालिक उस समय पड़ोसी का धर्म निभाने नहीं जा रहे थे। न दावत खाने जा रहे थे और न ही किसी महफिल में हिस्सा लेने ही। वे सीधे-सीधे सरकारी काम निबटाने जा रहे थे। ऐसे समय आचार-व्यवहार और पोशाक में तिल बराबर कमी भी वे नहीं रखना चाहते, जिससे कहीं बेटा लोगों का मन न बढ़े। जिससे बेटा लोग यह न सोचें कि अरे, यह तो हमारे छोटे बाबू हैं, अरे, ये तो हमारे ही गांव के आदमी हैं और ऐसा सोचकर दांत फैलाए उनकी हुक्मउदूली की कोशिश कर सकें। इससे घटना का महत्व कम हो जाएगा। और बेटा लोग इस अवसर का फायदा उठाकर चेंगड़ी मछली की तरह इधर-उधर फिसल जाएंगे। इसके बाद इधर-उधर बैठकें करेंगे और पान तंबाकू उड़ाते हुए उनका मजाक भी उड़ाएंगे, उन पर व्यंग्य करेंगे और मुंह बिचकाकर एक-दूसरे से कहेंगे, "क्यों? क्या कर लिया तुम्हारे शीतल दारोगा ने? हमारा क्या बिगाड़ लिया? हाय ! बेचारे की मुराद पूरी न हुई। हाः हाः हाः !"

छोटे मालिक ने कल्पना में यह सब कुछ साक्षात देख लिया। उनकी बैठकें देख लीं, उनकी खुसर-पुसर अपने कानों से सुन ली। कढ़ाई के तेल में बैगन के पड़ने से जो छनछनाहट उठती है, वैसी ही आग उनके पूरे शरीर में दौड़ गई।

नहीं, वे इन सालों को कोई मौका नहीं देंगे। कोई प्रश्रय नहीं देंगे। इस समय वे एक दारोगा हैं। यहां भी वे दारोगा ही हैं। वे कैसे दारोगा हैं इसका अंदाजा वे बूदो, मिद्दा और इस अंचल के सभी छंटे हुए बदमाशों को कराकर ही दम लेंगे।

गुस्से में उन्होंने घोड़े के पेट में अपने भारी बूटों की एक ठोकर मारी। घोड़ा हवा में उड़ चला। डिस्ट्रिक्ट बोर्ड की टूटी-फूटी सड़क से घोड़े के टापों की मार धूल के बगूले उठाने लगी।

पर्दे के पीछे रहकर जो लोग खिचड़ी पकाने में बड़े चतुर हैं उन्हें लक्ष्य करके छोटे मालिक ने मन ही मन कहा—अभी तक तुम लोगों ने सिर्फ उल्लू देखे हैं, अब देखना असली दारोगा का फंदा किसे कहते हैं।

हाट के पास आकर घोड़े के पेट में भारी जूतों की एक एंड़ और लगी। घोड़ा चोट खाकर दर्प के साथ छलांग मारता हुआ नयानजुली पार करके हाट में घुस पड़ा। उसके टापों की खटखट-खटखट दुकानों की टिन की छतों पर प्रतिध्वनित होने लगी। एक

बड़ा-सा बतख लुढ़कता हुआ चला आ रहा था कि अचानक खटखट-खटखट की आवाज से चौंककर कौंक-कौंक करता हुआ भाग खड़ा हुआ। कबूतरों का एक दल झुंड बनाकर एक जगह दाना खा रहा था। आवाज सुनकर वे भी झप से उड़ गए। दो बिल्लियां गुर्रा-गुर्रा कर एक-दूसरे पर झपट रही थीं, वे भी भागीं। एक घायल कुत्ता गोपी मयरा की दुकान के सामने जमीन पर पड़ा छेने का पानी चाट रहा था। उसने भी एक बार चौंककर सरपट दौड़ते घोड़े की ओर देखा।

जो लोग हाट में झाड़ू लगा रहे थे उन्होंने झाड़ू चलाते-चलाते तिरछी निगाहों से छोटे मालिक को एक बार देखकर झाड़ू लगाना जारी रखा। अग्रवाल अपनी गद्दी पर बैठकर हिसाब लिख रहा था। दारोगा को घोड़े पर सवार होकर तीर की तरह अपनी गद्दी की तरफ आते देखकर वह डर गया। उसने कोई अपराध नहीं किया था, कोई कानून नहीं तोड़ा था, फिर भी उसकी छाती हिल उठी। और वह अवश्यंभावी फालतू खर्च की एक बड़ी रकम अपनी बही में दर्ज करने के लिए मन ही मन तैयार हो गया। उसे मालूम है कि दारोगा के आने का मतलब ही है अपनी गांठ ढीली करना।

यहां पर अग्रवाल एक विचित्र परिवेश के बीच रहता है। उसका किसी के साथ न मेल है, न झगड़ा। जरूरत पड़ने पर पैसों के लिए सभी उसके सामने हाथ फैलाते हैं। चुकाने के मामले में सभी आनाकानी करते हैं। यहां पर न उसका कोई भाई बंधु हैं, न समाज। केवल कानून उसका रक्षक है। इसीलिए स्थानीय अधिकारियों के पांवों पर दंडवत गिरने में वह पलक भी नहीं झपकाता। उन्हें नजराना पेश करके संतुष्ट रखता है। अग्रवाल को देखकर कोई यह नहीं समझ सकता कि पूरे गांव को खरीदने भर को पैसे उसके पास हैं। मगर इस मामले में उसे कोई घमंड नहीं है। कंजूसी और चौकन्नापन—अपने हृदय की इन्हीं दोनों प्रवृत्तियों की धार में अपनी जीवन-नौका को डालकर पाल खोले बैठा है। वह जानता है, यहां के सभी लोग उससे मन ही मन घृणा करते हैं, मगर उसके पास किसी से घृणा करने का भी वक्त नहीं है।

किसी प्रकार की हील-हुज्जत न करके, जो अवश्यंभावी है उसके लिए वह अपने को तैयार करने लगा। उस गरीब के ऊपर ज्यादा जुल्म न हो, इसके लिए जरूरत पड़ने पर वह दारोगा के पांवों पर गिरने को भी तैयार था। गर्दन ऊंची करके, सिर झुकाए बिना लड़ाई की जा सकती है, जान दी जा सकती है, मगर बिना बंधु-बांधवों के, बिना किसी सहारे के परदेश में व्यापार नहीं किया जा सकता, व्यापार करके लखपति नहीं हुआ जा सकता। मूर्ख की तरह बहादुरी दिखाकर, जान देकर खाली ताली बजवाई जा सकती है, मुट्ठियों में चांदी के सिक्के नहीं भरे जा सकते। इस काम में वीरता की नहीं, धीरज की जरूरत है। इसमें मान-सम्मान की रक्षा के लिए प्राण देने से काम नहीं चलता, उल्टे प्राण की रक्षा के लिए सम्मान खोना ही ठीक होता है। अग्रवाल जानता है, सम्मान खोने से

कुछ भी नहीं खोता, असली खोना है नगद-नारायण का खोना। इसीलिए वह मन ही मन हर संभव परिस्थिति के लिए तैयार हो गया।

मगर नहीं, उसने जो कुछ सोचा था वह नहीं हुआ। दारोगा का घोड़ा अग्रवाल की गद्दी के सामने नहीं रुका, सनसनाता हुआ आगे बढ़ गया। बरगद के बड़े पेड़ की बाईं ओर से आधी हाट का चक्कर काटकर घोड़े ने विश्वेश की दुकान की तरफ मुंह फिराया। मगर वहां भी रुका नहीं। विश्वेश की गद्दी के पास से सीधा पूरब की ओर चला गया। जाकर रुका मिद्दा साहब के यहां।

भक्त दफादार जानता था, दारोगा साहब का घोड़ा हाट में घुसकर सीधे दौड़ता हुआ प्रेसीडेंट साहब के यहां आकर खड़ा हो गया है। इसीलिए वह पहले से ठीक जगह पर खड़ा था। इरादा था कि दारोगा साहब का घोड़ा ज्यों ही वहां रुकेगा वह आगे बढ़कर उसकी लगाम पकड़ लेगा। इज्जत के साथ वह दारोगा साहब को प्रेसीडेंट साहब की गद्दी पर ले जाएगा। घोड़े से उतरने में उन्हें सहारा देगा। तभी तो पता चलेगा कि वह उनका कितना ख्याल रखता है। उसकी नौकरी पक्की रहेगी। मुलाजिमों का दस्तूर भी यही है।

इसीलिए वह निश्चिंत होकर हाट के कोने पर खड़ा था। मगर जब उसने देखा कि दारोगा साहब का घोड़ा गोपी मयरा की दुकान के बराबर न आकर, दाहिनी ओर दौड़ा जा रहा है, तो उसके सिर पर जैसे गाज गिरी। धत्तेरे की ! दारोगा साहेब उधर कहां जा रहे हैं? भक्त घोष अपना झोला-झंटा, बेल्ट-पगड़ी संभालता हुआ घोड़े के पीछे-पीछे भागा, मगर घोड़ा तो हवा से बातें कर रहा था, उसका पीछा कौन कर सकता था?

भक्त घोष हड़बड़ाता हुआ अग्रवाल की गद्दी के सामने से निकला जा रहा था कि अग्रवाल ने उसे हांक लगाई।

"अरे भाई दफादार, जरा सुनो तो ! मामला क्या है, जरा बताते जाओ? दारोगा साहब तो नए लग रहे हैं? बदली होकर आए हैं क्या?"

मारवाड़ी से तीज-त्योहार पर भक्त घोष को अच्छा ही इनाम मिलता है। इसीलिए उनकी पुकार को अनसुनी करके निकल जाना भी संभव न था, मगर उधर घोड़ा भी नजरों से ओझल हो जाना चाहता था।

उसने जल्दी से मुंह पर एक हाथ रखकर दौड़ते हुए जवाब दिया, "अरे मारवाड़ी बाबू, अभी क्या सांस लेने का समय है? हमारे नए दारोगा साहब ने जबरदस्त इन्क्वाइरी शुरू की है। वे इसी गांव की दीवान कोठी के छोटे मालिक है। पहली दफा अपने थाने में आए हैं। बड़ा कड़ा मिजाज है इनका। आज जो न हो जाए सो थोड़ा?"

बेचारे मारवाड़ी को थोड़ा और दहलाकर भक्त दफादार अपने रास्ते चला गया। विश्वेश की दुकान के सामने से जब वह निकल रहा था, तब बूदो, निरापद और दूसरे कुछ लोग चिल्ला उठे, "ओ भक्त, ओ दफादार, जरा सुन जा भाई। बता तो मामला क्या है?"

मगर भक्त एक पल भी न रुका, पहले ही बहुत देर हो गई थी। इसके अलावा वह जानता ही क्या है कि बताए? मगर वह दफादार है और दारोगा साहब की गतिविधियों के बारे में कितना जानता है, कितना नहीं जानता, यह बात बाहरी लोगों को क्यों बताने जाएगा?

इसीलिए एक पल भी बिना रुके, दफादारी तरीके से उनकी तरफ हल्के से गर्दन मरोड़कर बोला, "मामला बहुत गंभीर है, महाशय। तैयार रहिए। वक्त पर सब मालूम हो जाएगा।"

इसके बाद धड़धड़ाता हुआ वह मिद्दा साहब की गद्दी की ओर निकल गया।

बूदो भुइयां की जान सांसत में डाल गया। भोर में रामकिष्टो ने आकर कहा था कि दारोगा साहेब ने उसे विश्वेश की दुकान पर रहने को कहा है। तभी से बूदो भुइयां के मन में सुइयां चुभ रही थीं। पता नहीं यह कैसा आदमी है ! बूदो को अपने घर भी तो बुला सकते थे। वैसा न करके यहां बुलाने का क्या मतलब हो सकता है? निरापद को भी यहीं आने को कहा गया है।

आतंक की एक अस्पष्ट छाया बूदो के मन में चक्कर खाने लगी। भला उसके साथ दारोगा साहब का क्या काम हो सकता है? उसे यहां आने के लिए क्यों कहा गया है? और फिर वे इस तरह घोड़े पर सवार पूरी हाट का चक्कर क्यों लगा रहे हैं? दुकान के सामने घोड़े के आते ही दारोगा साहब का स्वागत करने के लिए लोग दरवाजे के सामने खड़े थे। बूदो भुइयां ने मन ही मन तय किया था—छोटे मालिक के घोड़े से उतरते ही वह आगे बढ़ जाएगा और 'अरे छोटे चाचा आइए, आइए' कहकर उन्हें भीतर ले जाएगा। चिलम लाने के लिए नौकरों को पुकारेगा और किसी से घोड़े को बांधने के लिए कहेगा। मगर छोटे मालिक ने उनकी तरफ एक नजर भी न डाली। न रुके ही, यहां तक कि घोड़े की रफ्तार भी कम न की। इसका मतलब क्या है? उसके बाद भक्त दफादार आया। वह भी उसकी तरफ तिरछी निगाहों से देख रहा था। यह क्यों? बूदो भुइयां की धारणा थी कि भक्त ने केवल उसकी ओर देखा था। उसने तैयार रहने को क्यों कहा? तैयार रहने का क्या मतलब है? नहीं, कुल मिलाकर मामला कुछ टेढ़ा ही नजर आ रहा है। अचानक बूदो को लगा कि उसकी एक आंख तेजी से फड़क उठी है। कौन-सी आंख फड़की? मगर वह यह तय कर पाता इसके पहले ही आंख का फड़कना बंद हो गया। क्या मुश्किल है? दाहिनी आंख फड़की या बाईं, यह भी उसे याद नहीं आ रहा है। मर्द की दाहिनी आंख का फड़कना अच्छा होता है, बूदो यह बात जानता है। अगर बूदो निश्चित रूप से जान पाता कि उसकी दाहिनी आंख ही फड़की है तो वह निश्चिंत हो जाता। मगर उसे ख्याल न रहा। उस समय वह जिस मनःस्थिति में था उसमें यह छोटी-सी बात भी उसे परेशानी में डाल गई थी। फिर बूदो ने सब चिंताओं को झाड़कर पूरे मनोयोग से इस बात पर ध्यान लगाया कि उसकी आंख फिर कब फड़कती है और फड़कती है तो कौन-सी? जैसे उसका जीना-मरना आंखों के फड़कने पर ही निर्भर हो।

इधर बूदो भुइयां इतनी देर तक अपने को अटकाए रख सका, इसका उसे ध्यान न था। गोपाल का भतीजा गदाधर पसीने-पसीने होता हुआ दुकान में घुसा और जोर से बोला, "अरे कमाल हो गया। आज मिद्दा साहब की दुकान में जैसे भूकंप हो रहा है। हमारे छोटे बाबू दारोगा साहेब गहर और सुलेमान का ऐसा हाल कर रहे हैं कि मिद्दा साहब तक थर-थर कांप रहे हैं।"

यह बात सुनते ही बूदो की छाती पर से पहाड़ उतर गया और उसने निश्चिंतता की सांस ली।

बूदो समझ गया कि छोटे मालिक का इरादा क्या है? बूदो ने रामकिष्टो से सुना था कि छोटे मालिक बदली होकर इसी थाने में आ गए हैं। गहर और सुलेमान को वे झाड़ रहे हैं, इसी से यह बात साफ हो जाती है कि मामला निरापद के साथ हुए झमेले को लेकर ही है।

बूदो ने हंसते हुए कहा, "कुछ समझे, गोपाल? हमारे छोटे चाचा जैसे हवा से खबर पकड़ते हैं।"

निरापद ने कहा, "क्या बात है, बूदो भैया? छोटे बाबू मिद्दा के यहां इतनी उठा-पटक क्यों कर रहे थे? मामला क्या है?"

बूदो ने ऐसा चेहरा बनाया, जैसे वह सब जानता है और उससे पूछकर ही छोटे मालिक मिद्दा के यहां गए हैं।

निरापद को आंख मारकर उसने कहा, "यथा धर्म तथा जयं अर्थात धर्म की पताका ही हवा में उड़ती है। अभी चुप मारे बैठे रहो। अभी तो छोटे चाचा साले नसकटों की उल्टे छुरे से हजामत बना रहे हैं। उनकी छुट्टी करके उस जवांमर्द को यहां आने तो दो, सब पता चल जाएगा। मुझे उन्होंने पहले से ही यहां आने को कह दिया था, तभी मैं समझ गया था कि आज कुछ होने वाला है। ऊपर से सवेरे से ही दाहिनी आंख फड़क रही है। अरे कोई है? जरा तंबाकू चढ़ा तो।"

चिलम आने पर बूदो ने छाती में पूरी सांस भरकर कश खींची। फिर थोड़ी देर आंखें बंद किए धुएं को अंदर ही रोककर आनंद लेता रहा।

तभी निरापद उसके पास आया और सटकर बैठ गया।

फिर मुस्कराते हुए उसने कहा, "तो इसका मतलब है कि इस बार बहिन-दामाद के सिर पर ही यह गाज गिरी, क्यों?"

निरापद की बात पर दुकान में बैठे सभी लोग हंस पड़े।

बूदो ने भी हंसते हुए कहा, "मजाक तो अच्छा रहा। छोटे चाचा का हमारे थाने में आना अच्छा ही हुआ। सिर पर अपने आदमी की छाया हो तो आदमी की ताकत दूनी हो जाती है। क्या कहते हो?"

"सोलहों आने सही है।" सभी ने सिर हिलाया।

उसी समय भक्त घोष ने आकर सरकारी सुर में घोषणा की, "बड़े बाबू आ रहे हैं।"

बूदो ने चुटकी ली, "ये बड़े बाबू कौन हैं हो?"

भक्त घोष ने यथासंभव सरकारी वर्दी की इज्जत बनाए रखते हुए नीरस स्वर में कहा, "दारोगा साहब और कौन।"

बूदो ने हंसते हुए कहा, "तुम लोगों के लिए जो बड़े बाबू हैं, वे हमारे लिए छोटे बाबू हैं, समझे दफादार?"

इस बात का भक्त कोई तीखा जवाब देने जा रहा था, मगर तभी छोटे मालिक वहां आ पहुंचे, तो वह चुप मारकर एक किनारे खड़ा हो गया। पुलिसिया बूटों को मचमचाते हुए छोटे मालिक दुकान में दाखिल हुए। हंसकर बूदो ने कहा, "आइए आइए, छोटे बाबू।" और आगे बढ़ आया।

छोटे मालिक ने तुरंत बेहद रूखे स्वर में जवाब दिया, "पट्टीदारी रहने दो।"

छोटे मालिक की बात सुनकर बूदो की ऐसी हालत हुई, जैसे उसकी धोती खुलकर नीचे गिर गई हो। गोपाल को लगा, आठ कमरों वाले उसके टिन से छाए मकान की दीवारें हिल गई हों। सबसे ज्यादा भौंचक्का हुआ निरापद। एक पल पहले बूदो का भरोसा करके वह जिस पक्की जमीन पर खड़ा था उसे एक ही डांट में छोटे मालिक ने उसके पैरों तले से खिसका दिया था। वह केवल आंखें फाड़े बूदो का मुंह देखता रह गया।

छोटे मालिक ने बूदो को एक और रगड़ लगाई, "लगता है, तुम अपने को बहुत बड़ा दादा समझने लगे हो, पंख उग आए हैं क्या, क्यों? जानते नहीं, चींटियों को पंख कब उगते हैं?"

हां, जानता क्यों नहीं। चींटियों को मरने के पहले पंख उगते हैं। यह बात बूदो जानता है और इस जानकारी ने ही उसे और भी असमंजस में डाल दिया। वह कैसे ऐसा खतरनाक जवाब दे?

उस समय बूदो का दिमाग एकदम सुन्न पड़ गया था, शरीर का रक्त जैसे सूख गया था और दोनों घुटने कांपने से लगे थे।

छोटे मालिक ने एक और रगड़ लगाई, "चींटी के पंख उगते हैं, जब उसकी मौत आती है। इतनी कम उम्र में तुम लोगों की मरने की साध कैसे हुई? लगता है, जेल का मुंह देखे बिना मानोगे नहीं? दंगा कराने के लिए तुम लोगों ने जो कमर कस ली है उसमें अब रस्सी पड़ेगी।"

निरापद की आंखों के सामने अंधेरा छा गया था। बूदो वगैरह तो पार पा जाएंगे। मरेगा वही। गलती तो उसी ने की है। सिपाही उसकी कमर में रस्सी बांधकर दस लोगों की आंखों के सामने से उसे ले जाएगा। मगर निरापद का दोष क्या है? हाट में कोई नया

तो उगाही करने गया नहीं था वह? उगाही देने में सभी साले ना-नुकुर करते हैं, मगर सबकी बात वह मान ले ते निरापद बिना खाए मर जाएगा। गोपाल तो सिर्फ उसे दो रुपए महीना देता है। दो रुपयों से किसका पेट पल सकता है? इसके अलावा निरापद का नशा-पानी का खर्च अलग है। गोपाल साहू निश्चय ही उसका मित्र है, उसके नशा-पानी का रोज का खर्चा वही चलाता है। निरापद को नगद पैसे गिनकर नहीं देने होते, मगर भूपाल साहू का व्यापार है शराब बेचना, वह कोई दानछत्र तो खोलकर बैठा नहीं है, इसीलिए निरापद उसके बाजार का खर्चा चला देता है। इसके अलावे वह हरामजादी केष्टो दासी भी तो है। उसका भार भी तो मेरे ही ऊपर है। अच्छी चीज की गंध पाते ही साली के मुंह में पानी भर आता है। उसी रंडी के कारण तो निरापद को ये जूते खाने पड़ रहे हैं। और फिर उस साले सुलेमान को ही अपनी लाटसाहबी किस बात की चढ़ी है? हाट का किराया तो सभी को देना पड़ता है, भला कोई गुमाश्ता के साथ मारपीट करता है?

किंतु ये सब तर्क दारोगा साहब के सामने टिकेंगे! वे तो ऐसे खाने को दौड़ते हैं कि उनके सामने जबान खोलना भी मुश्किल है। यहां तक कि बूदो बाबू की भी उनके सामने कुछ न चली। बूदो जैसा चौकस आदमी, दारोगा साहब के साथ इतनी आत्मीयता है (जैसी आत्मीयता है वह तो दिखाई पड़ ही गई है), डर से उनकी भी घिग्घी बंध गई। लग रहा था जैसे किसी बिलौटे के सामने छोटा-सा चूहा हो। उनके लिए तो निरापद एक कीड़े के भी बराबर नहीं है। इस झमेले को शुरू करने तो बूदो ही आगे बढ़ा था। गोपाल को भी उसने ही ताव चढ़ाया था, सारी व्यवस्था और बंदोबस्त उसी की करामात है। कल जो लोग निकिरि लोगों की हाट को छत्रभंग करने के लिए आने वाले हैं उन्हें आज ही बुलाकर गोपाल की दुर्गावाड़ी की छत बनाने के काम में लगा दिया गया है। बूदो है बड़ा उस्ताद आदमी, मगर अब? इस आदमी के सामने लगता है कोई चाल नहीं चलेगी। ठीक है, जैसा किया है, वैसा भरो। बैठे-बैठे सिर नीचा किए दारोगा के जूते खाओ। एक बार निरापद का मन हुआ कि वह सब कुछ बोल दे और दारोगा के पांव पकड़कर अपनी गलती की मांफी मांग ले। मरे साला बूदो। मगर मुश्किल यह है कि इस मामले में गोपाल भी फंस रहा है। बाप रे! गोपाल अगर नाराज हो गया तो इस गांव से हमेशा के लिए उसका अन्न-जल उठ जाएगा। यही सोचकर निरापद चुप हो गया। वह साफ समझ गया कि उसकी हालत सांप-छछूंदर की-सी हो गई है। आगे खाई, पीछे खंदक। भोकार छोड़कर रोने का मन हुआ उसका। उसने मन ही मन जटाधारी शिव का स्मरण किया। इस बार उद्धार कर दो, बाबा, पूजा के दिन एक बोतल असली माल तुम्हें अर्पण कर प्रसाद लूंगा।

गोपाल चुपचाप बैठा सोच रहा था कि यह खबर थाने तक पहुंची कैसे? देख रहा हूं, झमेला कुछ ज्यादा ही बढ़ गया है। छोटे मालिक इस थाने में बदली होकर आए हैं, यह खबर

भी तो उसे किसी ने नहीं दी। कितना अच्छा मौका था! इसी मौके का फायदा उठाकर वह सरकारी महकमे में अपनी जगह बना सकता था। अपनी धाक जमा सकता था। ओह! कितना बड़ा मौका मिला था उसे! इन सब उल्लुओं के कारण सब कुछ बरबाद हो गया। गोपाल को बहुत अफसोस हो रहा था। मन ही मन उसे गुस्सा भी आ रहा था। इस बूदो की वजह से कोई काम चुपचाप कर लेना भी मुश्किल है। दिन-रात धर्मराज के भेड़े की तरह सींग उठाए चारों ओर घूमता रहता है। अब कहीं अगर यह गंवार दारोगा भनक पा जाए कि लठैत उसके घर में मौजूद है तो फिर जो न हो जाए वही थोड़ा। और उसे इसकी भनक नहीं लगी है यही कौन कह सकता है? साथ में एक भी सिपाही नहीं है। इसी बीच इसने उन्हें मेरे घर पर तैनात नहीं कर दिया है इसका ही क्या ठिकाना?

गोपाल ने ठंडे दिमाग से अपना कर्तव्य तय किया। काम के बहाने वह दुकान के पिछवाड़े की तरफ गया। उसने इशारे से अपने भानजे को बुलाया। फुसफुसाकर उससे कहा, "घर जाकर देख, अगर सिपाही घर को घेरे है तो उनसे कहना, दारोगा साहब ने कहलवाया है कि वे अभी आ रहे हैं। इतना कहकर तू वहां से नील बागान चले जाना। सारी लाठियां नदी में फेंक देना। इसके बाद घर छाने के काम को लेकर थोड़ी देर उनके साथ गाली-गलौज करना। पिताजी को जल्दी से दुकान भेज दे और अगर देखना कि घर के आसपास कोई सिपाही नहीं है तो सभी लठैतों को पैसे देकर विदा कर देना। जा, देर मत कर, मेरी साइकिल ले ले।"

भानजे को पीछे के दरवाजे से विदा करके गोपाल कपड़े की दुकान में कामकाज देखने लगा। बूदो को इस तरह बाघ के मुंह में असहाय छोड़कर चले आने के कारण उसके मन में थोड़ा पछतावा हो रहा था, मगर आत्मरक्षा भी तो धर्म है।

अब बूदो तोप के मुहाने पर एकदम अकेला था। एक बार शायद मिनमिना कर उसने कहा था कि उसने कोई गलत काम नहीं किया। "उसके समाज को कुछ लोग धमका कर अपमानित करना चाहते हैं। उनकी धमकी से समाज के सम्मान की रक्षा के लिए ही उसने तत्परता दिखाई है।"

इसके उत्तर में छोटे मालिक ने उसे इतनी जोर से डांटा कि बूदो की आवाज उसके मुंह में ही जम गई।

"खूब लंबी-चौड़ी बातें करना सीख गए हो, ऐं !..."

छोटे मालिक की बातें, बातें नहीं, जैसे बुलेट की तरह निकल रही थीं।

"समाज की सम्मान-रक्षा का भार तुम्हारे कंधों पर किसने डाला, बता तो जरा? तुम्हारी बातें सुनकर तो ऐसा लग रहा है जैसे यहां तुम्हारा ही राज है। तुम भूल ही गए कि यहां जार्ज पंचम का राज है। यहां किसी तरह की बदमाशी नहीं चलेगी। नियम-कानून बनाए रखने के लिए उन्होंने मेरे जैसे कुछ तुच्छ व्यक्तियों को तनखा देकर पाल रखा है। मैं चेतावनी

देता हूं, यहां कोई हरामजदगी नहीं चलेगी। जमाना बहुत ही खराब है। जरा भी तिड़बिड़ किया नहीं कि सभी को बी.एल. केस में फंसाकर अंदर ठेल दूंगा। चक्की पीसने में कितना मजा है, कुछ दिनों में इसका भी अंदाजा लग जाएगा। सारी दादागीरी झड़ जाएगी। रुको, आज ही इसकी पक्की व्यवस्था किए देता हूं।"

छोटे मालिक ने इतना कहकर हांक लगाई, "दफादार !"

भक्त घोष ने लंबी सलामी दी और अटेंशन में खड़े होकर बोला, "जी हुजूर !"

अब बृदो भुइयां वाकई आतंकित हो उठा।

निरापद अब अपने को संभाल न सका और बोला, "धर्म से कह रहा हूं, हुजूर, मेरा कोई दोष नहीं है। इन सब मामलों में मेरा जरा भी हाथ नहीं है। मां कसम। जटाशिव का माथा छूकर भी कसम खा सकता हूं। लीजिए आपके पांव छूकर कहता हूं, मैंने कुछ नहीं किया।"

निरापद ने छोटे मालिक के दोनों पांव जकड़ लिए और भोकार छोड़कर रो पड़ा। बृदो भुइयां के हाथ भी अनजाने में दारोगा के पांव पकड़ने को कसमसा उठे।

मगर वह संभल गया। आखिर शीतल उसके खानदान का लड़का है। उसने कहा, "हुजूर, सचमुच मैंने कोई गैरकानूनी काम नहीं किया है। आप चाहें तो गोपाल से पूछ लें।"

अब जाकर बाबू लोगों की नसें ढीली हुई, छोटे मालिक ने सोचा और उनके मन में जमा हुआ गुस्सा कम होने लगा। कहा भी तो है ! मुल्ला की दौड़ मस्जिद तक। मिद्दा का भी आज मिजाज सही कर दिया। छोटे मालिक के मन में रह-रह कर जश्न मनाने का इरादा सिर उठा रहा था। तभी उनकी नजर फर्श पर सिकुड़कर बैठे निरापद की ओर गई। कुत्ता, लेंड़ी कुत्ता ! चाटो, पांव चांटते रहो। फिर उनकी नजर बृदो पर पड़ी, जो अपने दोनों हाथ लगातार मसले जा रहा था। छछूंदर कहीं का ! खैर, छोड़ो। अब उनका गुस्सा काफी कम हो गया था। उन्होंने मूंछों पर ताव दिया।

फिर चारों ओर देखकर छोटे मालिक बोल उठे, "साजिंदों को यहां छोड़कर असली गवैया महाशय कहां गए? लगता है, मेरा चेहरा गोपाल बाबू को पसंद नहीं आया?"

"जी, मैं तो यहीं हूं। कहिए, क्या आज्ञा है?" जल्दी से गोपाल दौड़ता हुआ आया।

"क्यों, यह सब क्या सुन रहा हूं?" छोटे मालिक ने पूछा।

गोपाल ने बहुत विनम्र भाव से कहा, "अब गुस्सा छोड़िए। मैं आपको विश्वास दिलाता हूं कि हमारे रहते यहां कोई अघटन नहीं घटेगा। आदमी भेजकर पिताजी को बुलवाया है। आने ही वाले हैं।"

छोकरा तो बड़ा चालू लग रहा है। बड़े हिसाब से बातें कर रहा है। गोपाल का धीर-स्थिर भाव देखकर छोटे मालिक चकित रह गए। हूं! लड़का जीवन में उन्नति करेगा।

अब थोड़े नरम स्वर में उन्होंने आवाज दी, "दफादार, प्रेसीडेंट साहब को बुला लाओ।"

खबर पाते ही मिद्दा साहब पलक झपकते हाजिर हो गए।

छोटे मालिक ने पूछा, "क्यों जनाब, दरबारी लोग मौजूद हैं न?"

मिद्दा साहब ने जवाब दिया, "जी।"

छोटे मालिक ने कहा, "ठीक है, आप एक मुचलके का मसौदा बनाकर ले आइए, बाबू लोगों से टीप-दस्तखत करा लूं। हरे हां, विश्वेश महाशय आ रहे हैं, एक पंचायत बिठानी होगी। मगर पंचायत बैठेगी कहां? कोई निरपेक्ष जगह चाहिए।"

मिद्दा साहब को यह बात बुरी लगी। वे प्रेसीडेंट हैं। उनके यहां ही अब तक पंचायत बैठती रही है। इस बार छोटे मालिक के हुक्म से वह नियम बदल रहा है। इसका मतलब तो यह हुआ कि छोटे मालिक उन पर भी विश्वास नहीं कर रहे हैं। उन्हें भी एक पक्ष में ठेल दिया है। मन हुआ, प्रतिवाद करें। मगर सोचा, यह आदमी बड़ा पागल है। थोड़ी देर पहले उनकी कोई कम बेइज्जती नहीं की है उसने। अब नए सिरे से उसे मौका देने का मन न हुआ। बिना कुछ कहे बैठे रहे।

भक्त घोष ने कहा, "हुजूर, अगर बुरा न मानें तो मैं एक सुझाव दूं?"

मिद्दा साहब, गोपाल, बूदो—सभी दफादार का मुंह देखने लगे।

छोटे मालिक ने कहा, "बोलो।"

भक्त घोष ने कहा, "हुजूर, मारवाड़ी गद्दी पर बैठा जा सकता है। वे किसी तीन पांच में नहीं हैं।"

छोटे मालिक ने तुरंत कहा, "अच्छी बात है। जा, उन्हें खबर कर दे। मेरा घोड़ा भी ले आना।"

मिद्दा साहब ने खिन्न मन से कहा, "तो फिर मुचलके का मसौदा लेकर मैं वहीं आ रहा हूं।"

छोटे मालिक ने कहा, "अच्छी बात है। उन सभी को भी ले आइएगा।"

समझौते का काम खत्म करके मुचलके पर सभी के टीप-दस्तखत लेकर छोटे मालिक जब घोड़े पर सवार हुए तो दोपहर ढल चुकी थी। सभी लोगों के विदा लेने पर मारवाड़ी ने दारोगा हुजूर को बड़ी मिन्नतें करके पिस्ते की शर्बत पिलाई और जब वे घोड़े पर सवार होने जा रहे थे तो चांदी के पच्चीस रुपयों का एक तोड़ा बांधकर ले आया और गिद्ध की तरह गर्दन झुकाए खड़ा हो गया।

"हुजूर, अगर कृपा करके इसे ले लें तो यह मारवाड़ी अपने को धन्य मानेगा।"

"यह क्या है?"

"नजराना हुजूर।"

"वाह रे मारवाड़ी, देखता हूं, इस गांव में मानी का मान रखना तुम्ही जानते हो। लाओ दो, तुम्हें धन्य करूं।" छोटे मालिक ने रुपयों का तोड़ा पाकेट में भर लिया।

मन में खुशी की लहरें उठ रही थीं। घोड़ा दुलकी चाल से चला जा रहा था। कबूतर झुंड बनाए दाना चुगते हुए गुटरगूं कर रहे थे। गोपी मयरा की दुकान के सामने दुकान की छाया में गुड़ीमुड़ी होकर एक खजहा कुत्ता लेटा हुआ था। इस बार छोटे मालिक के घोड़े ने उन्हें जरा भी परेशान नहीं किया। वही मुर्गा अब बांस के बेड़े के ऊपर बैठा था। उसे भी डर नहीं लगा, बल्कि बड़े कौतूहल से अपनी कलंगीदार गर्दन टेढ़ी करके वह छोटे मालिक के घोड़े की चाल के टपाटप छंद को निरखने लगा।

घर पहुंचते ही रामकिष्टो ने अगवानी की। घोड़े से उतरकर छोटे मालिक ने लगाम रामकिष्टो के हाथ में थमा दी। अचानक उनके कान में बूड़ी के बच्चे के जोर से रोने की आवाज आई। वाह ! क्या आवाज है ! छोटे मालिक ने कमरे में प्रवेश किया। देखा, बच्चा बहुत ही कलप रहा था। उन्होंने झुककर बच्चे से पूछा, "क्यों बाबू, इतना गुस्सा किस पर हो रहे हो?"

तुरंत बच्चे की रुलाई थम गई। छोटे मालिक की तरफ देखकर हाथ-पांव मारते हुए वह मुस्कराया। छोटे मालिक हो-हो करके हंस उठे। कितना पाजी है! गोद में सवार होना चाहता है।

छोटे मालिक बोले, "अरे साले, तुमने समझ क्या रखा है? भला गंजा फिर नारियल के पेड़ तले आएगा? नहीं, अब मैं तुम्हें गोद में नहीं लेने वाला। अरे! दारोगा का काम ही है लोगों को चराकर खाना और तुम साले दारोगा को ही चराना चाहते हो?"

गिरिबाला ने कमरे में घुसकर देखा, छोटे चाचा बच्चे का गाल छूकर उसको दुलार कर रहे हैं और बच्चा हाथ-पांव फेंकता हुआ हंसता-मुस्कराता खिलखिला रहा है।

गिरिबाला को देखकर छोटे मालिक ने कहा, "बेटी, लगता है, तुम्हारे बेटे के डर से कल सवेरे ही यहां से भागना होगा। जिस तरह से यह मेरी तरफ बढ़ रहा है, लगता है, गिरफ्तार हो जाऊंगा।"

छोटे मालिक हंसते हुए वर्दी उतारने के लिए अपने कमरे में गए। वर्दी उतार कर उन्होंने रामकिष्टो से तेल मालिश करने को कहा। फिर अच्छी तरह नहाकर खाने बैठे। मझली दीदी के हाथों बने पीठे और खीर उन्हें अमृत जैसे लगे। खा पीकर वे लेट गए।

जब नींद टूटी प्रायः शाम होने वाली थी। कहीं फिर किसी माया में न फंस जाएं, यह सोचकर और बिना देर किए वे नवीन जुलाहे के घर की तरफ निकल गए। जाने के पहले बड़ी बहू से कह गए कि उन्हें लौटने में देर होगी। बड़ी बहू बात समझ गईं और बोलीं, "खाना तुम्हारे कमरे में ही रख दूंगी। मगर देखना लौटकर जरूर खा लेना।"

छोटे मालिक "अच्छा-अच्छा" कहकर बाहर निकल गए।

सत्रह

नवीन चल नहीं पाता। बचपन से ही उसके पांव कमजोर हैं। उसे सन्निपात का ज्वर हुआ था। जान तो बच गई मगर दोनों पांव नहीं बचे। इसका मतलब यह नहीं है कि वह अकर्मण्य है। वह एक नामी कारीगर है। उसके जैसी पतंग कोई बना ही नहीं सकता। केवल पतंग ही क्यों, कितने ही तरह के खिलौने और गुड़िया बनाता है नवीन। नाचने वाली गुड़िया बनाने में वह उस्ताद है। मगर इन चीजों से उसे अधेले की भी आमदनी नहीं होती। जरूरत भी क्या है। उसका बाप कुछ पैसे छोड़ गया है। बड़ा बढ़िया जुलाहा था वह। उन दिनों उसके हाथ की बनी सुहागी साड़ी की खूब मांग थी। वारिस के नाम पर अकेले नवीन है। एक बहन थी, जिसकी शादी शांतिपुर में हुई है। नवीन की उसी बहन की एक विधवा लड़की अपने दो बेटों के साथ नवीन के वहां रहती है।

अपने घर से थोड़ी दूर पर नदी के किनारे नवीन ने अपनी बैठक बनाई है। वहीं पर वह अपने औजार, अपने गुड्डे-गुड़िया, खिलौने और पतंग बनाने के सारे साजो-समान के साथ अपनी मनमीत कच्ची शराब की बोतल को लेकर पड़ा रहता है।

छोटे मालिक वहां पहुंचे तो प्रायः शाम ढल चुकी थी। गैस बत्ती जलाकर नवीन पुतलियां नचाने जा रहा था। उसने दो नई पुतलियां बनाई थीं। उनके नाम रखे थे चन्द्रावली और माखनचोर कन्हाई। नवीन की उंगलियों में बंधे सूतों के सहारे कितना सुंदर नाच रही थीं पुतलियां! खासकर चन्द्रावली। उसके हाव-भाव में सचमुच की रासरंगवाली नारी की चंचलता फूट रही थी। छोटे मालिक को बड़ा मजा आया।

बोल पड़े, "वाह नवीन, वाह! तुम तो विधाता से ही टक्कर लेने लग गए हो !"

छोटे मालिक को देखते ही नवीन खुश हो उठा। अपने एकाकी और निःसंग जीवन में उसे यही एक मनभावन मनुष्य मिला है।

आदर के साथ बोल उठा, "आइए आइए, छोटे बाबू !"

छोटे मालिक बोले, "परेशान होने की जरूरत नहीं है। आया हूं तो आसानी से नहीं जाऊंगा। तुम्हारी ये दोनों पुतलियां गजब की बनी हैं, खासकर वह मनमोहिनी औरत। आहा! क्या शोभा है! मन करता है, इसे कलेजे से लगाए सारा जीवन यों ही पड़ा रहूं।"

नवीन ठठाकर हंस पड़ा। बोला, "रसिक के बिना रस का मर्म कौन समझे?"

फिर एक पल बाद बोला, "छोटे बाबू, यह चन्द्रावली हैं, वृंदावन में इन्होंने कितने ही दिलों में आग जलाई थी। अब बड़ी मुश्किल में पड़ गई हैं। आग से खेलते-खेलते खुद इनके कलेजे में चिनगारी उठ रही है, इसीलिए आंसुओं से संसार को भिगो रही हैं।"

नवीन अपूर्व कौशल से पुतलियां नचाने लगा। सूते को जरा-सा खींचते हुए चन्द्रावली

जीवित हो उठी और फिरकी की तरह एक बार नाचकर माखनचोर कन्हाई के पांवों के पास अपने घुटने मोड़कर बैठ गई। फिर दोनों हाथ जोड़कर कन्हाई के पांवों पर जा गिरी।

इसके साथ ही नवीन ने गाना शुरू किया :

ओ मेरे जीवनधन, ओ मेरे सोना !

रातों में करते थे तुम आना-जाना,

अब तो तुम बन गए राजा के प्यादा

अब तो प्यारे तुम मुझे चीन्हो ना।

छोटे मालिक गदगद होकर नवीन की तारीफ करते हुए एक जगह बैठे ही थे कि एक पतंग उनके पांव में फंसकर तार-तार हो गई। छोटे मालिक बड़े लज्जित हुए।

बुद्धू की तरह बोल पड़े, "कमरे में जगह ही नहीं छोड़ी तुमने। फट गई न!"

"फटने दीजिए, छोटे बाबू, फटने दीजिए। परेशान होने की जरूरत नहीं।"

इस बीच नवीन ने पुतलियों को समेटकर एक किनारे रख दिया था और बोतल निकाल ली थी। दो गिलासों में शराब डालकर उसने एक छोटे मालिक की ओर बढ़ा दी। फिर अपने गिलास को एक सांस में खाली करके बाएं हाथ की उल्टी हथेली से मुंह पोंछ लिया।

फिर भारी आवाज में बोला, "आपने यह चौपदा सुना है न—

जलने दो जलने दो बच्चे का सिर

और हो जाएंगे बच्चे,

आला तंबाकू खत्म हो गया तो

जाएंगे किसके दरवाजे।

मेरा भी यही हाल है। पतंग फट गई तो पतंग फिर हो जाएगी। एक और पतंग बना लूंगा, वह तो मेरे हाथ में है, मगर आप चले गए तो किसके दरवाजे खोजने जाऊंगा? पाऊंगा ही कहां?

इस बीच छोटे मालिक की नसों में शराब की तीखी धार बहने लगी थी। नवीन की बातें सुनकर वे धीरे-धीरे मुस्कराने लगे।

नरम आवाज में बोले, "किस खुशी में तुम रात-दिन इतनी पतंगें बनाते रहते हो?"

नवीन ने और थोड़ी शराब गिलास में ढालकर गले को तर कर लिया। उसकी दोनों आंखें चमकने लगीं। नदी की ओर से मनभावन हवा आ रही थी। शीतल हवा के झोकों से प्राण जुड़ा रहे थे।

नवीन ने फंसे गले से कहा, "छोटे बाबू, इस दुनिया में तीन तरह के लोग हैं—थलचर, जलचर और खेचर यानी आकाश में रहने वाले। आप लोग हैं थलचर। कितनी जगह घूमते हैं, देश-विदेश कहां-कहां जाते हैं, क्या-क्या देखते हैं ! भगवान ने मुझे अपाहिज बना दिया है। इस जीवन में अब थलचर होना संभव नहीं है। इसीलिए खेचर होने की साध हुई है।

पतंग बनाता हूं और उसी पतंग के साथ अपने मन की डोर बांध देता हूं। जानते तो हैं..." नवीन गुनगुनाने लगा :

चील करे ढिलमिल,
कौड़िया* मारे तान।
पतंग उठे आसमान,
और सूता आन।

पतंग के साथ मन की डोर बांधकर ढील देता रहता हूं। मन म इच्छा उपजती है, एक दिन पतंग इतनी ऊपर चली जाएगी कि और ढील नहीं लेगी। डोर तोड़कर आसमान में ऊपर, और ऊपर, बादलों की दीवार फलांगकर सीधे चांद-तारों की दुनिया में घुस जाएगी। उसके साथ ही मेरा मन भी उड़ जाएगा। दिन-रात बैठे-बैठे अब अच्छा नहीं लगता, छोटे बाबू। मेरे पंख नहीं हैं, नहीं तो एक दिन खुद चांद-तारों के देश में उड़ जाता।"

नवीन की बात का असर हो या कि शराब का, इस बीच छोटे मालिक खुद भी आकाश में उड़ रहे थे। नवीन की बात खत्म होने के साथ-साथ वे जैसे धड़ाम से मिट्टी में आ गिरे। नशा बिखर गया। छोटे मालिक को लगा, नवीन एक साधक है। कितने ताज्जुब की बात है, जब दुनिया में सारे लोग धन-दौलत, पद-मर्यादा के लिए एक-दूसरे का गला काट रहे हैं, एक-दूसरे को खा जाने के लिए आतुर हैं, दंगा-हंगामा करने में व्यस्त हैं, ऐसे में नवीन पतंगें बनाता है और पुतलियों की एक दुनिया बसाकर समय बिताता है। या फिर चांद तारों की दुनिया में घूम आने की कामना करता है ! ऐसे कितने लोग हैं !

छोटे मालिक ने कहा, "अगर दुनिया में आधे आदमियों का मन भी तुम्हारे जैसा हो जाए तो दुनिया का चेहरा ही बदल जाए।"

नवीन ने कहा, "मन बड़ा चोर है, छोटे बाबू, बड़ा फितरती। उसकी गति कौन जान सकता है? उसकी बात रहने दें। अब अपनी बताएं। आजकल आप इधर कम ही आते हैं। क्या गांव को तिलांजलि दे दी है?"

छोटे मालिक ने मजाक किया, "तुम्हीं बताओ, किसके पास आऊं? जो मेरे मन की मीत थी वह तो तिलक लगाकर वैष्णवी बन गई।"

नवीन ने भी सुर में सुर मिलाया, "इस दुनिया में औरतों की कमी है क्या, छोटे बाबू? पुरानी जाती है, नई आती है। आपको कितनी औरतें चाहिए? कहिए तो एकदम कच्ची कली का पता भी दे सकता हूं।"

छोटे मालिक ने हंसकर कहा, "नवीन, अब तो उम्र भी चालीस पार कर गई है। इस उम्र में कच्चे रास्ते पर पांव बढ़ाने का साहस नहीं होता। अगल फिसलकर गिर गया तो

---

*एक प्रकार की पतंग का नाम

इन बूढ़ी हड्डियों में जोड़ नहीं लग पाएगा, समझे? हमारे लिए तो यही बंधी-बधाई सड़क अच्छी है।"

नवीन ने कहा, "आप तो बहुत अच्छी बातें कर रहे हैं। अगर बंधी-बधाई सड़क पर ही चलना चाहते हैं तो उसी पर चलिए।"

छोटे मालिक बोले, "कल तो वहां भी ठगा गया। किसी को मेरी याद ही नहीं आई। अब जरूर याद आ रहा है कि पद्म या फिर कुसुम से एक बार मुलाकात करना अच्छा होता।"

नवीन ने कहा, "छोटे बाबू,उन गुड़ों में अब चींटियां लग गई हैं। सुना है, कुसुम आजकल मिट्टा के जंगल में खिल रही है। और तो सुना है, पद्म को मारवाड़ी बाबू ने एकदम से पर्दानशीन बहू ही बना लिया है। सिर्फ उसके हाथ का खाना नहीं खाता।"

छोटे मालिक ने पूछा, "क्यों?"

नवीन ने कहा, "पद्म बंगाली है, मछलीखोर है, इसीलिए।"

छोटे मालिक हो-हो कर हंस पड़े।

बोले, "अच्छा! साले मारवाड़ी का धर्म-ज्ञान तो बड़ा टनकदार है! बंगाली औरत का भात खाने में उसे मछली की बदबू लगती है और उसकी जात खाने में साले की नाक कहां चली जाती है?"

नवीन ने इस बात का कोई उत्तर नहीं दिया। चुपचाप शराब पीता रहा। अचानक छोटे मालिक को एक जरूरी बात याद आ गई, बोले, "अरे नवीन, असली बात तो भूला ही जा रहा था। मारवाड़ी की बात से याद आ गई। देखो, उस साले मारवाड़ी ने मुझे पच्चीस रुपए नजराना दिए हैं। मेरे घर नाती हुआ है। जानते तो हो, मझले भैया की लड़की का लड़का। क्या लड़का है साला! मैंने साले का मुंह देखा, अब कुछ देना-दिवाना भी तो होगा। यह लो, नजराने के रुपए तुम्हारे पास छोड़ जाता हूं। मुझे तो कल भोर में ही चले जाना है। तुम किसी सुनार को पकड़कर एक जोड़ा बढ़िया बाला गढ़ा देना।"

नवीन को नशा हो रहा था। उसने चुपचाप रुपए लेकर रख लिए। थोड़ी देर के लिए छोटे मालिक भी चुप हो गए। उनकी नसों में कई बार आग की धारा दौड़ी। कनपटियां दप-दप कर उठीं। आंखें बंद होने लगीं। नवीन को लगा, वह किसी दौड़ की प्रतियोगिता में जी-जान से भाग रहा है। छोटे मालिक को लगा जैसे वे नवीन की पतंग पर बैठकर बादलों के ऊपर तैर रहे हों, मगर पतंग इतनी हिल रही है कि वे स्थिर होकर बैठ नहीं पा रहे हैं। कान में सों-सों की आवाज हो रही है। शायद हवा कानों में घुस रही है। तभी पतंग ने एक करवट ली और छोटे मालिक जमीन पर आ गिरे। वहां रखी खाली बोतलें धक्का खाकर लुढ़कने लगीं। छोटे मालिक जब उठकर बैठे तो उनकी नजर नदी की ओर गई। चांद निकल रहा था। पानी में उसकी छाया पड़कर झिलमिला रही थी। छोटे मालिक

को लगा जैसे कोई अंधेरे में टार्च जलाकर नचा रहा है। रात हो गई है। चांद निकल आया है, तो इसका मतलब है, रात काफी हो गई है। अब घर जाना होगा।

छोटे मालिक उठ खड़े हुए, मगर उनकी देह डगमगाने लगी। कोशिश करके उन्होंने उसे वश में किया।

भारी गले से बोले, "चलता हूं, नवीन।"

नवीन ने कोई जवाब नहीं दिया। वह सो गया था।

सो तो छोटी बहू भी रही थीं। मगर अचानक खाट के हिल उठने और धप की आवाज होने से उनकी नींद टूट गई। नींद टूटते ही उनकी नाक में शराब की तीखी गंध घुसी। गंध के नाक में घुसते ही उनको चक्कर-सा आया। चक्कर आते ही एक अघटन घट गया। यह क्या, यह दुर्गंध तो उनकी अत्यंत परिचित है। जो आदमी यह असह्य गंध लेकर आता था वह बहुत दिन पहले, लगता है पिछले जन्म में उनका पति था। वही पति, छोटे मालिक, आए हैं क्या? हड़बड़ाकर वह उठ बैठी। ओ मां ! वही तो हैं, गर्मी से परेशान करवट बदल रहे हैं, जैसा पहले करते थे।

इतने दिनों से जो भारी आवरण छोटी बहू की स्मृति पर पड़ा हुआ था, उसे इस परिचित तीखी गंध की धारदार छुरी ने काटकर टुकड़े-टुकड़े कर दिया। अपने को पति के इतने निकट पाकर आवेग से छोटी बहू का हृदय धक-धक करने लगा। अपार खुशी उनकी नाभि से उमड़कर जैसे गले में आकर अटक गई हो। लगा, इस बार उनकी सांस रूंध जाएगी और छोटी बहू मर जाएगी। असह्य यंत्रणा उनके गले में, नहीं, नहीं, छाती में शुरू हो गई। और फिर पल-भर में सब कुछ ठंडा हो गया। अब लगा, वेदना का एक नुकीला तीर उनकी छाती में ऊपर की ओर उठ रहा है। आंखों में आंसू भर आ रहे हैं। सारा शरीर थरथरा रहा है। छोटी बहू अब खुद को संभाले नहीं रख पा रही हैं। भीतर कहीं झमाझम वर्षा शुरू हो गई है। हृदय का जो प्रांतर सूखकर मरुभूमि हो गया था, पिछले दस वर्षों से जहां धूल के बगूले उड़ रहे थे, वह प्रचंड वर्षा से सराबोर हो रहा था। कितनी ...णा है ! कितनी शांति है !

छोटी बहू तकिए में मुंह छिपाकर रोने लगीं, शुरू में फफककर फिर जोर-जोर से। जैसे रुलाई का ज्वार चढ़ा आ रहा हो। इस ज्वार में छोटी बहू एक तिनके की तरह बहती चली जा रही थीं, चली ही जा रही थीं।

रुलाई की आवाज से छोटे मालिक की नींद टूट गई। कौन रो रहा है? नवीन? नहीं, नवीन की चन्द्रावली? नहीं, वह भी नहीं। छोटे मालिक हड़बड़ाकर उठने लगे पर उठ नहीं पाए। सिर बहुत भारी था। सारी देह लरज रही थी। छाती में तेज प्यास उमड़ रही थी। एक गिलास पानी मिलता तो कितना अच्छा होता?

रुलाई की आवाज फिर भी आ रही थी, पीछे से, बगल से। छोटे मालिक ने विमूढ़ की तरह अपनी दोनों हथेलियां अपने चेहरे पर फिराईं। चेहरे पर तब भी एक चिपचिपाहट थी। गहरी रात में आसपास ही कहीं जैसे रेल का एक बड़ा इंजन आकर खड़ा हो गया है। छोटे मालिक के कानों में जैसे उसी की सूं-सूं आवाज बज रही है।

अब उन्होंने करवट बदली। करवट बदलते ही उन्होंने देखा, छोटी बहू की छाया-सी देह मुंह के बल झुकी रुलाई से कांप-कांप जा रही है। अरे वाह! यहां पर, नवीन के इस कमरे में छोटी बहू कैसे आ गई? या फिर यह उनका अपना मकान है? मगर वे घर कब आए? क्या छोटी बहू पहले से ही इस खाट पर थीं? या अभी आई हैं?

छोटी बहू रो क्यों रही हैं? आज वे क्यों रो रही हैं? आह! दस साल पहले, जब मुन्ना मरा था तब उन्हें अगर इस तरह रुलाया जा सकता तो छोटी बहू पागल नहीं होतीं। पागल नहीं हुई होतीं तो कब का उनकी गोद में एक और बच्चा आ गया होता। तब सभी ने छोटी बहू को रुलाने की कितनी कोशिश की थी। एक बूंद आंसू भी नहीं निकला था। सचमुच वे बड़ी अभागिन हैं। करमजली हैं।

जाने कैसी एक संवेदना से, सहानुभूति से छोटे मालिक का मन भीग आया। दोनों आंखें कड़वाने लगीं।

छोटे मालिक ने एक पल बाद छोटी बहू की पीठ पर हल्के-से हाथ रखकर नरम आवाज में पुकारा, "छोटी बहू !

तुरंत छोटी बहू उनकी चौड़ी छाती पर जा गिरीं। अपना सिर घिसते हुए रो-रोकर कहने लगीं, "मुझे छोड़कर मत जाना। मुझे बहुत डर लगता है, बहुत डर लगता है। मुझे छोड़कर मत जाना।

आह बेचारी! छोटे मालिक की दोनों आंखों से भी आंसुओं की धारा बहने लगी। वे बड़े प्यार से छोटी बहू की पीठ और सिर सहलाने लगे।

थोड़ी देर बाद गला साफ करके बोले, "नहीं, छोड़ूंगा क्यों? तुम्हें लेकर जाऊंगा। मगर इस बार नहीं। पहले जाकर मैं क्वार्टर ठीक कर आऊं, फिर आकर तुम्हें ले जाऊंगा। डर क्या, अब तुम्हें डरने की क्या बात है? तुम तो अब एकदम अच्छी हो गई हो। रोओ मत, छोटी बहू, अब मत रोओ।"

छोटे मालिक की सांत्वना पाकर छोटी बहू की रुलाई धीरे-धीरे रुक गई। छोटे मालिक के विराट शरीर को पूरी ताकत से जकड़े हुए वे रो रही थीं। फिर धीरे-धीरे सब कुछ थम गया। दोनों ही गहरी नींद में डूब गए। यह नींद साधारण नींद नहीं थी, एक अलग किस्म की नींद थी।

अट्ठारह

सुधामय को उतारने के लिए बस रुकी ही थी कि उसका इंजन बंद हो गया। इसे मिलाकर आठ मील के रास्ते में (श्रीमती जी) पांच बार बंद हुई हैं।

सुधामय ने राहत की सांस ली। चलो, जान बची। अब उसे कीचड़-मिट्टी में बस नहीं ठेलना होगा। बस के पहियों की मार खाकर सड़क का कीचड़ उछल-उछलकर उसकी पूरी देह को छींटदार बना गया था। नया कपड़ा बरबाद हो गया था। सुधामय अब समझ रहा थ कि अच्छा होता, वह जूते उतारकर बस में चढ़ता। मगर अब अफसोस करने से क्या होता? इन जूतों को देखकर कौन कह सकता है कि ये कलकत्ते के चीना बाजार से खरीदे गए हैं। इन जूतों को देखकर तो गांव के गजा मोची द्वारा बनाए गए मोटे-मोटे डोंगे जैसे जूते भी मुंह फाड़कर हंसेंगे।

चलो, अब विपत्ति कटी। मन ही मन सुधामय ने कान मले। बाप रे ! अब इस बस में कभी नहीं बैठूंगा। खूब शिक्षा मिली है। मगर कंडक्टर क्या कर रहा है? गया कहां? माल क्यों नहीं उतार रहा?

असहिष्णु होकर सुधामय ने हांक लगाई, "अरे भाई कंडक्टर, माल उतारो।"

मगर कोई जवाब नहीं आया। इधर सुधामय चंचल हो उठा। सड़क पर से बूनोपाड़ा साफ दिखाई दे रहा था। अरे ! इतना बड़ा जंगल किसने साफ कर दिया? सुधामय थोड़ा अवाक हुआ। पहले बूनोपाड़ा को चारों ओर से घेरकर जंगल उगा था। दिन-दोपहर इधर से गुजरने पर रोंगटे खड़े हो जाते थे। बूनोपाड़ा के बाद ही बाजा वालों का मुहल्ला है। बाजे वालों के मुहल्ले का सीवान पार करते ही सुधामय के गांव का इलाका शुरू हो जाता है। तीस बीघा जमीन पर उसका घर बना है जिसमें साथ ही आम, कटहल, सुपारी और नारियल के बाग हैं। सड़क से सुधामय के घर तक पहुंचने में कम से कम दस मिनट तो लगते ही हैं। सुधामय परेशान हो उठा। आखिर गया कहां कंडक्टर?

बूनोपाड़ा से ढमढम करके एक स्वर से किसी बाजे की आवाज आकर कान में बज रही थी। यह आवाज उसकी बहुत परिचित है। बचपन से ही वह यह आवाज सुनता आ रहा है। सुधामय जानता है, बूनो सरदार अब दल बनाकर सूअर मारने निकलेंगे, जंगली सूअर। यह उसी की तैयारी है। इस समय वे घर में तैयार शराब पी रहे हैं और ढमढम बाजा बजा रहे हैं। कई दिनों तक ऐसे चलता है। फिर वे तीर-धनुष, बल्लम, टांगी लेकर निकल पड़ते हैं—दल बनाकर। शोरगुल और चीख-पुकार से वे गांव के जंगल को हिला डालते हैं। कई दिनों तक बराबर वे जानवरों का पीछा करते घूमते हैं और जंगली सूअर, चीता, बाघ जो भी सामने मिलता है उसे मार डालते हैं। यहां तक कि वे गीदड़ों और पनिहा सांपों को भी मार डालते हैं। हिंसक अथवा अहिंसक किसी भी प्राणी को वे नहीं छोड़ते।

उसके बाद एक बड़ा-सा सूअर, अगर वह दंतैल हो तो और अच्छा, मारने के बाद बिरादरी के सारे लोग मिलकर एक महाभोज का आयोजन करते हैं। यह महाभोज दो-तीन दिनों तक चलता है। इसके बाद एक दिन बूनोपाड़ा के निवासियों की वीरता की उत्ताल तरंगों में भाटा आता है और स्त्री-पुरुष सभी शांत होकर सामान्य जीवन-धर्म अपना लेते हैं। जब से सुधामय को होश है तब से वह ऐसा ही देखता आ रहा है। इस बीच गांव में, देश-दुनिया में कितना कुछ घट गया, कितने परिवर्तन हुए, मगर इन लोगों की इस परंपरागत आदिम जिंदगी में एक तिल का भी बदलाव आते नहीं देखा सुधामय ने।

सुधामय सीधा कलकत्ते से चला आ रहा है। कल इसी समय वह कलकत्ते के प्रखर आधुनिक जीवनस्रोत में भयंकर वेग से बहता हुआ घूम रहा था। और अब? एक टेढ़े-मेढ़े बांस के पास खड़ा होकर शरद ऋतु की इस शांत अलग सुबह के समय वह आदिम मनुष्यों के शिकारी बाजों की आवाज सुन रहा है। कलकत्ता में सुधामय ने ढेर सारी अंग्रेजी फिल्में देखी हैं। उसे लगा, जैसे वह उन्हीं में से किसी एक फिल्म के दृश्य में जा घुसा है, जहां जंगली अफ्रीकावासी शिकार की तैयारी कर रहे हैं। ढम ढम ढमढम। ठीक वही स्वर, वही ताल। सिर्फ दो-ढाई सौ मीलों का व्यवधान है, हद से हद दस घंटे की यात्रा। इसी बीच सुधामय कैसे सभ्यता के एक स्तर से पूर्णतया भिन्न एक दूसरे स्तर पर जा पहुंचा है।

दूसरे यात्रियों की चीख-पुकार से सुधामय की तंद्रा टूटी। उनमें से पांच लोगों को अठारोखादा जाना था, रिश्तेदार के घर। अभी भी वह जगह वहां से पांच-छः मील दूर थी। एक तो रिश्तेदारी, दूसरे रिश्तेदार पैसे वाला था। बस ठेलते-ठेलते उनके इस्तरी किए हुए कपड़े भी कीचड़ में सन गए थे। इसीलिए वे पहले से ही चिढ़े थे। ऊपर से बस का इंजन बंद हो गया। मतलब—फिर ठेलो। उनमें से एक आदमी का माथा गरम हो गया।

"ओ मोटर वाले, तूने समझ क्या रखा है? फिर गाड़ी बंद कर दी तूने?"

स्टेयरिंग पर पांव रखकर ड्राइवर निश्चिंत मन से पिन से दांत खोद रहा था। उसने कोई जवाब नहीं दिया।

"अरे ओ जी, ओ ड्राइवर, लगता है कान खींचकर उसमें जबरदस्ती अपनी बात घुसाए बिना कुछ सुनाई नहीं देगा?"

इस बार भी ड्राइवर ने कोई जवाब नहीं दिया। दांत खोदने का काम पूरा हुआ तो उसने पिच से थूक दिया। इसके बाद धीरे-धीरे उसने जेब से एक चिपटी हुई, टेढ़ी-मेढ़ी कैंची छाप सिगरेट निकाली और उसके दोनों सिरों पर दो बार फूंक मारकर माचिस के लिए जेब में हाथ घुमाया। माचिस नहीं मिली। एक पल को पता नहीं उसने क्या सोचा।

इसके बाद उसने सुधामय को पुकारा, "ओ श्रीमानजी, जरा इधर आइए न, माचिस है?"

सुधामय के पास माचिस नहीं थी, सिगरेट लाइटर था। ड्राइवर के पास जाकर उसने

लाइटर से सिगरेट जला दी।

ड्राइवर ताज्जुब से आंखें फाड़कर देखता रहा।

फिर बोला, "वाह वाह वाह! यह तो बड़ी जबरदस्त चीज है! यह मशीन आपको कहां मिली?"

सुधामय ने कहा, "कलकत्ते में खरीदी है।"

सिगरेट की एक जोर की कश खींचकर नाक और मुंह से धुआं छोड़ते हुए ड्राइवर ने कहा, ''वाह ! सिगरेट का टेस्ट ही बदल गया।"

पीछे से फिर वही गुस्सैल आवाज सुनाई पड़ी, "देखता हूं, अब मैने का बोल फूटा है। ओ मोटर वाले, यह प्रसव-यंत्रणा अब और कितनी देर भोग कराओगे?"

ड्राइवर ने अब राजकीय मुद्रा में अपनी गर्दन घुमाई, जैसे पहले वह यात्री को अच्छी तरह तोल लेना चाहता हो।

फिर गंभीर भाव से बोला, "आप क्या समझते हैं, यह कोई घोड़ागाड़ी है, मोटर है मोटर, यह बात मत भूलिए। यह सब मशीन का कारोबार है। टाइम होने पर मोटर छूटेगी।"

पीछे से किसी ने छींक मारी, "आहा हा हा ! सिर पर एक भी बाल नहीं और कंघियों की बहार। अरे यह गाड़ी चलती कहां है जो इसका टाइम दिखा रहे हो तुम?"

अब ड्राइवर को भी गुस्सा आ गया। बोला, "याद रखिएगा, यह कुंडू कंपनी की गाड़ी है। कुंडू कंपनी की गाड़ी चलती नहीं, यह बात उनका दुश्मन भी नहीं कह सकता।"

"अरे वाह रे गाड़ी की चाल! देखी है इसकी चाल! आधे रास्ते तक तो हम लोग ठेल ठेल कर ही लाए हैं इसे।"

ड्राइवर ने कहा, "जरा बताइए तो, यह भैंस है या मोटर? कीचड़ में भैंस चलती है, मोटर नहीं। दलदल में पड़ने पर राजा की मोटर को भी ठेलना पड़ता है। चढ़ते तो हैं छकड़े पर, इन सब गाड़ियों का मर्म आप समझेंगे भी कैसे?"

इसके बाद ड्राइवर ने सुधामय को ही गवाह बना लिया।

"महाशय जी, आप ही बताइए, अगर मोटर कीचड़ में फंस जाए तो कलकत्ते के लोग क्या करते हैं? ठेलते हैं कि नहीं?"

सुधामय ने हंसी दबाते हुए कहा, "कीचड़ में फंसने पर तो हाथी को भी ठेलकर बाहर निकालना पड़ता है, यह तो मोटर है।"

ड्राइवर बोला, "अब सुन लीजिए, एक बड़े आदमी की बात मन लगाकर सुनिए। कुंडू बाबू जो कहते हैं कि आदमी का उपकार करना बेकार है, तो ठीक ही कहते हैं। इन मोटर गाड़ियों में भी थोड़ी बहुत अहसान मानने की चेतना होती है, आदमी में वह भी नहीं होती। गाड़ी तो गाड़ी है, लोहे की बनी हुई मशीन। मगर पानी और पेट्रोल पिला दो तो यह बिना कुछ बोले अपना काम करती है। खिलाने-पिलाने का बदला चुका देती है, मगर आदमी

को देखिए, कैसा व्यवहार करता है? अपनी आंखों से देख लीजिए, इतनी दूर जिस गाड़ी पर बैठकर आए अब उसी की बदनामी कर रहे हैं। कहते हैं, गाड़ी चलती ही नहीं! अरे बाबा, चलती नहीं तो तुम लोगों को इतनी दूर खींचकर लाती कैसे।"

ड्राइवर बहुत नाराज हो गया था। सुधामय ने सोचा, ऐसी अवस्था में वह छत से अपना बक्सा-बिस्तर उतारने की बात मुलायमियत के साथ कहे या न कहे?

तभी ड्राइवर ने फिर अपना मुंह खोला।

"कुंडू बाबू जो कहते हैं कि आदमी नंबरी स्वार्थी होता है, यह बात भी ठीक ही है। अपना काम निकालने तक की दोस्ती करता है। अपने पर पहुंच गए, बस हो गई छुट्टी। फिर जो होना हो, हो। तू साला जा भाड़ में। है कि नहीं?"

ड्राइवर ने फिर सुधामय से ही हुंकारी भरवाई और सुधामय को हुंकारी भरनी ही पड़ी।

"यह हुई न भले आदमी जैसी बात। देख लीजिए, आप सभी खुद अपनी आंखों देख लीजिए, ऐसा होता है भला आदमी।"

सुधामय को ऐसे टरटरिया आदमी से कभी वास्ता नहीं पड़ा था। घर पहुंचने के लिए मन छटपटा रहा था। बूड़ी के बच्चे को देखने के लिए कौतूहल चरम सीमा पर पहुंच गया था। उसे ताज्जुब हो रहा था, उसी बूड़ी के बच्चा हुआ है, वही बूड़ी मां बन गई है, जिसके मुंह से सात घूसे मारने पर भी एक शब्द मुंह से नहीं फूटता था। वही बूड़ी जो ब्याह की बात सुनकर दिन-रात रोती थी। सुधामय उसके साथ खेलता था। सुधामय से वह छः साल छोटी थी। दोनों में बहुत प्यार था। दो साल पहले ही सुधामय ने उसे देखा है। पता नहीं, अब वह कैसी लगती होगी? कंडक्टर आ जाए तो सुधामय वहां से भागे।

ड्राइवर ने फिर सुधामय को ही संबोधित करते हुए कहा, "आप ही बताइए, महाशय, भले आदमी कहीं पेड़ पर फलते हैं? व्यवहार देखकर ही पता चलता है। सूखे रास्ते पर गाड़ी खड़ी है, कोई भी पानी में नहीं पड़ा हुआ है। सभी आराम से गाड़ी में बैठे हैं, मगर कोई अहसान नहीं है। ऐसी बातें सुनने को मिल रही हैं कि जी खट्टा हो जा रहा है। अगर कहीं सचमुच गाड़ी पानी में पड़ जाती तो लगता है बाबू लोग हमारी गर्दन ही दबा देते।"

पीछे की सीटों पर जो लोग बैठे थे, उनकी तरफ एक बार ड्राइवर ने जहर-बुझी नजर डाली। फिर बड़े आराम से पहले जैसी एक टेढ़ी मेढ़ी और चिपटी सिगरेट जेब से निकाली। दोनों हाथों से दबाकर पहले सिगरेट की अच्छी तरह मरम्मत की। सीधी करके दोनों ओर से उसमें फूंक मारी। फिर सुधामय को आंख मारकर बोला "ओ महाशय, जरा एक बार और अपनी वह सिगेरट जलाने वाली मशीन दिखाइए न।"

सिगरेट जलाकर ड्राइवर ने कस के तीन चार सुट्टे मारे और नाक और मुंह से गाढ़ा धुआं फेंका। उसके दाहिने हाथ की दो उंगलियों में सिगरेट थी। बीच-बीच में चुटकी बजाकर वह राख झाड़ता था। एक पल बाद बोला, "आप क्या समझते हैं, गाड़ी कभी पानी में

नहीं गिरती? गिरती है जनाब। इसका मन तो लोहे के कल-पुर्जे का बना है। मगर यह भी कभी-कभी ड्राइवर का कहना नहीं मानती। मेरे जैसे पक्के आदमी के हाथ से भी कभी-कभी गाड़ी खंदक के पानी में जा गिरती है। यही सुहागिनी जी एक बार खंदक में जा पड़ी थीं। वो भी तब जब इसमें बारात लदी हुई थी। पबहाटी के मजूमदार लोगों की बारात लेकर शैलकूपो जा रहे थे। बरसात के दिन थे। चारों ओर पानी ही पानी था। वे लोग हमारे कुंडू बाबू के वकील ठहरे। उन्हें मोटर पर चढ़कर ब्याह करने जाने का शौक हुआ। उन्होंने कुंडू बाबू को पकड़ा कि मोटर चाहिए। कुंडू बाबू ने कहा, 'देखो जगबन्धु, और किसी पर मेरा भरोसा नहीं है। गाड़ी मेरे पास और भी हैं, ड्राइवरों की भी कमी नहीं है, मगर शैलकूपो का जो रास्ता है, खासतौर पर इन दिनों, उसमें सुहागिनी के अलावा किसी और गाड़ी की ताकत नहीं है कि एक कदम भी हिल सके।' फिर कुंडू बाबू ने मुझसे कहा, 'तुम्हीं जाओ, तुम्हारे अलावा उन सब रास्तों पर कोई भी गाड़ी नहीं चला सकेगा।' तो फिर मैं गया। लौटते समय सुहागिनी खंदक में जा पड़ी। अब सोचिए जरा, हम लोग तीन घंटे गले तक पानी में बैठे रहे। मगर क्या मजाल कि किसी ने चूं भी किया हो। समझे कि नहीं? भले आदमी ऐसे होते हैं। अब देखिए, हमारी यह सुहागिनी जी...।"

"धत तेरी सुहागिनी की ऐसी की तैसी।"

गाड़ी का पिछला दरवाजा धड़ाम से खोलकर चार-पांच पैसेंजर हो-हल्ला करते हुए ड्राइवर के पास आ गए।

"साले, गाड़ी चलाने का नाम नहीं लेता, बैठे-बैठे हमें चुटकी काट रहा है। एक थप्पड़ में मुंह तोड़कर रख देंगे।"

"अभी यह गाड़ी हम तुम्हारे उसमें घुसा देंगे।"

"साला, आंख का काना, नाम नयनसुख। घाट के मुर्दे जैसी गाड़ी है साली, और नाम है सुहागिनी। तेरी सुहागिनी के मुंह में लात मारूं।"

सुधामय एकदम भौंचक्का रह गया। उसने देखा, एक बूढ़े सज्जन गुस्से से कांपते हुए गाड़ी के सामने की ओर गए और उन्होंने गाड़ी के ठंडे और स्पंदनहीन बोनेट पर धांय-धांय करके दो लातें जड़ दीं। एक छोकरा आकर दो-चार बार गाड़ी का हार्न बजा गया। दो-तीन आदमी मिलकर गाड़ी की बाडी को पागलों की तरह दोनों हाथों से पीटने लगे। एक पल के लिए ड्राइवर भी यात्रियों के इस आकस्मिक आक्रमण से अवाक हो गया था। मगर दूसरे ही पल उसकी चेतना वापस लौटी। क्या? उसकी गाड़ी का यह अपमान? उसने गाड़ी स्टार्ट करने का लंबा हैंडल निकाला और पलक झपकते नीचे कूद पड़ा। हैंडिल को सिर के ऊपर चर्खी की तरह सन-सन नचाते हुए वह यात्रियों की तरफ आगे बढ़ा। यात्रीं थोड़ा डर कर पीछे हट गए। भयंकर गुस्से में ड्राइवर कभी उछलता, कभी दांत पीसता हुआ हेंडिल भांजता रहा।

ड्राइवर का वह तांडव देखकर सभी लोग थोड़ा घबड़ा गए।

"किस साले ने मेरी सुहागिनी के मुंह पर लात मारी? मर्द का बच्चा हो तो आकर मेरे सामने मारे, देखूं उसकी हिम्मत? मारकर बिछा न दिया तो नाम नहीं। इतनी देर से कौन मेरी सुहागिनी को गाली दे रहा है? असली बाप का बेटा हो तो आए सामने, उसके मुंह की थोड़ी पालिश कर दूं।"

ड्राइवर एक वाक्य बोलता था और हैंडिल को जमीन पर धांय-धांय पटकता था। अब दूसरा पक्ष एकदम चुप मार गया था। तभी कान पर जनेऊ चढ़ाए कंडक्टर वहां हाजिर हुआ। वहां युद्ध का वातावरण देखकर वह काठ हो गया।

उसने पूछा, "आखिर मामला क्या है?"

कंडक्टर को देखकर ड्राइवर ने हुंकार किया, "क्यों रे साला पंचा, तू गया कहां था? साला, न देखता है, न सुनता है, जिसे पाता है गाड़ी में ठूंस लेता है। दे दे, सभी के पैसे वापस कर दे। कुंडू बाबू को बोल दूंगा, इस लाइन की सर्विस बंद कर दें।"

"क्यों? आखिर क्या हुआ?"

"होगा और क्या, तेरा सिर। ये जो पैसेंजर तुमने उठाए हैं, ये सब सुहागिनी के मुंह पर लात मार रहे हैं। और इसे पाट का मुर्दा बता रहे हैं। दे पैसा वापस, दे।"

पंचू कंडक्टर बड़ा घाघ आदमी था। उसे मामले का अंदाजा लग गया। बोला, "दाद जरा रुको। यह कल-कब्जे का मामला है। माथा गरम करने से काम नहीं होगा, और न हड़बड़ाने से। जरा मामले को समझ लूं। गाड़ी रुकी तो मुझे पेट में कुछ दर्द-सा महसूस हुआ। इसीलिए मैं थोड़ा मैदान चला गया था। बस इतने में ही यहां ऐसा कांड हो गया। चलिए, चलिए, आप लोग अपनी-अपनी जगह बैठिए ! आप लोगों को क्या मालूम गाड़ी क्या चीज होती है। यह उन्नीस सौ पंद्रह की फोर्ड गाड़ी है। ऐसी अच्छी गाड़ी आजकल कहां मिलती है? थोड़ी उम्र हो गई है इसकी, इसलिए इसका मिजाज नहीं समझ में आता। हमारे जगो दा की तरह, और क्या जिस दिन गाड़ी का मिजाज होता है, पानी की तरह चलती है, और बिगड़ गई तो बस हो गई छुट्टी। ऐसी गाड़ी को उल्टा-सीधा बोलकर नाराज करना कोई अच्छी बात है? अच्छा अब आइए, तगड़े-तगड़े जवान लोग इधर आइए, इसकी थोड़ी खुशामद करिए, प्यार से धक्का देकर स्टार्ट करवा दीजिए। जगोदा, तुम जाओ, अपने सिंहासन पर बैठो। तुम तो ठहरे राजा। तुम छोटी-छोटी बातों पर क्यों ध्यान देते हो?"

देखते ही देखते कंडक्टर ने सारा झमेला निबटा दिया। सुधामय का बक्सा और बिस्तर का बंडल भी उतार दिया। इसके बाद पैसेंजरों को इकट्ठा करके "वाह रे जवान हेइया", "और थोड़ा-सा जोर लगाकर हेइया" बोलते हुए सुहागिनी को ठेलते हुए ले चला।

सुधामय खड़ा-खड़ा यह तमाशा देखता रहा। लाल रंग की मोटर कड़ई के बड़े-बड़े

पेड़ों की छाया में धीरे-धीरे आगे बढ़ रही थी। अभी भी लोग उसे ठेल रहे थे। लो, वह स्टार्ट हो गई। जोरदार आवाज करके अचानक सोई हुई सुहागिनी जाग उठी। थोड़ी दूर तेजी से आगे की ओर भागी। पीछे से पैसेंजर सिर पर पांव रखके दौड़े। अभी भी सारे चढ़ नहीं पाए थे। सुधामय जानता है कि गाड़ी रुकेगी नहीं। रुकते ही इंजन बंद हो जाएगा। इसीलिए चलती हुई गाड़ी में ही कूदकर यात्रियों को चढ़ना होगा। पूरे रास्ते सुधामय भी ऐसा ही करते हुए आया है।

पहली बार सुधामय बस में बैठकर घर तक आया है। दो साल पहले जब वह कलकत्ता गया था, तब भी इस लाइन पर बस नहीं चली थी। इस बार झिनैदा आते ही उसे बस मिल गई थी। बस एकदम पुरानी और जर्जर थी, यह बात सच है, बार-बार उसे ठेलना पड़ा है, यह बात भी सच है, मगर फिर भी डेढ़ घंटे में यहां पहुंचा दिया। बैलगाड़ी में चार घंटे और घोड़ागाड़ी में कम से कम दो ढाई घंटे लगते।

कांपती हुई और चारों ओर कीचड़ छिटकाती सुहागिनी आंखों से ओझल हो गई। अब सुधामय के मन में उसके प्रति कोई दुर्भाव न था। और जो भी हो सुहागिनी सभ्यता की वाहिका तो थी ही, भले ही सेकेंड हैंड हो।

क्या हम भी एक सेकेंड हैंड सभ्यता में नहीं रह रहे हैं? अचानक यह प्रश्न सुधामय के दिमाग में उठ खड़ा हुआ। सेकेंड हैंड सभ्यता ! अभी इस बात पर सुधामय ने विचार नहीं किया था।

वह कुछ सोच पाता इसके पहले ही उसकी निगाह नरा पर पड़ी। एक छोटी-सी लाठी हाथ में लिए उसी के सहारे कूदता हुआ वह कहीं जा रहा था। सुधामय को देखते ही वह एक सांस में उसके पास दौड़कर आ गया।

"भैया जी, तुम क्या मोटर में आए?"

सुधामय ने हंसकर कहा, "हां ! तू तो बहुत बड़ा हो गया रे !"

नरा बेहद खुश। एक पल बाद बोला, "मगर तुम भी तो बाबू बनकर आए हो।"

सुधामय हो-हो कर हंस पड़ा।

बोला, "क्या कह रहा है?"

"ठीक ही कह रहा हूं। गलत लगता हो तो आइना में मुंह देख लेना। बहुत सुंदर लग रहे हो तुम।"

सुधामय को नरा की बात बहुत अच्छी लगी। उसने प्यार से नरा के सिर पर हाथ फेरा।

बोला, "चल, घर चलते हैं। यह बक्सा तू उठा सकता है?"

नरा ने सिर हिलाकर हां कहा।

उन्नीस

बहुत दिनों से सुधामय ने ऐसी सुबह नहीं देखी थी, पक्षियों के कलरव और धूप की ऐसी चमक वाली सुबह। वह आजकल देर से जागता है। कलकत्ते में अर्जित इस अभ्यास के सामने उसके पहले के ग्रामीण अभ्यास ने हार मान ली है। शाम होते न होते यहां जैसे गहरी रात उतर आती है। सो जाने के अलावा करने को और कुछ रह ही नहीं जाता। पक्षियों और पशुओं की तरह जैसे इस सृष्टि के आदि[illegible] गुहावासी मानव रात होते ही मृतवत हो जाते थे, उसी समय सुधामय के गांव के लोग भी रात होते ही नींद की गोद में चले जाते हैं। इसीलिए भोर की रोशनी फूटते न [illegible] वे उठ बैठते हैं। जैसे दिन की रोशनी का एक कण भी वे अपव्यय करना नहीं चाहते।

मगर सुधामय के कमरे में, उसके बिछौने पर, उसकी मच्छरदानी की छत पर धूप की लहरें लोटपोट होती रहीं, फिर भी उसकी नींद नहीं टूटी। वैसे एक बार उसकी नींद टूटी तो थी। उसने नींद-भरी आंखों से रोशनी का लोटपोट होना देखा था और कानों से चिड़ियों का संगीत सुना था। फिर दुबारा उसे नींद आ गई। कलकत्ते ने रात को दिन कर दिया है। वहां की तरह शाम को तो क्या, आधी रात को भी यहां नींद नहीं उतरती। कलकत्ते के बाशिंदे इसीलिए तो जब मर्जी होती है, घूमने निकल पड़ते हैं, जब मन होता है जागते हैं।

मुहल्ले की चाय की दुकान पर रोज की तरह अड्डा जमा है। खूब बहस हो रही है। सुधामय ने देखा, अड्डे पर उसकी अनुपस्थिति का फायदा उठाकर परिवर्तन-विरोधी छात्र-नेता कुंज घोषाल ने सुधामय के समर्थकों को एकदम काबू में कर लिया है। सी. आर. दास के नाम पर ऊल-जलूल बके जा रहा है। इस आदमी की जीभ पर जैसे छुरी की धार रहती है। कुछ भी मुंह में अटकता नहीं। कहता है, दास साहब ने कार्पोरेशन की राजनीति में गंदगी घुसा दी। उस दिन कार्पोरेशन की मीटिंग में उन्होंने इतने अधिक वोटों से अपने रिजोलूशन पास करवा लिए, उसके पीछे सिर्फ धोखाधड़ी है। उन्होंने एक बागानबाड़ी में विरोधी पक्ष के कार्उसिलरों को दावत दी थी। शराब और रंडी सप्लाई करके दो दिन, दो रात उन्हें वहां रोके रखा। वोट के समय वे हाजिर न हो सके। ओह ! कुंज खाली मैदान में गोल पर गोल मारे जा रहा था। कोई उसका प्रतिवाद क्यों नहीं करता? देश के एक बड़े नेता के नाम पर वह ऐसी गंदी बातें बकता जा रहा है और सभी लोग रस लेकर चुपचाप सुन रहे हैं। सुधामय का सारा शरीर गुस्से से ऐंठ गया। मगर वह करे क्या? वह सब कुछ देख रहा है, सुन रहा है, मगर कुछ कर नहीं पा रहा। किसी तरह भी चाय की दुकान पर पहुंच नहीं पा रहा है। कुंज को पकड़ नहीं पा रहा है। वे लोग भी कैसे हैं? उस आदमी को धमकाते क्यों नहीं. पीटतें क्यों नहीं? देखो तो बेहदे की हिम्मत !

काउंसिल का इलैक्शन होने ही वाला है। कुंज-जैसे लोग कीचड़-उछाल उछालकर ऐसे देवतास्वरूप आदमी की छवि मैली कर देंगे। साधारण लोग इन सब गंदी बातों का विरोध नहीं करेंगे। कान से सुनेंगे और दांत फैलाकर हंसेंगे ! सुधामय का खून गरम हो गया। बिस्तर पर दोनों हाथों से थप्पड़ मारकर वह चीखा, "चुप रह, रास्कल !" और साथ ही उसकी नींद टूट गई। दिन काफी चढ़ आया था। बहुत सो चुका वह। और नींद टूटने पर वह शांत हो गया। कहां कलकत्ता और कहां उसका गांव ! मगर क्या सपने इतने जीवंत होते हैं?

सुधामय को सब कुछ उदास-उदास लग रहा था। उसने सोचा, स्वराज्य पार्टी के चुनाव के समय कलकत्ता छोड़ना उसके लिए बुद्धिमानी का काम नहीं था। उसके जैसे सक्रिय कार्यकर्ता की वहां बेहद जरूरत है। और चाहे जो होता, अगर सुधामय वहां होता तो इस तरह खाली मैदान में किसी को गोल नहीं मारने देता।

उसका मन उड़ा-उड़ा-सा हो गया।

गांव आने के पहले उसके मन में उत्साह का जो फेन उठा था वह इस बीच बैठ गया था। बहुत दिनों तक कलकत्ते में रहने के बाद गांव की मिट्टी में कदम रखते ही आवेश का जो बुजबुजाता हुआ फेन सुधामय के मन में उठा था वह चौबीस घंटा बीतते न बीतते एकदम बैठ गया। उसका कहीं नामोनिशान न रहा।

कल दिमाग में जो धुंधलका छाया था आज वह उतर गया। गांव को लेकर हम बेमतलब पागलपन दिखाते हैं। हमारी काव्य-व्याधियों में से यह भी एक है। कविता ने गांव के बारे में खामखा मन में एक आकर्षक चित्र बना दिया है। फिर सुधामय ने एक लंबी जम्हाई ली और उसका दिमाग दूसरी ओर घूम गया।

कल बस वाले कांड में सुधामय को बड़ा मजा आया था। पर अब वह उसे निछक भड़ैंती लग रहा था। किसी अहम नाटककार द्वारा रचे नाटक से लिया गया और शौकिया अभिनेताओं द्वारा खेला गया एक सस्ता कामिक सिचुएशन। कल सुधामय को उस दृश्य में जो अभिनय करना पड़ा था, ड्राइवर की मूर्खतापूर्ण भड़ैंती को बर्दाश्त करना पड़ा था उसके लिए अब अपने ऊपर गुस्सा भी आ रहा था। बस को ठेल-ठेलकर उसका शरीर भी थक गया था, दर्द हो रहा था।

पता नहीं सुधामय को क्या हो गया है। हर बात में कमी दीख पड़ती है। सब कुछ जैसे नीरस लग रहा है। कल घर पहुंचते ही सभी उसके पास जुट आए थे। उसे घेर लिया था। एक साथ सैकड़ों सवालों से सभी अपनी जिज्ञासा शांत कर लेना चाहते थे। इसी तरह इस घर में परदेशी लड़कों की आवभगत की जाती है। हमेशा से ऐसा ही होता आया है। सुधामय के पिता या चाचा कुछ दिनों की अनुपस्थिति के बाद लौट कर आते थे, तो ऐसे ही दस लोग वहां भीड़ कर लेते थे। कुछ दिनों पहले तक ऐसा ही होता आया है। इस

समय सुधामय को लगा, वे लोग बेकार में इतनी चीख-पुकार मचाते हैं। दस आदमियों के सामने ही मां ने आकर उसका चेहरा अपने आंचल से पोंछ दिया था। सुधामय के शरीर की प्रत्येक शिराओं ने जैसे उसके प्रतिवाद की घोषणा कर दी थी, हालांकि सुधामय मुंह से कुछ नहीं बोल सका। मां तो बराबर ही ऐसा करती है। मां का प्यार अंधा जो होता है। सुधामय भी मां को बहुत चाहता है। फिर भी कल, पहली बार सुधामय को लगा कि हर बात में अतिशयता मां का स्वभाव बन गया है।

ये अपने प्यार, अपने स्नेह को जैसे चीख-चीखकर जताना चाहते हैं। जैसे दस आदमियों के बीच न जताया तो प्यार ही क्या है? इन लोगों का यह दिखावटीपन जैसे सुधामय अब और बर्दाश्त नहीं कर पा रहा है। कलकत्ते में इतना दिखावटीपन नहीं है।

इस बार घर आकर सुधामय बड़ी परेशानी में पड़ गया। वह यहां जो कुछ देखता है, जो कुछ सुनता है, सब में कलकत्ता आड़े आता है। कलकत्ते में तो ऐसा नहीं है, वैसा नहीं है।

कलकत्ता में रहकर जो बात सुधामय की समझ में नहीं आई थी, वह गांव आकर अच्छी तरह समझ में आ गई थी। कलकत्ता के अलावा उसे कहीं और ठिकाना नहीं है। इस गांव के आकाश में, हवा में, पानी में जो पोषक तत्व थे, उन्हें सुधामय के जीवन ने चूसकर समाप्त कर दिया है। गांव में अब उसके लिए कुछ भी नहीं बचा है। उसके बाकी जीवन के लिए, उसके वयस्क देह-मन के लिए अब अगर कोई रसद जुटा सकता है तो वह कलकत्ता ही है।

कमरे में लेटे-लेटे सुधामय यही सब सोच रहा था और अन्यमनस्क भाव से सिगरेट-लाइटर को जला और बुझा रहा था। एक सिगरेट पीने को मन आतुर हो रहा था। वह सोच रहा था, ऐसा करना उचित होगा की नहीं। घर में किसी को इस बात का ख्याल नहीं है कि वह बड़ा हो गया है, उसे थोड़ी प्राइवेसी भी चाहिए। हो सकता है, अगले ही क्षण पिताजी या बुआ जी फट से कमरे में घुस आएं। अभी रहने देता हूं, बाहर निकलूंगा तभी सिगरेट पी लूंगा।

गिरिबाला का बच्चा अचानक जोर से रो पड़ा तो सुधामय चौंक उठा। उसकी सारी भावना-चिंता छिन्न-भिन्न हो गई।

क्या गला पाया है लड़के ने, एकदम शंख की तरह ! यह उपमा मन में आते ही सुधामय उछल पड़ा। 'शंख' ! हां, एक अच्छा-सा नाम मिल तो गया। कल बूड़ी बार-बार बच्चे के लिए एक अच्छा-सा नाम बताने को कह रही थी। बहुत अच्छा नाम मिला। 'शंख'।

सुधामय ने वहीं से हांक लगाई, "बूड़ी, ओ बूड़ी, सुन, जल्दी इधर आ।"

गिरिबाला जल्दी से दौड़ी आई। साथ में चम्पा भी थी।

सुधामय ने कहा, "देख बूड़ी, तेरे बच्चे के लिए एक अच्छा-सा नाम मिला। 'शंख' कैसा रहेगा?"

गिरिबाला अवाक रह गई। 'शंख'! यह भला कोई अच्छा नाम हुआ?

सुधामय ने कहा, "इसके अलावा तेरे बेटे के स्वभाव के साथ भी इस नाम का बड़ा मेल है। अभी वह उस कमरे में रोया तो इस कमरे में चौंक उठा मैं। ठीक शंख की आवाज की तरह ही तेरे बेटे का गला है, समझी? और वह भी कोई ऐसा-वैसा शंख नहीं, एकदम पांचजन्य।"

सुधामय का बात करने का ढंग एकदम बदल गया है। कम से कम गिरिबाला को ऐसा ही लगा। भैया अब पहले वाला भैया नहीं रहा। एकदम से किसी पराए देश का आदमी हो गया है। डीलडौल लंबा चौड़ा हो गया है और कपड़े-लत्ते पहले से कहीं अधिक साफ-सुथरे और नए काट के। और बातें भी पता नहीं कैसी-कैसी करने लगा है। उसने कल जो बातें कीं उनमें से आधी बातों का तो मतलब ही गिरिबाला की समझ में नहीं आया। जैसे इस समय नहीं आ रहा है। क्या सचमुच उसके बच्चे का मजाक उड़ा रहा है? या फिर प्यार से उसे शंख कह रहा है? गिरिबाला समझ नहीं पा रही थी।

सुधामय बहुत दिनों के बाद घर लौटा है। कल जब घर के सारे लोग उसे लेकर उतावले हो रहे थे, तब अचानक गिरिबाला ने महसूस किया था कि जैसे सुधामय अब उनके बीच का नहीं रह गया है। उसके मन में यह धारणा क्यों उठी, वह नहीं जानती। सुधामय की गलती कहां है, यह भी वह पकड़ नहीं पाई थी। ताऊ जी को, पिताजी को, बुआ जी, बड़ी मां और काकी को सुधामय ने प्रणाम किया था, गिरिबाला का भी कुशल-क्षेम पूछा था, चम्पा को दुलार किया था, गिरिबाला के बच्चे को देखकर उसकी तारीफ भी की थी—सब कुछ तो किया था सुधामय ने। फिर भी—कहीं कोई एक अदृश्य फांक, एक सूक्ष्म व्यवधान वह बनाए हुए था। सारी चीजों का माप-तोल ठीक रहे, इस तरफ सुधामय की कड़ी नजर थी। इस घर के सभी लोग जिस धान के चावल हैं, सुधामय भी है। फिर भी जहां वे सभी लोग ढेंकी के कूटे हुए लगते हैं, वहां सुधामय मशीन का कूटा हुआ क्यों लगता है।

अचानक सुधामय को लगा कि गिरिबाला एकदम चुप है। उसने कोई प्रतिक्रिया ही नहीं की।

"क्यों रे, लगता है, नाम तुझे पसंद नहीं आया?"

बीच में चम्पा टपक पड़ी, "बड़ा अच्छा नाम ही बताया है जो पसंद आएगा ! किसी भले आदमी का नाम होता है—शंख, घोंघा?"

चम्पा की वाचालता से सुधामय मन ही मन चिढ़ उठा। उसने सोचा, गांव की अशिक्षा का यह एक नमूना है।

फिर भी सुधामय ने गुस्सा नहीं दिखाया। बेहद संयत स्वर में उसने चम्पा को उपदेश

दिया, "छिः चम्पा, बड़े लोगों के साथ इस तरह बातें नहीं करते।"

चम्पा ने तुरंत जवाब दिया, "तुम क्या मेरे ससुर हो? घर के लोग भी क्या बड़े लोग कहलाते हैं?"

अचानक पूछे गए इस प्रश्न से सुधामय अकबका गया। गिरिबाला मुंह पर आंचल रखकर खिलखिला उठी। उस हंसी से मशीन में कूटा हुआ चावल–सुधामय सामयिक रूप से पीछे हट गया। पुराना सुधामय आगे आया और उसकी जोरदार हंसी से प्रायः कमरा गूंज उठा।

हंसते-हंसते सुधामय बोला, "ठीक है, मैं तो भूल ही गया था। अच्छा यह बताओ, लेगा-वेगा क्या?"

इस बार चम्पा के चिढ़ने की बारी थी।

बोली, "अपने से छोटों के साथ मसखरी करना अच्छी बात है, इसमें कोई दोष नहीं? क्यों?"

और पैर पटकती हुई वह कमरे से निकल गई।

सुधामय को इस तरह जी खोलकर हंसते हुए देखकर गिरिबाला की छाती पर से जैसे एक बोझ उतर गया। जैसे एक यंत्रणा अचानक शांत हो गई। सचमुच, किसी जाने-पहचाने आदमी को न समझ पाने जैसी यंत्रणा और कोई नहीं। गिरिबाला बहुत खुश हो उठी।

सुधामय ने पूछा, "क्यों रे बूड़ी, बोलती क्यों नहीं? तुझे नाम पसंद नहीं आया?"

गिरिबाला झट से बोल उठी, "नहीं भैया, बहुत पसंद है। अच्छा नाम है, बहुत सुंदर।"

सुनकर सुधामय भी खुश हुआ।

बोला, "यह सब कलकत्ते के नाम हैं। तुम लोगों के विष्णुपद, षष्ठीचरण नहीं हैं। समझी?"

गिरिबाला ने इस बात का कोई जवाब नहीं दिया और हंसने लगी। भैया की इस भाषा में कोई दांव-पेंच नहीं है, यह बात गिरिबाला समझती है।

सुधामय कहने लगा, "बड़ी मां की चिट्ठी में यह पढ़कर कि तुझे बेटा हुआ है, मुझे बड़ा अजीब लगा था। मैंने सोचा–हमारी वह बूड़ी अब मां बन गई ! मैंने तो सोच लिया था कि तू भी देखने में बड़ी मां-जैसी ही हो गई होगी। मगर कहां, तेरा तो कुछ भी नहीं बदला है !"

गिरिबाला इस बार भी कुछ नहीं बोली, सिर्फ हंसती रही। तभी चम्पा मुंह लटकाए वहां आकर खड़ी हुई और बोली, "किसी को अगर भूख लगी हो तो वह हाथ-मुंह धोकर रसोई में जाए। बड़ी मां ने कहलाया है।"

सुधामय ने आंखें टेढ़ी करके चम्पा को चिढ़ाते हुए कहा, "और अगर किसी को चोटी बांधने के लिए लाल फीते की जरूरत हो तो वह मेरे लिए एक लोटा पानी ला दे।"

सुनते ही चम्पा का मान भंग हो गया। सुधामय के घुटने पकड़कर उछलते हुए कहने लगी, "ओ भैया, चोटी लाए हो क्या? सच्ची लाए हो? मुझे छूकर कहो। अच्छा अमरस खाओगे? इमली का अचार ला दूं? बुआ जी खोया बना रही हैं, तुम्हारे खाने को थोड़ा-सा ला दूं?"

चम्पा की चालाकी देखकर गिरिबाला हंसी से लोटपोट हो गई।

बोली, "भैया ने पानी मांगा है, पहले पानी ला दे, फिर न हो अमृत ही लाकर रख देना इनके लिए।"

चम्पा नाराज होकर बोली, "मेरी बातों के बीच में तू क्यों पड़ती है, दीदी? मैंने क्या तेरे पके धान में मट्ठा डाला है?"

चम्पा पानी लेने चली गई। अचानक गिरिबाला को ध्यान आया, उस मोहल्ले में जरा मामा के घर घूम आए। कितने दिन हो गए वहां नहीं गई! फिर पता नहीं कब यहां से अचानक चले जाना पड़े। बड़ी मामी से मिलने का बड़ा मन कर रहा है। दरअसल वह सुधामय का ही ननिहाल है। गिरिबाला ने सुधामय से पूछा कि क्या वह उसे मामा के घर ले चलेगा? ले चलता तो बड़ा अच्छा था।

"भैया, तुम मामा के घर आज ले चलोगे? जल्दी से खा-पीकर निकल पड़ेंगे।"

सुधामय राजी हो गया। चलो अच्छा है, उसे भी मामा के घर गए बहुत दिन हो गए। वह भी उन लोगों से मिल आएगा। इसके अलावा उसे करने लायक एक काम भी मिल जाएगा। गांव आकर वह एकदम निष्क्रिय-सा हो उठता है। यहां उसके लिए कोई काम नहीं है।

दुर्गाबाड़ी में मरम्मत का काम चल रहा है। छत छाई जा रही है। इसका मतलब पूजा का मौसम आ गया। इस बार पूजा क्वार के महीने में पड़ेगा। तब गिरिबाला यहां नहीं होगी। ब्याह के बाद से गिरिबाला ने सिर्फ एक बार मायके में पूजा देखी है। उसकी ससुराल में दुर्गापूजा की कोई खास धूमधाम नहीं होती। वहां का मुख्य त्योहार होली है।

गिरिबाला ने खाली मंडप को भर आंख देख लिया। देवी का सिंदूर लगा पाट एक किनारे रखा था। कमरे के फर्श पर चूहों ने कितने ही गड्ढे खोद रखे थे। बिलों के अंदर से मिट्टी निकालकर फर्श पर ढेर लगा रखा था। उनके ऊपर धान की भूसी, रस्सी के टुकड़े आदि पड़े हुए थे। गिरिबाला ने झुककर खाली मंडप को ही प्रणाम किया। इस किनारे भंडारघर है, उससे लगा हुआ पीछे का कमरा ताशावालों का है। इस समय भी एक ताशा मटके में बंधा हुआ था। इस कमरे के पीछे गाब और कमरखे के पेड़ हैं। हरे रंग के कमरखे हवा में झूल रहे हैं। कमरखे के पेड़ के नीचे चलते समय गिरिबाला की जीभ में पानी आ रहा है।

चारों ओर आम के बाग हैं। मंडप की जमीन सुधामय की है। मगर दुर्गा-मंडप साझे का है। आम के बाग भी सुधामय के ही हैं। मंडप के पीछे ही महकुआ आमों के पेड़ हैं। सामने की तरफ सड़क के किनारे जो पेड़ हैं उनका नाम है चूकुड़े। चीनीटोरा, टुकटुके, चापले, गंधहलुद और नाईतोला आम के पेड़ों पर जैसे गिरिबाला और सुधामय को देखकर मस्ती छा गई है। कितने दिनों बाद वह इनके पास आई है। जिस पेड़ की तरफ गिरिबाला देखती है वही अपने डाल-पातों को हिलाकर गिरिबाला को इशारे से पास बुलाता है। ओ बूड़ी, ओ बूड़ी, कहां थी रे इतने दिनों? मणि भी कितना बड़ा हो गया है ! आओ आओ, मेरी छांव में आकर थोड़ा बैठो।

गिरिबाला के कान में यह पुकार आदमी की आवाज की तरह ही पहुंचती है। सचमुच, वह इतने दिनों कहां थी ! जब वह छोटी-सी लड़की थी, तब भाई का हाथ पकड़कर वह यहां आम बीनने आती थी। उसके उन कोमल पांवों के निशान, लगता है, आम के झरे पत्तों की छाती पर से अभी भी मिटे नहीं हैं। मानो सूखे पत्तों की मर्मर ध्वनि में वह ध्वनि फिर से कहीं बज रही है।

गिरिबाला को जैसे बेहोशी छाने लगी। आम कब के खत्म हो गए। मगर गिरिबाला ने साफ-साफ सुना, जैसे चापले पेड़ के नीचे टुप से कोई आवाज हुई है। उसने साफ-साफ देखा कि एक आठ साल की लड़की और उसके सोलह साल के भाई के बीच वह आम लेने की प्रतिद्वंद्विता शुरू हो गई है। वह लड़की कौन है? बूड़ी नहीं है? हां बूड़ी ही तो है। अगर बूड़ी न होती तो अंधेरे में पेड़ के नीचे पड़े आम कौन देख सकता था? किसकी आंखें इतनी तेज हैं? बूड़ी जानती थी कि आखिर में भैया की ही जीत होगी। भैया के हाथ में ब्रह्मास्त्र जो है। वह ज्यादा झगड़ा करने का साहस नहीं जुटा पाती। वह जानती है कि ज्यादा तिड़बिड़ करेगी तो भैया उसे अकेली छोड़कर सर्र से पेड़ पर चढ़ जाएगा और वह पेड़ के नीचे अकेली खड़ी रह जाएगी। अकेली वहां खड़ी-खड़ी बूड़ी डर से कांपती रहेगी। इसीलिए हमेशा उसे समझौता करके चलना पड़ता है। हमेशा बड़ा हिस्सा भैया को देना पड़ता है।

वही बूड़ी धीरे-धीरे पता नहीं कैसे गिरिबाला बन गई। दूसरे के घर की बहू बन गई। एक लड़के की मां बन गई। पता नहीं, किस आश्चर्यजनक प्रक्रिया से धीरे-धीरे यह सब रूपांतर घटित हुआ ! गिरिबाला और बाहर की दुनिया के बीच एक व्यवधान आया। कितने दिनों से वह इस तरह खुले आकाश के नीचे आकर नहीं खड़ी हुई है! कितने दिनों से वह अपने मन को इस तरह खुली हवा में खोलकर नहीं रख पाई है! कितनी ही बार इस आम के जंगल में ऐसी ही मतवाली हवा बही है, आमों की डाल-डाल पर पत्तों का नर्तन शुरू हुआ है, बादलों की छाया घनी होकर पेड़ों के नीचे जमाट बांधकर खड़ी हुई है—इन बातों का पिछले कई वर्षों से गिरिबाला ने कोई हिसाब ही नहीं रखा। तो क्या गिरिबाला की

दृष्टि खो गई थी या फिर गिरिबाला किसी कारागार में बंद हो गई थी?

"तू भी क्या चीज है, रे दीदी?"

चम्पा की आवाज से गिरिबाला की बेहोशी टूट गई।

"मुंह बाए क्या देख रही है? देखो तो इस लड़की का तमाशा! अभी तक तो हम पहुंच भी गए होते !" चम्पा ने बड़ी-बूढ़ियों की तरह कहा।

सुधामय भी बोल पड़ा, "थोड़ा पांव बढ़ा ले, बूड़ी। बाजे की आवाज सुन रही है? सरदार लोग सूअर मारने निकले हैं, दिन डूबने के पहले लौट आना होगा।"

पांव बढ़ाकर जब वे लोग मामा के घर पहुंचे, तब भी काफी दिन शेष था, मगर मामा के घर उस समय जो कांड हो रहा था, उसे देखकर वे तीनों एकदम अवाक रह गए।

घर में कदम रखते ही उन्होंने देखा, उनके ममेरे भाइयों के बीच बाकायदा लड़ाई चल रही है। बड़े मामा के दो बेटे हैं—गदा और पदा। दोनों ही परले सिरे के गंवार है। लगता है, थोड़ी देर पहले ही गदा ने लाठी से पदा को पीटा होगा। पदा का सिर फट गया था और खून बह रहा था। उसी हालत में पता नहीं, कहां से पदा एक बड़ा-सा खांड़ा निकाल लाया था और पागल की तरह उसे भांज रहा था।

खांड़ा भांजते हुए वह हुंकार कर रहा था, "कहां गया रे ओ साला? आज मैं उसे काटकर दो टुकड़े कर दूंगा। समझ क्या रखा है, तू पदा का खून बहाकर बच जाएगा? तू जहां भी होगा, जल में, थल में या आकाश में, तुझे वहां से खींच लाकर टुकड़े किए बिना मानूंगा नहीं।"

गदा की पत्नी यह देखकर बुरी तरह रो रही थी और मदद के लिए लोगों को पुकार रही थी।

"अरे कोई आओ, कहां गए गांव के लोग, जल्दी आओ, मेरे आदमी को काटे डाल रहा है...।"

एकाएक पदा कूदकर गदा के कमरे के सामने आ खड़ा हुआ और ऊंची आवाज में उसने कहा, "चुप ! रंडी कहीं की !"

गदा की बहू तब भी चीखती-पुकारती रही।

इस पर नाराज होकर पदा ने कहा, "तू नहीं मानेगी, तो पहले तेरा ही गला काट देता हूं।"

इतना सुनते ही एक पल में गदा की बहू कमरे में भाग गई और दरवाजे की सांकल अंदर से चढ़ाकर रोने-कलपने लगी।

बड़ी मामी के दोनों पांवों में गठिया था। वे अपने कमरे से निकल भी नहीं सकती थीं। फिर भी घिसटती हुई अपने कमरे की चौखट तक आकर वे अपना सिर चौखट पर

पटक रही थीं और फटे गले से चिल्लाए जा रही थीं, "ओ रे गदा, छोटे भाई का सिर फाड़ने के पहले मुझे क्यों नहीं मार डाला? ओ अभागे पदा, पहले मेरे गले पर ही यह खांड़ा चला। अरे असली दोषी तो मैं हूं, जो तेरे जैसे राक्षसों को पैदा किया। भगवान ! तुम इतने लोगों को रोज इस दुनिया से उठाते हो, मैंने ही ऐसा क्या पाप किया है कि तुम मेरे ऊपर नजर नहीं डाल रहे !"

सुधामय, गिरिबाला और चम्पा आंगन के एक किनारे जड़ होकर खड़े रहे। सुधामय स्तब्ध रह गया था, गिरिबाला की छाती कांप रही थी और चम्पा का चेहरा सफेद हो गया था। वह अपने आंख कान बंद किए बड़े भाई को दोनों हाथों से जकड़े हुए थर-थर कांप रही थी।

उन्होंने देखा, चौखट पर पटकते-पटकते बड़ी मामी ने भी अपना सिर फोड़ लिया था। पागलों की तरह वे रो-रोकर चीखें मार रही थीं, "मार डाल, मार डाल, अरे ओ दुश्मन, पहले मुझे मार। मैं तुम दोनों की मां हूं, पहले मुझे खत्म कर दे, फिर आपस में काटा-काटी कर।"

पदा मां को रोकने ही जा रहा था, कि तभी दूर से गदा की आवाज सुनाई पड़ी, "क्यों रे, खांड़ा से काटेगा? देखूं तो तू कितना बड़ा खांड़ा वाला है?"

पदा भी हुंकार कर उठा, "तो ले देख।" कहकर वह गदा की ओर दौड़ा।

सुधामय ने कहा, "बूड़ी, यहां से चल।"

कहकर वह घर की तरफ चल पड़ा। थोड़ी दूर ही गया होगा कि मामा की घर की तरफ से "बाप रे !" कहकर कोई छाती फाड़कर चीत्कार कर उठा। साथ ही घर के अंदर से हाहाकार उठा। उसी पल चम्पा मुंह के बल जमीन पर जा गिरी।

सुधामय ने पूछा, "बूड़ी, इसे क्या हुआ?"

गिरिबाला फफककर रो पड़ी। एक पल बाद बोली, "इसे फिट आ गया है।"

सुधामय ने चिढ़कर उसे डांटा, "भें-भें करके रो मत। पास में आचार्य का घर है, इसे ले चलते हैं। इसके मुंह पर पानी डालना होगा।"

सुधामय ने सोचा, वह क्यों मरने आया मामा के घर !

आचार्य के घर फेदी बैठी-बैठी कथरी की सिलाई कर रही थी। उन्हें इस तरह हड़बड़ाए हुए तेजी से आते देखकर वह अवाक होकर उठ खड़ी हुई।

गिरिबाला ने हांफते हुए कहा, "फेदी दीदी, जल्दी से पानी दो। चम्पा को फिट आ गया है।

चम्पा को तुरंत होश आ गया। फेदी ने उसे एक गिलास दूध पिलाया। गरम दूध पीकर चम्पा चंगी हो गई।

इन लोगों को देखकर फेदी चकित रह गई थी। कितने दिनों से देखा नहीं था। फेदी का ब्याह हुए तीन साल हो गए और ब्याह के दो साल बाद ही वह विधवा भी हो गई। ब्याह के बाद एक बार फेदी जब मायके आई थी तो गिरिबाला उससे मिलने आई थी। तब गिरिबाला क्वांरी थी। चम्पा तब नन्ही-सी थी। और यह सुधा भैया जो आज एकदम मर्द लग रहे हैं, वे भी फेदी को कभी इतने बड़े नहीं लगे। आज तो इनसे लाज-सी लग रही है।

गांव में फेदी बहुत सुंदरी मानी जाती थी। वह थी भी बहुत सुंदर। जैसे उसकी गढ़न थी वैसा ही सुंदर उसका रंग था। इस तरह का चेहरा-मोहरा आसानी से नजर में नहीं आता। शादी के बाद जब फेदी ससुराल गई तो वहां उसका ऐसा स्वागत हुआ जैसे घर में बहू नहीं, कोई महारानी पधारी हों। मगर साल पूरा होते न होते उसकी किस्मत फूट गई। माथे का सिंदूर, हाथ की चूड़ियां और सुहाग के दूसरे चिह्न ससुराल में ही छोड़कर सफेद धोती पहने वह बाप के घर आ गई। किसी ने एक ही फूंक में जैसे उसकी किस्मत के दीए को बुझा दिया था। क्या ही अच्छा होता अगर उसके जीवन का दीप भी बुझ जाता।

फेदी अवाक होकर गिरिबाला को देखती रही। कितनी अद्‌भुत, सुंदर हो गई है गिरिबाला ! शादी के पहले तो देखने में कोई खास न थी। फेदी ने उसे बचपन से ही देखा है। एकसाथ खेली है और पूजा के दिनों में एकसाथ मौज-मस्ती की है। खेली है वह सुधामय के साथ भी, मगर आज लगता है, जैसे वह किसी और जन्म की बात हो। उन दिनों बूड़ी ऐसी न थी। सद्यः मातृत्व का यह लावण्य तब उसमें कहां था? यह तो एक दुबली-पतली लकड़ी-जैसे हाथ-पांवों वाली लड़की थी। सामने के दो-एक दांत थोड़ा ऊंचे ही थे। वही बूड़ी आज मां होकर जैसे दुर्गा का अवतार बन गई है। इसकी ओर से आंखें फेरने को मन नहीं करता। यही सौंदर्य सार्थक है। गिरिबाला को आज देखकर फेदी के मन में ये बातें उठ रही थीं। साथ ही, उसने यह भी सोचा कि उसके अपने जीवन में यह सार्थकता कभी नहीं आएगी, कभी भी नहीं। ईर्ष्या ने फेदी के दिल में तेज डंक मारा। दूसरे ही क्षण उसे अपने ऊपर शर्म आई। कितनी नीच है वह! उसे दुख हुआ।

फेदी जल्दी से बोल उठी, जैसे अपने व्यवहार की कैफियत दे रही हो, "रोज सोचती हूं, तेरे बेटे को देखने जाऊंगी, मगर मुझे डर भी लगता है। अपने ऊपर भरोसा नहीं होता। मैं एक राक्षसी हूं, जिसकी आंखों में विष है। इसीलिए अपना यह जला मुंह जितना संभव होता है छिपाकर रखती हूं।"

फेदी की आंखों से झर-झर आंसू बहने लगे। वह कमरे में चली गई। गिरिबाला को लगा कि जैसे वही अपराधी है। फेदी विधवा हो गई, जैसे इसमें उसी का दोष है। फेदी के बाल-बच्चे नहीं हुए, गिरिबाला को बेटा हुआ, जैसे इसके लिए भी वही दोषी है। गिरिबाला के मन में जैसे कांटे चुभने लगे। फेदी की बातें याद करके गिरिबाला को मन ही मन बहुत

दुख हुआ। बेवकूफ की तरह वह बैठी रही। दूसरे ही क्षण मुन्ना की बात याद आते ही उसका मन चंचल हो उठा। उसे देखे बहुत देर हो गई। कभी उसने बच्चे को इतनी देर तक आंखों से ओझल नहीं होने दिया है। अब जल्दी से घर लौट जाना ही अच्छा होगा।

सुधामय खंभे से टिका कुछ सोच रहा था। दरअसल वह गदा-पदा के बारे में सोच रहा था। दोनों उसी के ममेरे भाई हैं। मगर उनका आचार-व्यवहार देखकर उन्हें आदिम नरभक्षी मनुष्य के अलावा और कुछ नहीं माना जा सकता। कैसे बिना किसी बाधा के दोनों भाई एक-दूसरे का खून करने पर आमादा थे। जैसे जंगली पशु हों। आदिम प्रस्तर युग के वासी। गांव में सभ्यता नहीं है। यहां आज भी बाजा बजाकर लोग जानवरों का शिकार करने निकलते हैं। बिना किसी झिझक के एक भाई दूसरे भाई के सिर पर लाठी या खांड़ा चलाता है।

अचानक सुधामय को लगा जैसे वह सोलहवीं-सत्रहवीं शताब्दी का कोई विदेशी पर्यटक हो। सभ्यता का संदेश लेकर जैसे वह किसी अनजाने प्रदेश में आ पहुंचा हो। नहीं-नहीं, वह इस गांव का आदमी नहीं है। इस देश का आदमी भी नहीं है। वह उस देश का निवासी है, जिसकी मिट्टी में राममोहन राय, विद्यासागर, माइकेल, बंकिम, रामकृष्ण देव और विवेकानन्द का स्पर्श मिला हुआ था। जहां रवीन्द्रनाथ सूर्य की तरह चमक रहे हैं। जहां देशबन्धु चित्तरंजन दास के प्रतिदिन के निःश्वास से नए प्राणों की सृष्टि हो रही है। ज्ञान-विज्ञान, आधुनिकता और प्रगति में जो देश इस धरती के किसी भी सभ्य देश की बराबरी कर सकता है। जहां वह जी खोल कर अपनी बात कह सकता है। इस जगह की भाषा वह नहीं जानता। संभवतः वह अपनी बात यहां किसी को समझा भी नहीं पाएगा। कोई उसकी भाषा समझेगा भी नहीं।

सुधामय के मन में एक जोरदार आंधी उठ खड़ी हुई। जितनी जल्दी संभव हो, सुधामय अपने देश लौट जाएगा। वहां एक पल भी वह आलस्य में नहीं बिता सकता। उसके लिए वहां अनेक काम हैं। इस बीच कलकत्ते में कितना कुछ घटित हो रहा है ! जुलूस निकल रहे हैं, हर पार्क में समितियों का आयोजन शुरू हो गया है, सभाएं हो रही हैं। माडरेट, स्वराज्य दल और परिवर्तन-विरोधियों के बीच ताकत-आजमाइश शुरू हो गई है। काउंसिल का इलैक्शन सामने है। देशबंधु का तेजस्वी स्वर इतनी दूर से भी सुन पा रहा है सुधामय। वे कह रहे हैं, "हम काउंसिल में ब्रिटिश सरकार के साथ सहयोग करने के लिए नहीं, वरन भीतर से धक्के मारकर उनकी शासन-व्यवस्था को चूरमार करने के लिए घुस रहे हैं।"

"चलो भैया, घर चलें।"

गिरिबाला की आवाज से सुधामय की तंद्रा भंग हुई। उसने आंखें खोलकर देखा, आचार्य के दरवाजे पर बांस के खंभे के सहारे, जागती आंखों से वह कलकत्ते का स्वप्न देख रहा था।

गिरिबाला की बात सुनकर फेदी भी जल्दी से कमरे से बाहर निकल आई। उसे देखकर लगता था, अभी तक वह रो रही थी। उसकी बड़ी-बड़ी गहरी आंखों में अभी भी आंसू झिलमिला रहे थे। नाक की नोंक पके हुए कुंदरू की तरह लाल हो गई थी।

किसी तरह अपने को संभालकर फेदी ने कहा, "मैं कल ही तेरे मुन्ने को देखने आऊंगी।"

गिरिबाला ने कहा, "अच्छा !"

घर लौटकर भी सुधामय को चैन नहीं मिला। वह घूमा-टहला, पहले की तरह एक बार जबरदस्ती घर के लोगों के साथ आत्मीयता स्थापित करने की भी चेष्टा की। रसोईघर में भुनी हुई मछलियां खाने गया, पर पता नहीं क्यों खुद उसे लगा जैसे वह दुलारे बच्चे जैसा व्यवहार कर रहा है। गिरिबाला के साथ छेड़खानी करने गया तो उसे लगा जैसे वह घटियापन कर रहा है। पिता के पास बैठने की उसकी इच्छा न हुई। उनके पास जाने की उसके भीतर कोई कामना नहीं होती। पढ़ाई और परीक्षा के अलावा पिता के साथ और कोई चर्चा वह कर नहीं कर पाता। पिता घर की शोचनीय अवस्था की बात चलाकर साफ-साफ कहते हैं, पूरी गृहस्थी अब सुधामय का मुंह देख रही है। सुधा अपनी परीक्षाएं अच्छी तरह पास कर रहा है। पिता की बात में कुछ झूठ भी नहीं है। फिर भी सुधामय को अच्छा नहीं लगता। इसीलिए पिता के कमरे की ओर उसके पांव नहीं बढ़ते। नहीं, मां और बुआजी के पास भी उसका मन नहीं लगता। एक-दो बार गिरिबाला के बच्चे को हिला-डुलाकर दुलार करने वह गया। मगर उससे भी उसका मन न बहला। घर से बाहर निकलने की भी अब इच्छा नहीं होती। मामा के घर जाकर उसे पर्याप्त शिक्षा मिल गई है।

शाम हुई, फिर रात हुई। इस जगह शाम और रात में कोई विशेष अंतर नहीं है। मझले मालिक घर आए। सुधामय की जान में जान आई। इस घर में अभी भी यही एक आदमी हैं जिनसे मिलकर सुधामय को खुशी होती है, जिनसे बातें करके उसे आनंद आता है।

कल मझले मालिक के साथ सुधामय की कोई खास बातचीत नहीं हो पाई थी। आज भी पूरे दिन वे बहुत व्यस्त थे। इस समय सुधामय से बातचीत का मौका पाकर जैसे वे धन्य हो गए। चरम आग्रह के साथ मझले मालिक सुधामय से कलकत्ते की सारी अच्छी-बुरी खबरें सुनने लगे। काउंसिल के इलैक्शन की बात, कांग्रेस में मतभेद, स्वराज्य पार्टी की स्थापना और उसके कार्यक्रम के बारे में तरह-तरह के सवाल करने लगे। सुधामय सारी बातों का ठीक-ठीक जवाब न दे सका। इतनी गहराई से, इतनी सूक्ष्मता से किसी मामले को वह नहीं देख पाता। अलग-अलग समय में सुधामय के मन में विभिन्न प्रकार की धारणाएं बनती हैं। उन धारणाओं का प्रतिफलन सुधामय जहां देखता है, जब देखता है, जिस काम में देखता है, उसमें ही जुट जाता है। उसी काम में जी-जान लगा देता है।

डेढ़ साल पहले, जब देश में असहयोग आंदोलन का ज्वार आया था, आफिस-कचहरी, स्कूल-कालेज सबमें बहिष्कार की उत्तेजना छाई थी, तब सुधामय भी उस आंदोलन में कूद पड़ना चाहता था। उन दिनों वह एक सरकारी कालेज का छात्र था। अपना देशप्रेम दिखाने का इतना बड़ा अवसर उसे हाथ से निकल जाने देना पड़ा। मझले मालिक ने इस पर एतराज किया था। इस नकारात्मक आंदोलन के पक्ष में वे न थे। उस समय सुधामय को संभालने में मझले मालिक को काफी जोर लगाना पड़ा था। तब मझले मालिक ने सुधामय से कहा था, "मूर्ख लोग स्वाधीनता का मर्म नहीं समझते हैं। स्वाधीनता भीतर की चीज है। कोई बाहर की सामग्री नहीं है। हो-हल्ला मचाकर ज्यादा से ज्यादा राष्ट्रीय पताका बदली जा सकती है। यूनियन जैक के बदले तिरंगा झंडा सरकारी दफ्तरों पर फहराया जा सकता है, मगर लोगों के मन में स्वाधीनता की चेतना पैदा नहीं की जा सकती।"

मझले मालिक ने उन दिनों सुधामय को एक कड़ी चिट्ठी लिखी थी। उसमें लिखा था—जो नेता लोग समझते हैं कि सिर पर गांधी टोपी लगाकर, कंधे पर झंडा रखकर वंदे मातरम् का नारा लगाते हुए चारों ओर घूमना ही देशप्रेम की पराकाष्ठा है, ऐसे नेताओं के प्रति मेरे मन में कोई श्रद्धा नहीं है। वे अत्यंत अदूरदर्शी और संकीर्ण मन वाले लोग हैं। मैं समझता हूं, देश को ऐसे दस नेताओं के बदले एक इंजीनियर की जरूरत है। सामूहिक उत्तेजना के वश में होकर अगर तुम अपना कर्तव्य पालन न करके, इस प्रवाह में बह जाना चाहते हो तो अंततः तुम देश की हानि ही करोगे। भावना के जिस उच्छ्वास को तुम इतना प्रबल मान रहे हो, उसके पीछे वास्तव में कोई शक्ति नहीं है; वह महासागर की लहर नहीं, मात्र फेन है। एक दिन वह फेन सूख जाएगा।

इसके बाद सुधामय ने कालेज तो नहीं छोड़ा, मगर दो सालों तक उसके मन में अपराध भाव बना रहा। उसके सहपाठी, मित्र एक-एक कर छाती फुलाए, वंदे मातरम् का नारा लगाते हुए कालेज छोड़ते रहे और उनके अव्यक्त धिक्कार से सुधामय जैसे मन ही मन मुर्दा होता गया। केवल जिस दिन कालेज के सामने पिकेटिंग होती उस दिन वह क्लास में घुसने की कोशिश नहीं करता, वहां से हट जाता। उसे अपने ऊपर गुस्सा आता। अपने मझले काका के ऊपर गुस्सा आता। उसे लगता जैसे मझले काका किसी आदर्श के लिए उसे मना नहीं कर रहे हैं, बल्कि उसकी पढ़ाई में वे जो पैसे लगा रहे हैं उसकी सुरक्षा के लिए ही वे उसे मना कर रहे हैं। इस मानसिक द्वंद्व में सुधामय का मन दो सालों तक लहूलुहान होता रहा। ऐसी यंत्रणा उसके किसी और सहपाठी को नहीं मिली।

उसके बाद सुधामय ने एक आश्चर्यजनक घटना घटते देखी। सचमुच एक दिन आंदोलन मुंह के बल जा गिरा। जो नेता उसके कालेज के छात्रों का हाथ पकड़कर, खींचकर सड़क पर ले गए थे, वे सब फिर नियमित जीवन में वापस चले गए। उसके सहपाठियों में से अनेक फिर कालेज में वापस आ गए। दो साल खामखा खराब होने के लिए वे पछताने

लगे। यहां तक कि उनमें से किसी-किसी ने कहा, "सुधा, तूने बुद्धिमानी का काम किया था।"

सुधामय को बड़ा ताज्जुब हुआ था। मझले काका की बात इस हद तक सही साबित होगी, उसने सोचा भी न था। मझले काका की विचारशीलता और बुद्धिमानी पर तब उसकी श्रद्धा और बढ़ गई थी। मन में कहीं बहुत गहरे उसे बहुत दुख भी हुआ। उसे लगा, ऐसा न हुआ होता तो ही उसे खुशी होती। उसके कालेज के युवा अंग्रेज शिक्षक इस बात को लेकर हंसी-मजाक करते तो सुधामय का दिल जल उठता। उनसे पीछा छुड़ाने के लिए वह बहुत परेशान होता।

अचानक उसने एक दिन सुना कि देशबंधु ने लड़ाई का एक नया तरीका निकाला है। काउंसिल के इलैक्शन का वे बहिष्कार नहीं करेंगे, उल्टे काउंसिल में घुसकर अंग्रेज नामक शेर के अयाल पकड़कर उसे झकझोरेंगे। भारतीय शासन-कानून को वे लोग निष्क्रिय कर देंगे। तभी अंग्रेजों को भारत से भगाया जा सकेगा।

सुधामय को सुनते ही लगा, हां, इतने दिनों बाद अब एक सही रास्ता मिला। उसने जी-जान से देशबंधु का समर्थन किया। उस समय देशबंधु ही सुधामय के भगवान हो उठे।

कांग्रेस दो टुकड़ों में बंट गई। एक दल परिवर्तन-विरोधी था। वे लोग असहयोग आंदोलन से चिपके हुए थे। देशबंधु और पंडित मोतीलाल नेहरू एक कदम और आगे बढ़े। उन्होंने स्वराज्य पार्टी की स्थापना की। परिवर्तन-विरोधी कांग्रेसी नेता देशबन्धु को धिक्कारने लगे। मध्यमार्गी दल पहले ही काउंसिल में घुस गया था। मिनिस्टरी लेकर परिषद की राजनीति में हाथ बटा रहा था। अब वह दल भी मन ही मन मुस्कराने लगा। मध्यमार्गियों को मुस्कराने दो, परिवर्तन-विरोधियों को दुष्प्रचार करने दो। वे देशबन्धु का कुछ बिगाड़ नहीं सकेंगे। उनकी जीत होगी ही।

"मगर तुम्हारे देशबंधु ही क्या कर पाएंगे?"

मझले मालिक के इस अचानक प्रश्न से सुधामय घबरा गया। वह समझ रहा था कि मझले मालिक के प्रश्न में एक व्यंग्य है। सुधामय की धारणा थी कि यह खबर पाकर मझले काका प्रसन्न होंगे। मगर कहां, उनके चेहरे पर, उनकी आंखों में उत्साह का आभास भी सुधामय को दिखाई नहीं देता।

मझले मालिक ने कहा, "तुम्हारे देशबंधु ऐसा कौन सा मंत्र जानते हैं, जिससे देश के सबसे गरीब लोगों को वे उन्नति के शिखर पर पहुंचा देंगे ! भारत के यह सब गूंगे-बहरे गरीब लोग, जिनसे यह देश बनता है, पत्थरों की तरह अचल हुए पड़े हैं। उनमें चेतना का कोई उन्मेष दिखाई नहीं देता। तुम बता सकते हो, वह कौन सी संजीवनी है, जिसके द्वारा वे इनमें प्राण-संचार करेंगे?"

सुधामय ने काफी गर्मी से उत्तर दिया, "वह संजीवनी है स्वाधीनता। पराधीनता की जंजीरें अगर हम तोड़ सके तो हमारे सब दुख दूर हो जाएंगे। देश में अपने-आप जीवन का संचार होगा।"

"पागल!" मझले मालिक हंसे, "ये सभी एक ही बात कहते हैं। इस मामले में हमारे देश के शिक्षितों और अशिक्षितों में कोई अंतर नहीं है। 'देश के पांव में बेड़ियां हैं', 'देश का प्राण', 'देश का दुख'—इन सब मुहावरों का किसने आविष्कार किया है? जिस चीज का कोई अस्तित्व ही नहीं है, वे खोखले शब्द आज मुंह-दर-मुंह बोले जा रहे हैं। इन्हीं को लेकर लोग पगलाए हुए हैं। क्या इनकी यह इच्छा नहीं होती कि एक बार सोचकर देखें, जिन शब्दों का हम लगातार उच्चारण कर रहे हैं उनका अर्थ क्या है?"

मझले मालिक को याद आया, उनके कालेज के दिनों में भारत माता की एक तस्वीर छापी गई थी। भारत माता को एक सुंदर युवती के रूप में दिखाया गया था, जिसके हाथों और पांवों में जंजीरें बंधी थीं। कोई आदमी उनके सामने फांसी पर लटका हुआ था। शायद वह खुदीराम था। एक आदमी उस तस्वीर को शीशे में मढ़ाकर, थाली में रखे पैसे इकट्ठे कर रहा था, जैसे कुछ लोग शीतला माता या शनि देवता की तस्वीरें लेकर भीख मांगते हैं।

उस अशिक्षित आदमी को मझले मालिक बेवकूफ बुड्ढा कह सकते हैं, मगर हमारे देश के शिक्षित लोगों की धारणा भी क्या इतनी पुष्ट है? यह सब बंकिम बाबू के उसी वंदे मातरम् का प्रभाव है। इस समय देश पूरे तौर से कुछ धारणाओं की कठपुतली बना हुआ है। कहने में अच्छा लगता है, इसीलिए हम गला फाड़कर उन्हें दोहराते रहते हैं।

अगर मैं जानता कि यह मामला इतना सीधा-सादा नहीं है, इसमें अनेक जटिलताएं हैं, इस तरह देश का उद्धार कभी नहीं किया जा सकता, केवल देशवासियों का उद्धार किया जा सकता है, तो शायद हममें से कुछ लोंग सोचते कि चुटकी बजाकर ये सब काम नहीं किए जा सकते। इनके पीछे सोलहों आने वास्तविक समस्याएं हैं। देश शब्द जितना सारहीन है, देशवासी शब्द उतना ही सार्थक है। देश में तो नदी पहाड़, मैदान, जंगल सभी आते हैं। पशु, पक्षी और मनुष्य भी इसमें शामिल हैं।

मगर देशवासी का अर्थ है देश में रहने वाले मनुष्य, विविध प्रकार के मनुष्य, जिनमें किसान हैं, जमींदार हैं, मजदूर हैं, नौकरीपेशा लोग हैं और कल-कारखानों के मालिक भी हैं। शोषक भी हैं और शोषित भी हैं। तरह-तरह के अत्याचार और अन्याय हैं। हिंसा है, विद्वेष है और आपस में स्वार्थों की कुटिल प्रतिद्वंद्विता है। यह समस्या जड़ मिट्टी की नहीं, सजीव मनुष्य की समस्या है। हजार तरह की समस्याएं हैं --आर्थिक, सांस्कृतिक, दार्शनिक आदि। बहुत जटिल मामला है। संभवतः इतनी जटिलताओं के बीच पड़कर हमारे लिए दिग्भ्रमित होने का भय बना रहता है। इतनी सारी समस्याओं के दिमाग में घुसने पर चुप

रह जाने की आशंका ही ज्यादा है। इसीलिए सारी जटिलताओं के मूल में स्थित जो देशवासी शब्द है उसे ही देवी मानकर उसके ध्यान में डूबे रहना मैं पंसद करता हूं।

इससे और जो भी हो, मझले मालिक का दृढ़ विश्वास है, स्वाधीनता किसे कहते हैं, इसके मर्म को लोग कभी नहीं समझ पाएंगे। जैसे इसके पहले भी कभी नहीं समझा था। हजारों सालों से भारत में राजनीतिक परिवर्तन हो रहे हैं। शक, हूण और यूनानी आए, पठानों और मुगलों ने राज किया। फिर उनका राज खत्म हुआ तो अंग्रेज आए, फ्रांसीसी आए और फिर पुर्तगाली आए। अंग्रेजों का इस देश में राज कायम हुआ। मगर इससे देशवासियों को क्या मिलता है? उन्हें कभी भी मनुष्य नहीं माना गया। मनुष्य के अधिकारों से हमेशा वे वंचित रहे। उन्होंने अपनी पांचों इंद्रियों से स्वाधीनता का स्वाद कभी नहीं चखा, इसीलिए स्वाधीनता की रक्षा के लिए उनके सिर में कोई दर्द नहीं हुआ।

अगर इतिहास ने हमें कोई शिक्षा दी है, तो वह यही है। क्या कर पाएंगे गांधी, क्या करेंगे देशबंधु? ज्यादा से ज्यादा अंगेजों को यहां से भगा देंगे। उसके बाद? फिर किसी गांधी राज या गुलाम वंश की प्रतिष्ठा होगी। मगर क्या इसी से देश के छत्तीस करोड़ मनुष्यरूपी वृक्षों में स्वाधीनतारूपी फल लग जाएगा? जहां मूलधन ही शून्य है वहां छत्तीस करोड़ और शून्य जोड़ देने पर भी योगफल तो शून्य ही रहेगा। कम से कम मझले मालिक तो ऐसा ही सोचते हैं।

सुधामय का सिर चकराने लगा। कुछ बातें उसे समझ में आईं, कुछ उसके सिर के ऊपर से निकल गईं। बीच-बीच में वह अन्यमनस्क सा हो गया था, इसीलिए सारी बातें उसके कानों में भी नहीं पड़ीं। मगर सुधामय ने एक बात अवश्य महसूस की कि उसके मझले काका भी अनास्थावादी हैं।

बीस

फेदी इतनी धूप में इतना रास्ता तेज कदमों से चलकर आई है। विशेषकर ग्वाले के मकान के पास तक। बूनो लोगों ने इधर के जंगल में उथल-पुथल मचा रखी थी। ढम ढम, ढक-ढक—उनके बाजों की आवाज आम, कटहल, बांस, बेंत और तरह-तरह के दूसरे जंगली पौधों के प्रत्येक रंध्र में घुसकर जाने कैसी एक रहस्मय और हिंस्र वातावरण का निर्माण कर रही थी। मौत का परवाना जैसे चारों ओर खुला घूम रहा था। जैसे कह रहा हो—आज किसी का निस्तार नहीं। बीच बीच में जंगल में इधर-उधर से तरह-तरह की चीखें उठकर हवा में तैरने लगतीं। कभी-कभी जंगल के झाड़-झंखाड़ में आदमी जितने ऊंचे जंगली पेड़ों

के बीच से उन्हें बुरी तरह झकझोरते, जाने कौन लोग तीर की तरह भाग रहे हैं। वे दिखाई नहीं देते। जानवर भी हो सकते हैं और आदमी भी।

फेदी को डर लग रहा था। उसके रोंगेटे खड़े हो गए थे। हालांकि वह इतनी दूर अकेली आने का साहस न कर सकी थी, साथ में एक लड़के को ले लिया था, मगर वह दुर्गाबाड़ी के पास से ही भाग खड़ा हुआ था। दुर्गाबाड़ी के मैदान में फुटबाल मैच होने वाला था उसी के आकर्षण में वह फेदी के हाथ से निकल भागा था।

गिरिबाला के आंगन में आकर खड़ा होते ही एक पल में सूखी मिट्टी की तरह फेदी के मन से सारा डर भय झड़ गया। यहां मनुष्य की उपस्थिति का उष्ण स्पर्श उसे मिल गया था। आंगन में बांसों और तारों पर फैलाए गए कपड़े हवा में झूल रहे थे। एक बड़ा कड़ाह उल्टा पड़ा था। किनारे एक कुदाल, एक कुल्हाड़ी और लकड़ी के कुछ चैले पड़े थे। इन चीजों को देखते ही फेदी का डर भाग गया था।

तेजी से चलने के कारण वह अभी भी हांफ रही थी। उसका गोरा सुंदर चेहरा लाल हो गया था। सफेद आंचल के पीछे उसकी छातियां तेजी से उठ-गिर रहीं थीं। उसकी चिकनी नाक फूल-फूल उठती थी। कुछ लटें उसके माथे पर बिखर गई थीं।

दिन ढल चुका था, फिर भी धूप की आंच कम नहीं हुई थी। पूरा घर निस्तब्ध था। घर में जीवन है ऐसा महसूस हो रहा था, पर उसकी कोई आहट नहीं मिल रही थी। हाथ की कथरी को मुट्ठी में दबाए फेदी गोदाम के हाथी के सूंड जैसी सीढ़ी पार करके बरामदे में चढ़ गई। फिर उसने बड़ी बहू के कमरे में झांका। बाप रे! कैसी नींद है इन लोगों की! चोर चाहे पूरा घर लूट ले जाए, फिर भी शायद इनकी नींद न खुले !

फेदी ने जोर से आवाज लगाई, "ओ छोटी चाची !"

उसका गला सूख गया था, इसलिए आवाज ठीक से नहीं निकली।

उसने फिर पुकारा, "ओ ताई जी !"

बड़ी बहू ने आंखें खोलीं तो देखा फेदी खड़ी है। वे हड़बड़ाकर उठ बैठीं। दोनों हाथों से चोटी की गांठ लगाते हुए, मुंह में भरे थूक के कारण ऊं-आं करके उसे बैठने का इशारा किया। फिर जल्दी से बाहर जाकर थूक आईं।

बोलीं, "आओ बेटी, आओ। कब से तुम्हें नहीं देखा। कल बूड़ी और सुधा तुम्हारे घर गए थे तो मैंने उनसे कहा था तुम्हें बुलाने को। तुम्हारा सोने-जैसा मुंह देखने का बड़ा मन था।"

फेदी ने उदास हंसी हंसते हुए कहा, "यह मुंह अब सोना कहां रहा है, ताई, एकदम पीतल हो गया है। मेरा तो अपना ही मुंह देखने का मन नहीं करता।"

फेदी की आंखें भर आईं। बड़ी बहू की आंखों में भी आंसू आ गए।

बोली, "क्या कहूं बेटी ! जैसे विधाता को भी आंख नहीं हैं, वर्ना ऐसी सुंदर लड़की

को ऐसा दुर्भाग्य क्यों देते?"

फेदी ने गहरी सांस लेकर कहा, "सब मेरे भाग्य का दोष है। इसमें और किसी का कोई दोष नहीं है।"

बड़ी बहू ने बिना कुछ कहे अपने आंचल से फेदी की आंखें और मुंह पोंछ दिए। फिर एक हाथ में पंखा लेकर उसे हवा करने लगीं।

घर-गृहस्थी की बातें उठीं। फेदी के मां-बाप तीर्थाटन पर निकले थे। गया, काशी, वृंदावन घूम रहे हैं। वैसे उनका आने का समय भी प्रायः हो गया है। आजकल में आने ही वाले हैं। घर पर फेदी और उसका बड़ा भाई सन्तोष हैं। बड़ा भाई भी एकदम आवारा है। इसी को लेकर घर में कलह मचा हुआ है। ससुराल से फेदी की कोई खोज-खबर ही नहीं लेता। कुलच्छनी बहू को कौन पूछता है? गोद में एक बच्चा होता तो भी कोई बात थी।

फेदी ने कहा, "क्या कहूं, ताई, कभी-कभी मन करता है, आग लगाकर या पानी में डूबकर या फिर जहर खाकर जान दे दूं।"

फेदी की आंखों से आंसू झरने लगे। अभी अट्ठारह-उन्नीस साल की है। कहते हैं, कच्ची उम्र की रांड़ लंबी जिंदगी पाती है। भविष्य की ओर देखकर भी उसे डर लगता है। विधवा का भविष्य एक धू-धू करती मरुभूमि के अलावा क्या है।

"मगर मैं ऐसी अभागिन हूं कि शायद मुझे आग भी न छुए, पानी सूख जाए और जहर भी हार मान ले।"

बड़ी बहू ने सिहर कर फेदी के मुंह पर हाथ रख दिया।

बोलीं, "नहीं बेटी, ऐसी बातें नहीं करते।"

बड़ी बहू ने फेदी को अपनी गोद में खींच लिया। दुख से भरे दो हृदय एक-दूसरे के निकट आ गए। सहानुभूति का एक अदृश्य प्रवाह एक छाती से निकलकर दूसरी छाती के भीतर के गहरे घाव पर मलहम लगाने लगा। बड़ी बहू के आंसू फेदी के सिर पर टप-टप चूने लगे और फेदी के आंसुओं से बड़ी बहू की गोद गीली हो गई। कुछ देर बाद फेदी ने आंखें पोंछ लीं और संभलकर बैठ गई। उसके मुंह पर एक अद्‍भुत हंसी खिल गई, जैसे बादलों के दो टुकड़ों के बीच से शरद ऋतु की चांदनी छिटक पड़ी हो।

फेदी बोली, "देखो तो, मैं भी कैसी हूं? क्या करने आई थी और क्या कर रही हूं! ताई जी, जरा बूड़ी को एक बार बुलाओ। देखो, मैंने उसके बच्चे के लिए एक दुलाई बनाई है। देखना, कढ़ाई कैसी हुई है?"

फेदी ने दुलाई खोलकर सामने रख दी। पूरी दुलाई पर छोटे-छोटे फूल कढ़े हुए थे। बड़ी बहू ने खूब तारीफ की।

बोलीं, "आ हा हा ! दुलाई बहुत प्यारी है। पाड़ की कढ़ाई जितनी सुंदर है उतने

ही सुंदर बीच के फूल बने हैं। नजर ही नहीं ठहरती। ओ बूढ़ी, जरा इधर आना। फेदी आई है। देख तो, क्या लाई है तेरे लिए !"

दूसरे कमरे में लेटकर गिरिबाला बच्चे को दूध पिला रही थी। वह समझ गई थी कि फेदी आई है। अपने मन के अपराध-बोध को वह परे नहीं ठेल पा रही थी, इसीलिए उस कमरे में जाने का साहस भी नहीं कर पा रही थी। फेदी ने जिस नजर से कल उसे देखा था, उसमें प्रशंसा भी थी और ईर्ष्या भी। उसकी आंखों की भाषा को गिरिबाला ने कुछ-कुछ पढ़ लिया था, कुछ-कुछ समझ भी गई थी। बड़ी मां के साथ उसकी जो बातचीत हुई थी वह भी उसके कानों में गई थी। फेदी के लिए सचमुच उसका मन दुख से भर गया था, मगर इसमें गिरिबाला का क्या दोष? उसका पति जीवित है, फेदी का नहीं है; उसकी गोद में भगवान ने चांद जैसा बेटा दिया है (गिरिबाला ने बच्चे को कई बार चूमा), ईश्वर ने फेदी की गोद सूनी रखी है, तो इसमें वह क्या कर सकती है? फिर भी, गिरिबाला को बड़ा अजीब लग रहा था।

गिरिबाला जानती है, समझ गई है कि फेदी के मन में कौन-सी प्यास जाग उठी है। ऐसे में मुन्ना को उसके सामने ले जाने से उसे कुछ हो तो नहीं जाएगा, नजर तो नहीं लग जाएगी? गिरिबाला ने बच्चे को अपने सीने में छुपा लिया। दूसरे ही पल उसकी आंखों के सामने मातृत्व से वंचित तरुणी की दो करुण आंखे तैर गईं। गिरिबाला ने सोचा, सच, फेदी की दोनों आंखें कितनी सुंदर हैं! गिरिबाला के मन ने जैसे उसे चाबुक मारा। छिः, वह तो बड़ी स्वार्थी है। वह हड़बड़ाकर उठ बैठी। नंगे शिशु को गोद में उठाए बड़ी मां के कमरे में घुस गई। वैसे घुसने के पहले उसने एक सावधानी जरूर बरती। उसने बच्चे के बाएं हाथ के अंगूठे को एक बार अपने दांतों से दबा लिया। नजर न लगने के लिए यह टोटका उसने किया था।

बच्चा फेदी की गोद में किसी तरह भी जाना नहीं चाहता था। अब वह आदमी पहचानने लगा था। एक बार फेदी ने उसे जबरदस्ती अपनी गोद में लिया और बड़ी मुश्किल से उसे अपने सीने से लगाया। मगर उसके कठोर स्तनों में मातृत्व का फल नहीं लगा था। अमृतकुंभ में एक बूंद भी अमृत न था। इसीलिए बच्चे को सीने से लगाकर भी उसकी छाती जुड़ाई नहीं। जोर से रोकर, अपनी देह को टेढ़ा करके, ऐंठकर गिरिबाला के बच्चे ने विद्रोह की घोषणा की। हार मानकर खिन्न मन से फेदी ने उसे फिर गिरिबाला की गोद में दे दिया। उसके छोटे से मुंह को एक बार चूम लेने की वासना फेदी के मन में ही रह गई। वह उस बच्चे के साथ अब और जबरदस्ती नहीं करना चाहती थी। जाने कैसा एक अवसाद उसके मन में घिर आया। उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि वह इतनी दूर चलकर किसलिए यहां आई है। अब उसका घर लौट जाने का मन हो रहा था, मगर इतना लंबा रास्ता वह अकेली कैसे जाएगी? दिन भी काफी बीत चुका है।

फेदी ने कहा, "ताई जी, अब मैं चलती हूं। मेरे साथ किसी को भेज दो, मुझे घर छोड़ आए।"

बड़ी बहू ने कहा, "यह क्या बेटी, अभी-अभी तो आई हो?"

"नहीं ताई, बाहर निकलकर तो देखो, शाम होने में ज्यादा देर नहीं हैं।"

"ओ मां ! हां, ये तो है ! ओ फूली की मां, जरा पनडब्बा लाना, फेदी को एक पान दूं। जरा बैठ न, एक पान खाती जा।"

फेदी ने कहा, "ताई, विधवा के लाल होंठ क्या शोभा देते हैं? खैर, दे दो; मगर जाऊंगी किसके साथ?"

बड़ी बहू ने जवाब दिया, "रुको, देखती हूं। ओ नरा !"

कोई उत्तर नहीं। नरा घर पर नहीं था। रामकिष्टो भी नहीं था। फेदी का मुंह सूख गया। तो फिर?

बड़ी बहू ने कहा, "तू क्यों चिंता करती है, मैं कोई न कोई इंतजाम करती हूं। ओ सुधा! बेटा, सुनो जरा।"

सुधामय अपने कमरे में कुछ पढ़ रहा था। मां की पुकार सुनकर वहां आ गया।

बड़ी बहू ने चिरौरी करते हुए कहा, "राजा बेटा, फेदी को जरा छोड़ आओगे?"

सुधामय ने कोई हील-हुज्जत न की, बोला, "हां। अभी कपड़े पहनकर आया।"

अभी भी रोशनी पेड़ों की ऊपरी शाखाओं पर पड़ रही थी, मगर पेड़ों के नीचे की छाया गहराती जा रही थी। दुर्गाबाड़ी पीछे छोड़कर आगे बढ़ते ही फिर जंगल में ढम-ढम, ढक-ढक की आवाज सुनाई पड़ी। एक पल में फिर फेदी की गर्दन पर डर आ बैठा। उसकी छाती तेजी से धड़कने लगी। सुधामय मन ही मन खिन्न हो उठा। उसे लगा, यह ऊबा देने वाला बर्बर अनुष्ठान जैसे कभी खत्म ही नहीं होगा। यही तो हैं उसके मझले काका के देशवासी ! सुधामय को हंसी आई। इन्हें ध्यान में रखकर काम करना हो तो फिर जीवन में कोई काम करना मुश्किल हो जाएगा।

तभी अचानक फेदी चीख उठी, "सुधा दा, देखो, जंगली सूअर !" और उसने सुधामय को दोनों हाथों से जकड़ लिया। चौंककर सुधामय ने सामने देखा, थोड़ी दूर पर एक दंतैल बनैला सूअर हल्के अंधेरे में पेड़ के नीचे खड़ा हांफ रहा था। उसके सारे शरीर में घाव थे। फेदी की चीख सुनकर सूअर भी चौंक पड़ा। घूमकर उनकी ओर देखा। सुधामय को लगा, सूअर नहीं, दोनों आंखों से अंगार बरसाती जैसे साक्षात मौत उनकी ओर दौड़ी आ रही है।

सुधामय की देह की प्रत्येक नस उस आकस्मिक आतंक के सामने ढीली पड़ गई।

"सुधा दा, भागो, सुधा दा !"

फेदी का आर्त स्वर जैसे उसके कान में घुसा ही नहीं। घुसता भी तो कुछ न होता। वह हिल भी न पा रहा था। उसकी देह जैसे पत्थर की हो गई थी।

फेदी उसका हाथ पकड़कर रास्ते के किनारे की ओर भागी और उसे एक जोरदार झटके से किनारे खींच ले गई। दोनों इस झटके को संभाल न सके और पास के गड्ढे में जा गिरे। गड्ढा उन्हें दिखाई नहीं दिया था, क्योंकि उसका मुंह ढेकी के साग के पत्तों से ढका हुआ था।

सुधामय को प्रकृतिस्थ होने में ज्यादा समय नहीं लगा। उसने पाया कि वह मरा नहीं है। बनैले सूअर के धारदार दांतों ने उसके टुकड़े-टुकड़े नहीं किए हैं। हुआ सिर्फ यह है कि वह अंधेरे नाले में जा गिरा है। और फेदी की निश्चेष्ट देह उसके ऊपर लदी हुई है। फेदी की देह काफी भारी लग रही थी। सुधामय के पेट और एक घुटने में दर्द हो रहा था। फेदी एकदम निढाल थी। सुधामय खुद भी हिलने-डुलने का साहस नहीं पा रहा था। क्या जाने सूअर अभी भी वहीं खड़ा हो ! फिर डर के मारे सुधामय के होश उड़ गए। उसकी रीढ़ की हड्डी में डर रेंगने लगा। ओह ! खूब जान बची आज ! फेदी न होती तो आज वह मारा जाता। बहुत सावधानी से जरा-सा हिलने की कोशिश करते ही सुधामय ने अपने सीने पर फेदी के पुष्ट स्तनों का दबाव महसूस किया और साथ ही उसके पूरे शरीर में जैसे बिजली का झटका-सा लगा। उसने अपने भीतर एक भयंकर विस्फोट का अनुभव किया। उसकी देह थर-थर कांप उठी। मन में एक अज्ञात आक्षेप जाग उठा। सुधामय की जवान देह ने पहली बार एक नारी देह का आस्वाद पाया था। सुधामय के अनजाने उसकी पूरी देह कुछ और पाने की आशा में तैयार अधीरतापूर्वक प्रतीक्षा करने लगी। उसकी नस-नस में कामना की बांसुरी तीखी आवाज में बज उठी। हर पल जैसे एक मधुर मृत्यु सुधामय को छूकर जाने लगी।

अभी भी फेदी सुधामय की शांत, मगर तनी हुई देह पर निश्चल पड़ी थी। होश आते ही वह हड़बड़ाकर उठ बैठी और सुधामय के स्पर्श से इस तरह दूर हट गई कि वह भौंचक रह गया। एक पल बाद फेदी ने सुधामय की तरफ देखा तो उसे लगा कि जैसे वह चुपचाप उसका तिरस्कार कर रही है। जैसे उसकी आंखें कह रही हैं—छिः, सुधा दा ! तुम्हारा ऐसा व्यवहार ! सुधामय की देह तब भी कांप रही थी, जैसे उत्तेजना का ज्वर अभी भी अपने पूरे ताप के साथ उसकी देह को जला रहा था।

फेदी ने बहुत ही ठंडे स्वर में कहा, "उठो, सुधा दा, चोट तो नहीं लगी?"

सुधा की कुछ कहने लायक हालत न थी। वह सोच रहा था, शायद फेदी उसे बहुत बुरा समझ रही है, बहुत गंदा। एक बार मन हुआ कि फेदी को वहीं छोड़कर वह लौट जाए। उसे अपना मुंह न दिखाए।

थोड़ी देर बाद गड्ढे से बाहर निकलकर सुधामय ने गंभीर स्वर में फेदी से पूछा, "अब

तुम अकेली घर जा सकोगी?"

तुरंत इसका उत्तर न देकर फेदी ने एक बार सुधामय की ओर देखा। फिर शांत गले से कहा, "नहीं। चलो, जल्दी से मुझे घर छोड़ दो।"

फेदी के घर तक दोनों जने चुपचाप चलते रहे। सुधामय घर के बाहर से ही लौटा आ रहा था, फेदी की आवाज सुनकर रुक गया।

फेदी ने कहा, "सुधा दा, जाना नहीं। भीतर आओ, तुमसे कुछ कहना है।"

सुधामय रुक गया। फेदी उसे क्या समझती है। लंपट? बदमाश? उसने किया ही क्या है? खंदक में गिरने के बाद उसके मन में जो भाव जगा था उसके लिए सुधामय अपने को जरा भी जिम्मेवार नहीं मानता। ठीक है, वह फेदी को सब कुछ साफ बता देगा। फेदी की देह के आकस्मिक सान्निध्य में आकर ही उसके अंदर ऐसी चंचलता जागी थी। स्वीकार करता हूं कि बात अच्छी न थी, मगर फेदी को विश्वास करना चाहिए कि उस घटना में सुधामय का कोई हाथ न था। उसने अब तक किसी लड़की को बुरी नजर से नहीं देखा है।

सुधामय के घर में घुसते ही फेदी ने उसका हाथ कसकर पकड़ लिया। यह क्या? फेदी भी उसी तरह थर-थर कांप रही है ! फेदी की देह का स्पर्श पाते ही एक बार फिर सुधामय को उसी तरह की उत्तेजना ने घेर लिया। उत्तेजना के उस प्रबल प्रवाह में उसका पूरा अस्तित्व डूब गया। इस बार वह अकेला नहीं था। दोनों की देह में एक ही आग जल रही थी।

बिना कुछ बोले अपने थरथराते हाथों से सुधामय का हाथ पकड़े फेदी अपने कमरे में घुस गई और दरवाजा अंदर से बंद कर लिया। दरवाजा बंद करते ही बाहर की सांकल झन्न करके बज उठी। फिर बंद दरवाजे पर सांकल जैसे धीरे-धीरे हिलकर थपकियां देने लगी।

इक्कीस

यह क्या हुआ? इतनी प्रचंड प्यास थी उसके मन में? इतनी भयंकर ज्वाला थी उसकी देह में? इसके पहले तो कभी फेदी को इस तरह से इसका एहसास नहीं हुआ था। पति की मृत्यु के बाद उसने अपनी देह और अपने मन की भूख-प्यास की आंच को विभिन्न प्रकार से ठंडा कर रखा था। जैसे कोई मां विवश होकर अपनी दुर्दम संतान को नशा देकर निर्जीव

किए रहती है, उसी तरह फेदी ने भी अपनी इच्छाओं और वासनाओं को अपनी देह में बेहोश और पंगु करके डाल दिया था। दो साल बीत जाने पर फेदी निश्चिंत हो गई थी। लगता है, उसने मान लिया था कि सब कुछ खत्म हो गया है। उसने अपने को एक रूप-रस-गंध-हीन दीर्घ जीवन की कठोर साधना के लिए तैयार कर लिया था।

मगर यह क्या हुआ? एक आकस्मिक घटना के अपरिहार्य आघात से उसकी इतने दिनों की साधना, अर्जित संयम, एक विधवा की तपस्या से अर्जित पवित्रता जैसे एक फूंक में उड़ गई ! उसकी देह के सीमांतों में एक पर-पुरुष का अनधिकार प्रवेश अचानक घट गया ! और वह भी फेदी के ही आमंत्रण पर ! छिः !

तो क्या कल वह पागल हो गई थी?

बाकी दिन फेदी भोर में ही उठ जाती। धूप निकलने के पहले ही घर-गृहस्थी के आधे काम वह खत्म कर लेती। मगर आज फेदी के बिन बुहारे आंगन में धूप लोटपोट कर रही है, फिर भी फेदी के कमरे का दरवाजा बंद है। वह बिस्तर में निढाल हुई पड़ी है। जरा भी हिल-डुल नहीं रही है। कुछ भी करने की उसकी इच्छा नहीं हो रही है। कितना अच्छा होता अगर इसी पल उसकी मौत हो जाती। भगवान ! मुझे बचा लो, मन ही मन फेदी पुकारने लगी। कहने लगी, अगर मैंने मन-वचन-कर्म से तुम्हारी पूजा की हो तो हे दयामय, मुझे मृत्यु दो।

दयामय का स्मरण करते ही फेदी को सुधामय याद आया। फेदी की चिंताभूमि से भगवान को अपनी कानी उंगली से परे ठेलकर सुधामय उसके पूरे अस्तित्व पर, उसके देह-मन पर जा बिराजा।

फेदी का मन आंधी की तरह, तेज और तेज सुधामय की ओर दौड़ पड़ा। मन की इस गति के सहारे जैसे फेदी की देह भी सुधामय की देह को भयंकर वेग से जकड़ने के लिए उसकी ओर दौड़ पड़ी। कल सुधा इसी बिस्तर पर लेटा था, फेदी को याद आया। साथ ही बिजली की तरह एक अपूर्व सुख का स्वाद और साथ ही सुधामय के स्पर्श का आनंद फेदी की शिराओं-उपशिराओं तक फैल गया। भयंकर उत्तेजना से उसका शरीर कांपने लगा, धड़कन बढ़ गई और उसकी आंखों की अतल गहराई से जैसे एक नया सूर्य उदय होने लगा। उसका शरीर बुरी तरह जलने लगा। उसके नाक, कान और मुंह जैसे ताप में झुलसने लगे। कामना की तीखी प्यास से फेदी छटपटाने लगी। उसने तकिए को जोर से अपनी छाती में भींच लिया और जैसे उसकी कामना बार-बार उसे ही डंसने लगी। अब उससे बर्दाश्त नहीं होता। लगता है जैसे वह चूर-चूर होकर बिखर जाएगी, मर जाएगी। तो मर, अभागी, तू मर ! तेरे मन में इतना पाप है, तेरी देह में इतनी आग है, तू बिना मरे जुड़ाएगी नहीं। छिः फेदी ! छिः छिः छिः।

हां वह मरेगी, जरूर मरेगी। इस कलंकित देह का भार ढोकर, अपनी ही आंखों में

गिरकर और दुनिया की घृणा का पात्र बनकर वह जीना नहीं चाहती। भगवान, तुमसे बस एक विनती है, केवल इतना करना कि मरते समय सुधा दा एक बार मेरे सिरहाने आकर खड़े हो जाएं और इस अभागिन के लिए दो बूंद आंसू बहा जाएं। तब यह अभागिन फेदी बहुत सुख से मर सकेगी। मगर क्या सुधा दा उस समय आएंगे !

अचानक फेदी का हृत्पिंड धड़ाम-धड़ाम करके उछलने लगा। सुधा दा तो आज ही आएंगे ! इसी दोपहर में? नहीं-नहीं, तीसरे पहर, जब उसका बड़ा भाई घर में नहीं होगा। जब खा-पीकर उसके पड़ोसी नींद के आगोश में पड़े होंगे, उसी समय सुधा दा चुपचाप आएंगे। फेदी जैसे देख पा रही है, झाड़ी की ओट में छुपता-छुपाता, चौकन्ना सुधामय फेदी के घर की तरफ बढ़ता आ रहा है। सुधामय के चेहरे पर, उसकी आंखों में वह निष्पाप और सुकुमार उज्ज्वलता अब नहीं है। वह पवित्र आनंद की धारा अब सुधामय के सुंदर, बलिष्ट शरीर से प्रवाहित नहीं हो रही है। सुधामय अपनी स्वर्गीय दीप्ति खो चुका है। अब वह कभी सिर ऊंचा करके फेदी के आंगन में पांव नहीं रख सकेगा। अब कभी सुधामय उनके बरामदे में बैठा, उस तरह अनायास बांस के खंभे से टेक लगाए, अपनी भावप्रवण आंखें बंद किए अन्यमनस्क नहीं हो सकेगा। सुधामय की वह अदा फेदी को बहुत भाई थी। अभी परसों की ही तो बात है और वही सुधामय एक दिन में क्या से क्या हो गया? अब उसे चोर की तरह यहां आना होगा। पाप की जासूसी छाया हर समय उसका पीछा करती रहेगी। जो सुधामय स्वस्थ, सबल और आनंद का प्रतीक था वही फेदी जैसी पापिन के विषैले निश्वास से अब एक मोहग्रस्त, घबराया हुआ पेशेवर कामुक बन गया है, जिसके नमूने इस गांव में कोई कम नहीं हैं।

सुधामय के इस अधोपतन के लिए कौन जिम्मेवार है? मैं? फेदी ने स्वीकार किया, हां, मैं। कल रात सुधामय जल्दी से भागना चाहता था, तो किसने हाथ पकड़कर रोका था? किसने उसे मुग्ध भाव से फिर आने को कहा था? किसने कहा था, कल आना, कल दोपहर में आना? मैंने कहा था, मैंने...मैंने, मैंने, मैंने...

मगर इसका परिणाम भी सोचा था? क्या सोचा था कि इसका नतीजा क्या होगा? नहीं। नहीं। नहीं सोचा था। सोचने का मौका कहां था? एक फेदी दो टुकड़ों में बटकर दो औरतें बन गई थी। इसके बाद जैसे नौटंकी की सुमति और कुमति की तरह वे दोनों औरतें आपस में तर्क वितर्क करने लगी थीं।

अब फेदी समझ रही थी कि कल उसके मन में गिरिबाला के बच्चे को देखने जाने की जो जल्दबाजी मची थी, वह सच में गिरिबाला के बच्चे के लिए नहीं थी। नहीं, नहीं, साथ ही फेदी ने प्रतिवाद किया, ईश्वर जानता है, मेरा और कोई उद्देश्य नहीं था। उसका कोई बुरा उद्देश्य नहीं था। तो फिर वह कांड कैसे हुआ? मैं नहीं जानती, नहीं जानती, नहीं जानती, और फेदी तकिए में अपना सिर रगड़ने लगी।

ढम-ढम, ढक-ढक, फेदी के कानों में शिकारी आदिवासियों का बाजा बज उठा। उस भयंकर घायल सूअर का रूप भी जैसे उसकी आंखों में तैर गया। जैसे उस बनैले सूअर को बूनो आदिवासियों के हाथ से रिहाई नहीं मिली होगी, एक वन से दूसरे वन में उसका पीछा करते हुए जैसे निर्दय उल्लास से शिकारियों ने उसे खत्म किया होगा, ठीक वैसे ही न जाने कौन फेदी का पीछा कर रहा है। दौड़ा-दौड़ाकर उसने फेदी को इस हालत में पहुंचा दिया है। इस घटना में उसका क्या हाथ है?

फेदी के अचानक झटका देकर खींचने से सुधामय खंदक में जा गिरा था और फेदी भी उस झोंके को संभाल न पाकर पलटकर सुधामय के ऊपर जा गिरी थी। उस समय फेदी डर से अधमरी हो गई थी। तब क्या उसके मन में कोई और विचार आ सकता था? इस तरह कितनी देर वह पड़ी रही, उसे नहीं मालूम। अचानक एक समय अर्द्धबेहोशी में उसे लगा कि उसके पति की देह की परिचित गर्मी बिजली की तरह उसकी नसों में प्रवेश कर रही है। वह स्पर्श पाते ही वह चौंक उठी थी और उसने तुरंत सुधामय की देह से अपने को अलग कर लिया था। एक नए आतंक और एक पुरानी उत्तेजना ने पल-भर के लिए उसे अवश कर दिया था। वह थर-थर कांप उठी। एक विधवा के संयम के सहारे उसने एक पल में अपने मन की चंचलता को वश में कर लिया था। सुधामय के मुंह पर जो अपराधबोध, जो विमूढ़ता उस समय उसने देखी थी, उसे समझने में उससे जरा भी भूल न हुई थी। बल्कि सुधामय की बच्चों-जैसी हरकतों से उसे थोड़ा मजा ही आया था। सुधामय इतना परेशान हो गया था कि वह फेदी को वहीं छोड़कर भाग जाना चाहता था। सुधामय ने ज्यों ही ऐसा कहा था फेदी की आंखों के सामने अंधेरा छा गया था। बाप रे! तो फिर वह अकेली जाएगी कैसे? और फिर ऐसा हुआ ही क्या है जो सुधा दा इतना अगर-मगर कर रहे हैं ! इसीलिए उसने यथासंभव सहज भाव से ही सुधामय को घर तक छोड़ आने को कह दिया था।

इसके बाद बाकी रास्ता उन दोनों ने चुपचाप चलते हुए काट दिया था। सुधा दा बात क्यों नहीं करते? खुद को इतना अपराधी क्यों समझ रहे हैं? इस बारे में सोचने की प्रक्रिया में अचानक फेदी ने जिस सत्य का आविष्कार किया था, उसी से यह सर्वनाश हुआ। सुधामय की देह ने फेदी को आलिंगन में बांधकर उसके पति की देह की भाषा में ही उसे पुकारा था, क्या सुधामय के अपराध-बोध का यही कारण है? तो क्या फेदी की देह में अभी वह गुण है, जो पुरुष को अपनी ओर खींचता है? इसका मतलब है, विधवा होने के बाद भी उसका सब कुछ समाप्त नहीं हुआ है? ये सब बातें याद आते ही उसकी देह में जैसे एक उत्तेजना ने जन्म लिया। जाने कैसी एक सुरसुराहट, एक अस्थिरता, जाने किस चीज की एक प्रत्याशा उसके भीतर जाग उठी ! उसे लगातार डर लगने लगा कि सुधामय का अबोध पौरुष कहीं पीछे से उसके ऊपर झपट्टा न मारे ! सचमुच, अगर सुधा दा अभी पीछे से

उसे अपनी बांहों में जकड़ लें तो क्या होगा? कोई उसकी रक्षा नहीं कर पाएगा। कोई नहीं, कोई नहीं। तो फिर क्या होगा? यह बात जैसे-जैसे उसके मन में उठने लगी, उसकी देह वैसे-वैसे ही और कांपने लगी। उसे चलना कठिन लगने लगा। लगा, जैसे वह अचानक जमीन पर गिर जाएगी। जो भी हो, वे बिना किसी बाधा के घर पहुंच गए थे, मगर घर पहुंचते न पहुंचते वह समझ गई कि एक तेज प्यास उसके यौवन को जर्जर किए दे रही है। जैसे बहुत दिनों से बिना पानी पीए वह एक कठिन रेगिस्तान को पार करती आ रही है। ऐसे में उसने अपने सामने ही एक जलाशय देखा था। सामने ही सुधामय खड़ा था। इसीलिए विवेक खोकर फेदी ने कल शाम उसकी ओर हाथ बढ़ा दिया था। अच्छा-बुरा, न्याय-अन्याय, अंजाम कुछ भी उसने नहीं सोचा था। जैसे कुछ क्षणों के लिए उसने अपने पति को ही फिर से पा लिया था। जो कमी थी उसे उसने अपनी कल्पना से पूरा कर लिया था। इसीलिए उस समय उसे वह सुख, अंतिम सुख मालूम हुआ था। अब वह सोचकर देखती है तो उसे वह सुख नहीं, बल्कि काले नाग का विषदंश लगता है। अब जो चीज दीर्घस्थाई है, वह है यंत्रणा, उत्तरोत्तर बढ़ती हुई प्यास। शायद इसीलिए फेदी ने सुधामय को फिर बुलाया है और फिर-फिर बुलाती रहेगी।

मगर फेदी अब समझ रही है, यह ठीक नहीं हुआ। वह सुधा दा को आने से मना कर देगी। सुधा दा हमेशा सुधा दा बने रहें। वे उसके प्रेमी न बनें। फेदी खुद को नष्ट कर रही है, तो करे, मगर वह सुधामय को नष्ट नहीं करेगी।

मगर मना कैसे करे? चिट्ठी भेजे? छिः छिः ! उससे तो उसके मन का कलंक स्याही के सहारे सारी दुनिया में फैल जाएगा। तो फिर क्या आज फिर उनके घर जाए? मगर क्या बहाना लेकर? फेदी ने डर के साथ महसूस किया कि उसने अपनी दुनिया को कितना जटिल बना दिया है। उसने देखा कि इसी बीच वह कितनी असहाय हो गई है। तो क्या सुधामय को रोका नहीं जा सकेगा? वह आएगा ही? उसे मना नहीं किया जा सकेगा? और एक बार फिर...

नहीं, नहीं, नहीं, फिर नहीं, अब नहीं। जो होना था हो चुका। भगवान, भगवान, इस बार मुझे बचा, मेरी रक्षा कर !

तकिए में मुंह छिपाकर फेदी असह्य यंत्रणा से फूट-फूटकर रो उठी।

सुधामय को नींद नहीं आई। किसी तरह भी वह सो नहीं सका। भला ऐसे में नींद आती है!

उत्तेजना की प्रबल आंधी में पड़ा सुधामय सारी रात तरह-तरह की दुश्चिंताओं में पड़ा रहा। फेदी का अस्तित्व अशरीरी रूप धरकर बार-बार आता और निरंतर उसे स्पर्श करता। सुधामय के रोम-रोम में सिहरन जगा जाता। सुधामय जागता रहा। शायद कभी नींद भी

आई हो। मगर पलक झपकते ही फेदी की कमनीय देह की महक आकर सुधामय की नींद को तोड़ जाती। फेदी के केश जैसे अंधकार बनकर सुधामय को ढके हुए थे। हर पल उसे लग रहा था कि हाथ बढ़ाते ही उस नरम अंधकार को वह अपनी मुट्ठियों में पकड़ सकता है और मुट्ठी-भर अंधकार के उस गुच्छे को नाक के पास ले आते ही उसके भीतर से फेदी के बालों की वह मतवाली गंध वह पा सकेगा। उसे लगता, उस घने अंधेरे के नीचे फेदी का अपरूप मुंह झांक उठेगा और मुस्कराएगा। उसे लगता, फेदी के नरम होठों का दबाव उसके होठों पर बढ़ता जा रहा है। सुधामय चौंक उठा। फेदी की नरम सांसें उसके गालों को छू रही थीं। कौन फेदी? सुधामय के खून में जैसे प्रचंड ज्वार उमड़ा। रक्त की प्रत्येक कणिका भयंकर वेग से चक्कर खाती हुई किसी अनिर्दिष्ट लक्ष्य की ओर तेजी से भागने लगी। जैसे पागलपन की एक तरंग उसे छूकर उसकी देह के प्रत्येक कोश को बंधनहीन उल्लास के अविश्रांत नृत्य में रत कर गई हो। सुधामय को लगा, वह टूटकर चूर-चूर हो जाएगा। उसका सारा अस्तित्व धूल बनकर बिखर जाएगा। यह कैसा दारुण, कैसा असह्य, कैसा आनंदमय अनुभव है ! सुधामय उसे अब और पकड़े नहीं रख पा रहा है। और छोड़ देने को भी मन नहीं चाहता।

कुछ देर के लिए प्रबल ज्वार थम गया। अवसाद का भाटा आया। सुधामय श्रांत-क्लांत हो उठा। अब उसमें वह चंचलता, वह विक्षोभ नहीं था। उस महान आलोड़न के बाद उसका ध्वस्त अस्तित्व शांत हो गया था। थोड़ी देर में सुधामय को नींद आ गई।

दो मिनट भी नहीं बीते थे कि जैसे किसी ने सुधामय के बंद दरवाजे पर दस्तक दी। सुधामय की नींद टूट गई। इतने धीमे-से उसके दरवाजे पर किसने दस्तक दी? फेदी ने? क्या चुपचाप फेदी आ गई है? क्या बाहर खड़ी है? कल की तरह ही क्या वह बाहर खड़ी थर-थर कांप रही है? जैसे ही सुधामय दरवाजा खोलेगा, क्या वह झपटकर उसकी गोद में समा जाएगी? कल शाम की ही तरह क्या वह सुधामय को अपने प्यार की प्रबल धारा में बहा ले जाएगी? एक बार फिर सुधामय उत्तेजना के प्रबल आघात से अस्तव्यस्त हो उठा। एक बार फिर उसकी देह में, उसके मन में भयंकर भूचाल शुरू हो गया। उसके शरीर का रक्त नाच उठा, उसके हृदय का स्पंदन तेज से तेजतर हो उठा। उसकी समस्त इंद्रियां विद्रोह की घोषणा करने लगीं। सुधामय अस्थिर हो उठा, थर-थर कांपने लगा। उससे बिस्तर से उठा भी न गया। असहाय होकर पड़ा रहा। व्यग्रता से फेदी की प्रतीक्षा करता रहा। जैसे फेदी बंद दरवाजे को भेदकर सुधामय के बिस्तर में आ जाएगी।

मगर फेदी नहीं आई। दुबारा दरवाजे पर दस्तक भी नहीं दी। शायद इससे पहले भी नहीं दी थी। शायद क्यों, निश्चय ही नहीं दी थी—सुधामय ने सोचा। तो क्या वह पागल हो गया है। हां, पागल ही तो है सुधामय, वर्ना उसने कैसे सोचा, कैसे सोच सका कि फेदी इतनी रात में उस गांव से जंगल पार करके उसके दरवाजे पर हाजिर हो जाएगी। वही

फेदी, जो डर के मारे दिन की रोशनी में भी अकेली कहीं नहीं जा सकती। तभी तो सुधामय उसे छोड़ने गया था। और उसे छोड़ने जाकर ही तो...

इसके अलावा अगर फेदी उस गांव में न होती, अगर वह सुधामय की बगल के कमरे में ही होती, तो भी क्या वह उसके कमरे में आ सकती थी?

इतनी देर बाद सुधामय को ज्ञान हुआ कि जिस सुंदर सपने में वह डूब-उतरा रहा था वह अत्यंत गर्हित है। और साथ ही, उसके विवेक ने सड़ाक से उसकी पीठ पर एक चाबुक मारा। यह उसने क्या किया? यह तो अन्याय है, अपराध है, पाप है ! अगर यह मामला खुल जाए तो सर्वनाश हो जाएगा ! सुधामय की आंखों के सामने अंधेरा छा गया। डर से उसे पसीना आने लगा। तो फिर उपाय क्या है? उसका गला सूख गया। छाती धड़कने लगी। अब रास्ता क्या है? सुधामय क्या करे? कलकत्ता भाग जाए? मगर क्या, भाग जाने से वह निस्तार पा जाएगा? सुधामय ने देखा कि वह एक ऐसे जाल में फंस गया है, जिसे काटने की ताकत उसमें नहीं है। नहीं, एकदम नहीं है। सुधामय जानता है, पाप कभी छिपा नहीं रहता। अपनी मां और बड़ी मां के मुंह से कितनी ही बार यह बात उसने सुनी है, किताबों में पढ़ी है, थियेटर नौटंकी में देखी है। नहीं, पाप कभी नहीं छिपता, सुधामय बड़बड़ाया। उसका पाप भी ढका नहीं रहेगा, एक दिन खुल जाएगा। शायद अभी से लोग उसे जान गए हैं। शाम के समय वह फेदी के साथ उसके घर गया था। फेदी ने उसे अंदर ले जाकर दरवाजा बंद कर लिया था। क्या यह किसी की नजर में नहीं आया था? जरूर आया होगा। सुधामय पकड़ा गया है। इसी बीच यह बात एक कान से दूसरे कान में फैलने लगी है। घर-घर में खुसर-पुसर शुरू हो गई है। ऐसी रोचक घटना का वर्णन करने का सुयोग पाकर गांव के लोग दूसरी कोई बात ही नहीं करेंगे। सुबह होते न होते यह चर्चा गांव के तमाम रास्तों से होकर आग की तरह चारों और फैल जाएगी। हाट में पहुंच जाएगी, कहां नहीं पहुंचेगी? इसके बाद इलाके बड़े-बूढ़े, समाज के रक्षक दौड़ेंगे फेदी के घर की ओर, यहां भी आएंगे। शोरगुल होगा। नालिश होगी, पंचायत बैठेगी, विचार होगा। बुरी तरह बदनाम होने में कुछ बाकी न रहेगा। उसकी क्या हालत होगी? क्या हालत होगी इस परिवार की? पिताजी की, मां की, बुआ जी की और मझले काका की क्या हालत होगी? बूड़ी उसके बारे में क्या सोचेगी? मां तो शायद इस शोक में मर भी जाएगी। सुधामय के जीवन की सारी रोशनी धीरे-धीरे बुझने लगी। उसे लगा, वह एक शिकार है जिसका लोग पीछा कर रहे हैं। वही जंगली सूअर है वह, बुरी तरह घायल। वह एक जंगल से दूसरे जंगल में भाग रहा है और पागल हुए गांव के लोग झाड़-झंखाड़ को पीटते हुए उसे पकड़ने के लिए उसका पीछा कर रहे हैं। सुधामय उनके क्रुद्ध हुंकार और हिंस्र चीत्कार सुन पा रहा है। यह आदिम मानव की वही शिकारी चीत्कार है। सुधामय के कानों में आदिम बाजों के उद्दाम स्वर गूंजने लगे। ढम-ढम, ढक-ढक। इसकी क्या परिणति होगी, सुधामय समझ

रहा था। इसकी परिणति होगी मृत्यु। "पाप का मूल्य है मौत"—यह कथन सुधामय ने कलकत्ता में किसी गिरजाघर की दीवार पर खुदा देखा है। यह एक अमोघ सत्य है। आज इसी सत्य की तलवार को वह अपने सिर पर झूलते देख रहा है। तो फिर मौत ही एक मात्र रास्ता है? मगर कैसी मौत? कलंक की कालिख पोतकर उसे मरना होगा। हमेशा के लिए यह कलंक उसके परिवार के माथे पर लग जाएगा। सुधामय का दम अटकने लगा। उसे प्यास महसूस हुई। उसकी छाती फटने लगी।

क्या और कोई रास्ता नहीं है? सुधामय सोचने लगा।

क्यों, अगर वह फेदी से ब्याह कर ले?

उत्तेजना के मारे सुधामय उछलकर बिस्तर पर बैठ गया। अगर वह फेदी से ब्याह कर ले? तकिए में उसकी उंगलियां धस गईं। अगर क्यों, निश्चय ही वह उससे ब्याह करेगा। सिर नवाकर सारी जिम्मेदारी अपने ऊपर ले लेगा। वह पुरुष है, आधुनिकता का प्रतिनिधि है। फेदी विधवा है। ब्राह्मण की लड़की है। आधुनिक दृष्टि से यह एक समाज-सुधार का काम है। मगर सुधामय जानता है कि उसके ऐसा करने पर गांव में भयंकर बवंडर उठेगा। उसके मां-बाप, अड़ोसी-पड़ोसी सभी जी-जान लगाकर इसका विरोध करेंगे। करने दो, सुधामय उनकी परवाह नहीं करेगा। इस काम में कैसा तो एक पौरुष है, एक वीरता है। वह फेदी को लेकर कलकत्ते चला जाएगा। दोनों मिलकर वहां घर बसाएंगे। सुधामय को फिर रोशनी दिखाई दी। एक मन-माफिक रास्ता दिखाई दिया। विवाह के वैध बंधन द्वारा वह इस अवैध स्त्री-संसर्ग के पाप से अपने को मुक्त कर लेगा। जो दो मानव देह एक दुर्घटना के माध्यम से पाप के कीचड़ में गिर गई हैं उनके मन में, ब्याह के बाद घर बसाकर, वह प्रेम के कमल खिला देगा। इसके लिए जो भी मुश्किलें आए सुधामय सिर झुकाकर स्वीकार करेगा। अगर उसे इस घर से निकाल दिया जाए, अगर उसे यह घर जीवन भर के लिए छोड़ना पड़े, अपने परिवार से हमेशा के लिए अलग होना पड़े तो भी सुधामय पीछे नहीं हटेगा, सब कुछ स्वीकार कर लेगा।

यह संकल्प लेने के बाद, सुधामय ने महसूस किया कि उसके मन की ग्लानि धीरे-धीरे छंट रही है। अकूल, अपार समुद्र में सारी रात नाव खेकर भटकते हुए सुधामय को जैसे भोर में किसी नए देश की तटरेखा दिखाई दे गई हो। धीरे-धीरे उसके मन में उल्लास भरने लगा। तब सुधामय ने एक कदम और आगे बढ़ाया।

कोई जाने या न जाने, वह फेदी से ब्याह करेगा ही। अब उसे कोई डर नहीं। तभी सुधामय के कानों में फेदी का कातर आह्वान गूंज उठा। कल शाम को उसकी छाती में अपना चेहरा छुपाकर फेदी ने व्याकुल स्वर में कहा था, "कल आना, सुधा। दोपहर के बाद आना।" सुधामय की देह में फिर उमंग उठने लगी। फेदी के पास जाने के लिए उसके मन में एक तेज इच्छा छटपटाने लगी।

पर इसी बीच पता नहीं कब उसकी आंख लग गई।

गांव में सुधामय और फेदी को लेकर कोई कम कुचर्चा न फैली। सुधामय ने जैसे-जैसे सोचा था, ठीक वैसे ही हुआ। उसके घर में रोना-पीटना शुरू हो गया। बुआ जी ने सुधामय के पांव पर अपना सिर पटका। मां ने अन्न-जल छोड़ा। पिता पत्थर के हो गए। केवल मझले काका ने सुधा को समर्थन दिया। न भी देते तो कोई फर्क पड़ने वाला न था। मां के आंसुओं से विचलित होने पर समाज-सुधार नहीं किया जा सकता। विद्यासागर की मां जैसी मां कितने लोगों को मिलती है। सुधामय को इस बात का अफसोस जरूर रहा कि वह विद्यासागर को अपना यह सत्कार्य नहीं दिखा सका। उन्हें यह नहीं समझा पाया कि बंगाली जाति उन्हें भूली नहीं है। फेदी बड़ी डरपोक है। उसे समझा-बुझाकर कलकत्ते ले आने में सुधामय को काफी परेशानी उठानी पड़ी। सुधामय के दोस्तों में हलचल मच गई। एक अच्छा काम कर रहा है सुधा। कुछ दुष्ट किस्म के लड़कों ने व्यंग भी किया—ऐसी ही एक विधवा हमारे लिए भी ला दे रे, सुधा। ऐसी सुंदर विधवा पाकर कौन नहीं विद्यासागर का शिष्य हो जाएगा। सुधामय ने गंभीर स्वर में उत्तर दिया—फेदी सुंदर है, यह एक संयोग है। उसके जीवन में ब्याह बड़ी चीज नहीं है, बड़ी चीज है सिद्धांत। सभी दोस्तों ने ताली बजाकर उसका समर्थन किया। चंदा इकट्ठा करके दोस्तों ने उसके ब्याह का ऐसा सुंदर आयोजन किया कि सुधामय अवाक रह गया। उसे तब और अवाक होना पड़ा था। देशबंधु ने खुद उसके ब्याह में उपस्थित होकर उन्हें आर्शीवाद दिया और खद्दर का एक राष्ट्रीय झंडा उपहार में दिया। दूसरे दिन इस ब्याह का समाचार अखबारों में छप गया। शीर्षक था—उदारचेत्ता युवक द्वारा विधवा से विवाह।

तभी अचानक सुधामय की नींद टूट गई। उसने देखा, दिन काफी चढ़ आया है। उसकी आंखें अभी भी जल रही थीं। शरीर अलसाया हुआ था। उसने दो-तीन जम्हाइयां लीं और दरवाजा खोलकर बाहर आ गया।

सवेरा कब का बीत चुका, मगर दोपहर अभी बाकी है। सुधामय थोड़ा चंचल हो उठा। इस घर में अभी किसी का खाना-पीना नहीं हुआ। उसने लक्ष्य किया, कितनी देर से उसके घर में खाना-पीना शुरू होता है। समय कितना मूल्यवान चीज है, कलकत्ते के लोगों की तरह यहां के लोग इस बात को नहीं समझते। इसीलिए केवल खाना-पीना करके पूरे दिन का कबाड़ा कर देते हैं।

कुछ देर इधर-उधर घूमकर सुधामय फिर अपने कमरे में जा बैठा। एक किताब उठाकर उसके पन्ने पलटने लगा, मगर एक अक्षर भी पढ़ नहीं सका। किताब परे उछालकर उसने दरवाजा बंद कर लिया। फिर एक सिगरेट जलाई, और लेटे-लेटे कश लेने लगा।

अचानक वह झट से उठ खड़ा हुआ।

रसोईघर के दरवाजे पर जाकर उसने हांक लगाई, "मां, खाना बन गया क्या?"

बड़ी बहू जल्दी से बाहर आई और बोलीं, "क्यों रे मणि, भूख लगी है?"

सुधामय ने जवाब दिया, "भूख का क्या दोष? अब तक कलकत्ते में कब का खाना-पीना हो गया होता। अभी तक तो हम लोगों का टिफिन खाने का समय हो जाता है। खाना बन गया हो तो बता, नहाकर आता हूं।"

बड़ी बहू मुश्किल में पड़ गईं। आ हा, बच्चे को बहुत भूख लगी है। मगर आज मछली लाने में बड़े मालिक ने इतनी देर कर दी कि अभी तक मछली पक नहीं सकी थी। सिर्फ मछली के मूड़े की सब्जी बनी थी। मछली आज अच्छी ही मिली है। मैस में जाने क्या खाता है सुधा ! वहां कौन बैठा है जो उसे जतन से खिलाए? इसीलिए बड़ी बहू पांच रकम का खाना पकाने की तैयारी कर रही थीं। मगर सुधा तो अभी से जल्दबाजी करने लगा।

बड़ी बहू ने कहा, "बैठ न यहां। मछली तल रही हूं, दो-एक टुकड़ा खा ले।"

सुधामय अब नाराज हो गया, बोला, "वह सब अंट-शंट खाने का समय नहीं है मेरे पास। भात बन गया हो तो दो। वर्ना चूड़ा-भूजा जो कुछ हो, ले आओ। समय से खाने की आदत पड़ गई है। देर होने से परेशानी होती है। तुम लोग कभी जीवन में "पंक्चुअलिटी" का मर्म नहीं समझोगी। खैर छोड़ो, मैं अभी नहाकर आता हूं।"

सुधामय चला गया। बड़ी बहू का मन उदास हो गया। अगर सुधा ने ही नहीं खाया तो इतना सब कुछ पकाने का फायदा ही क्या हुआ? किसके लिए यह सब किया गया। सारी मेहनत बेकार गई।

उन्होंने गहरी सांस लेकर कहा, "अरे फूली बेटी, अब वह सब रहने दे। मेरे सुधा को भूख लगी है। बिना खाए उससे नहीं रहा जाता। नहाने गया है। बस आने ही वाला है। जल्दी से मछली के दो-चार टुकड़े तल दे। बाकी सब दूसरी बेला के लिए रख दे।"

दरअसल सुधामय को खाने की इतनी जल्दी नहीं पड़ी थी। उसकी जल्दबाजी का कारण कुछ और था।

खा-पीकर वह अपने कमरे में आ गया। निश्चिंत होकर उसने दरवाजे की सांकल लगा ली। हां, अब वह बिना किसी विघ्न-बाधा के जब तक उसका मन करे सोच-विचार कर सकता है। उसकी चिंता में बाधा पहुंचाने कोई नहीं आएगा।

फेदी के पास जाने के पहले वह सारे मामले पर अच्छी तरह सोच-विचार कर लेना चाहता है। सुधामय ने तय किया है कि वह फेदी से ब्याह करेगा। इसमें कोई हेर-फेर नहीं होगी। यह निर्णय अपनी जगह सही है। अब इसके लिए फेदी की रजामंदी मिल जाए तो बात बन जाए। सुधामय को लगता है, बहुत आसानी से फेदी की रजामंदी नहीं मिलेगी। कोई कलकत्ते की लड़की तो है नहीं फेदी। गांव में रहने वाली यह लड़की शायद कुसंस्कारों से घिरी हुई हो। हो सकता है, वह सुधामय के प्रस्ताव का प्रबल विरोध करे। सुधामय ने मन ही मन तय किया, अगर ऐसा हुआ तो ढेर सारे अकाट्य तर्कों द्वारा वह फेदी के

कुसंस्कारी मन में वैज्ञानिक विचारधारा का बीज बो देगा। तब फेदी खुद ही समझ जाएगी कि वह कितने बेकार अंधविश्वासों से जकड़ी हुई है। वह फेदी को नए विचारों का मंत्र देगा। तब फेदी स्वेच्छा से, खुशी-खुशी ब्याह के लिए राजी हो जाएगी। केवल उसकी पत्नी नहीं बल्कि शिष्या भी बनेगी फेदी। इस विचार से सुधामय को बड़ा सुख मिला। उसे ध्यान आया, कुछ ऐसी ही घटना किसी अंग्रेजी फिल्म में उसने देखी थी। आदि युग में ईसाइयों के ऊपर रोमनों के भयानक अत्याचार की कहानी पर ही वह फिल्म बनी थी। एक सुंदर गुलाम लड़की के मन में ईसा मसीह के उपदेशों का प्रचार करने के लिए गए एक ईसाई युवक को भयानक अत्याचार सहना पड़ा था। मगर ईशू की कृपा से सारी मुश्किलें पार करके उस युवक ने उस युवती को ईसाई मत में दीक्षित किया था। उसके बाद दोनों के मिलन पर वह फिल्म समाप्त हुई थी। सुधामय ने देखा कि उसका उस युवक के साथ काफी हद तक सादृश्य है। वह फेदी को भी अपने आर्दशों के अनुरूप बना सकेगा, इस बारे में उसे जरा भी संदेह न रहा। आदर्श जीवन से भी बड़ा होता है, यह बात वह फेदी को समझा सकेगा, ऐसा उसका दृढ़ विश्वास था।

फेदी के साथ वह आजीवन सुख से बिता सकेगा। फेदी उसकी हो जाएगी। उसे किसी कलंकित रास्ते से चोर की तरह जाना नहीं पड़ेगा, यह संभावना सुधामय के मन में बहुत स्पष्ट हो उठी।

सुधामय केवल फेदी के मन को ही नहीं बदलेगा, ब्याह के बाद वह उसका नाम भी बदल देगा, उसने तय किया। फेदी कोई अच्छा नाम नहीं है, खासकर उस लड़की के लिए जिसे कलकत्ता में रहना है। आखिर वह सुधामय की पत्नी होगी। उसके लिए कोई अच्छा सा नाम चुनना होगा।

लेटे-लेटे सुधामय को आलस लग रहा था। सारी बातें सोच-विचारकर तय कर लेने के बाद, उसका मानसिक उद्वेग भी कम हो गया था। रात्रि-जागरण की थकान अब उस पर असर करने लगी थी। एक के बाद एक जम्हाइयां आने लगी थीं। कुछ देर बाद थकान उसे लेकर नींद के अतल में उतर गई।

सुधामय की जब नींद टूटी तो दिन थोड़ा ही बाकी था। सुधामय का शरीर अभी भी अलसाया हुआ था। एक बड़ी-सी जम्हाई लेकर उसने बिस्तर पर हाथ-पांव फैला दिए।

एक पल बाद ही उसके शिथिल मन में जैसे बिजली जल उठी। उसे तो फेदी के यहां जाना था। मर गया! दिन तो अब ज्यादा बाकी नहीं है। सुधामय की छाती में एक सनसनाहट उभरी। वह बिस्तर से नीचे आ गया। मुंह पर पानी के छींटे मार, कपड़े बदल, वह तेजी से घर से निकला और तेज कदमों से फेदी के घर की ओर चल पड़ा। एक अज्ञात आशंका से उसका कलेजा उछल रहा था। अगर फेदी घर में न हो? सुधामय को लगा, जैसे वह

अपना पर्स बाजार में गलती से छोड़ आया हो और याद पड़ते ही उसे लेने भागा हो। वह क्यों इतनी देर सोया रह गया? सुधामय का मन हो रहा था कि चाबुक से वह अपने को पीट डाले।

जब वह फेदी के घर पहुंचा तो अभी दिन बाकी था। उसे देखते ही फेदी के पिता हुक्के की कश लेकर खांस-खांसकर बेदम हो गए।

फिर किसी तरह खांसी को संभालकर बोले, "अरे कौन, सुधामय है न? अरे बाप रे ! इतना बड़ा हो गया? मैं भी सोचूं, कौन है? आओ-आओ, बैठो। कब आए? अभी रहोगे न कुछ दिन?"

फेदी के पिता! ये कब आ पहुंचे? सुधामय की आंखों के सामने से सारा उजाला ओझल हो गया। वह जिस जमीन पर खड़ा था वह भी जैसे उसके पांव के नीचे से खिसकने लगी। वह इसके लिए तैयार न था। उसे एक तेज धक्का लगा। उसने उसे कैसे संभाला यह वही जानता है। बेवकूफ की तरह उसने हंसने की कोशिश की। किसी तरह फेदी के पिता को प्रणाम किया। फिर धप से जमीन पर ही बैठ गया।

आहट पाकर फेदी की मां भी भीतर से थप-थप करती बाहर आ गई। वात से उनका शरीर गोपाला मेढक की तरह फूल गया था।

बोलीं, "ओ मां, सुधा? तो यों कहो न! मैं भी कहूं कि सुधामय भला कौन हो सकता है?"

फिर सुधामय को थोड़ा बेवकूफ की तरह हंसना पड़ा और फेदी की मां के सड़े पांवों को छूकर प्रणाम करना पड़ा। आज इन्हें देखकर क्या कोई विश्वास कर सकेगा कि कभी वे भी फेदी की तरह ही सुंदरी थीं?

फेदी की मां ने पुकार कर कहा, "ओ फेदी, आकर देख, सुधा आया है। बेटा, हम भी आज दोपहर में ही पहुंचे हैं। तीरथ करने गए थे। अब तीर्थ कहो या जो भी, मगर शांति तो घर में ही मिलती है। घर पहुंचकर जान में जान आई। फेदी ने बताया कि वह कल तुम्हारे घर गई थी। सुना है, बूड़ी का बच्चा देखने में बड़ा सुंदर है। एक दिन मैं भी उसे देखने जाऊंगी। बूड़ी ससुराल कब जाएगी?"

सुधामय थोड़ा अन्यमनस्क हो गया था। फेदी यहीं है, आसपास ही है। मगर उसके पास नहीं। आज शायद उसके पास आएगी भी नहीं। आ भी नहीं रही है। सभी ने मिलकर सुधामय को अच्छा बुद्धू बनाया। हां, फेदी की मां ने कुछ पूछा, क्या पूछा?

कुछ याद नहीं आया तो सुधामय के मुंह में जो आया कह दिया, "ठीक है, कल आइए न हमारे यहां।"

तभी भीतर से फेदी का बहुत कोमल स्वर सुनाई पड़ा, "मां, सुनना जरा।"

फेदी की आवाज सुनकर सुधामय की देह झंकृत हो उठी। उसे रोमांच हो आया।

फेदी की मां ने कहा, "बैठो बेटा, परसाद खाकर जाना। ओ फेदी, सांझ हो गई बेटी, दीया जला दे। इसके बाद सुधा को थोड़ा महापरसाद दे दे। बाहर निकल न, सुधा से क्या लाज?"

फेदी उससे लजा रही है? इसीलिए बाहर नहीं आ रही है? सुधामय को बड़ा मजा आया। फेदी भी कमाल है!

फेदी के पिताजी हुक्का पीते हुए और बीच-बीच में बुरी तरह खांसते हुए अपनी लंबी भ्रमण-कहानी सुनाने बैठ गए। रास्ते की तकलीफ, तीर्थ में पंडों के अत्याचार और भी कितनी ही बातें। बहुत-सी बातें तो सुधामय के कानों में ही नहीं गईं।

अचानक उसने सुना वे कह रहे थे, "समझे बेटा, खाने-पीने का जो सुख काशी में है वो और कहीं नहीं। आह ! जैसे मांस-मछली, वैसे ही दूध-घी और वैसी ही तरी-तरकारी। काशी के सामने सारा संसार फीका है। भोलानाथ की नगरी है न ! सारी दुनिया से ऊपर..."

सुधामय को बस इतना ही सुनाई पड़ा। जिस क्षण फेदी संध्या-बाती लेकर घर से बाहर आई उसी क्षण से सुधामय का मन और उसकी आंखें फेदी के साथ-साथ घूमने लगीं। जैसे उसने पहले ठीक से फेदी को देखा ही न हो। अब जैसे वह नए सिरे से उसे देख रहा हो। फेदी तुलसी जी के नीचे पानी के छींटे मार रही है। गले में आंचल डालकर उसकी तरफ पीठ फेरकर तुलसी को प्रणाम कर रही है, फिर दीप जला रही है। बीच-बीच में फेदी की देह का कोई हिस्सा सुधामय को दीख जाता। वह मुग्ध होकर देख रहा था। कैसी असाधारण सुंदर है फेदी ! पीठ, कमर, नितंब—उसका प्रत्येक अवयव कितना सुगठित है। फेदी के चलने में, हाथ में पूजा के थाल में प्रदीप लिए घर के बरामदे में और आंगन में घूमती हुई फेदी की देह में कितने बल पड़ रहे थे, उसकी चाल में कितनी लय थी, इसकी कोई सीमा नहीं। सुधामय की छाती धक-धक कर रही थी। क्या आज एक बार भी अकेले में मुलाकात न होगी? क्या फेदी उससे एक बात भी नहीं करेगी? क्या एक पल के लिए भी...

फेदी ने सुधामय को प्रसाद दिया। पीने को पानी दिया। मगर एक बार भी उसने सुधामय की आंखों में नहीं झांका। वह सुधामय को पहचानती है, कभी उसे देखा है, इतना भी उसके हाव-भाव और चेहरे से नहीं झलक रहा था। प्रसाद देते समय फेदी उसके काफी नजदीक आ गई थी। मगर उस निकटता में कोई आह्वान न था। सुधामय उत्तरोत्तर बुद्धू बनता जा रहा था, हताश होता जा रहा था।

इसके बाद काफी देर तक फेदी के दर्शन नहीं हुए। सुधामय को लगने लगा कि इस धरती पर फेदी नाम की कोई लड़की नहीं है। न कभी थी। इसके बाद अचानक थोड़ी देर बाद फेदी प्रकट हुई। उसके हाथ में एक छोटी-सी पोटली थी। सुधामय के पास आकर

फेदी ने कहा, वह पहली बार उस दिन सुधामय से बोली थी, "घर जाओ, सुधा दा। यह प्रसाद लो। मां ने दिया है। ताई जी को उनका प्रणाम कहना। चलो, तुम्हें रोशनी दिखा दूं।"

यह कैसा ढंग है फेदी के बोलने का? यह कैसा ठंडा व्यवहार है? सुधामय ने हाथ बढ़ाकर पोटली ले ली और उठ खड़ा हुआ।

फेदी के पिता ने कहा, "सुधामय, समय मिले तो फिर आना, अच्छा!"

सुधामय ने सिर हिलाकर हां की और आगे बढ़ गया। दरवाजे के पास पहुंचते ही फेदी ने झट से एक चिट्ठी सुधामय के हाथों में ठूंस दी और भीतर की ओर अदृश्य हो गई। चिट्ठी हाथ में पकड़ते ही सुधामय का खून तेजी से दौड़ने लगा। उसकी निश्चेष्ट देह में फिर से कंपन शुरू हो गया। चिट्ठी नहीं, जैसे सुधामय ने फेदी को ही अपनी मुट्ठी में पकड़ रखा हो।

एक दौड़ में सुधामय घर आ पहुंचा और अपने कमरे के एकांत में जा घुसा। क्या इसीलिए उसने इतनी जल्दबाजी की थी, अपने मृत्युदंड का आदेश पढ़ने के लिए? कांपते हाथों से सुधामय ने तह की हुई चिट्ठी को खोला और एक सांस में पढ़ गया। दो लाइन की चिट्ठी थी। पढ़ते ही सुधामय का चेहरा पीला पड़ गया और उसका शरीर फिर जोरों से कांपने लगा। पहले के कंपन और उस क्षण के कंपन में आकाश-पाताल का अंतर था! एक सिहरन खुशी की थी, दूसरी असह्य यंत्रणा की। फेदी ने चिट्ठी में लिखा था—'आने में तुम्हें जरा भी शर्म नहीं आई? मेरा सर्वनाश करने के लिए तुम्हारे भीतर इतना उत्साह क्यों?' बस इतना ही लिखा था। ये दो पंक्तियां जैसे दो बरछे थे जो आकर सीधे उसके कलेजे के आर-पार हो गए थे। लज्जा, घृणा और अपमान से सुधामय मृतप्रायः हो उठा।

चिट्ठी की भाषा से स्पष्ट था कि फेदी ने सारा दोष उसकी गर्दन पर डाल दिया था। 'आने में शर्म नहीं आई?' जैसे सुधामय बिना बुलाए वहां गया था। 'मेरा सर्वनाश करने के लिए इतना उत्साह क्यों?' झूठी कहीं की ! सुधामय मन ही मन गरज उठा। चिट्ठी को ऊंचा करके जैसे उसी से फुसफुसाकर वह बोल पड़ा, "यह लिखते हुए तुम्हारे हाथ जरा भी नहीं कांपे ! तुम्हें जरा भी लाज नहीं आई? क्या मैंने ही तुम्हारा हाथ पकड़कर खींचा था? क्या मैंने ही तुम्हें ले जाकर अंदर से सांकल चढ़ा ली थी कि आज मेरी गर्दन पर सारे अपराध, सारे पाप का बोझ डालकर तुम सती बनने चली हो? मेरे बारे में तुम्हारी यही धारणा है! इतनी बुरी! और मैंने तुम्हारे बारे में क्या सोचा था? तुम्हें कितना ऊंचा पद दिया था! आज कोई पाप मन में लेकर मैं तुम्हारे पास नहीं गया था। मेरा उद्देश्य बड़ा था। ईश्वर जानता है, मैं एक आदर्श लेकर तुम्हारे पास आया था। एक पल की दुर्बलता में जो पाप मैं कर बैठा था, उससे हमेशा के लिए मुक्त होने का रास्ता दिखाने के लिए मैं तुम्हारे पास आया था। मगर तुम, क्या हो तुम ! तुम नीच हो, तुम्हारा मन बहुत छोटा

है। तुम्हारे मन में कोई महान विचार हैं ही नहीं, इसीलिए तुम्हारे मन में जो भी आया तुम मेरे बारे में लिख सकी। मगर तुम जो सोच रही हो, मैं वैसा नहीं हूं, एकदम वैसा नहीं हूं। मैं तुम्हारा सर्वनाश करने नहीं आया था। विश्वास करो, मेरा विश्वास करो।"

चिट्ठी का एक कोना पकड़कर सुधामय उसे जोर से झकझोरने लगा। गुस्से से उसका सारा शरीर जल रहा था। उसे अपनी छाती में एक तीखी यंत्रणा महसूस हुई। छिः छिः! फेदी इतनी घटिया है ! इतनी नीच, इतनी पाजी ! और इसी फेदी को लेकर उसने एक सपनों का महल बनाना शुरू कर दिया था ! कितना बुद्धू है सुधामय ! अगर फेदी से अकेले में मुलाकात होती, तो शायद सुधामय उसे समझा सकता कि उसका कोई बुरा इरादा न था, मगर ऐसा होने वाला न था। वह अब कभी फेदी से अकेले में न मिल सकेगा। और जरूरत भी क्या है? कौन है यह फेदी? एक बेकार-सी लड़की। सुधामय को लेकर अचानक उसने जो कांड किया है, वैसा उसने और किसी के साथ नहीं किया, इसका भी क्या ठिकाना? जवान विधवा है, ऊपर से इतनी सुंदर। गांव में ऐसे लोगों की कमी नहीं है जो इसी घात में रहते हैं। उन लोगों ने क्या अभी तक इसको छोड़ रखा होगा? हूंः! सुधामय ने चिट्ठी को फाड़ डाला और उसके टुकड़े फेंक दिए। अगर संभव होता तो इसी तरह वह फेदी के भी टुकड़े-टुकड़े करके फेंक देता।

सर्वनाश तो खुद उसका हुआ है। फेदी के स्पर्श से सुधामय की देह में पाप घुस गया है। वह क्या करेगा? कैसे वह इससे त्राण पाएगा? सुधामय यंत्रणा से छटपटाने लगा।

सारी रात वह ऐसे ही छटपटाता रहा। भोर होते न होते उसने तय कर लिया कि वह आज ही कलकत्ता लौट जाएगा। अब यहां नहीं रहेगा। एक पल भी नहीं।

सुधामय किसी तरह भी रोके न रुका। उसने कहा, "उसे जरूरी काम है, बिना गए नहीं चलेगा।" पूरे परिवार को भौंचक करके, मां की आंखों से अश्रुधारा बहाकर, दस बजे से पहले ही घर की बैलगाड़ी में बैठकर वह रवाना हो गया। इस गांव के पूरे वातावरण में एक असभ्यता, एक अविश्वास, एक प्रवंचना भरी हुई है। यहां रहकर तो आत्महत्या के अलावा उसे कोई रास्ता न मिलेगा, या फिर वह पागल हो जाएगा।

बाहर की खुली सड़क पर आकर सुधामय को थोड़ा चैन मिला। सामने सीधी सड़क थी और ऊपर बहुत ऊंचा आसमान। चारों ओर दूर-दूर तक खुलापन था। सुधामय को खुलकर सांस लेने का मौका मिला। तीसरे पहर वह झिनैदा पहुंच जाएगा। रात के पहले पहर तक चूयाडांगा। कल इस समय तक वह कलकत्ते के जीवन में प्रविष्ट हो जाएगा। मगर फेदी? फेदी की याद फिर क्यों आई उसे? नहीं-नहीं, उसके बारे में अब वह नहीं सोचेगा। कभी नहीं, कभी नहीं।

उसी दिन शाम को मां के साथ फेदी सुधामय के घर आई तो उसने देखा, सभी के मुंह लटके हुए हैं। वह अब और धैर्य नहीं रख सकी। कल उसके माता-पिता के अचानक

आ पहुंचने से उसका दिमाग प्रायः खराब हो गया था। अचानक सुधामय के आ पहुंचने से वे लोग क्या सोचेंगे? फेदी जैसे पकड़ी जाएगी, यही सोचकर वह अस्थिर हो उठी थी। सारे दिन उनसे प्रार्थना की थी—भगवान, सुधामय न आए। तीसरा पहर बीत जाने पर भी जब सुधामय नहीं आया, तो उसे तसल्ली हो गई। मगर इसके बाद ही पागलों की तरह सुधामय आ पहुंचा था। फेदी के सिर पर जैसे आसमान फट पड़ा। सुधामय पर उसे बेहद गुस्सा आया था। कैसा है यह आदमी ! आज फिर आ गया? जरा भी डर नहीं है। लालसा तो कम नहीं है इसकी? उसे अपने ऊपर घृणा हुई थी, सुधामय पर भी। इसीलिए होशोहवास गंवाकर उसने ऐसी कड़ी चिट्ठी लिख दी थी। इसके बाद सारी रात वह मन ही मन बहुत अफसोस करती रही। सच, सुधा का दोष ही क्या है? दोषी तो वह खुद है। उसे ठीक से समझा देना चाहिए था। कल अवश्य मौका न था। इसीलिए आज सारी दोपहर बैठकर फेदी ने सुधामय के नाम एक चिट्ठी लिखी है। खुले मन से अपनी गलती स्वीकार की है। सुधामय से माफी मांगी है। और लिखा है, भविष्य में उनकी मुलाकात न हो तो ही अच्छा है।

फेदी की मां को देखकर बड़ी बहू की आंखें छलछला आईं। फेदी की मां धप से बैठ गईं। उन्हें यहां आने में बहुत कष्ट हुआ था।

बोलीं, "क्यों री बहू, कैसी है तू? चेहरा क्यों लटका हुआ है तेरा?"

बड़ी बहू ने कहा, "आओ दीदी, बैठो। क्या कहूं? मन बड़ा दुखी है। सुधा दो साल बाद घर आया था। चार दिन भी नहीं रहा, आज सवेरे कलकत्ता चला गया। आजकल वह कलकत्ते का बाबू हो गया है, गांव-घर का भात उसे नहीं रुचता। दो दिन रुकने के लिए इतना हाथ-पांव जोड़ा पर नहीं माना। तुम ही बताओ, हम लोग उसके कौन हैं? कोई दासी-बांदी तो नहीं।"

बड़ी बहू की आंखों से आंसू झड़ने लगे। फेदी चौंक उठी। सुधा चला गया? तो क्या उसके कारण ही गया? उसकी चिट्ठी पाकर ही? जैसे किसी ने फेदी के हृदय को जोर से मुट्ठी में भींच लिया हो। जैसे कोई उसका गला दबाकर उसे मारे डाल रहा हो। सुधा नहीं है? एक बार उससे मुलाकात तक न हो सकी? उसके मन की बात सुने बिना ही वह चला गया?

फेदी की मां ने कहा, "यह क्या, कल ही तो सुधा के साथ भेंट हुई थी। कितनी ही देर तक बैठा बातें करता रहा। उस समय तो उसने कुछ कहा नहीं।"

बड़ी बहू ने आंखें पोंछकर रुआंसी आवाज में कहा, "हमसे भी कल उसने कुछ कहा थोड़े न? सुबह सोकर उठते ही बोला, मैं चला। बस चलने को तैयार हो गया। रुकने को एकदम तैयार ही नहीं हुआ। हाथ-पैर जोड़कर जल्दी-जल्दी दो मुट्ठी भात पकाकर खिलाया किसी तरह। इतने दिनों बाद आया था, सोचा था, ठीक से खिला-पिला दूंगी, मगर भाग ही फूटे हैं।"

फेदी से अब वहां बैठा न गया। उसकी आंखें जल रही थीं। सीने में छुपाई चिट्ठी जैसे उसकी छाती को जलाकर राख कर देना चाहती है। वह झट से उठकर सुधामय के कमरे में चली गई। दरवाजा किसी तरह बंद कर सुधामय के बिस्तर पर मुंह के बल लेटकर वह फफक-फफककर रोने लगी। मन ही मन पूरे जोर से चीख-चीखकर कहने लगी, सुधा मैंने तुमसे झूठ कहा था, वह मेरे मन की बात नहीं है। वह सच नहीं है, सच नहीं है। फेदी को लगा, जैसे उसके मन की चीख सुधामय के कानों में जा पहुंचेगी।

बाईस

आखिर भूषण आया। घोड़े पर चढ़कर नहीं, एक चमाचम साइकिल पर बैठकर। भूषण ने साइकिल जल्दी ही खरीदी थी। हरकुलिस साइकिल थी, सीट उसकी घोड़े जैसे मुंह वाली थी और उसमें डनलप के टायर लगे थे। भूषण के अनुसार, साइकिल के बारे में यह अंतिम बात है। साइकिलें तो और भी हैं, जैसे बी.एस.ए., रैले, हंबर। ये सब भी अच्छी साइकिलें हैं, मगर शौकीन लोगों के लिए। उसके जैसे गांव के डाक्टर के लिए तो हरकुलिस ही ठीक है। कच्चे रास्ते और मैदानों से होकर ही तो उसे ज्यादातर आना जाना पड़ता है। ऐसे रास्तों पर चलाने के लिए हरकुलिस जैसी मजबूत गाड़ी ही चाहिए।

भूषण बड़े मजे में साइकिल चलाता आ रहा था। बूनोपाड़ा के सामने पहुंचते ही ससुर से मुलाकात हो गई। एकदम आमने-सामने। भूषण तुरंत साइकिल से उतर पड़ा। ससुर-दामाद दोनों के ही चेहरे पर हंसी खिल उठी।

भूषण थोड़ी मुश्किल में पड़ गया। सामने ससुर खड़े हैं और हाथ में साइकिल है। प्रणाम करे तो कैसे? नहीं, साइकिल के साथ एक आटोमैटिक स्टैंड भी जरूरी है। बटन दबाया कि साइकिल खड़ी हो गई। मर्जी हो प्रणाम करो, मर्जी हो थक जाने पर थोड़ा अराम कर लो। आसपास कोई पेड़ भी नहीं था कि भूषण साइकिल उसके सहारे खड़ी कर देता। हारकर साइकिल को रास्ते में ही लिटा दिया। पैडिल के धक्के से पीछे का चक्का पनपनाता हुआ घूमने लगा और घंटी एक बार क्रिंग करके बज उठी।

भूषण ने मझले मालिक के पांव छू लिए।

मझले मालिक ने पूछा, "क्या हाल-चाल है? घर के सब लोग अच्छे हैं न? तुम्हारे पिताजी कैसे हैं?"

भूषण ने सारी बातों का सिर हिलाकर जवाब दिया। पैडिल के कोने में कीचड़ लग गया था। ससुर के प्रति पर्याप्त श्रद्धा होते हुए भी, नई साइकिल पर लगे कीचड़ हटाने

के लिए भूषण का मन कसमसाने लगा।

मझले मालिक बाहर जा रहे थे। दस-साढ़े दस का समय था। अब बाहर नहीं जा सकेंगे। दामाद को लेकर वह घर लौट आए।

चम्पा के साथ गिरिबाला का खटर-पटर लगा ही रहता है। आज तक उसका कोई कारण गिरिबाला की समझ में नहीं आया। गिरिबाला चिढ़ गई।

गिरिबाला अपना बक्सा तहाने बैठी थी। पिछले दो दिनों से गिरिबाला अपने धराऊं कपड़े बक्से से निकालकर उन्हें धूप दिखा रही थी। आज वह उन्हें फिर से सहेजकर रख रही थी। उसके पास अच्छी-अच्छी साड़ियां और जंफर हैं। सब उपहार में मिली हैं। ये दोनों साड़ियां मां ने दी थीं। उनमें एक मुर्शिदाबादी है, दूसरी बनारसी। उसकी मां को भी ये साड़ियां शायद ब्याह के समय मिली थीं, मगर उन्होंने इसे कभी पहना नहीं। कम से कम गिरिबाला ने अपनी मां को यह सब पहनते नहीं देखा है। तह लगाकर दोनों साड़ियां बक्से में रखी हुई थीं। बनारसी साड़ी का रंग थोड़ा उड़ गया है। मुर्शिदाबादी में कीड़े लग गए हैं। कलकत्ते के उसके भसुर ने उसे एक जामदानी साड़ी दी थी। जसोर के भसुर ने कटकी साड़ी दी थी। उसकी चचिया सास ने भागलपुरी और सास ने फराशडांगा की साड़ी दी थी। सब इसी बक्से में पड़ी रहती हैं। गिरिबाला उन्हें कभी नहीं पहनती। ये साड़ियां उसके लिए यक्ष का धन हैं। साल में एक-दो बार वह उन्हें बाहर निकालती हैं, खोलकर देखती है, धूप में रखती है और झाड़-झूड़कर फिर बक्से में तहाकर रख देती है। हद से हद कोई-कोई साड़ी नाक के पास ले जाकर सूंघती है। काले जीरे की गंध के साथ साड़ी की गंध मिलकर जो अद्‌भुत गंध बनती है वह गिरिबाला को बड़ी पसंद है।

बक्सा खोलते समय वह किसी को आसपास नहीं रहने देना चाहती। जहां तक होता है बक्से को किसी के सामने खोलती भी नहीं। एक बार ससुराल में लोगों के सामने बक्सा खोलकर उसे नसीहत मिल चुकी है। उसकी एक देवरानी एक अच्छी सी टांगाइल साड़ी मांगकर देखने के लिए ले गई तो आज तक लौटाकर नहीं लाई। कुछ कहने की उसकी हिम्मत न हुई, मगर मन ही मन उसे बहुत दुख हुआ।

ये सब साड़ियां वह पहनती नहीं, पहन नहीं पाती। पहने भी तो कहां? ऐसी कीमती साड़ियां पहनकर सोने के घर से रसोईघर तक थोड़े ही घूमा जाता है। शादी के बाद से वह कहीं गई भी तो नहीं। यहां तक कि मुहल्ले में भी वह जितनी बार गई है, उंगलियों पर गिन सकती है। इस बार को लेकर पिछले तीन सालों में चार बार वह मायके आई है।

इसीलिए अच्छी-अच्छी साड़ियां पहनने का मौका ही कहां है। भले ही वह न पहने, उसकी चीजें उसके पास ही रहनी चाहिए। जैसे खुशी हो, उठाए-धरे। दूसरे लोग हाथ क्यों

लगाएं? इसीलिए वह चम्पा पर नाराज हो गई थी। वैसे चम्पा ने साड़ी-वाड़ी में हाथ नहीं लगाया था। उसका मन तो गिरिबाला के सिंगारदान में लगा हुआ था। उसमें जो महकने वाले साबुन, तेल, पाउडर आदि हैं, चम्पा की निगाह उन्हीं पर है। वे चीजें तो और भी दुष्प्राप्य हैं। सुहागरात के दिन उसकी ननदों ने गिरिबाला को उनसे थोड़ा बहुत सजाया था और खुद अच्छी तरह थोपा था। यह सब देह में लगाकर शुरू-शुरू में गिरिबाला को थोड़ा अजीब लगा था, हिचकिचाहट हुई थी, मगर अंत में इन चीजों के लिए उसके मन में एक आकर्षण जागा था। कई बार मन हुआ था, थोड़ा-बहुत पोत ले, मगर उसे इसका कभी मौका ही न मिला। कई चीजें तो देखते-देखते पता नहीं कहां गायब हो गईं। मुंह में लगाने वाला हिमानी स्नो की शीशी पता नहीं कौन ले गया और महकौआ पाउडर भी गायब हो गया।

उसके सिंगारदान के प्रायः सभी खाने खाली हैं। एक कोने में कांच की एक छोटी-सी शीशी पड़ी हुई है, मगर सेंट उसमें एक बूंद भी नहीं है। ढक्कन अच्छी तरह बंद न होने से कुछ तो बक्से में गिर गया और कुछ उड़ गया। मगर उसकी मीठी-मीठी महक अभी भी है। सिंगारदान का ढक्कन खोलते ही अभी भी नाक में उसकी सुगंध आती है। उसी बक्से में गिरिबाला ने अगरू की एक शीशी छुपा रखी है। चम्पा की नजर उसी शीशी पर है। बड़ी बेहया हो रही है यह लड़की। गिरिबाला बड़े मनोयोग से बक्से में कपड़े तहा रही थी। इसी सुअवसर का फायदा उठाकर चम्पा ने शीशी की ओर हाथ बढ़ाया। किस्मत से गिरिबाला ने देख लिया और पकड़ लिया, नहीं तो गई थी शीशी।

गिरिबाला ने उसे धमकाया, "इन सब चीजों की तुझे क्या जरूरत, ऐं? जीभ से एकदम पानी निकल रहा है, क्यों?"

अचानक धर लिए जाने पर चम्पा पहले एकदम घबरा गई। फिर उसने चिरौरी-विनती शुरू की। इसके बाद पांव पड़ने लगी। मगर उसने देखा, इस मामले में दीदी के पास दाल गलने वाली नहीं है, तो उसने आखिरी हथियार चलाया।

"तू इतनी कंजूस क्यों है रे? थोड़ा हाथ में लेकर देखना चाहती थी। मैं क्या खा लेती। चमाइन कहीं की।"

गिरिबाला को अब आग लग गई।

"छोटा मुंह बड़ी बात। दुलार में बहुत बिगड़ गई है तू, क्यों? रुक ज़ा, अभी तुझे मजा चखाती हूं।"

गिरिबाला ने चम्पा का झोंटा पकड़कर अच्छी तरह झकझोर दिया।

मार खाकर चम्पा और उग्र हो उठी, कर्कश स्वर में बोली, "तूने मुझे मारा ! तेरे हाथों में कीड़े न पड़ें तो कहना। तुझे कोढ़ होगा कोढ़। होगा, होगा, होगा। त्रिवाचा दे दिया, देख लेना।"

गिरिबाला ने कहा, "देख चम्पा, अब तू सचमुच मार खाएगी, अच्छी तरह पीटी जाएगी। अभी मैं बड़ी मां से कहती हूं।"

चम्पा ने अपना अंगूठा नचाते हुए कहा, "ठेंगा करेगी तू। कर ले जो करना है।"

विवाह होने के बाद गिरिबाला ने जो काम छोड़ दिया था, वही कर बैठी। गुस्सा न संभाल पाकर उसने चम्पा के गाल पर एक करारा थप्पड़ रसीद कर दिया। दो दिन बाद उसकी शादी होगी, तमीज जरा भी नहीं है इस लड़की में। थप्पड़ खाकर चम्पा दंग रह गई। उसने सोचा भी नहीं था कि दीदी सचमुच उसे पीटेंगी।

तुरंत उसकी आंखों से झर-झर आंसू बहने लगे। दीदी ने उसे मारा। कैसे हाथ उठा उसका ! कुट्टी, कुट्टी ! जीवन भर के लिए कुट्टी। अब कभी वह दीदी से बात नहीं करेगी। कभी नहीं।

तभी बाहर से मझले मालिक ने पुकारा, "चम्पा !"

मझले काका आए हैं। अच्छा ही हुआ, रुको, मैं अब तुम्हें दिखाती हूं तमाशा। बड़ी हो गई हो, तो पता नहीं अपने को क्या समझने लगी हो। अभी पता चल जाएगा। रोती हुई चम्पा बाहर गई, मगर एक पल बाद ही दौड़ती हुई अंदर आ गई और सब कुछ भूलकर बोली, "दीदी रे, जीजा जी।"

इतना कहकर तुरंत वह घर के भीतर भागी। गिरिबाला चौंक उठी। कौन आया? भूषण! वह एकदम से अचकचा गई। उसकी समझ में नहीं आया, क्या करे। उसने धड़ाम से बक्सा बंद कर दिया। जैसे इसी तरह वह अपनी खुशी और उत्सुकता को ढक देगी। फिर वह जल्दी से उठ खड़ी हुई।

इस बीच चम्पा ने पूरे घर में चीख-पुकार मचा दी थी।

"ओ बड़ी मां, ओ बुआ जी, ओ चाची, जीजा जी आए हैं।"

घर के भीतर की सारी आवाजें एक पल के लिए स्तब्ध हो गईं। खटाखट घूंघट गिरने लगे। बिना किसी आवाज के सब के मन में खुशी की लहर उठने लगी। दामाद, दामाद जी आ गए। बाप रे ! कितने दिनों बाद आए भूषण !

इस खबर के फैलने में ज्यादा देर नहीं लगी। दोनों पुरवे के पुरुष दोपहर तक दीवान कोठी पहुंच गए। बैठक में हुक्कों की बहार लग गई। अच्छी-खासी भीड़ इकट्ठी हो गई। जलते हुए तंबाकू की महक और धुआं चारों ओर फैल गया। सरकार महाशय, पुरोहित जी, सेन कविराज, बूदो भुइयां सभी आए थे। सभी भूषण और उसके घरवालों का कुशल-मंगल बड़े आग्रह से पूछ रहे थे, भूषण के कामकाज की खबर जानना चाहते थे। यह जानकर कि भूषण कोटचांदपुर में है, उनके जो भी परिचित वहां थे, उनके बारे में कोटचांदपुर के लोगों की कुछ आलोचना भी हुई।

भूषण मन लगाकर सब सुन रहा था। अत्यंत विनम्र भाव से किसी-किसी बात का जवाब भी दे रहा था। उसने पाया कि जिस कोटचांदपुर की बातें वे कर रहे थे, उसके साथ असली कोटचांदपुर का कोई मेल न था। निश्चय ही भूषण ने यह बात कही नहीं, वरन उन्हें खुश करने के लिए बीच-बीच में हुंकारी भरता रहा।

भूषण आया है इसलिए इतने लोग एकत्र हुए हैं। वह एक विशिष्ट व्यक्ति है, इस बारे में वह सचेत था। समयोचित गंभीरता लाने के लिए भूषण तरह-तरह से अपने मन को सतर्क करने लगा। फिर भी उसे लगा, वह अपने को उस प्रतिष्ठा के अनुरूप पेश नहीं कर पा रहा है। उसका मन उसे ठीक जगह पर पहुंचने नहीं दे रहा। फिर अचानक उसे एक उपाय सूझा। हां, यह ठीक है। भूषण ने दामाद की भावना को पीछे ठेल दिया और अपना डाक्टर रूप सामने ले आया। बस, बात बन गई। उसे लगा जैसे वहां बैठे लोग अपना-अपना केस उसके सामने रख रहे हैं और वह उनके सिम्टम मिलाता जा रहा है। सरकार महाशय जिस तरह सिर हिला रहे हैं उसे देखकर भूषण को उन्हें "पल्स-30" देने का मन कर रहा था। बूदो भुइयां की बक-बक देखकर लगता है, उनके लिए "नक्स भौमिका" ठीक रहेगा।

बूदो भुइयां, भौमिक, भोमिका—वाह ! क्या सादृश्य है ! यह बात तो पहले कभी सूझी ही न थी। भूषण को जैसे एक नई खोज की महक मिली। दूसरों को यह बात हास्यास्पद लग सकती है, पर भूषण के लिए इस तरह के सूत्रों का असाधारण महत्व है। इस सूत्र को पकड़कर अगर भूषण खोज के जटिल पथ पर आगे बढ़ता जाए तो कौन जाने वह डगमगाता-डगमगाता किसी महान सत्य तक पहुंच जाए। भूषण उस सत्य का इस धरती पर प्रचार करेगा। लाखों लोगों का उससे उपकार होगा। बूदो भुइयां, भौमिका, 'नक्स भौमिका'। भूषण को अचानक आदमी और दवा अथवा दवा और आदमी के बीच एक खास संबंध का भान हो गया। किसी ने जैसे इशारे से यह तरीका उसे थमा दिया था। वह सोचने लगा, इस धरती पर जो परिवर्तन हो रहे हैं, उलट-फेर हो रहे हैं : शून्य से विचित्र सृष्टि की, अचेतन से चेतन की, जड़ से जंगम की, कीट से मनुष्य की और गुफा से आधुनिकतम शहर तक की जो यात्रा है, क्या पता, उसकी रहस्यमय चाबी बूदो भुइयां और 'नक्स भौमिका' के इस अविच्छेद संबंध में छिपी हुई हो। जिस चीज से 'नक्स भौमिका' का जन्म हुआ है वही अनेक परिवर्तनों के बीच से शायद बूदो भुइयां के रूप में सामने आया है। ये दोनों एक ही पारिवारिक बंधन में बंधे हुए हैं।

भूषण बहुत ध्यान से बूदो भुइयां को देखने लगा। उसके लिए जैसे बूदो भुइयां एक नया व्यक्ति हो उठा था, 'नक्स भौमिका' का मौसेरा भाई।

बूदो भुइयां ने हंसकर कहा, "ऐसे भुलावा देने से नहीं चलेगा। आप क्या समझते है, यह बंदा यों ही लौट जाएगा? खाने-पीने की व्यवस्था करनी होगी, डाक्टर साहब!"

बड़े मालिक बोल उठे, "जरूर, जरूर। हमारे बूदो की नजर बड़ी तेज है। महि, बूदो की बात तो रखनी ही होगी, क्यों? तो फिर परसों, परसों दोपहर को आप लोग पधारिए।"

"हां, यह हुई न पक्की बात।"

सरकार महाशय बोल उठे।

"तो फिर अब उठा जाए। सूरज डूबना ही चाहता है।"

सभा भंग हो गई। बाहर का झमेला तो खत्म हुआ। रसोईघर में तब भी भयंकर व्यस्तता चल रही थी। फूली के सहयोग से बड़ी बहू विराट आयोजन किए बैठी थीं। उधर निरामिष रसोईघर में शुभदा भी जोर-शोर से लगी हुई थीं।

आखिर क्या खिलाएं दामाद को? मांस-मछली खातें नहीं। तो? बड़ी बहू मुश्किल में फंस गई थीं। कभी निरामिष रसोईघर में जातीं और शुभदा के साथ परामर्श करतीं फिर आकर कुछ पकाने बैठतीं। सुधामय के चले जाने का जो मलाल था उसे भूषण ने आकर फिलहाल मिटा दिया था।

छोटी बहू गिरिबाला के बच्चे को कलेजे से लगाए बैठी थीं। भूषण के आने से केवल उन्हें परेशानी हुई थी। भूषण को इतनी भी क्या जल्दी थी? इतने नन्हे-से बच्चे को ले जाने आया है। यह नन्हा बच्चा भला इतना लंबा रास्ता कैसे तय कर सकेगा? अभी तो उसके हाथ-पांव भी मजबूत नहीं हुए हैं। डाक्टर होकर भी भूषण को यह जरा-सी बात नहीं सूझी? बैलगाड़ी के हिचकोलों से ही तो इसके हाथ-पांव टूट जा सकते हैं। क्या कहा जाए?

"ओ सौदागर ! तुम अब चले जाओगे?"

बिस्तर पर सोए शिशु के मुंह के पास छोटी बहू अपना मुंह ले गईं। उन्होंने उसका नाम रखा है धनपति, धनपति सौदागर। सुंदर नाम है। और नहीं तो, तुम्हारे कलकतिया बाबू (उनका मतलब सुधामय से था) ने आकर नाम रख दिया, शंख ! क्या बढ़िया नाम है ! आ हा हा हा !

"धनपति सौदागर, ओ धनपति सौदागर ! लगता है, तुम्हारा काम हो गया ! इस बंदरगाह का सब माल तुमने अपने सतमहले जहाज में लाद लिया है ! अब तुम्हें अपने देश लौटना है? क्यों? क्या-क्या सब लादा है जहाज में?"

बच्चा छोटी बहू की ओर देखकर हंस रहा है, खूब जोर से हंस रहा है और रह-रहकर जोरों से हाथ-पांव मारता है।

"बड़ी मौज देख रही हूं। इतनी हंसी किस बात की है? धनपति सौदागर, सतमहला जहाज ! लगता है, तुम मुझे अपने जहाज में नहीं बिठाओगे? नहीं बिठाओगे?"

बच्चा फिर हंस रहा है, खूब हंस रहा है। उसकी उज्ज्वल हंसी उसकी आंखों और

चेहरे से होती हुई पूरे शरीर में रोशनी की तरह फैल रही है। परम उल्लास मैं अपने छोटे-छोटे हाथ, छोटे-छोटे पांव फेंक रहा है वह।

"मैं समझ गई हूं, तुम मुझे अपने साथ नहीं ले जाओगे। नमकहराम, बड़े नमकहराम हो तुम।"

छोटी बहू की छाती में हाहाकार करती हुई जैसे एक आंधी बह गई। तेज तड़पन से जैसे उनके चेहरे पर एक परछाईं-सी आ बैठी। बच्चे को अपलक देखती चुपचाप बैठी रहीं। वह हंसता ही रहा।

अड़ोस-पड़ोस की औरतों की भीड़ लग गई शाम को। घर भर गया था। पान लगाते-लगाते फूली की मां के दोनों हाथ दर्द करने लगे।

बड़ी मुश्किल में पड़ गई गिरिबाला। अब वह कहां छिपे?

कोई लड़की पूछती, "क्यों रे, बच्चे की मुंह दिखाई दामाद जी ने क्या दी?" कोई दूसरी पूछती, "ओ जी, जीजा जी से मुलाकात हुई?"

सोते हुए बच्चे को उठाए चम्पा हांफती हुई आई और उसने बच्चे को ग्वालदीदी की गोद में रख दिया। बच्चे के घने बालों में सोने का एक चांद झूल रहा था। सभी लोग जैसे चकरा गए और उसे हिला-डुलाकर बड़े ध्यान से देखने लगे। हर औरत एक बार सोने का चांद हाथ से छूकर देखनी चाहती थी।

"वाह, बहुत सुंदर है ! हमारे दामाद बड़े शौकीन हैं। और बहुत भारी लगता है।"

चम्पा ने गंभीर स्वर में कहा, "एक तोला सोना लगा है।"

ग्वालदीदी बोली, "चुप कर, छौड़ी। जैसे हरलाल सुनार की मां आ गई !"

सभी खिलखिलाकर हंस पड़ीं तो चम्पा लजा गई। फिर उसे गुस्सा आया।

बोली, "आहाहाहा ! बुढ़िया की बातें तो सुनो !"

ग्वालदीदी ने धमकाया, "अच्छा, मैं बुढ़िया हूं और तू बड़ी जवान है, ऐं? भाग यहां से।"

बड़ी बहू ने भी डांटा, "तेरा यहां क्या काम? तू जा यहां से।"

ग्वालदीदी ने इधर-उधर नजर दौड़ाकर देखा तो पाया कि गिरिबाला चेहरे पर घूंघट डाले, सिकुड़ी हुई एक कोने में बैठी है।

ग्वालदीदी ने पुकारा, "ओ बेटी ! ओ नतनी, तू वहां देवी की मूरत की तरह क्यों बैठी है? मैं तो सोच रही थी, तू अपने मर्द के साथ बैठी बातें कर रही होगी। चल इधर आ।"

ग्वालदीदी भी कैसी बातें करती हैं? गला ऐसा है कि झिनैदा तक आवाज पहुंच रही होगी। गिरिबाला को लगा, वह जमीन में धंस जाएगी। बगल के कमरे में ही तो भूषण बैठे हैं !)

"अरे आ, आ, कभी हमारे भी भतार थे। हमने भी सुहाग का भात खाया है। ले, बच्चे को गोद में लेकर बैठ। तुझे आंख भर देख तो लूं। गाड़ी की सीटी तो बज ही गई है।"

ग्वालदीदी ने गहरी सांस ली।

फिर बोली, "नतजमाई ने क्या कहा? खुश है न? अरे मर छौड़ी ! सीधी होकर बैठ न ! जैसे एकदम से पाताल में धंसी जा रही है !"

गिरिबाला ने कितनी मुश्किल से वह समय काटा वही जानती है। सूरज डूबने पर सभी औरतें विदा हुईं। खाना-पीना खत्म होते-होते रात भी बहुत बीत चुकी थी।

बच्चे को खिला-पिलाकर वह सुला आई। अब वह रात में नहीं उठेगा। भूषण भी इस बीच सो गया था। सिर्फ गिरिबाला जाग रही थी। सात महीने बाद उसे पति के साथ सोने का मौका मिला था।

पूरे दिन विभिन्न प्रकार के कामों में वह अपने को उलझाए हुई थी। वह बेहद रूठी हुई थी। अपने भीतर से उठते मान को वह किसी तरह भीतर ही दबाए हुई थी। भूषण के साथ उसकी एक बार भी मुलाकात न हुई थी। नहीं, वह अभी भी उससे मुलाकात नहीं करेगी। अवसर पाकर भी गिरिबाला के मन में मान दखल किए बैठा था। नहीं, वह नहीं जाएगी, नहीं जाएगी, किसी तरह भी भूषण के कमरे में नहीं जाएगी। क्यों जाए? क्या इतने दिनों में एक बार भी भूषण ने उसकी खोज-खबर ली? क्या एक बार भी आकर वह राजा मुन्ना को देख गया?

गिरिबाला चुपचाप दरवाजे के बाहर खड़ी रही। उसकी छाती फाड़कर रुलाई उमड़ पड़ी। हल्की हवा चल रही थी। टुकड़ा-टुकड़ा चांदनी यहां-वहां बिछी हुई थी। गिरिबाला ने मन ही मन प्रतिज्ञा की, वह बाहर ही खड़ी-खड़ी रात काट देगी, भीतर नहीं जाएगी। तभी अचानक जैसे घर के पिछवाड़े दो गीदड़ खैक-खैक करते हुए लोटपोट करने लगे। बुरी तरह डरकर गिरिबाला कमरे में चली गई और दरवाजा बंद कर लिया। उसने अपनी प्रतिज्ञा थोड़ी-सी बदल ली। वह अपने मुन्ना के पास सोएगी। भूषण के साथ बात भी नहीं करेगी।

भूषण ने देखा, गिरिबाला ने जल्दी से कमरे में घुसकर दरवाजा बंद कर लिया। दरवाजे से पीठ सटाए एक पल खड़ी रही। फिर बिस्तर की दूसरी तरफ जाकर बच्चे के साथ सो गई। न उसकी ओर देखा, न उससे बातें कीं। भूषण समझ गया, गिरिबाला नाराज है। शायद इसीलिए कि पहले वह नहीं आया, आ नहीं पाया।

भूषण आता भी कैसे? वह एक महत्वपूर्ण काम में लगा हुआ था। वह मच्छरों के स्वभाव और आदतों का पर्यवेक्षण कर रहा था। उसे खोज करने की इच्छा हुई थी। सभी

जानते हैं कि मलेरिया मच्छरों के कारण होता है। मलेरिया के हमले से गांव के गांव उजड़ जाते हैं। मच्छर मारे बिना मलेरिया नहीं जाएगा, इस विषय में भी भूषण का सभी के साथ मतैक्य था। उसका मतभेद दूसरी जगह था। भूषण जानता है, उसका दृढ़ विश्वास है कि प्रत्येक प्राणी की इस सृष्टि में एक भूमिका है। संभवतः मच्छर की भी, संभवतः क्यों, निश्चय ही है। मगर वह भूमिका क्या है, भूषण यह बात नहीं जानता। अचानक एक दिन उसने उस भूमिका का आविष्कार कर लिया। हैजे के सीजन में गांव के लोग हैजे की सुई नहीं लेना चाहते। जबरदस्ती देने पर भी जान बचाकर भागते हैं। और बाद में हजारों की संख्या में मरते हैं। भूषण को लगा, मच्छर की मार्फत अगर हैजे का इंजेक्शन लगाया जा सके तो हैजे की समस्या के समाधान के साथ-साथ मच्छरों का भी एक सार्थक उपयोग होगा। इसी विषय को लेकर पिछले छः महीने से वह खोज कर रहा है। मूल आविष्कार से संबंधित काम करने के लिए किन पद्धतियों का अनुसरण करना जरूरी होगा, इसका एक खाका उसने मोटे तौर बना लिया था। जैसे—

(1) मच्छरों के रोग वहन करने की क्षमता का हरण करना,

(2) मच्छर हैजे का प्रतिरोधक वहन कर सकें इसकी व्यवस्था करना और

(3) एक मच्छर कितने परिमाण में दवा वहन कर सकता है, इसका पता लगाना।

काम आसान नहीं है, मगर बहुत महत्वपूर्ण है। इसमें पूरी दुनिया की मानवता का कल्याण निहित है। ऐसा महत्वपूर्ण काम छोड़कर भूषण अपने बीवी-बच्चे का हाल-चाल लेने जाएगा, ईश्वर ने उसे ऐसा संकीर्ण और स्वार्थी नहीं बनाया था।

मगर भूषण ने ये सब बातें गिरिबाला को समझाना उचित नहीं समझा। विशेषकर इस समय, जबकि गिरिबाला का मिजाज कोई खास सुविधाजनक नहीं दिख रहा है।

भूषण ने करवट लेकर देखा, खुली खिड़की से होकर चांदनी उनके बिस्तर पर उतर आई है। उसी चांदनी में बच्चे की बगल में लेटी गिरिबाला अपूर्व सुंदरी लग रही है। भूषण को बहुत अच्छा लग रहा है। वह गिरिबाला से बातें करना चाहता है। अपने आविष्कार की बातें नहीं, सामान्य रोजमर्रा की छोटी-मोटी बातें। गिरिबाला के निकट जाने की उसकी इच्छा धीरे-धीरे प्रबल हो रही है, मगर आज बिना किसी बाधा के उसके पास खिसक जाने का रास्ता भी बंद है। बीच में एक व्यवधान है। एक अपरिचित शिशु। उसका बेटा। बच्चे के बारे में भूषण अब सचेत हुआ। थोड़ा खिन्न भी हुआ। उसके और उसकी पत्नी के बीच में इसने अनधिकार प्रवेश किया है। बच्चे के इस मूर्खतापूर्ण व्यवहार से वह थोड़ा क्षुब्ध भी हुआ।

गिरिबाला मक्कर किए पड़ी थी। वह इंतजार कर रही थी, देखूं भूषण कब पुकारता है। ऊपर से गिरिबाला जितना भी गुस्सा दिखाए, क्या सचमुच वह उस पर गुस्सा किए

रह सकती है? गिरिबाला जानती है, अगर उसी क्षण भूषण उसे धीमी आवाज में पुकारे या बिना कुछ बोले ही उसका हाथ पकड़कर खींचे तो उसका सारा गुस्सा, सारा मान एक पल में ढह जाएगा। आज सवेरे क्या हुआ, जब चम्पा ने सूचना दी कि भूषण आए हैं? मान से उसकी आंखें डबडबा आईं। कितने दिनों से उसकी कोई खोज-खबर नहीं ली भूषण ने, इसलिए उसे मान भी हुआ था, मगर एकदम भीतर कहीं उसका मन किसी लता में झूलते, हल्की हवा में डोलते हुए फूल की तरह आनंदित हो उठा था।

भूषण सोच रहा था, कितने ताज्जुब की बात है, मैं और गिरिबाला एक ही बिस्तर पर हैं, मगर पहले जैसी निकटता अब नहीं है। आसपास सोए जरूर हैं। मगर सान्निध्य नहीं है। गिरिबाला की देह के साथ भूषण की देह एकाकार नहीं है। भूषण का चेहरा गिरिबाला के काले लंबे बालों से घिरा नहीं है। उसकी देह के तट पर पहले की तरह आज गिरिबाला लहरों की तरह लोट नहीं रही है। इतने थोड़े-से समय में इतना बड़ा परिवर्तन कैसे आया? इसी शिशु के कारण। इतने दिनों तक गिरिबाला और भूषण के बीच कोई न था। मगर आज से एक तीसरे जीव का अस्तित्व हमेशा उनके बीच रहेगा। यह मामला भूषण को खास जमा नहीं। उसने तिरछी नजर से बच्चे की तरफ देखा। कैसा है ! जैसे चूहे का बच्चा। हाथ-पैर, आंख, मुंह, नाक, कान सब छोटे-छोटे। एक मनुष्य के पास जो कुछ होता है सब कुछ इसके पास है, फिर भी कैसा बेढब, कैसा बेतुका लग रहा है। कलकत्ते में मझले भैया की मेज पर सफेद पत्थर का एक ताजमहल देखा है। अब वह बात उसे याद आई। उसे लगा, यह भी वैसा ही एक माडेल है। भूषण का माडेल। भूषण मन ही मन हंसा। शिशु के प्रति उसके मन में जो प्रच्छन्न खिन्नता थी वह तुरंत कम हो गई। वह बच्चे पर बड़े कौतूहल से नजरें टिकाए रहा।

उधर गिरिबाला सोच रही थी, क्या भूषण ने उस पर गुस्सा किया है। ऐसा तो कभी हुआ नहीं। इतनी देर चुप रहने वाला तो वह नहीं है? निश्चय ही वह गुस्सा हुआ है। हां, अब जरा-सा हिला है। गिरिबाला पूरे मनोयोग से भूषण को देख रही थी। अब वह उसे पुकारेगा। अपने पास खींचकर ले जाएगा। दुलार करेगा। मगर कहां? कुछ भी तो नहीं कर रहा है। तो क्या सचमुच वह नाराज है? बच्चे को देखकर उसे खुशी नहीं हुई? गिरिबाला उदास हो गई।

आज भूषण को अपना बेटा एक माडेल लग रहा है, भूषण का ही संक्षिप्त संस्करण। मगर देखते ही देखते वह कैसे बड़ा होता जाएगा। धीरे-धीरे वह एक दिन भूषण जितना बड़ा हो जाएगा। तब भूषण और भी आगे निकल जाएगा, बहुत-बहुत दूर। बेटे और बाप के बीच शुरू होगी दौड़-प्रतियोगिता। एक दिन बेटा शायद पिता की उम्र का हो जाएगा, फिर भी पिता को पकड़ पाना उसके लिए संभव न होगा।

आज भूषण को गिरिबाला की जरूरत नहीं है, यह बात गिरिबाला साफ समझ रही

है। उसके प्रति भूषण के मन में कोई आकर्षण नहीं है। गिरिबाला की आंखों में आंसू आ गए। अच्छी बात है, अच्छा है, अगर ऐसा है तो भूषण उसके साथ अपना संबंध तोड़ ले। वह भूषण के पास नहीं जाएगी। क्यों जाएगी? क्यों?

कैसे सुला रखा है बच्चे को? गिरिबाला ने बच्चे को ऐसे सुलाया है कि उसे लांघकर हाथ बढ़ाए बिना गिरिबाला का मिजाज जान पाना संभव नहीं। मामला क्या है? क्या गिरिबाला बच्चे की आड़ में छुप जाना चाहती है या फिर बच्चे ने ही उस पर दखल कर लिया है?

मगर मैं अपना हक क्यों छोड़ूं? यह सोचकर भूषण गिरिबाला की तरफ हाथ बढ़ाने ही जा रहा था कि बच्चा रो उठा। भूषण चौंक पड़ा। दब गया क्या? घबराकर उसने हाथ पीछे कर लिया। बच्चा रोता ही रहा। गिरिबाला भी बेखबर पड़ी हुई है। सो गई क्या? वह बिस्तर पर से उठ पड़ा और गिरिबाला को हिलाने-डुलाने लगा।

"ए, ए, देखो न, इतना रो क्यों रहा है?"

गिरिबाला को लगा, भूषण की आवाज में प्रबल उत्कंठा है। कैसे फंसे हैं? मन ही मन वह खुश हुई। अब बच्चे के रोने से उसे डर नहीं लगता।

"ऐ, ऐ, उठो न, कहीं दब-वब तो नहीं गया?"

गिरिबाला अब उठ गई और बच्चे को गोद में लेकर बैठ गई। मगर बच्चे की रुलाई फिर भी न रुकी।

"क्या हुआ उसे, बताओ न?"

भूषण की इस दुश्चिंता से गिरिबाला का गुस्सा, मान सब जैसे बह गया। भूषण बच्चे की उपेक्षा नहीं कर रहा है। जो संशय, जो डर, जो उत्कंठा उसने अभी तक अकेले भोगा है, उसमें हिस्सा बटाने के लिए भूषण भी आगे आ रहा है। अपूर्व सुख से गिरिबाला के अंतर का कोना-कोना भर गया।

वह बोल पड़ी, "नहीं-नहीं, कुछ हुआ नहीं है। छोटे बच्चे ऐसे ही रोते हैं।"

गिरिबाला की बुजुर्गों-जैसी बात से एक ओर भूषण की चिंता दूर हुई, तो दूसरी ओर उसे हंसी भी आई।

"डर जाते हैं न? सपना-वपना देखते है तो डर जाते हैं, डर कर रो पड़ते हैं। गोद में ले लेने पर, या फिर धीरे-धीरे थपथपाने पर फिर सो जाते हैं।"

गिरिबाला की बातें सुनकर भूषण को लगा, जैसे कोई मैट्रन नई-नई नर्सों को लेक्चर देती है, उसी तरह गिरिबाला भी उसे वात्सल्य की शिक्षा दे रही है।

भूषण भी उठ बैठा। वह गिरिबाला से सटकर बैठ गया। उसकी पीठ पर भूषण ने दो-एक बार अपना चेहरा रगड़ा। चोटी के नीचे गर्दन पर एक बार चूमा। गिरिबाला की समूची देह सनसना उठी। आवेग से आंखें बंद हो गईं, पूरी देह शिथिल हो आई।

टूटे-टूटे स्वर में गिरिबाला बोलने लगी, "ऐ जी, ऐसा मत करो, ऐसा मत करो, नहीं तो मैं बच्चे को सुला नहीं पाऊंगी।"

भूषण ने कोई बात नहीं सुनी। गिरिबाला की पीठ पर अपना गाल जोर से दबाए उसी तरह बैठा रहा। गिरिबाला जैसे सम्मोहित हो गई। उसे बेहोशी-सी छाने लगी।

कोशिश करके वह बस इतना कह सकी, "मैं...मैं...मुझसे नहीं होगा। छोड़ दो न, तुम बहुत अच्छे हो, अच्छे बच्चे की तरह लेट जाओ।"

तभी बच्चा गिरिबाला की गोद से लुढ़ककर बिस्तर पर जा गिरा और साथ ही रोने लगा। बच्चे की रुलाई सुनते ही गिरिबाला का मोहाच्छन्न भाव कट गया।

गिरिबाला ने डांटा, "हुआ न, अब लो इसे तुम ही संभालो।"

मगर जल्दी से बच्चे को गोद में उठाकर उसे दुलारने भी लगी। होठों पर शरारती हंसी लाकर तिरछी नजर से भूषण को देखने लगी। उसने देखा, भूषण मुस्करा रहा है। चांदनी और भी गाढ़ी हो गई थी। भूषण के होठों और गालों पर चांदनी पड़ रही थी, बाकी शरीर अंधेरे में था। अद्‌भुत सुंदर लग रहा था भूषण।

मगर बच्चे की रुलाई रुकने को ही नहीं आ रही थी। भूषण के कान के पास मुंह ले जाकर फुसफुसाते हुए गिरिबाला ने विनती की।

"जरा उधर मुंह करके सोओ न।"

"क्यों?" भूषण ने उसी तरह फुसफुसाकर पूछा।

गिरिबाला ने कहा, "बच्चे को दूध पिलाऊंगी न!"

"तो पिलाओ न, देखूं तो कैसे पिलाती हो?"

सन्न से गिरिबाला की छाती में खून का उबाल आ गया। उसका चेहरा गर्म और लाल हो उठा। बड़े बेशर्म हैं ! उसने देखा, भूषण हंस रहा है। उसके दांतों पर चांदनी छितराई पड़ी थी।

"नहीं-नहीं, तुम उधर मुंह फेरो। देखते नहीं, बच्चा रो रहा है?"

भूषण ने फिर उसके कान के पास मुंह लाकर प्यार भरी आवाज में कहा, "तो फिर तुम बच्चे का बिछौना उस तरफ खिसका दो।"

गिरिबाला की छाती धड़क उठी, मन जैसे नाच उठा।

तेजी से सिर हिलाते हुए उसने कहा, "नहीं, नहीं, नहीं। तुम क्या कभी हमारी खोज-खबर लेते हो?"

एक पल बाद गिरिबाला की आंखों से झर-झर आंसू बहने लगे।

थोड़ी देर बाद देखा गया कि मुन्ना का बिछौना गिरिबाला की दूसरी ओर खिसक गया है और गिरिबाला भूषण की बांहों में परम तृप्ति के साथ सो रही है। चांदनी की लहरें दोनों के सीने तक जाकर लोटपोट हो रही हैं।

तेईस

वह छोटा-सा बच्चा भी उस दिन परेशान हो उठा था। बुरी तरह रो रहा था और किसी के वश में ही नहीं आ रहा था। इस गोद से उस गोद फिर रहा था, फिर भी चुप नहीं हो रहा था। बड़ी बहू, शुभदा, ग्वालदीदी, यहां तक कि छोटी बहू भी उसे चुप नहीं करा पा रही थीं। गिरिबाला की आंखों से भी अविरल जलधारा बह रही थी। कई बार आंखें पोंछकर उसने भी बच्चे को गोद में लिया, मगर बच्चे को चुप कराने में सफल न हुई।

उसकी पूरी देह गहनों से लदी थी। माथे पर टीका, हाथों में कड़े और गले में हार। उसकी अपनी ही देह उसे अजीब लग रही थी। इसी से वह परेशान हो रहा था, मगर कोई यह बात समझ नहीं रहा था।

समझता भी कौन? कोई अपने होशोहवास में होता तब न! बड़े मालिक बड़े शांत स्वभाव के हैं, मगर आज वह भी विचलित दिखाई पड़ रहे हैं। वे लगातार हुक्का पी रहे हैं और बीच-बीच में उठकर रामकिष्टो के पास जाते हैं। रामकिष्टो बाहरी आंगन में बैलगाड़ी पर पुआल बिछा रहा है।

बड़े मालिक बार-बार उसके पास जाते हैं और कहते हैं, "अरे रामकिष्टो, अच्छी तरह से बांधना। देखना, कहीं रास्ते में खुल न जाए।"

रामकिष्टो कहता, "बड़े बाबू, आप क्यों परेशान होते हैं? मजबूती से बांध रहा हूं। यह काम कोई नया तो नहीं कर रहा हूं।"

बड़े मालिक कहते, "हां, और देख, बहुत सावधानी से ले जाना। ज्यादा हिचकोला न लगे, इस बात का ध्यान रखना। समझा?"

रामकिष्टो ने थोड़ा हंसकर जवाब दिया, "हमारे हाथ की गाड़ी है, बाबू। आप एकदम चिंता न कीजिए। दीदी को बड़े आराम से पहुंचाकर आऊंगा।"

बड़े मालिक ने कहा, "हां, यह तो है। तू है तो मैं निश्चिंत हूं। और किसी की चिंता नहीं है, बस उसी बच्चे की बात सोच रहा हूं। वह भी तो साथ में होगा।"

"नहीं, नहीं, बड़े बाबू, कोई चिंता नहीं है। बैलगाड़ी में भैंसों को जोतूंगा।

"भैंसे ! भैंसे जुतेंगे क्या? नहीं नहीं, भैसों का भरोसा नहीं है। तुम बैल ही ले जाओ। समझे?"

एक पल रामकिष्टो बड़े बाबू का मुंह देखता रहा।

बड़े बाबू ने फिर कहा, "अच्छा है, बैलों को ले लो।"

रामकिष्टो ने बात नहीं बढ़ाई। हां कर दी। मालिक की इच्छा ही सब कुछ है। बैलों को जोतने से दीदी के घर पहुंचते-पहुंचते रात हो जाएगी।

फिर भी वह बोला, "ठीक है, ऐसा ही करूंगा। बैलों को ही जोतूंगा।"

बड़े मालिक फिर निश्चिंत होकर हुक्का पीने लगे। अचानक कुछ याद आया तो उठकर कमरे में गए। पत्रा खोलकर बैठ गए। दस घटिका पचपन मिनट गते यात्रा नास्ति। अश्लेषा। बड़े बाबू ने लंबी चेन वाली बड़ी-सी घड़ी का ढक्कन खोलकर समय देखा। इस समय सवा आठ बजे हैं। गजब हो गया, अब एकदम समय नहीं है ! खड़ाऊं खटखटाते हुए वे अंदर गए।

"ओ मझली दीदी, बच्चों को गाड़ी में बिठा दो। अब वक्त नहीं रहा।"

शुभदा मिट्टी की कुछ हांड़ियों में चीजें भर रही थीं। एक में छेना था, एक में अमरस था, एक में इमली की खटाई थी, एक में अचार था, एक में बड़ियां थीं। बस एक रह गई थी। उसमें अमचूर भरा जाए तो काम खत्म।

ऐसे में बड़े मालिक की आवाज सुनाई दी, "ओ मझली दीदी, जरा जल्दी करो।"

शुभदा ने जवाब दिया, "बस हो गया। ओ बड़ी बहू, तुम्हारी रसोई तैयार हो गई?"

बड़ी बहू ने रसोई में से जवाब दिया, "बस हुई ही समझिए। मैं जरा बूड़ी को नहला दूं।"

बड़ी बहू गिरिबाला के बालों में तेल लगा रही थी। सामने चम्पा बैठी थी। तीनों की आंखें आंसुओं से डबडबा रही थीं। बीच-बीच में किसी का फफकना भी सुनाई दे रहा था।

बड़ी बहू ने रोते हुए कहा, "बेटी, बच्चे को बहुत ध्यान से रखना। जरा भी लापरवाही न करना, देर-सवेर मत करना। गरम-ठंडा बचाकर चलना। उल्टा-सीधा मत खिलाना। तुम्हारी तबीयत खराब हुई तो वह भी बीमार पड़ जाएगा। अगर देखना कभी ज्यादा रोए तो झड़वा-फुंकवा लेना। सर्दी-खांसी हो तो कड़वा तेल गर्म करके हाथ-पांव के तलुओं में और छाती में मालिश कर देना। रोज अच्छी तरह तेल लगाकर नहलाना, समझ गई न?"

गिरिबाला फफक-फफककर रो रही थी और सिर हिला-हिलाकर बड़ी मां की बातों पर हुंकारी भर रही थी। लगातार रोने से उसकी दोनों आंखें लाल हो गई थीं और आंसू पोंछते-पोंछते नाक के कोने और मुंह लाल हो रहे थे। गिरिबाला अपनी रुलाई किसी भी तरह रोक नहीं पा रही थी। उसके अंतर में निरंतर एक हाहाकार उठ रहा था और आंखों के रास्ते अविरल बहा जा रहा था।

छोटी बहू ने अंत में बड़ी मुश्किल से गिरिबाला को शांत किया। उनकी गोद में सौदागर सो गया था। कल यह गोद नहीं भरेगी, सूनी ही रहेगी। जो सूरज आज इतनी रोशनी दे रहा है, इतना मुस्करा रहा है वह कल से उगेगा ही नहीं। जो हवा कल से बहेगी उसमें इतनी ठंडक न होगी। कुछ ही देर बाद जैसे जीवन की सारी रोशनी बुझ जाएगी, सारे अरमान

यों ही धरे रह जाएंगे। कोई कामकाज नहीं रहेगा। सब एकदम खाली हो जाएंगे। छोटी बहू सो रहे शिशु के चेहरे को अपलक निहार रही थीं। इस सुंदर मुखड़े में कितना अमृत है। उन्होंने एक बार बच्चे का मुंह चूम लिया। इन नन्हे-नन्हे हाथों में कितना आकर्षण है ! एक बार फिर छोटी बहू ने बच्चे को चूमा। इसके बाद फिर चूमा। इसके बाद फिर। और फिर।

तू मुझे छोड़कर रह सकेगा? रह सकेगा तू? क्या एक बार भी मैं याद नहीं आऊंगी? एक बार भी नहीं? कभी भी नहीं? मेरे बिना तुझे कोई असुविधा नहीं होगी। तुम्हारी मां है ही। अरे सौदागर! तेरे तो कितने बंदरगाह हैं । अपने सतमहले जहाज पर झंडा फहराता हुआ एक बंदरगाह छोड़कर तू दूसरे बंदरगाह की तरफ चल पड़ेगा। किसी और जगह लंगर डालेगा। मगर मैं? मैं क्या लेकर रहूंगी? मेरा और कौन है? कोई नहीं, कोई नहीं, कोई नहीं। छोटी बहू का अंतर जैसे हाहाकार कर उठा। जैसे किसी सूने बंदरगाह के तट पर सागर की लहरें पछाड़ खाती रहती हैं।

मझले मालिक कहां गए? सवेरे-सवेरे जो निकले थे तो अभी तक उनका पता ही नहीं है। इधर यात्रा टल रही है। अब और देर नहीं की जा सकती। भूषण और गिरिबाला को अगल-बगल मंगलकलश के सामने बिठा दिया गया है। गिरिबाला की रुलाई अपने चरम पर है।

बड़ी बहू, शुभदा और ग्वालदीदी आंचल से अपनी आंखें पोंछती हुई बार-बार उसे चुप करा रही हैं।

"अरे ओ मुन्नी, चुप हो जा, चुप हो जा, जाते समय रोते नहीं। अरे ओ पागल इससे अपशगुन होता है।"

एक-एक करके सभी को प्रणाम कर भूषण उठ खड़ा हुआ। यह हालत देखकर वह जैसे अपराधी हो गया था। अपनी बहू को ही तो ले जा रहा है। मगर इस घर की हालत देखकर तो उसे लग रहा है, जैसे वह अदालत में सम्मन लेकर सारी संपत्ति कुर्क करने आया हो। भूषण मन ही मन दुखी हुआ। एक बार घर से निकल जाए तो जान में जान आए। इसके बाद गिरिबाला भी सभी को प्रणाम कर वह उठ खड़ी हुई। बड़े-बूढ़ों ने उसके बाएं हाथ का अंगूठा दांतों से दबा दबाकर प्रायः उसे फुला दिया।

ऐसे में मझले मालिक एक बड़ी-सी रोहू मछली लिए हड़बड़ाते हुए आ पहुंचे। कहीं मछली नहीं मिली थी। अठारोखादा की झील से पकड़वाकर लाए हैं।

मगर यह क्या? सभी लोग विस्मित होकर मझले मालिक का चेहरा देखने लगे। इनकी दाढ़ी कहां गई? चेहरा सफाचट। उन्हें तो पहचानना मुश्किल था। एक पल में पूरे परिवार की रुलाई बंद हो गई।

फीकी हंसी हंसते हुए मझले मालिक ने सफाई दी, "बड़ा जंजाल हो गया था, कटवा

ही दिया।"

घर के सभी लोग बैलगाड़ी के साथ चलते हुए ग्वालबाड़ी तक आए।

गिरिबाला ने विनती की, "ओ बड़ी मां, ओ बुआ जी, मुझे जल्दी से फिर बुलवा लेना। जल्दी से आदमी भेजना, तुम्हें मेरे सिर की कसम।"

"बुलाऊंगी बेटी, जरूर बुलाऊंगी, तुम घबराओ मत। तुम लोगों का मुंह देखे बिना ज्यादा दिन हमसे रहा भी कहां जाएगा। सावधानी से रहना। मुन्ना को जतन से रखना।"

और बुआ जी का गला रूंध गया।

ग्वालबाड़ी के पास आकर सभी रुक गए, केवल मझले मालिक गाड़ी के साथ-साथ चलते रहे। उन्होंने नाती को गोद में उठा रखा था। आज गोद में आने में उसने ज्यादा आनाकानी नहीं की। पहली बार वह उनकी पकड़ में आया था। आह ! क्या आनंद है! क्या शांति है !

नाती को गोद में उठाए बहुत दूर तक गाड़ी के साथ-साथ आए। गिरिबाला बार-बार कहती, "नहीं पिताजी, और नहीं, अब और मत आइए। बहुत दूर आ गए।"

क्या सोचती है गिरिबाला ! इसे गोद में लेकर तो धरती के आखिरी छोर तक ऐसे ही पैदल जाया जा सकता है। कोई थकान नहीं होगी। कम से कम मझले मालिक को तो ऐसा ही लग रहा था।

फिर भी एक समय उन्हें रुकना ही पड़ा। जोड़ापुल के पास आकर उन्होंने नाती को बेटी की गोद में दे दिया। जहां तक वे लोग दिखाई देते रहे, मझले मालिक वहीं खड़े देखते रहे। फिर कुछ देर बाद दामाद की चमकती हुई साइकिल अंतर्ध्यान हो गई और बैलगाड़ी भी सड़क के मोड़ पर ओझल हो गई। अब क्या है? अब क्यों खड़े हैं? मझले मालिक, अब लौट जाइए। इस बीच धूप सिर के ऊपर आ गई थी। उन्होंने चारों ओर आंखें फाड़कर देखा, कहीं कोई न था। एक सीमाहीन शून्य काटने को दौड़ रहा था। अभ्यासवश उन्होंने दाढ़ी पर हाथ फेरा। मगर हाथ शून्य में घूमकर वापस आ गया। दुबारा हाथ बढ़ाया तो सफाचट ठुड्डी हाथ में आ गई।

सब लूट ले गया। वह नन्हा डकैत सब कुछ खाली कर गया। न केवल उनका हृदय बल्कि उनका चेहरा भी।

लरजती हवाएं

एक

अब वह महसूस कर रहा है कि कोई उससे कह रहा है—बहुत दिनों तक चार पांवों पर चल लिए, अब नहीं। अब उठो। मनुष्य हमेशा अपने हाथ-पांव के सहारे नहीं चलता। पांव तो बस दो ही हैं। अब अपने पांवों पर टिके रहना सीखो।

मगर क्या ऐसा संभव है? बीच-बीच में उसे बहुत सोच-विचार करना पड़ता है।

वह मनमाफिक बड़े आनंद से पूरे कमरे को रौंदता हुआ घूम रहा था। मगर घुटनियां चाल से। उसका विचार है, चारों हाथ-पांव के बल चलना कहीं अधिक निरापद है। वह किसी मुसीबत में आसानी से फंसना नहीं चाहता। बंधे-बंधाए रास्ते पर चलना ज्यादा अच्छा है।

चौखट के पास आकर वह ठिठक गया। यह जगह उसे बहुत तकलीफ देती है। पूरे कमरे में कहीं कोई बाधा नहीं, कोई गतिरोध नहीं। सर-सर करता वह घूमता-फिरता है। आराम से चौखट तक चला आता है। यहां पर खड़ा होकर बाहर की ओर देखता है। कितनी रोशनी है, कितनी जगह है, कितनी तरह की चीजें हैं वहां ! लाल, काला, पीला, हरा, नीला, बैंगनी, गुलाबी, सफेद। कितने तरह के रंग हैं ! कोई चमचमाता है, कोई हिलता लगता है और कोई चुपचाप खड़ा रहता है। कोई आवाज करता है, कोई निस्तब्ध रहता है। किसी के प्रति उसके अंदर पक्षपात नहीं है। वह सब की तरफ हाथ बढ़ाता है। सब कुछ उसे चाहिए। सब कुछ उसका है। कुछ भी नहीं छोड़ना है।

कोई चीज अचानक छप से उसके सामने आ गिरी। तुरंत उसकी निगाह उधर घूम गई। अरे फुर्र से कोई एक चीज उड़ी ! दूर जाकर बैठ गई। चट से वह घूमा। कोई एक चीज है जो कीं-कीं करती हुई चक्कर खाती हुई चलती है। खट-खट करता हुआ कोई दौड़ गया। टन्न से कोई आवाज हुई। फटाफट उसकी आंखें चारों ओर घूम रही हैं। वह बुरी तरह उत्तेजित है। बहुत चंचल हो रहा है, अकारण ही चंचल हो रहा है। उसे बहुत मजा आ रहा है। वह अपनी देह को बड़े उत्साह से हिला-डुला रहा है। घुटनों पर भार देकर खड़ा होता है। दोनों हाथ बढ़ाकर पुकारता है। पास आओ, पास आओ। आओ, आओ, आओ।

अचानक उसके पीछे न जाने कैसी एक चीज आ गई। मद्धिम स्वर में बोली—म्याऊं। वह तत्काल घूमा। तीव्र विस्मय और कौतूहल से उसकी दोनों आंखें स्फटिक मणि की तरह चमचमाने लगीं। म्याऊं-म्याऊं पुकारती है। गुर्र-गुर्र करती है। झपाक-झपाक कूदती है। उसे देखकर वह बेहद खुश होता है, पुकारता है, "दाद्दा ! दाद्दा ! दाद्दा !"

अरे वह तो चलने लगी, "दाद्दा !" वह भी उसके पीछे-पीछे चला। "दाद्दा !" रुको, जैसे उसने धमकाया। मगर उसकी धमकी पर उस चीज ने ध्यान नहीं दिया। चौकी के नीचे घुस गई। वह भी चल पड़ा। "दाद्दा !" अरे भाई, इतने जोर से नहीं, जरा धीरे चलो। उसने जैसे चिरौरी की। उसकी चिरौरी भी बेकार गई। वह थोड़ा खिन्न हुआ, फिर भी उसके पीछे-पीछे चला। जा, कहां चली गई ! चौकी के नीचे अनगिनत चीजें हैं। वह चीज उछलकर उन्हीं के पीछे छुप गई है। विस्मित होकर उसने इधर उधर देखा। "दाद्दा !" कहां हो तुम? किसी ने उत्तर नहीं दिया। "दाद्दा, दाद्दा !" ऐ, ऐ, कहां हो? नहीं, कोई जवाब नहीं देता। वह दुखी हुआ। उदास चेहरा लिए चुपचाप बैठा रहा।

अरे, वह क्या है? वही जो कोने में चकमक कर रहा है ! वही, वही, वही ! दुबारा उसकी दोनों आंखें चमकने लगीं। घुटनों के बल उस तरफ चल पड़ा। बहुत कड़ी चीज है, उसने हाथ में उठाकर महसूस किया था। फिर मुंह में डालकर उसे चबाने लगा। उसके मसूड़ों में वह चीज चुभने लगी। मगर चबाने से आराम ही मिल रहा था। चुक-चुक करके वह उसे चूसने लगा और चूसते-चूसते फिर उसे मसूड़ों से दबाने लगा। अच्छा लग रहा है। बहुत अच्छा लग रहा है। इस नए काम में उत्साह से लग गया। बड़े उत्साह से जुट गया।

एकाएक भरभराकर कोई चीज उधर गिरी तो वह चौंककर उधर देखने लगा। उसने देखा, उसका दोस्त अचानक उधर से निकल आया है। उसे हंसी आई। वह फिर अपने दोस्त के पीछे चल पड़ा।

उसने देखा, उसका दोस्त एक छलांग में चौखट पार कर गया, मगर वह पार न कर सका। पता नहीं इसको, इस चौखट को, उससे क्या दुश्मनी है कि यह उसे बार-बार रोक लेता है, यह बात वह समझ नहीं पाता। बीच-बीच में उसे बहुत गुस्सा आता है। घुटनों के बल बैठकर वह प्रबल आक्रोश से अपने दोनों हाथों से चौखट को झकझोर डालता है। अगर उसका वश चलता तो वह उसे उखाड़ हो फेंकता।

कुल मिलाकर इस बाधा में वह बुरी तरह से अटका हुआ है। पिछले कई दिनों से वह इसे पार करने की लगातार कोशिश कर रहा है, मगर पार नहीं कर पा रहा है। वह चिंतित हो उठा है। जानता है कि इसे पार किए बिना उसकी मुक्ति नहीं है, उसे चैन नहीं है।

उसने कोई कम बाधाएं नहीं पार की हैं। कुछ दिनों पहले तक तो वह हिल भी नहीं सकता था। असहाय होकर बिस्तर के कारागार में बंदी था। केवल हाथ-पांव चला-चलाकर चलने की साध मिटाता रहता था। करवट भी नहीं ले पाता था और न पट हो सकता था। मगर धीरे-धीरे उसके खून में पुरखों की चंचलता जाग उठी। उसे अनुभव होने लगा कि एक तीव्र अशांत पिपाशा उसके मन में जाग उठी है। यही उसे अस्थिर किए हुए है। पता नहीं, कौन उससे कह रहा है कि इस बाधा को तोड़ो, यह तुम्हारी जगह नहीं है। यह तुम्हारी दुनिया नहीं है। वह और कहीं है, किसी और जगह। उठो, उठो। चलो, चल पड़ो।

मगर वह उठे कैसे? कैसे चले? उसके पास इतनी ताकत कहां है? नहीं, यह असंभव है। उसके लिए दूसरों की सहायता के बिना करवट बदलना और पट होना भी असंभव है। उससे नहीं होगा। उससे कुछ नहीं होगा। मगर फिर कहीं से आदेश आता है, तगादे पर तगादा आता है—कोशिश करो, कोशिश करो। तुम्हारे बाप-दादों ने हार नहीं मानी। विद्रोह किया, संघर्ष किया। उन्होंने एक-एक करके सारे बंधन तोड़ डाले। व्रिदोह करने का वह उत्तराधिकार तुम्हारा भी है। तुम जन्म से सैनिक हो। विजयी हो !

उसे ठीक से याद भी नहीं कि कब और कैसे, उसने अपने खून में विरामहीन संघर्ष का प्रबल आह्वान सुना। उसे पता ही न चल पाया कि कब अनजाने ही उसने असंभव को संभव करने का दुर्दांत संघर्ष शुरू कर दिया। वह समझ ही नहीं पाया कि अपने पराक्रम से उसने पंचभूतों की शक्ति को अपने रास्ते से परे हट जाने के लिए बाध्य कर दिया है। कोशिश करते-करते एक दिन उसने करवट बदल ली, फिर पेट के बल हो गया। क्रमशः कठिन प्रयास से एक दिन उसने गुरुत्वाकर्षण के प्रबल खिंचाव को व्यर्थ करके बिस्तर पर उठकर बैठना सीख लिया। अपने हाथों और पांवों के बल पर उसने पूरे कमरे में घूमना सीख लिया। अपने सीमांतों को खींच-खींचकर उसने बड़ा, और बड़ा कर डाला।

मां के पेट की संकीर्णता से मुक्ति पाकर वह एक दिन बिछौने का बंदी हो गया था। अब बिछौने के सीमांतों को पार करके वह कमरे की चौहद्दी का बंदी है। यह अद्भुत खेल है, जो वह खेल रहा है। अपनी सीमाओं के बंदीगृह से वह मुक्त हो रहा है। मगर मुक्ति पाते ही देखता है कि वह पहले से बड़ी एक कारा में बंद है। इसी तरह वह यहां तक आया है। यहां तक आकर वह चौखट पर जाकर अटक गया है। वह खिन्न हो उठा। लोग बाहर चल-फिर रहे हैं। मां कहीं जाकर छिप गई है, किसी भी तरह वह किसी का पता नहीं पा रहा है। वे सभी चौखट के उस पार हैं। लगता है, इस जीवन में वह उनका पीछा न पकड़ सकेगा। वह उस छिपने की जगह पर जाकर मां का पता नहीं लगा सकेगा। अगर वह इस चौखट को पार कर पाता ! कम से कम एक बार, एक बार भी यदि वह ऐसा कर पाता !

नहीं, यह असंभव है। यह बाधा वह पार नहीं कर पाएगा। कभी भी नहीं। उसे हताशा

हुई। वह थक गया। उसे कुछ भी अच्छा नहीं लग रहा है। वह ठिन-ठिन करके रोने लगा। कुछ देर ऐसे ही रोता रहा।

अचानक उसके हाथ-पांव कसमसाने लगे। उसका खून नाचने लगा। आदमी के मन में पुश्त-दर-पुश्त से जो अतृप्ति जन्मी है, जो आकांक्षा उसे पागल किए हुए है वही अतृिप्त, वही आकांक्षा, वही चेतावनी उसे प्रबल वेग से धक्का मारने लगी। वह अस्थिर हो उठा, जैसे पागल हो गया हो। चौखट को दोनों हाथों से पकड़े पांवों पर भार दिए हुए वह दो पल तक टिका रहा। बाप रे ! बहुत ऊंची है। संभाल पाना मुश्किल है। वह धप से बैठ गया। एक पल बाद फिर उठा। फिर बैठ गया। क्या यह मेरे वश का है? नहीं, उससे नहीं होगा। उसने हार मान ली।

कौन मानता है हार? एक बार फिर उसके भीतर एक बर्बर पिपाशा जाग उठी। उसने उसे हार नहीं मानने दिया। मैं जाऊंगा, जरूर जाऊंगा, जाऊंगा ही। जैसे उसने प्रतिज्ञा की। उसकी उस प्रतिज्ञा के सामने बाकी सब कुछ तुच्छ हो गया। बार-बार वह उठने की कोशिश करने लगा। धप-धप करके बार-बार गिरा भी। इसी तरह उठते-गिरते एक समय वह एक हाथ से चौखट पकड़कर खड़ा हो गया। हां, अब वह कुछ कर पा रहा है। जो धरती बहुत तेजी से घूम रही है, जो धरती किसी पर दया नहीं करती, उस पर खड़ा होने का कौशल उसने सीख लिया है। अब उसका साहस बढ़ गया। अब वह अपने को संभाल सकता है। कई बार वह खड़ा हुआ। वाह ! क्या मजे हैं ! प्रचंड उल्लास से वह नाचने लगा। वाह! क्या मजे हैं ! क्या मजे हैं ! नाचता ही गया। उसकी देह में जैसे उत्साह फट पड़ रहा है। अब वह कुछ पकड़कर खड़ा हो सकता है। इसीलिए बार-बार खड़ा हो रहा है।

उसका मित्र बरामदे में आकर बैठ गया है। वह ज्यों ही झुककर उसे देखने चला, त्यों ही उलटकर बरामदे में जा गिरा। क्या हुआ ! वह ठीक-ठीक समझ नहीं पाया। अचानक उसे लगा, वह सनसनाता हुआ किसी अतल गहराई में गिरता जा रहा है। डर से उसके प्राण उड़ गए। इसीलिए झट से जमीन पर बैठने के बाद कई पल तक वह रोया नहीं, जैसे अपने को संभाल रहा हो। मगर दूसरे ही पल रोकर उसने पूरे घर को सिर पर उठा लिया। डर से उसके प्राण उड़ गए।

गिरिबाला रसोईघर में पसीना-पसीना हो रही थी। पीतल की बड़ी देगची में भात चढ़ाया था। घरामी छप्पर छा रहे हैं। प्रायः दस लोग होंगे। सभी के लिए इसी बड़ी देगची में भात चढ़ा है। चावल उबल गया है। देगची का भारी ढक्कन ढक-ढक करके जैसे अपना सिर पीट रहा है। एक आदमी पोखरी से कमल के पत्ते तोड़ने गया है।

बड़े भसुर दो डोलची भरके पूंटी मछलियां लाए हैं। गिरिबाला अभी तक रसोईघर में एक किनारे बैठकर मछलियां काट रही थी। भला यह भी किसी एक आदमी के वश का

काम है! मगर गिरिबाला यह भी जानती है कि इन सब कामों में कोई हाथ नहीं लगाएगा। ईजा उसी कमरे की दूसरी ओर पांव फैलाए बैठी हैं। पास बैठी दो लड़कियों के साथ गप्प-गोष्ठी जमाए हुए हैं और काम कर रही हैं। काम भी तो बड़ा भारी है। जो लोग पोखरी साफ कर रहे थे, उन्होंने थोड़े-से कलमी साग उखाड़े थे। तीनों मिलकर वही मुट्ठी-भर साग साफ कर रही हैं। गिरिबाला ने एक बार उधर देखा, अभी आधा साग भी साफ नहीं हुआ था।

बड़ी ईजा ने अपनी बड़ी बेटी से कहा, "चम्पी रे, जरा एक बार भात देखकर आ तो?"

चम्पी थोड़ा कुनमुनाई।

मुंह गुमड़ाकर बोली, "क्यों? चम्पी क्यों देखने जाएगी? घर में और कोई नहीं है क्या?"

गिरिबाला के कान लाल हो गए। किसे लक्ष्य करके वह बाण छोड़ा गया है, इसे समझने में उसे जरा भी असुविधा न हुई।

बड़ी ईजा ने कहा, "आदमी क्यों नहीं हैं, मगर लगता है, मैं इस घर की बांदी हूं। और सभी के हाथों में तो जैसे मेंहदी लगी है।"

गिरिबाला समझ गई 'और सबसे' मतलब उसी से है। उसका मन मुरझा गया। जब से वह इस घर में आई है, वह बड़ा डर-डर के रहती है। पता नहीं क्यों, गिरिबाला को लगता है, यहां का कोई आदमी उसे अच्छी नजर से नहीं देखता। विशेषकर औरतें। मुंह से कोई कुछ नहीं कहता, मगर उनका गुमसुम और और कटा-कटा भाव देखकर गिरिबाला को लगता है कि इन्होंने खुशी मन से उसे इस घर में स्वीकार नहीं किया है।

गिरिबाला पूरी जान लगाकर मेहनत करती है। जो कुछ भी कह जाता है, वह तुरंत कर देती है। किसी के बीच में नहीं पड़ती। सबका ध्यान रखते हुए चलने की कोशिश करती है और हर एक की सुविधा-असुविधा का ख्याल रखती है। मगर उसकी परवाह किसी को नहीं। यही उसके लिए बेहद ताज्जुब की बात है। उसे दुख भी होता है।

सवेरे उठते ही उसकी खटनी शुरू हो जाती है। एक तो मकान काफी बड़ा है ऊपर से कमरे अलग-अलग, बीच-बीच में जगह छोड़कर बने हुए हैं। एक कमरा यहां तो दूसरा दूसरे छोर पर। दौड़ भाग करते-करते ही उसकी जान निकल जाती है। ऊपर से इस घर के लोग बड़े लापरवाह हैं। पता नहीं कैसे लोग हैं ! लापरवाही और बेध्यानी से कितनी ही चीजें नष्ट हो रही हैं। उधर किसी की नजर नहीं है। कोई भी काम सहेजकर नहीं करता जबकि घर में दो बड़ी-बड़ी लड़कियां हैं—चम्पी और जुथी। दोनों की ही ब्याह लायक उम्र हो गई। चम्पी के ब्याह की कोशिश भी चल रही है, मगर यह लड़कियां हैं कि अपनी अड्डेबाजी और बददिमागी में मस्त रहती हैं।

साग के बड़े-बड़े डंठल तोड़ती हुई चम्पी बैठ रही। जूथी भी चुप्पी साधे रही। भात

की देगची का ढक्कन अब जोर-जोर से उछलने लगा था। बड़ी ईजा ने कहा, "तो जल जाने दो भात। अपने पेट की जाई भी जब कहना नहीं सुनती तो फिर दूसरे को क्या कहूं?"

चम्पी तुनककर बोल उठी, "क्या हमेशा घर की लड़कियां ही हांड़ी ठेलेंगी? जितने दिन कोई और नहीं था, उतने दिन खटने में कोई कसर तो नहीं बाकी रखी। एक काम हाथ में लेकर सारे दिन का कबाड़ा करने का कायदा हमने नहीं सीखा है।"

चम्पी की बातें सुनकर गिरिबाला की आंखों में आंसू आ गए। देखो तो, इतना काम करने के बाद भी कैसी बातें सुनने को मिलती हैं। गिरिबाला ने मछली काटने का काम छोड़कर हाथों को अच्छी तरह धोया और देगची का ढक्कन एक किनारे सरका दिया। ढक्कन किनारे होते ही भीतर से बेहद गरम भाप और चावल का मांड़ उबल पड़ा। करछुल से दो-चार दाने उठाकर गिरिबाला ने उंगली से दबाकर देखा, भात पक गया था। देगची के भीतर के भात को करछुल से बराबर करके उसने ठक-ठक करके दो-चार बार देगची पर ठोका। देगची को चूल्हे पर से उतारना होगा। दाल के भगोने के पास कपड़े के टुकड़े पड़े थे। गिरिबाला ने दोनों टुकड़े हाथ में लेकर देगची को दो तरफ से पकड़ा और उतारने चली।

बाप रे! कितनी भारी है देगची! पहले गिरिबाला समझ नहीं पाई थी कि देगची इतनी भारी है। पहली कोशिश में वह उसे हिला भी न सकी। थोड़ा परेशान हुई।

फिर उसने कहा, "ओ बड़ी दीदी, देगची बहुत भारी है।"

उसने सोचा था, यह सुनकर कोई हाथ लगाने आएगी। मगर जिस तरह मन लगाकर वे लोग साग साफ कर रही थीं, उससे लगता था, वह काम उनके जीवन-मरण से जुड़ा हुआ है।

एक पल बाद बड़ी ईजा ने जम्हाई लेते हुए कहा, "हां, सावधानी से उतारना।"

गिरिबाला यह सुनकर समझ गई कि कोई भी इस काम में उसका हाथ नहीं बटाएगा। अब गिरिबाला चिंता में पड़ गई। अगर वह इस भारी देगची को उतार न सकी, तो उसकी बड़ी बेइज्जती होगी। वे सब उसका मजाक उड़ाएंगी। हमेशा इसे लेकर खोंचा मारेंगी। धीरे-धीरे यह बात चारों ओर फैल जाएगी। नहीं, गिरिबाला किसी को बुराई करने का मौका नहीं देगी। उस पर जिद सवार हो गई। दांत पीसकर पूरी ताकत से उसने देगची उठा ली, मगर उठाते ही उसकी समझ में आ गया कि वह कितनी बड़ी भूल कर बैठी है।

देगची के भार से उसका शरीर आगे की ओर झुक गया। लगा, देगची समेत वह मुंह के बल चूल्हे में गिर जाएगी। गरम देगची की भाप उसकी देह को झुलसा रही थी। जीभ लपलपाता हुआ चूल्हा गिरिबाला को ग्रसित करने के लिए मुंह बाए खड़ा था और अपने अदृश्य हाथों से पूरी ताकत लगाकर उसे अपनी ओर खींच रहा था। गिरिबाला पूरी जान लगाकर गिरने से अपने को रोकने लगी। भारी बोझ के कारण उसके पेट, पीठ और कमर तीखे दर्द से भर उठे। जल मरने का आतंक उस पर छा गया। उसके माथे से पसीना चूकर

आंखों में घुसने लगा। देह थर-थर कांपने लगी। हाथ की पेशियां सब जैसे पट-पट करके तड़क उठीं। सिर चक्कर खाने लगा। आंखों के सामने अंधेरा छा गया और फिर गाढ़े अंधेरे में छोटे-छोटे अनगिनत प्रकाश-बिंदु इधर-उधर उड़ने लगे। अब गिरिबाला अपने को और संभाल नहीं पा रही है। देगची समेत वह गिरती जा रही है। अब जान नहीं बचेगी। देगची समेत वह चूल्हे में गिरकर मर जाएगी। मुन्ना का क्या होगा? भूषण कहां है?

धप से गिरिबाला ने देगची नीचे रख दी, चूल्हे पर नहीं, बल्कि सीधे अपने पांवों पर। थोड़ा-सा चावल का फेन पांवों पर लुढ़क गया। ओह ! करके चीख उठी गिरिबाला। एक पांव का अंगूठा भी पिस गया था। गरम मांड़ पड़ने से पांवों में जलन शुरू हो गई। छाले निकल आए थे। सिर चक्कर खाने लगा था। उसने मुंह पर आंचल रखकर अपनी चीख रोकी। आंखें बंद कर अपने को संभालने की कोशिश करने लगी।

बड़ी ईजा निर्विकार भाव से बोली, "अरे क्या किया? पांव पर ही पटक लिया। कहा था न, सावधानी से उतारना ! छाले पड़ गए क्या? मेरे वश का नहीं है यह सब। जाओ तो, थोड़ा आलू पीसकर लगा दो।"

उसी समय गिरिबाला का बेटा जोर से चीख उठा, जैसे मां को उस कठिन परिस्थिति से बचाने के लिए ही उसने इशारे से बुलाया हो।

गिरिबाला जल्दी से रसोईघर से निकली और जाकर देखा, मुन्ना कमरे की चौखट के बाहर लुढ़का पड़ा है। बरामदे के किनारे पर आ गया है। जरा-सा और लुढ़कते ही आंगन में जा गिरता। सत्यानाश ! अब तो यह चौखट भी लांघने लगा! अब इसे कौन बचाएगा? कौन हमेशा इस पर नजर रखेगा? अब उससे खड़ा भी नहीं हुआ जा रहा था। बच्चे को गोद में लेकर वह बिस्तर पर लेट गई। छालों के दर्द से कातर होकर वह रोने लगी।

भात की देगची को बिना उलटाए गिरिबाला चली गई, यह देखकर बड़ी ईजा थोड़ी असंतुष्ट ही हुई। उन्होंने चम्पी को डांटा।

"अभी तक तो भात गलकर पिंडी हो गया होगा। ओ चम्पी ! किसके श्राद्ध में यह भात खिलाऊंगी, जरा बताना तो?"

डांट खाकर चम्पी ने अपमानित अनुभव किया।

"और किसके श्राद्ध में परोसोगी?" वह मुंह ही मुंह भुनभुनाई, "जाकर अपना पिंडदान खुद ही करती हूं। अच्छा घर है, एक-एक काम करने में सात-सात आदमी लगते हैं !"

धम-धम पांव पटकती हुई वह देगची के पास गई। मांड़ निकालने के लिए उसे टेढ़ा करना था, मगर वह हिला भी न सकी। बोली, "बाप रे ! देख रही हूं, यह तो जगद्दल पाथर हो गया है। छोटी काकी ने इसे उतारा कैसे?"

चम्पी अवाक हो गई ! यह देगची छोटी काकी के पांवों पर गिर पड़ी है? फिर तो सत्यानाश हो गया ! पांव तो एकदम खत्म हो गए होंगे। चम्पी घबरा उठी। जल्दी से किसी तरह देगची खिसकाकर वह मांड़ गिराने की जगह पर ले गई। देगची को ढक्कन समेत जरा-सा टेढ़ा करके वह जल्दी से भागी।

बाएं पैर के अंगूठे और दाहिने पैर की एड़ी पर फफोले पड़े हुए थे। वहां भयानक दर्द हो रहा था। ऐसा दर्द जो शरीर में नश्तर चुभा रहा था। बिस्तर पर पड़ी-पड़ी गिरिबाला बच्चे को दूध पिला रही थी और दर्द की चुभन से बिना आवाज किए रो रही थी। उसे लग रहा था, जैसे उसे बुखार आ गया हो।

चम्पी ने कमरे में घुसते ही कहा, "दिखाना तो, छोटी काकी, जरा पांव दिखाना।"

गिरिबाला झट से उठ बैठी। अब यह कौन-सा खेल शुरू किया इन्होंने ! मन ही मन वह शंकित हो उठी। दूध पीने में रुकावट पड़ने से मुन्ना भी रो उठा।

"सोओ, सोओ, सोई रहो, जो कर रही थी करो। मुझे अपने पांव देखने दो।"

गिरिबाला के पांवों की हालत देखकर चम्पी सिहर उठी, "उफ !"

गिरिबाला मन ही मन चिढ़ गई। अब दिखावा किया जा रहा है! चम्पी तुरंत वहां से चली गई। उसे बड़ा अपराध-बोध हो रहा था। वही तो उसके लिए जिम्मेवार है। उसे समझना चाहिए था कि इतनी बड़ी, इतनी भारी देगची चूल्हे से उतारना एक आदमी के वश का नहीं है। उस समय वह क्यों नहीं गई हाथ बढाने? अगर आज कुछ भयंकर कांड हो जाता तो ! आज इस घर के आदमियों की बहुत बड़ी विपत टल गई। और मां भी धन्य हैं। भंडारघर में जाकर नारियल के तेल में चूना फेंटते हुए चम्पी अपनी मां पर गुस्से से ऐंठने लगी। इतनी बड़ी देगची उतारने की जरूरत ही क्या थी? क्या हो जाता अगर, आज बिना पसाए भात बन जाता।

तेल-चूना मिलाकर उसे हाथ में लिए चम्पी गिरिबाला के कमरे में गई।

बोली, "जो भी कहो, छोटी काकी, तुम भी कोई सीधी नहीं हो। एक बार और पुकारने में तुम्हारा क्या जाता था। अगर तुम चूल्हे पर जा गिरती तो पुलिस हमारे हाथों में अब तक हथकड़ी डाल चुकी होती। दिखाओ, पांव इधर करो, दवा लगा दूं।"

गिरिबाला घबराकर 'नहीं-नहीं' कर उठी।

चम्पी ने डांट लगाई, "बस, रहने भी दो।"

फिर उसने जबरदस्ती गिरिबाला के फफोलों पर दवा लगा दी। बाद में कहीं और न दर्द हो, इस डर से गिरिबाला सिटपिटाई पड़ी रही। वह अवाक होकर कुछ पल चम्पी को देखती रही। कहां, उसके मुंह पर किसी दुष्टता की छाप तो नहीं है! वरन उसके चेहरे से कोमलता फूटी पड़ रही है। तो फिर, इसके बारे में उसकी धारणा इतनी खराब क्यों हो गई थी?

चम्पी ने कहा, "देखती क्या हो? क्या तुमने समझ रखा था कि मैं पत्थर हूं?"

शरमाकर गिरिबाला ने झूठ बोला, "छी-छी ! ऐसा क्यों सोचूंगी तुम्हारे बारे में? मैंने ऐसा कभी नहीं सोचा।"

उस दिन चम्पी ने गिरिबाला को कुछ भी नहीं करने दिया। जबरदस्ती बिस्तर पर सुलाए रही। गिरिबाला ने मन ही मन चम्पी को हजार बार धन्यवाद दिया। उसके पांव में दर्द हो रहा था। दर्द से वह छटपटा रही थी। ऊपर से अगर उसे काम भी करना पड़ता तो वह मर ही जाती। चम्पी का मन अच्छा है। यह बात वह इतने दिनों तक समझ न सकी थी।

अपनी ससुराल के किसी आदमी को गिरिबाला समझ नहीं पाती। पता नहीं क्यों यह उसे अपना घर ही नहीं लगता, पराया-पराया-सा लगता है। यहां भी वही आकाश है, वही मिट्टी है, जो उसके बाप के यहां है। वैसे ही यहां भी धूप पड़ती है, बारिश होती है। फिर भी बाप के घर का आकाश जो सांत्वना देता है, वहां की मिट्टी जैसा स्नेहिल स्पर्श देती है, वैसा आस्वाद यहां के हवा, पानी और मिट्टी में क्यों नहीं पाती गिरिबाला?

बाप के घर की धूप उसे कितना आराम देती है। यहां की धूप उसे जलाती-सी लगती है। यहां की बारिश उसे परेशान करती है, आंधी उसे डराती है। उसे लगता है जैसे उसने यहां अनधिकार प्रवेश किया है। यह जैसे उसकी शत्रुपुरी है। और आश्चर्य की बात तो यह भी है कि गिरिबाला को लगता है कि उसकी ससुराल के हर आदमी के चेहरे पर और मन में जैसे यही भाव लिखा हुआ है। उसकी सांस रूंध जाती है। मन में जाने कैसा-कैसा तो होने लगता है।

गिरिबाला अपने को काम में डुबाए रखती है। घर में आदमी की कमी नहीं है। उसकी सास, बड़ी ईजा, दो जेठ और जेठानियां, भूषण, वह खुद और मुन्ना। ऊपर से बाहर का काम करने वाले दो नौकर। हां, एक आदमी और है, बख्शी जी। वे इस घर के क्या लगते हैं, गिरिबाला को नहीं मालूम। चुपचाप पड़े रहते हैं। दोनों बेला दो मुट्ठी चावल खाते हैं और हुक्के की कश लगाते हैं। उनकी उम्र कितनी है, यह भी समझ में नहीं आता। दुबले पतले, सारे शरीर की हड्डियां झांकती हुई। इतने आदमियों का बोझ गिरिबाला को संभालना होता है। दिन-रात कैसे निकल जाते हैं, वह समझ भी नहीं पाती।

बड़ी मां ने उससे कहा था, मुन्ना को खूब जतन से रखना। मगर कब करे जतन?

शुरू-शुरू में कुछ दिनों तक उसने बच्चे की खूब सेवा की थी। मगर इसके लिए भी उसे इस घर की औरतों का ताना सुनना पड़ा था। हालांकि बात दबे गले से कही गई थी, मगर उसके कानों में पड़े बिना न रही, "तीनों लोक में जैसे एक गिरिबाला को ही बेटा हुआ है। और सब के बच्चे तो जैसे बड़े होंगे ही नहीं।"

गिरिबाला शायद नहीं जानती, नहीं समझती, कैसे क्या किया जाना चाहिए। इसीलिए घबराती है, सारे काम संभाल नहीं पाती। मगर उसकी सास तो जानती हैं, बड़ी ईजा तो जानती हैं? वे लोग क्यों कुछ नहीं कहतीं? वे लोग क्यों यह भार अपने ऊपर नहीं ले लेतीं? इसके पहले गिरिबाला को बाल-बच्चे नहीं हुए थे। मगर इनके तो हुए थे।

मगर यह उसके बाप का घर नहीं हैं। यहां उसकी बड़ी मां, बुआ जी, और काकी नहीं रहतीं। यहां उसके प्रति कोई सहानुभूति, कोई संवेदना, कोई सहयोग नहीं हैं। है केवल क्रूर आलोचना और पग-पग पर गलतियां पकड़ने का एक कुत्सित उत्साह। गिरिबाला को लगता है, उसकी ससुराल एक फल-फूलहीन विस्तृत खेत है, जिसमें चारों ओर कांटे बिछे हुए हैं।

इसीलिए गिरिबाला घोंघे की तरह अपनी खोल में घुसी रहती है। यहां तक कि वह बेझिझक होकर मुन्ने की भी देखरेख नहीं कर पाती। उसे वक्त से दूध भी नहीं पिला पाती। उसका बच्चा भूख से चीखता रहता है। चीख-चीखकर पूरे घर को सिर पर उठा लेता है। वह अबोध बालक समझ नहीं पाता कि उसकी मां गृहस्थी के कामों में उलझी हुई है ! रसोईघर में या किसी और जगह। ऐसे में गिरिबाला हाथ के काम में मन नहीं लगा पाती। मन ही मन बच्चे को सांत्वना देती है—चुप कर, चुप कर, मेरे बेटे, बस अब फुरसत पाने ही वाली हूं। आ रही हूं। उसे देर हो जाती है। गिरिबाला चिढ़ जाती है और मन ही मन अपने क्रोध से लोगों को भस्म करती रहती है। बड़ी ईजा, जेठानी, सास और भूषण—कोई भी उससे बच नहीं पाता। वह खुद को भी शाप देती है। यहां तक कि कभी कभी मुन्ना को भी कोसने से बाज नहीं आती।

उसकी एकमात्र दोस्त है रात। रात गहराने पर वह जैसे बच जाती है। तब वह अपने मुन्ने पर अपना पूरा स्नेह ढाल देती है। इश्श ! मुन्ने की पूरी देह में कितनी घमोरियां निकल आई हैं ! यह क्या है, इसकी छाती में यह फोड़ा कब निकला? बालों की कैसी लट पड़ गई है ! सारी देह धूल-मिट्टी से गिज-गिज कर रही है। गिरिबाला आंचल से बड़ी सावधानी से मुन्ने की देह पोंछ डालती है। बालों में कंघी कर पाती तो कितना अच्छा होता! मगर इस कमरे में कंघी ही नहीं है। इतनी रात गए कंघी लेने जाने में उसे बहुत आलस्य लगता है। उसकी अपनी आंखें नींद से बोझिल हो रही हैं। छोड़ो, कल कंघी कर दूंगी। सोते हुए बच्चे के मुंह के अनगिनत चुंबन लेकर वह उसे बिस्तर पर लिटा देती है। उसकी ओर देखती हुई सोचती है—दिन पर दिन कैसा दुबला होता जा रहा है। इससे ज्यादा वह कुछ सोच नहीं पाती। उसे नींद आ जाती है। नींद में वह बड़ी मां, बुआ जी और छोटी काकी की डांट-डपट सुनती है। इससे उसे गुस्सा नहीं आता, वरन उसे खुशी ही होती है। वह एकदम अकेली नहीं है, उसे लगता है, उसका ध्यान रखने वाले लोग हैं। हैं, हैं, इस धरती पर ऐसे लोग हैं जो उसका और उसके बच्चे का ख्याल रखते हैं। ऐसी जगह है, जहां उसे

सांत्वना और आश्रय मिल सकते हैं। गिरिबाला अत्यंत आनंदित होकर मुन्ना को अपनी गोद में समेट लेती है।

लगता है, उसे नींद आ गई थी। माथे पर ठंडा स्पर्श पाकर वह चौंक उठी। बड़ी मां! उसने आंखें खोलकर देखा तो अवाक हो गई। बड़ी ईजा खड़ी थीं और उनके पीछे सास। हड़बड़ाकर उठ बैठी गिरिबाला।

बड़ी ईजा ने कहा, "अरे! तुझे तो बुखार हो गया है। पड़ी रह, पड़ी रह।"

यह तो बड़ी ईजा हैं, बड़ी मां नहीं हैं। जैसे उसके मन को ठंडक पहुंची और आंखों में आंसू उमड़ आए।

"सोई रहो, सोई रहो, पहलवान की बच्ची !" सास ने कहा।

यह कौन, मेरी सास !

"डरने की कोई बात नहीं, बेटी। देह हल्की-सी गरम है। चोट का बुखार है। चम्पी ने बताया तो मैं तो डर के मारे कांपने लगी। क्या कर बैठी तुम? गनीमत है कि ज्यादा कुछ नहीं हुआ। जरा भी इधर-उधर कुछ हो जाता तो सत्यानाश हो जाता। अभी जचगी को कितने दिन हुए। भला ऐसा गंवारपन कोई करता है? छि, छि!"

इन लोगों ने गिरिबाला को कभी डांटा-डपटा न था। आज डांट रहे हैं तो गिरिबाला को इसके लिए कोई दुख नहीं हो रहा है, वरन उसे अच्छा ही लग रहा है। तो क्या इस घर में भी स्नेह है, प्यार है? उसके लिए चिंता से अधीर हो उठने वाले हृदय भी हैं? यह एक आश्चर्यजनक आविष्कार था गिरिबाला के लिए ! आज सुबह वह किसका मुंह देखकर उठी थी !

तभी चम्पी कटोरे में दूध लेकर आई।

"लो काकी, दूध पी लो।"

मगर गिरिबाला को न भूख महसूस हो रही थी, न कोई जलन, न कोई दर्द। उसे जैसे आज अमृत मिल गया था। यह अमृत पीकर वह सारा जीवन बिना खाए-पीए काट सकती थी।

दूध का कटोरा देखकर गिरिबाला का बच्चा उठ बैठा। नन्हे-नन्हे हाथ बढ़ाकर, झूमते हुए बोला, "दाद्दा !"

चम्पी ने हंसकर कहा, "क्यों रे बेशरम! तू क्यों मांगता है। यह तेरा दूध नहीं है। तेरी मां के लिए है।"

चम्पी की बात सुनकर अपना पोपला मुंह खोलकर वह हंस पड़ा।

"दाद्दा, दाद्दा !"

अपने दोनों हाथ ऊपर उठाकर बच्चा कटोरे को पकड़ने की कोशिश करने लगा।

बड़ी ईजा, सास और चम्पी हंसने लगीं। गिरिबाला भी हंस पड़ी।

सास ने कहा, "समझ गई दादू, समझ गई। मेरे बच्चे को भूख लगी है न? चल, पहले नहा ले, फिर पीना।"

बच्चे को नहलाकर, उसके बालों में कंघी करके, काजल-वाजल लगाकर चम्पी मुन्ने को गिरिबाला की गोद में दे गई तो गिरिबाला उसे पहचान ही न पाई।

चम्पी ने शिकायत की, "छोटी काकी, तुम इसे कितना गंदा रखती हो? देखो तो, अब कैसा राजकुमार-जैसा लग रहा है! जो भी कहो, तुम हो बड़ी ढीली-ढाली।"

हां, शायद ढीली-ढाली तो वह है, यह बात गिरिबाला अस्वीकार नहीं करती। एकदम नई है न इस घर में। बाप के घर क्या कभी उसे इतना काम करना पड़ता था?

"लो, आज बड़ा-भात खाने की तुम्हारी किस्मत है। पीढ़े पर बैठकर आराम से खाओ।"

चम्पी हंस पड़ी। गिरिबाला भी हंसी। चम्पी मजाक कर रही है। करने दो। यह मजाक ही है। इसमें कोई कड़वाहट, कोई हूक नहीं है। ऐसी बातें शरीर में बिंधती नहीं हैं, गुदगुदाती हैं।

चम्पी अच्छी लड़की है। बहुत अच्छी लड़की।

भूषण के बड़े भाई 'विलास' घर लौटे तो उनका मिजाज गरम था। दोपहर तक असामियों के घर भाग-दौड़ करते रहे, मगर एक पैसे की भी आमदनी नहीं हुई। धूप में उन्हें बहुत तकलीफ हुई थी। ऊपर से भूख भी लग रही थी। अब थोड़ा विश्राम करेंगे, फिर नहाकर पूजा करने बैठेंगे। एक घंटे से पहले उनकी पूजा खत्म नहीं होगी। फिर कहीं खाने बैठेंगे। आज तीन बजे से पहले वह खा नहीं पाएंगे। घर में पांव रखते ही उन्होंने दुर्घटना की बात सुनी। सुनते ही उन्होंने माथा पीट लिया और जोर-जोर से चिल्लाने लगे।

"मैंने कहा, कहां हो जी? बहूरानी जिंदा तो है?"

सुनो इनकी बातें! दामिनी की देह जल उठी। दामिनी तो खुद अपनी ही आग में जल रही है। गृहस्थी का कितना काम सिर पर आ पड़ा है। सांस लेने तक की फुरसत नहीं है। और यह मर्दुआ अढ़ाई पहर बीतने पर घर में पांव रख रहा है, चिंता दिखा रहा है मुझे। कुढ़कर दामिनी ने कोई जवाब नहीं दिया।

विलास बाबू जल-भुनकर बोले, "अरे कोई बोलता क्यों नहीं? चिता पर चढ़ गई हो क्या?"

"नहीं, अभी तक तो चिता पर कोई नहीं चढ़ा है। सब मुर्दे यों ही सूख रहे थे। अब डोम आए हैं, मुर्दों को चिता पर चढ़ाएंगे।"

दामिनी की बात सुनकर विलास आंगन में गज-गज-भर उछलने लगे।

"यह डोम न होता तो देखते तेरा पेट कौन भरता? बूढ़ी औरत बैठी-बैठी पसेरी भर खाएगी और जरा-सी लड़की से आधे मन की हांड़ी उतरवाएगी ! क्यों? तेरी सांड़िनी जैसी

देह को क्या हुआ था? पानी में फेंक दो तो सात-सात घड़ियाल भी तेरी लाश को खाकर खत्म नहीं कर पाएंगे। उसे जरा-सा हिलाने में तेरा क्या जाता है?"

दामिनी अब रसोईघर के दरवाजे पर आकर बोली, "खबरदार ! गंवार की तरह चीखना मत, कहे देती हूं।"

विलास के हाथ में पानी का लोटा था। उसे लेकर वे दामिनी की ओर दौड़े।

"क्या बोली तू? आज मैं तेरा मुंह तोड़ के रख दूंगा।"

जूथी जल्दी से दौड़कर गई और पिता को पकड़ लिया। रसोई का काम छोड़कर रोती हुई दामिनी अपने कमरे में चली गई और अंदर से सिटकनी लगा ली। भूषण की मां बड़ी डरपोक है। बड़े बेटे की चिल्लाहट सुनकर एक कोने में बैठ भगवान को गुहराने लगी। चम्पी और जूथी को भी जो मुंह में आया विलास ने कह डाला।

"ये सब हथिनियां सिर्फ बैठी-बैठी भात निगलने को हैं। इन्हें पार लगाते-लगाते मैं कहीं का नहीं रहा। मगर ये खत्म होने को ही नहीं आ रहीं। पता नहीं, भगवान मुझे कब शांति देंगे !"

पिता की बातों से चम्पी की छाती में जैसे शूल चुभा हो। उसकी क्या गलती है? क्या उसी ने छोटी काकी के पांवों पर देगची पटक दी है या गरम मांड़ उनके पांवों पर ढाल दिया है? देगची इतनी भारी है यह बात वह कैसे जानेगी? छोटी काकी कह भी तो सकती थीं? एक बार हांक लगाते ही वह जाकर देगची में हाथ लगा देती। ऐसा तो नहीं है कि वह घर का कोई कामकाज ही नहीं करती।

यह सब छोटी काकी की शैतानी है। उनका हंसी-खुशी से भरा रूप देखकर लगता है बड़ी सीधी हैं, मगर वे हैं नहीं वैसी। जानबूझकर उन्होंने यह टंटा खड़ा किया है, सभी को गाली खिलवाने के लिए। अब तो चम्पी को शक हो रहा है, असल में उन्हें कुछ खास चोट नहीं लगी है, यों ही ढोंग किए बिछौने पर पड़ी हैं।

गुस्से से कसमसाती हुई चम्पी गिरिबाला के कमरे में गई।

जितना हो सका उतने जहर भरे स्वर में बोली, "तुमसे अकेले वह हांड़ी उतारने को किसने कहा था? बड़ी आई हैं काम करने वाली! तुमने जानबूझकर यह कांड किया है कि सभी गाली खाएं। अब बैठी हो न आराम से बिस्तर में? कितनी दासी-बांदी भेजी हैं तुम्हारे मां-बाप ने डोले के संग? अब उन्हीं से घर के काम करा लो। हमसे कुछ न होगा।" अपमान और लज्जा से वह छटपटा रही थी। चम्पी की जीभ बहुत तीखी है। झूठ-मूठ उसका अपमान कर गई। बड़े जेठ की चीख-पुकार सुनकर मन ही मन गिरिबाला लाज से मरी जा रही थी। अब चम्पी की बातें सुनकर उसे मौत से भी ज्यादा दुख पहुंचा।

इस घर में अब गिरिबाला नहीं रह सकती। भूषण को आने दो। वह सब बातें कहेगी। भूषण से इसका बदला चुकाने को कहेगी। अगर भूषण न करे, उसे पूरा विश्वास है कि

भूषण कुछ नहीं करेगा, तब वह भूषण से कहेगी, उसे मायके भेज दे। अगर वह नहीं भेजेगा तो वह खुद ही चिट्ठी लिखकर पिताजी को बुला लेगी। वह कल ही चिट्ठी लिख देगी पिताजी को।

दो

दिन काफी चढ़ आया है। चैत महीने की धूप धू-धू करके जल रही है। भूषण अपना दवाखाना बंद करना चाहता है, मगर कर नहीं पा रहा है। चरसुलेमानपुर का मनीरुद्दीन शेख उसे पैसे देने आने वाला है। भूषण को उससे लगभग तीस रुपए पाने हैं। पता नहीं कितना देगा?

भूषण अपनी वही खोलकर देखने लगा। वह अपना दवाखाना कोटचांदपुर से हटाकर झिनैदा ले गया है। बाल-बच्चों को घर पर रखकर उसका कोटचांदपुर में रहना अच्छा नहीं लगेगा। उन्हें कोटचांदपुर ले जा पाता तो भी एक बात थी। निश्चय ही ठेकेदार जोसेफ मंडल और रामगति कुंडू ने उसे ऐसी ही सलाह दी थी। उन्होंने वादा किया था कि वे एक अच्छा-सा घर भी उसके लिए ढूंढ़ देंगे। जोसेफ ने अपने ठेकेदारी के काम में भी भूषण को भागीदार बनाना चाहा था। भूषण को उसकी बातें पसंद आई थीं।

और इसमें उसे कोई अतिरिक्त परिश्रम भी नहीं करना होगा। रोगियों को देखने से जो समय बचता है उसमें वह ठेकेदारी के काम को भी बड़ी आसानी से संभाल सकता है। अभी भी कोटचांदपुर में उसकी प्रैक्टिस जमी न थी और जब जमने का समय आया, तब भूषण ने अपने को एक ऐसे काम में फंसा लिया, जिसमें प्रैक्टिस तो दूर, उसे नहाने-खाने का समय भी न मिलता था। इतने परिश्रम के बाद भूषण समझ गया कि कोटचांदपुर में मच्छर चाहे जितने भी हों, उनके बारे में खोज करने की सुविधा उतनी ही कम है। न कोई साज-सामान है, और न ही किताबें। ऊपर से वहां के लोगों का मनोभाव भी कोई खास अनुकूल नहीं है। कुछ आवारा लोग उसके पीछे लग गए हैं। एक दिन डिस्पेंसरी जाकर देखा कि पता नहीं कौन लोग खड़िया से बड़े-बड़े अक्षरों में डिस्पेंसरी के दरवाजे पर लिख गए हैं—एम.डी. (अर्थात मच्छरों का डाक्टर)।

मन ही मन दुखी होकर भी भूषण ने इस पर कोई खास ध्यान नहीं दिया। जो लोग बड़े काम करते हैं उन्हें व्यंग्य-विद्रूप सहना ही पड़ता है। इसलिए इस बात से वह ज्यादा दुखी नहीं हुआ। उसके दुख का कारण कुछ और था। उसकी आमदनी बहुत कम हो गई थी। वहां पर टिके रहना भी मुश्किल हो रहा था और फिर उन्हीं दिनों वह अपने बेटे और

पत्नी को अपने घर ले आया था। तब सभी लोगों ने सलाह दी थी कि वह कोटचांदपुर छोड़कर झिनैदा आ जाए। उसे भी नन्हे-से बच्चे और नवयौवना पत्नी को कोटचांदपुर ले जाना ठीक नहीं लगा। बड़े भैया की भी इसमें सम्मति न थी। भूषण अपने भाइयों का बहुत सम्मान करता है। इसीलिए न चाहते हुए भी उसे ऐसा सुअवसर छोड़कर झिनैदा आना पड़ा।

हां, इसे सुअवसर ही कहेंगे? जंजीर लगी पैंट और बिना बांही का कोट पहने जोसेफ ने जब उसे समझाया कि ठेकेदारी ऐसी चीज है कि थोड़े ही दिनों में आदमी आसानी से सेठ बन जाता है, अपने बीस वर्षों के अनुभव और ज्ञान के आधार पर जब जोसेफ ने यह बात कही तो भूषण का चेहरा और उसकी आंखें चमकने लगीं। अगर भूषण ठेकेदारी में शामिल हो पाता तो अच्छा ही रहता। ठेकेदारी से सेठ हो जाता तो क्या पैसे लेकर रोगी देखता? कभी नहीं। एकदम मुफ्त में दवा देना शुरू कर देता।

अवश्य ही इन दिनों भी उसे मुफ्त में ही रोगी देखना पड़ता है। बही पर नजर डालकर उसने देखा कि ज्यादातर रोगियों से उसे पैसे पाने हैं। उधार की मात्रा भी कम नहीं है। कम से कम दो सौ रुपए तो होंगे ही।

झिनैदा में आकर तीन महीने बीतते न बीतते इतने पैसे उधार हो गए। भूषण जानता है, इन पैसों की वसूली नहीं हो पाएगी। वे लोग पैसे नहीं दे पाएंगे। नहीं, वे झूठे नहीं हैं, उनमें से कोई भी झूठा नहीं हैं। मगर भूषण तो उनकी हालत जानता है। कितनी भयंकर दुर्दशा है उनकी ! उनमें से ज्यादातर तो भुखमरी के शिकार हैं। पैसे देंगे कहां से? अगर किसी में उधार चुकाने की ताकत होती है तो वह तुरंत आता है और कुछ पैसे दे जाता है। भले ही पैसों का परिमाण बहुत कम हो। जिसके ऊपर दस रुपए का उधार है, हो सकता है वह एक अठन्नी लिए आया हो। वही अठन्नी जब डरते हुए वे भूषण की ओर बढ़ाकर, अपने जीर्ण-शीर्ण चेहरे पर करुणा लाकर उसकी तरफ देखते हैं तो भूषण पैसे लेने के लिए अपने हाथ आगे नहीं बढ़ा पाता। इनके जैसा आदमी होना मुश्किल है। फसल होने पर वे अनाज देते हैं। कुछ न दे सकें तो मजूरी करके पैसे चुकता करने की कोशिश करते हैं।

भूषण उन्हें पहचानता है, समझता भी है। वे भी डाक्टर को बहुत प्यार करते हैं। इसीलिए उस इलाके के गरीब किसानों में भूषण का नाम फैलता ही जा रहा है और उसी अनुपात में भूषण की दवाओं की अलमारी खाली होती जा रही है।

भूषण ने जब नया-नया दवाखाना खोला था तब उसने बड़ी-बड़ी दो अलमारियां बनवाई थीं। उन अलमारियों में असंख्य दवाइयों की शीशियां सजाई हुई थीं। उनमें से हर शीशी में असली दवा थी। सभी दवाओं की मदर टिंचर। सिक्स एक्स से शुरू होकर थाउजेंड डाइल्यूशन तक सब तरह की दवाइयां थीं। महात्मा हैनीमैन के अपने देश जर्मनी से मंगाई

हुई। साथ ही, पाउडर आफ मिल्क और छोटी से लेकर बड़ी तक मीठी गोलियों में मिलाकर भूषण दवा देता था। जहां तक संभव होता वह पानी में मिलाकर दवा नहीं देता। देने से कोई नुकसान होता है ऐसा भी नहीं। बस, यह बात भूषण के आभिजात्य मन को पसंद न थी।

भूषण अब बहुत दुखी है। अब उसकी असली दवाएं सिर्फ दो बक्सों तक सीमित होकर रह गई हैं। अलमारियों में रखी शीशियों में अब सिर्फ पानी भरा हुआ है। पहले जब कोई भद्र रोगी आता तो भूषण सीना फुलाए अलमारी में से शीशी निकालकर दवा बनाकर दे देता था। अब ऐसा नहीं कर पाता। अब वह शीशी निकालकर पर्दे के पीछे के हिस्से में चला जाता है। वहां आड़ में खड़ा होकर उस शीशी को एक किनारे रख देता है। फिर अपने छोटे से बक्से में से असली शीशी निकालकर दवा बनाता है। यह ठगी उसे अच्छी नहीं लगती। मगर वह एक बड़ा डाक्टर है, उसकी दवाएं खत्म होने वाली हैं, यह बात लोगों को समझाने का और कोई रास्ता तो है नहीं। भूषण को सबसे ज्यादा दुख इस बात का है कि आजकल वह सीधे जर्मनी से दवाइयां नहीं मंगा पा रहा है। कुछ दिन पहले तक वह ऐसा कर पाता था। जर्मनी की एक बड़ी फर्म के रजिस्टर में उसका नाम दर्ज था। वहां से उसके नाम कितने ही कैटलाग, ब्लाटिंग पेपर, प्रिंटेड कार्ड और बीच-बीच में सुंदर कलेंडर आते थे। गर्व से भूषण की छाती फूल उठती थी। जर्मनी से आई चिट्ठियों के लिफाफे और पैकिटों के ऊपर लगे कागज टिकट समेत वह अपनी मेज पर इस तरह से रखता था कि आसानी से लोगों की नजर में आ जाए।

आज भूषण एक मामूली-सा गांव का डाक्टर है। कुछ लोग जीवन में और कुछ नहीं कर पाते तो घर में बैठकर महेश भट्टाचार्य की किताब पढ़कर एम.बी. (होमियो) हो जाते हैं। भूषण को लगता है, वह भी उन्हीं में से एक हो गया है। एक दिन वह जो मेडिकल कालेज में एलोपैथी पढ़ने घुसा था, तीन साल तक पढ़ा भी था और अपनी क्लास का श्रेष्ठ छात्र था, अगर उसने एलोपैथी पढ़ना छोड़ न दिया होता तो आज वह मैरिट के साथ एल. एम.एफ. की डिग्री लेकर निकलता। यह सब बातें यहां किसे मालूम है?

हां, कुछ लोग जानते भी हैं। उसके अध्यापक और उसके गुरु प्रताप मजूमदार जानते हैं। प्रताप मजूमदार जैसे एक बड़े एलोपैथ डाक्टर ने एलोपैथी चिकित्सा छोड़कर होमियोपैथिक की ओर मन लगाया था। उन दिनों चौंसठ रुपए फीस थी उनकी। यह कोई मामूली बात नहीं है ! उसी आदमी ने होमियोपैथिक कालेज खोला था। और भूषण ने भी एलोपैथिक की पढ़ाई छोड़कर उसके कालेज में नाम लिखा लिया था। प्रताप बाबू का खुशी से चमकता हुआ चेहरा आज भी भूषण की आंखों के सामने है। उसी कालेज से गोल्ड मेडल लेकर उसने परीक्षा पास की थी। डाक्टर मजूमदार ने उसके लिए विदेश जाने की छात्रवृत्ति का जुगाड़ भी कर दिया था। आज भी भूषण के हाथों लगाया एक पेड़ उस

कालेज के गेट पर खड़ा है।

भूषण के मझले भैया भूपति को भी उससे बहुत उम्मीदें थीं। भूषण ने वैसा आदमी बहुत कम ही देखा है। जिन दिनों भारत के लोग विलायत जाकर सिर्फ आई.सी.एस. और बैरिस्टर बनने में लगे हुए थे, उन दिनों उसके मझले भैया जापान गए इंजीनियरिंग पढ़ने। पैसा-कौड़ी भी हाथ में न था, फिर भी मझले भैया ने अपनी इच्छा पूरी की।

मगर विलायत जाने के बदले जापान क्यों गए? मझले भैया में दूरदृष्टि थी तो देशप्रेम भी था। वे कहते, "अंग्रेजों ने हमारे देश पर केवल इसलिए दखल कर रखा है कि वे इस देश में अपना माल बेचने का एकाधिकार बनाए रखना चाहते हैं। वे यहां से सस्ते में कच्चा माल खरीदते हैं और अपने देश के कारखानों में तरह-तरह के माल तैयार करते हैं। और वही सब माल बहुत बढ़े हुए दामों पर हमें बेचते हैं और आगे भी बेचेंगे। वे हमारी पूरी जाति को गुलाम बनाकर रखेंगे। वे हमसे करोड़ों रुपए लूटकर ले जा रहे हैं, भविष्य में भी इसी तरह लूटते रहेंगे। और किसी चीज की तो बात ही छोड़ो, इस देश में अंग्रेज एक सुई भी तैयार न होने देंगे। हम हमेशा उनके नीचे दबे रहेंगे। अगर हमें इस गुलामी से निकलना है तो हमें नए-नए उद्योग, नए-नए शिल्प का कौशल सीखना होगा। इस मामले में जापान हमारा गुरु है। जापान ने योरप से किस चतुराई से उसकी विद्या सीखी, और किस चतुराई से योरप को उसने हटाया, इसे सीखने की मझले भैया के मन में बड़ी इच्छा थी। उन्होंने सीखा भी। उन्होंने वापस आकर सेलूलायड का कारखाना लगाया। अब उनकी नजर इंजीनियरिंग पर है। अब वे फैक्टरी लगाना चाहते हैं।

उसी मझले भैया की बड़ी इच्छा थी कि भूषण अमेरिका जाए। वहां से डिग्री लेकर आए। उन्होंने पैसों की व्यवस्था भी कर दी थी। उसका पासपोर्ट भी बन गया था। जहाज का टिकट भी आ गया था और कपड़े लत्ते भी खरीद लिए गए थे। मगर भूषण ने सब कुछ डुबो दिया। अंतिम क्षण में भाग गया। एकदम गायब ही हो गया। सभी जानते हैं कि भूषण मां के कारण ही अमेरिका नहीं जा सका। असली बात कोई नहीं जानता। या तो भूषण जानता है या फिर एक और आदमी। मगर उसकी चर्चा अभी रहने दें।

अमेरिका न जाने से भूषण की कोई बहुत बड़ी क्षति हुई है, ऐसा वह नहीं मानता। यह सही है कि विदेशी डिग्री से उसका सम्मान बढ़ता। कलकत्ते में रहता तो वह फलता-फूलता भी। मगर कलकत्ता में तो वह डाक्टरी करना चाहता भी नहीं। वह गांव में ही प्रैक्टिस करना चाहता था। विदेश की डिग्री लेकर यहां बैठने का मतलब था जंगल में मोती छींटना। यह भी तो हो सकता था कि विदेश से लौटकर गांव में काम करने का भूषण का मन ही न करता। अगर सभी लोग कलकत्ता चले जाएंगे तो गांव में कौन रहेगा?

गांव के लोगों के पास पैसे नहीं हैं, भूषण यह जानता है। वह यह भी जानता है कि इन्हें चिकित्सा की कितनी जरूरत है। एलोपैथी चिकित्सा छोड़ने का एक मुख्य कारण यह

भी था। इनके पास पैसा कहां है कि ये कीमती एलोपैथिक दवाइयां खरीदेंगे? रोगी देखकर सिर्फ दवा लिख देने से तो रोग अच्छा नहीं होगा। शुरू से ही भूषण के मन में यहीं चिंता थी। वह एक ऐसी चिकित्सा-पद्धति के बारे में सोचता था जो अत्यंत गरीब लोग भी आराम से स्वीकार कर सकें। यह होमियोपैथी ही वह चिकित्सा-पद्धति है। महात्मा हैनीमेन इस युग के अश्विनी कुमार हैं।

एक जोर का हवा का झोंका आया। भूषण की मेज पर रखे हैंडबिल उड़कर इधर-उधर बिखर गए। भूषण जल्दी-जल्दी उन्हें सहेजने लगा। यह भूषण का ही विज्ञापन है। जिन्हें वह हर हाट-बाजार में फेंक देता था। ये हैंडबिल उसने अलीमुद्दीन को देने के लिए रखे थे। हैंडबिल में बड़े-बड़े अक्षरों में लिखा था—'आर्त-कल्याण चिकित्सालय'। भूषण ने ऊपर से नीचे तक विज्ञापन पर नजर दौड़ाई। डाक्टर भूषणचन्द्र वसु, एम.बी. (होम्यो)। इसके अक्षर भी काफी बड़े बड़े थे। अपना नाम छपा हुआ देखकर अच्छा लगता है। गोल्ड मेडल प्राप्त। बहुत से रोगी यह नहीं जानते कि गोल्ड मेडल क्या चीज है। इस बारे में जब वह उससे पूछते हैं तो उसे आत्मगौरव महसूस होता है। वह सीना फुलाकर कहता है—'मैं फर्स्ट आया था न, इसीलिए मुझे गोल्ड मेडल मिला था'। पूछने वाले फिर भी मुंह बाए उसे देखते हैं। फर्स्ट क्या है, वे यह भी नहीं जानते। कलकत्ता होमियोपैथिक कालेज के भूतपूर्व हाउस फिजीशियन। सुनने में अच्छा लगता है। भूषण की प्रेस्टिज को बढ़ा देता है। सात वर्ष का अनुभवी चिकित्सक। नहीं, अब सात कहां, अब तो उसे आठ वर्ष का अनुभव हो गया। भूषण तुरंत यह गलती सुधारने बैठ गया। प्रत्येक हैंडबिल में सात को काटकर स्याही से आठ बनाने लगा। ये खत्म हो जाए तो फिर वह नए हैंडबिल छपवाने को दे देगा।

मगर साइनबोर्ड का क्या होगा? अभी भी उस पर सात साल ही लिखा हुआ है। फिर से उसे लिखवाना होगा? दुबारा निरर्थक पैसे खर्च होंगे। तो फिर उपाय क्या है? उसका अनुभव तो हर साल बढ़ता जाएगा। मगर साइनबोर्ड पर उतनी आसानी से तारीख अपटुडेट नहीं हो पाएगी। तो फिर? यह साइनबोर्ड लोगों के मन में झूठी धारणा घुसाएगा या फिर हर साल उस पर पैसे खर्च करने होंगे। क्या और कोई रास्ता नहीं है? क्या और कोई व्यवस्था नहीं की जा सकती, जिससे सांप भी मरे और लाठी भी न टूटे? भूषण सोच में पड़ गया।

मनीरुद्दीन का क्या हुआ? अभी तक नहीं आया ! आएगा भी या नहीं? अब तो वह और नहीं रुक सकता। घर पहुंचते-पहुंचते बहुत देर हो जाएगी। गिरिबाला बिना खाए बैठी होगी।

अंत में भूषण ने पैसों की आशा छोड़ ही दी। दवाखाना बंद करके साइकिल पर बैठने से पहले साइनबोर्ड की ओर नजर गई। सात साल का अनुभवी चिकित्सक। यह बोर्ड जैसे हमेशा उस पर फब्ती कसता रहता है। इसकी कुछ व्यवस्था करनी ही होगी।

तीन

नौका घाट पर आकर भूषण साइकिल से उतर पड़ा। तेज धूप में लगातार तीन मील साइकिल चलाने से वह थोड़ा थक भी गया था। बनियान के नीचे पसीने की धार चल रही थी। बल्लभ पाटनी के घर के पास आम के बाग की छाया में आकर वह खड़ा हो गया।

बल्लभ को इन दिनों नाव नहीं चलानी पड़ती। नवगंगा में पानी एकदम नहीं है। इस पार से उस पार जाने के लिए बांसों का एक पुल बना दिया गया है। लंबे-लंबे बांसों पर आड़े बांस रखकर यह पुल बनाया गया है। उसी बांस पर से सभी आना-जाना करते हैं। एक और बांस थोड़ी ऊंचाई पर लगा होता है जिसे सहारे के लिए पकड़ना होता है। बांसों को मजबूती से बांधा भी नहीं जाता। कोई-कोई बांस तो पांव पड़ते ही एकदम घूम जाता है।

अषाढ़ के महीने में पानी का ठेला आने पर बल्लभ को नदी में नाव उतारनी पड़ती है। कातिक के महीने तक वह नाव खेता है। अगहन का महीना सबसे कठिन होता है। नदी के दोनों किनारों पर दूर तक कीचड़ होता है, सिर्फ बीच में थोड़ा पानी होता है। बड़े कष्ट से बल्लभ उतने से पानी में नांव खेता है। पूस के महीने में बांस का पुल बनाना ही पड़ता है। ज्येष्ठ महीने के अंत तक नदी पार करने का वही सहारा है। जवान पुरुषों को कोई असुविधा नहीं होती। वे आराम से पुल पार कर लेते हैं। मुश्किल होती है स्त्रियों और बूढ़ों को। हर साल भूषण के इलाके में कई गांवों के लोग इस असुविधा के बारे में बातचीत करते हैं, दल बनाते हैं, मगर और कोई रास्ता नहीं निकलता।

बल्लभ पाटनी बूढ़ा हो गया है। बचपन से ही भूषण उसे पहचानता है। वह अपने घर के दरवाजे पर बैठा तंबाकू पी रहा था। भूषण को देखकर वह हंसा। भूषण भी मुस्कराया।

बल्लभ ने कहा, "आपने सुना, भूषण बाबू, कल हन्येकूड़ो में प्रेसीडेंट साहेब के घर मीटिंग हुई थी।"

"किस चीज की मीटिंग, दादू?" भूषण ने पूछा।

बल्लभ ने हुक्के की दो कश खींचकर कहा, "स्वर्ग जाने की रावण की सीढ़ी बनाने की मीटिंग।"

भूषण ने कहा, "ठीक ही कहते हो। हम लोगों के लिए पुल बनाना स्वर्ग की सीढ़ी बनाने जैसी ही बात है। मुश्किल ही है।"

बल्लभ बोला, "देखो तो, काम के समय सभी की गलाबाजी सुनी जाती है। तुम्हारे उस नकुल बख्शी ने मेरे खिलाफ प्रेसीडेंट से नालिश की है। कहता है, मैं कुछ करता ही नहीं। मैं करूं भी तो क्या? जब तक नदी में पानी होता है, मैं तुम लोगों को पार करा देता हूं। क्या एक दिन भी कभी नागा किया है, कोई बोल दे? क्या पुल बांधना मेरा काम

है? तुम लोगों को तकलीफ होती है, इसीलिए थोड़ा इंतजाम कर देता हूं। मैं राजा का चाकर हूं। कचहरी से तनखा लेता हूं। तुम्हारे प्रेसीडेंट की मैं क्या परवाह करूं?"

बल्लभ नाराज हो गया था। अपनी मोटी-मोटी सफेद भौंहों को ऊपर उठाकर वह जैसे नकुल बख्शी को धमका रहा था।

बल्लभ फिर बोला, "पुल बनाने का काम तो तुम्हारे प्रेसीडेंट का ही है। पुल बनाते क्यों नहीं हैं? नालिश? बख्शी बेटा को नालिश करने का शौक चढ़ा है ! हूं !"

भूषण ने कहा, "अरे छोड़ो उसकी बात।"

बल्लभ ने कहा, "सुनकर दुख नहीं होता क्या? आदमी जैसा आदमी तो एक ही देखा, भूपति बाबू को। अगर गांव में रहते तो तुम देखते, अब तक यहां पक्का पुल बनवाकर छोड़ते।"

भूषण ने स्वीकार में सिर हिलाया। बात तो ठीक ही है। गांव में जो कुछ भी उन्नति हुई, सब मझले भैया के कारण। जापान से लौटकर कितने दिन गांव थे ही? उतने में ही लड़कों को जुटाकर झाड़-झंखाड़ कटवा दिया और छोटे-मोटे गड्ढों को पाटकर गांव से मलेरिया को एकदम निर्मूल कर गए। मझले भैया एक पल भी बैठे नहीं रह सकते। उन्होंने ही गांव में प्राइमरी स्कूल की स्थापना की और अब स्कूल की पक्की इमारत बनवा रहे हैं।

और इसके बदले गांव के लोगों ने उन्हें क्या पुरस्कार दिया? उनके परिवार को कुजात कर दिया था। नकुल बख्शी का चाचा विले बख्शी उस षड्यंत्र का सूत्रधार था। मगर कुजात करके भी क्या कर लिया? नलडांगा के राजा ने अपने बेटे के जनेऊ में मझले भैया को निमंत्रण दिया था। एक पंगत में बैठकर उनके साथ खाना खाया था। विले बख्शी ने उन लोगों को कम तंग नहीं किया है ! और उसकी लड़की पारुल ! नहीं, भूषण पारुल की बात नहीं सोचेगा। वह अब दूसरे की औरत है। शायद सुख से ही होगी। सभी सुख से रहें। भूषण की यही कामना है। भूषण इस दुनिया के किसी व्यक्ति के बारे में बुरा नहीं सोचता। किसी का बुरा सोचना उसके लिए संभव नहीं है। उसकी धारणा है, जो होता है, भले के लिए ही होता है।

भूषण ने कहा, "चलूं हो, बल्लभ दादू। वक्त हो गया।"

बल्लभ ने कहा, "हां सुनो, मेरी गर्दन का दर्द फिर से शुरू हो गया है। सीधा भी नहीं हो पा रहा हूं। क्या करूं, बताओ?"

भूषण ने कहा, "मैं जो तारपीन का तेल लाया था, वह अभी है या खत्म हो गया?"

बल्लभ ने कहा, "लगता है, अभी थोड़ा है।"

"तो फिर आज रात में उसी से अच्छी तरह मालिश कर लेना। अगर कम न हुआ तो कल मैं कोई दवा दे दूंगा।"

भूषण ने ढालू रास्ते पर साइकिल को सावधानी से उतारा। बांस पुल के पास आकर उसने साइकिल कंधे पर उठा ली। बांस पर पांव रखते ही बांस चर-चर कर उठा।

पांव के नीचे अब पानी दिखाई नहीं देता था। सिर्फ जलकुंभी और कलमी साग के पत्ते दिखाई दे रहे थे। पूरी नदी जैसे हरेपन का एक जमा हुआ विस्तार बन गई थी। कुछ दूरी पर, जहां थोड़ा-सा पानी झलक मार रहा है, वहां बंकू मल्लाह ने जाल डाल रखा है। जाल को उसने एक बांस गाड़कर उससे बांध रखा है। बांस के सिरे पर एक बगुला और एक माचरांगा बैठे हैं। दूसरी तरफ कुछ सागड़ा लगाए गए हैं। छिले हुए बांस से तैयार किए गए तिकोने सागड़े नदी के पाट में पड़े हैं। दूर से उन्हें देखकर लगता है बड़े-बड़े समोसे हैं। इन सागड़ों के भीतर बाबला की डालें भरकर बंकू पानी में फेंक रखता है। बाबला के पत्ते खाने के लिए मछलियां उसके भीतर घुसती हैं। सवेरे-सवेरे जाकर बंकू सागड़ों को खींचकर किनारे पर ले जाता है और मछलियां चुन लेता है।

जलकुंभी और कलमी के पत्तों पर तेज धूप के पड़ने से एक असह्य गरम भाप उठ रही है और पानी कीचड़ और सड़े पत्तों की एक मिली-जुली गंध भूषण की नाक में घुस रही है। सिर के ऊपर चीलें उड़ रही हैं और बीच-बीच में रीं-रीं करके कातर स्वर में बोल रही हैं। घुटने-भर पानी में खड़े कुछ गाय-बैल पगुरा रहे हैं। एक जलढोंड़ा बड़ी मुश्किल से जलकुंभी के जंगल में से अटकता हुआ जा रहा है। एक बछड़ा बां-बां कर रहा है। जल्दी की ब्याई हुई एक बकरी अपने तीन बच्चे लिए घास चरती हुई जा रही है।

बांस का पुल पार करते-करते भूषण जैसे पसीने से नहा उठा। साइकिल इस बीच गरम हो गई थी। नीचे उतरकर उसने साइकिल को कंधे से उतारा। कंधे को थोड़ा सहलाया। रुमाल निकालकर अच्छी तरह चेहरे का पसीना पोंछा। फिर साइकिल पर सवार होकर घर की ओर चल पड़ा।

नदी घाट से चलकर एक मैदान पार करते ही गांव के सिरे पर जो दोतल्ला मकान है वह भूषण की ही बिरादरी के पागला बोस का है। परिवार के मालिक बहुत दिन पहले पागल हो गए थे। सड़क के किनारे वाले दोतल्ले घर के एक कमरे में उन्हें ताले में बंद रखा जाता है। गांव का कोई आदमी उस रास्ते से निकलता है तो वे चिल्लाकर पूछते हैं, "कौन है? लगान दे दिया?" भूषण अपने छुटपन से ही उनकी आवाज सुनता आ रहा है। शुरू-शुरू में उसे डर लगता था। थोड़ा और बड़ा हुआ तो उसे मजा आता था। मगर अब उसे बहुत तकलीफ होती है।

भूषण की साइकिल की आवाज सुनते ही वे अपने कमरे की खिड़की पर झुककर जोर से चीख उठे, "कौन है? लगान दे दिया?"

उनकी ओर बिना देखे भूषण आगे बढ़ गया। इस घर के बाद ही केवट-मुहल्ला है। ये लोग सीप और घोंघों से चूना तैयार करते हैं। चूने की भट्टियों के आसपास सीप और घोंघों के ढेर फैलाए होते हैं। इस जगह सावधानी से न निकलने पर साइकिल के टायर के फटने की आशंका रहती है। टूटी हुई सीप चारों ओर फैली होती है। उसके किनारे

बड़े तीखे होते हैं। उन किनारों से टायर में छेद हो जाता है। उसके बाद ही बंकू मल्लाह का घर है। उससे आगे जाने पर पाताबहार और दूसरे झाड़ों के जंगल हैं। जंगल पार होते ही स्कूल की एकतल्ला इमारत दिखाई देती है। यहां से रास्ता दो भागों में बंट जाता है। जो रास्ता बाएं जाता है उस पर थोड़ा आगे जाने पर हरिसभा और आम-कटहल का बाग पड़ता है। उसके बाद ही मिट्टी की चारदीवारी से घिरा भूषण का मकान है।

अपने दरवाजे पर आकर भूषण साइकिल से उतरा। लाल गाय अपने बछड़े को दूध पिला रही थी। भूषण को देखते ही वह उसकी तरफ खिसक आई और अपनी गर्दन बढ़ा दी। बड़ी दुलारी गाय है। भूषण ने प्यार से हंसकर उसकी गर्दन सहलाई। फिर बेड़ा हटाकर घर के अंदर घुसा।

बख्शी महाशय भूषण को देखते ही आगे बढ़ आए। देखने में बख्शी महाशय रस्सी की तरह पतले और ऐंठे हुए हैं। दमे के रोगी हैं। उम्र काफी हो गई है, मगर कितनी, यह कहना मुश्किल है।

बख्शी महाशय ने फुसफुसाकर कहा, "भूषण, तुम्हारे घर में तो आज कुरुक्षेत्र मचा हुआ है। खूब गरजा-गरजी हुई है। औरतें दरवाजा बंद करके अपने-अपने कमरे में पड़ी हैं। लगता है, रसोई भी नहीं बनी है। अब पेट पर तवा बांधकर तुम भी पड़े रहो।"

भूषण अवाक हो गया। एक पल बाद पूछा, "बात क्या हुई?"

बख्शी महाशय बोले, "अरे भैया! इस घर में हंगामा होने के लिए किसी बात की जरूरत थोड़े ही होती है ! सुना है, छोटी बहू भात की हांड़ी उतार रही थी, तो अपना पांव जला बैठी। बड़े बाबू घर आए तो यह हाल सुनकर ऐसा अड़रम-बड़रम बोलने लगे कि बड़ी बहू ने कमरे में घुसकर दरवाजा बंद कर लिया। लड़कियां भी खटवास-पटवास लेकर पड़ गईं। देखो तो, हमारी भी क्या किस्मत है! घर में दो-दो टोकरी मछली आई, मैंने मन ही मन कहा, आत्माराम आज तुम्हारी पौ बारह है, मगर कहां मछली भात? अभी तक हरी मटर चबाकर जी रहा हूं। चलो मेरा क्या? हरी मटर चबा लूंगा, मगर आदमियों का क्या होगा? थोड़ी देर बाद ही तो वे भी खाऊं-खाऊं करके आ पहुंचेंगे। उन्हें क्या परोसा जाएगा?"

हालांकि भूषण को भी बहुत भूख लगी थी, मगर उसने मिजाज खराब नहीं किया। बख्शी महाशय की रसिकता का उसने पूरा मजा लिया। इस दुनिया के बारे में भूषण का हिसाब बहुत सीधा है। वह किसी मामले में कोई खास शिकायत नहीं करता। सच बात है, गाली खाकर औरतों को गुस्सा तो होगा ही। और यह औरतों का स्वभाव है कि नाराज होने पर वे अपने कमरे में बंद हो जाती हैं। अब भूषण के सामने दो रास्ते हैं—पहला, उपवास करना और दूसरा, खाना पकाने की व्यवस्था करना। भूषण उपवास करने में पीछे नहीं हटता। वह बिना खाए आराम से रह सकता है। मगर कब? जब घर में कुछ खाने को न हो, तब। मगर अभी तो घर में खाने-पीने की चीजें हैं। तो फिर वह शरीर को कष्ट

क्यों दे? अगर और कोई खाना नहीं पकाता तो आज-भर को भूषण ही यह काम कर लेगा।

भीतर आकर भूषणा ने क्रिंग-क्रिंग करके साइकिल की घंटी बजाई। किसी कमरे से कोई आवाज नहीं आई। वह अपने कमरे के बाहर साइकिल को दीवार से सटाकर खड़ी करके भीतर गया।

गिरिबाला सो रही थी। उसके चेहरे पर यंत्रणा की एक छाप लगी हुई थी। उसकी आंखों के कोनों से आंसुओं की जो धारा निकली थी उसके निशान सूखे हुए सोतों की तरह दीख रहे थे। उसका बच्चा भी गोद में पड़ा सो रहा था।

भूषण ने एक बार गिरिबाला के पांवों की तरफ झुककर देखा। पांव ज्यादा जले नहीं थे। सिर्फ फफोले पड़ गए थे। कुछ भी नहीं है। अर्निका थर्टी का एक डोज खिलाने से ही दर्द कम हो जाएगा। भूषण निश्चिंत हो गया। अभी गिरिबाला को थोड़ा और सो लेने दूं। कपड़े बदलकर भूषण बाहर आ गया।

पहले देखना होगा, इस समय बड़े भैया कहां हैं, भूषण ने सोचा। वह मां के कमरे में गया। मां वैसे ही डरपोक हैं, ऊपर से आज की चिल्ला-चिल्ली। अपना खाना पकाकर वह चुपचाप कमरें में बैठी हैं। भूषण को देखकर उनके मन में थोड़ा बल आया।

फुसफुसाकर बोलीं, "ओ भूषण! आज तो सत्यानाश हो गया। छोटी बहू के पांव जल गए। ऊपर से विलास ने इसी बात को लेकर बड़ी बहू को मारते-मारते छोड़ा। तू भी धूप में जल-भुनकर आ रहा है। देखती हूं, भूख से मेरा मुंह भी सूखा हुआ है। खाएगा? मेरा भात खा ले।"

भूषण ने कहा, "तो फिर आप क्या खाएंगी?"

बुढ़ियां की दोनों आंखों में आंसू भर आए।

बोलीं, "मेरा खाना क्या, न खाना क्या! घर में किसी के मुंह में अनाज का एक दाना न गया और मैं बुढ़िया बैठकर अपना पेट भरूं? यह भी कोई बात हुई?"

भूषण ने कहा, "आप चिंता न कीजिए, मैं खाने-पीने की व्यवस्था करता हूं। बड़े भैया कहां हैं?"

बुढ़िया ने उंगली से ठाकुरजी के कमरे की ओर इशारा किया। भूषण कमरे में झांक आया। देखा विलास ध्यान कर रहे हैं। लगता है, चित्त-शुद्धि कर रहे हैं, भूषण ने सोचा।

विलास को गुस्सा बहुत आता है। जरा-सी बात पर भभक उठते हैं। बोलने लगते हैं तो सांस नहीं लेते। मगर उनका मन बड़ा स्वच्छ है। ज्यों ही उन्हें लगता है कि उनकी वजह से किसी का मन दुखा है, त्यों ही उनके मन में प्रायश्चित करने का एक प्रबल झोंक देखा जाता है। देवता के घर में घुसकर घंटों वे चित्त-शुद्धि के लिए प्रायश्चित करते हैं। राधा-गोविन्द के चरणों में लोटकर वह अपने अपराध की क्षमा मांगते रहते हैं। आज उनका अनशन चलेगा।

बड़ी बहू का गुस्सा शांत हो गया है। वे उठीं। उन्हें भूख भी ज्यादा लगती है। भूख की मात्रा जितनी बढ़ती है, गुस्सा और मान की मात्रा उतने ही परिमाण में कम होती जाती है। देवर जी आ गए हैं। बेचारे को बहुत भूख लगी होगी ! सवेरे-सवेरे घर से निकल गए थे। और लड़कियों को भी तो भूख लगी होगी।

बड़ी बहू ने पुकारा, "चम्पी, ओ चम्पी! जूथी, ओ जूथी !"

जूथी उठकर आ गई। चम्पी ने कोई जवाब नहीं दिया।

बड़ी बहू ने कहा, "रसोईघर में चल, मछलियां तल ले। चम्पी कहां गई?"

जूथी ने मुंह लटकाए हुए जवाब दिया, "सो रही है।"

बड़ी बहू ने कहा, "कुवेला में सोना ठीक नहीं है, उसे उठा दे। तेरे काका घर आ गए हैं। जरा देख तो, तेरे पिता जी कहां गए।"

जूथी ने कहा, "बापू तो पता नहीं कब से पूजाघर में ही बैठे हुए हैं।"

"ऐं ! क्या कह रही है?"

बड़ी बहू जल्दी से उठ बैठीं, "बाप रे ! पिराश्चित करने बैठ गए क्या?"

एक पल बाद फिर जूथी से बोलीं, "देख,तो क्या कर रहे हैं? जल्दी देखकर आ।"

बड़ी बहू के सिर पर जैसे आसमान फट पड़ा हो। विलास की चित्तशुद्धि से दामिनी बहुत डरती है। अगर पति सारा दिन बिना खाए-पीए प्रायश्चित करता रहे तो सती-साध्वी स्त्री की क्या हालत होगी। यह सोचकर ही बड़ी बहू की आंखों के सामने अंधेरा छा गया। अब खुद उन्हें भी पति के साथ उपवास करना होगा। उन्हें पहले का भी अनुभव है। जहां तक संभव है, वह विलास की चित्तशुद्धि का कारण नहीं बनना चाहतीं। झगड़े से बचाती रहती हैं। मगर कहां तक बचाएं? कभी-कभी तो बाजा बज ही जाता है, जैसे आज। अब देखो उसकी कितनी सजा भोगनी पड़ती है।

बड़ी बहू ने रसोईघर में आकर देखा—भूषण ने काफी कुछ सहेज लिया है। भात की देगची एक किनारे रख दी है। बुझे हुए चूल्हे में लकड़ी डालकर उसे जला लिया है। चूल्हे पर दाल चढ़ा दी है और झाड़ू लेकर कलमी साग का जंगल साफ कर रहा है। तभी बड़ी बहू कमरे में घुसीं। बड़ी बहू ने भूषण के हाथ में झाड़ू खींच लिया और भूषण को डांट पिलाई, "रख दो तो ये सब, और जाओ यहां से। बड़े आए हैं अपनी कारसाजी दिखाने। ओ चम्पी, अरे जूथी, देख तो आकर, तेरे काका जो क्या तमाशा कर रहे हैं।"

इस बीच चम्पी जाग गई थी। रसोईघर में झांकते ही वह हंस पड़ी।

बोली, "हाय मैं मर जाऊं ! छोटे काका, हाथ में झाड़ू लिए कितने सुंदर लग रहे हो, तुम! छोटी काकी देखें तो बेहोश होकर गिर जाएंगी।"

भूषण ने नकली गंभीरता से कहा, "आह ! मुझे बड़ा अफसोस है कि बेचारियां गुस्सा करके एक दिन सोना चाहती थीं, वह भी उनके दुश्मनों ने नहीं होने दिया।"

बड़ी बहू ने कहा, "अब हंसी-ठट्ठा रहने दो! औरत का जन्म लिया है तो गेंडे का चमड़ा नहीं ओढ़ लिया है। मान-अपमान सभी को लगता है।"

भूषण हंसने लगा।

फिर बोला, "यही तो मैं भी कहता हूं। मगर एक बात है, गुस्से को बनाए रखने का सरंजाम इस घर में नहीं हैं। तुम्हारे इस दुबले-पतले शरीर में कितना गुस्सा अंटेगा? हां, अगर कूल बख्शी की बहू-जैसा शरीर होता तो कोई बात थी। बैठने के लिए ही तीन कट्ठा जमीन लगती। आने-जाने में दो घोड़ों की गाड़ी लगती। नाक में पहनने के लिए एक पाव वजन की नथ लगती। अगर वैसा कोई गुस्सा करे तो कोई बात है। घर के लोग थर-थर कांप रहे हैं और गांव के लोग दुबके बैठे हैं। इसीलिए सभी इस कोशिश में रहते हैं कि वह गुस्सा न करे। और तुम लोगों का हाल यह है कि..."

बड़ी बहू ने हंसते हुए कहा, "अब जाओ यहां से तो, ज्यादा तंग मत करो। कर सकते हो तो अपने बड़े भैया के साथ कूल बख्शी की बहू का ब्याह करा दो। कूल बख्शी की बहू का गुस्सा और इनका प्रायश्चित, एकदम ठीक जोड़ी बैठेगी।"

भूषण हंसने लगा।

बोला, "आदमियों को खिलाने का बंदोबस्त जल्दी करिए। पहले उन्हें खिला-पिलाकर छुट्टी करिए। उन्हीं के साथ बख्शी जी को भी खिला दीजिएगा।"

बड़ी बहू ने कहा, "तुम भी उनके साथ ही खा लेना।"

चम्पी ने कहा, "छोटी काकी के पांव देख लिए?"

भूषण ने कहा, "हां, कोई खास बात नहीं है। फफोले जरा ज्यादा पड़ गए हैं। ठीक हो जाएंगे।"

चम्पी ने कहा, "उनका पागलपन तो देखो। यह हांड़ी क्या एक आदमी के मान की है? हम लोग यहीं बैठे थे। मुंह से चूं करते ही हम में से कोई भी आ जाता हाथ बंटाने।"

भूषण ने कहा, "तू चिंता मत कर, यहीं चूल्हे के ऊपर एक छोटा सा क्रेन लगवा देंगे। भात पक जाने पर क्रेन की जंजीर देगची में अटका देना। बस, क्रेन से देगची आराम से उतर जाएगी। यह देगची क्या चीज है, इससे डबल देगची को भी तेरे जैसी एक चुहिया भी उतार लेगी। अकेली। तू जानती नहीं यह विज्ञान का युग है। वैज्ञानिक तरीके से न चलने से दुर्घटना अनिवार्य है। ठहर, कल-परसों तक इसका भी इंतजाम करता हूं।"

भूषण के दिमाग में यह आइडिया अचानक आया। इस तरह की संभावना की बात सोचकर उसका शरीर रोमांचित हो उठा।

बड़ी बहू ने उसे डांटा, "अरे रहने भी दो। चले हैं रसोईघर में किरेन लगवाने! देखती हूं, हम लोगों की चिंता में तुम्हारी नींद हराम हो गई है। मैं कहती हूं, आज एक महीने से जो मैं रट लगा रही हूं कि हम लोगों के पास कपड़े नहीं हैं, वह जैसे तुम्हारे कान में

नहीं घुसता। फटी-चिटी साड़ियां पहने जवान लड़कियां आंखों के सामने घूम रही हैं, इनके लिए तो किसी मरद-मानुस को चिंता नहीं है और चले हैं देगची उतारने की मशीन लगाने! मैं कहती हूं, क्या लड़कियां वही मशीन पहनकर निकलेंगी।"

बड़ी बहू की डांट खाकर भूषण थोड़ा लज्जित हुआ, क्योंकि बड़ी बहू का कहना सही था। उस बात को अस्वीकार करने का कोई रास्ता न था। इन सब असुविधाजनक प्रश्नों के सामने पड़कर भूषण परेशान हो जाता है। कपड़े खरीदने में पैसे लगेंगे और रोगियों में पैसे देने की सामर्थ्य नहीं। औरतों को यह बात समझाना मुश्किल है। वे स्वार्थी होती हैं। दुनिया रसातल को चली जाए, मगर उन्हें कपड़े चाहिए ही। उनकी मनोदशा कुछ ऐसी ही होती है। कोई ऊंची बात उनके दिमाग में घुसती ही नहीं। घुस ही नहीं सकती, क्योंकि वे हमेशा अपनी बात सोचती हैं।

अब इस मशीन की ही बात लीजिए। बड़ी बहू इसे जितना फालतू समझ रही हैं, उतनी यह है नहीं। यह फूंक मारकर उड़ा देने वाला आइडिया नहीं है। अगर इस तरह की कोई चीज बन जाए तो देश की करोड़ों नारियां इससे फायदा उठाएंगी। नंगे हाथों से गरम देगची या कड़ाही उतारने में रोज ही कितनी दुर्घटनाएं घटती हैं! कितनी ही औरतों के हाथ-पांव जलते हैं, उन्हें तकलीफ होती है और कितनी ही औरतें जलकर मरती हैं, इसका क्या ठिकाना? एक मामूली-सी मशीन लगा देने से ही इन सब परेशानियों से बचा जा सकता है। लगातार आग के पास रहते-रहते औरतों को कितनी तरह के रोग हो जाते हैं, उनसे उनका बचाव हो सकता है।

पहले अपने घर में परीक्षण करके भूषण देखेगा और अगर वह सफल हो गया तो फिर और क्या चाहिए। इसी मशीन को पेटेंट कराकर वह व्यवसाय शुरू कर देगा। "डा. भूषणचन्द्र बसु द्वारा आविष्कार की गई रसोईघर की मशीन" अथवा अंग्रेजी में "डा. बोसेज कुकिंग पुली"। इस मशीन को उपयोग में लाने के बाद नारी जाति रसोईघर की भयंकर दुर्घटनाओं और निरर्थक परिश्रम से तुरंत मुक्ति पा जाएंगी। अखबार में तस्वीर के साथ उसके इस आविष्कार का ब्यौरा छप जाएगा। डा. बोसेज बुकिंग पुली। भूषण को यह अंग्रेजी नाम ही ज्यादा पसंद आया। कुकिंग पुली। हां, रसोईघर की मशीन से कुकिंग पुली सुनने में कहीं ज्यादा अच्छा लगता है। मेड इन जसोर। जसोर में तैयार की गई। जैसे मझले भैया की कंघी पूरे भारत में विख्यात हुई थी। जसोर और बंगाल का नाम जैसे मझले भैया के कार्यकलापों से सभी दिशाओं में फैल गया था, उसी तरह एक दिन उसकी कुकिंग पुली भी प्रसिद्ध हो जाएगी। हो सकती है, क्यों नहीं हो सकती ! मनुष्य के लिए असाध्य कुछ भी नहीं।

भूषण मन ही मन हिसाब लगाने लगा। यह मोटा-मोटी हिसाब था। विस्तृत हिसाब वह बाद में करेगा। मगर इसी मोटा-मोटी हिसाब से वह दिखा देगा कि उसका एक मामूली

सा आविष्कार कितनी कमाई करता है। मान लो, इस समय बंगाल में चार करोड़ आदमी हैं। अगर दस-दस आदमियों का एक परिवार मान लिया जाए तो कुल परिवारों की संख्या चालीस लाख ठहरेगी। इसका मतलब है, बंगाल में इस समय चालीस लाख रसोईघर हैं। गुड ! अब इनमें से तीन चौथाई निकाल दो। एक चौथाई रसोईघरों को भी ले लो तो दस लाख रसोईघरों के लिए दस लाख कुकिंग पुलियां बेची जा सकती हैं। वैरी गुड! भूषण बहुत उत्साहित हो उठा। अब अगर प्रत्येक कुकिंग पुली पर वह चार आने का मुनाफा करे, ओनली फोर आनाज, तो कुल मिलाकर ढाई लाख रुपए की आमदनी होगी। अच्छा उसमें से भी चलो डेढ़ लाख रुपए निकाल दो, तो भी नेट एक लाख रुपए का लाभ होगा। इसमें तो कोई संदेह ही नहीं है। बड़ी बहू को क्या मालूम एक लाख रुपए क्या चीज होते हैं। खाली कपड़ा-कपड़ा चिल्लाती रहती हैं। अरे, कितना कपड़ा चाहिए, तब फरमाइश करना। जैसे भूषण ने बड़ी बहू को ललकारा।

तभी चम्पी की खरखराती हुई आवाज आई और भूषण की चिंताधारा टूट गई।

"ओ छोटे काका, बार्ली लाए हो?"

भूषण के उत्साह का ज्वार अब थोड़ा मंद पड़ गया। चेहरे की चमक बुझ गई। भूषण ने रोबिंसन की बार्ली खरीदकर लाने का वायदा किया था। इसीलिए वह मनीरुद्दीन की आशा में इतनी देर तक बैठा हुआ था, मगर वह आया ही नहीं।

भूषण ने कहा, "आज किसी तरह काम चला लो, बेटी। कल जरूर ला दूंगा।"

चम्पी ने कहा, "चलाऊं क्या अपना सिर ! मुन्ना का पेट एकदम खराब है। एक बूंद भी दूध पेट में नहीं रुक रहा है। तुम से बोल-बोल के मैं थक गई। अब वह बेचारा पीएगा क्या?"

भूषण सोचने लगा—ये लोग अपनी दुनिया को सारी दुनिया से काटकर रखते हैं। इसीलिए इन लोगों की नजर में छोटा-सा अभाव भी बहुत बड़ा दिखाई देता है। हमारे लिए उचित है कि हम अपनी दुनिया को बाहरी दुनिया के परिप्रेक्ष्य में देखें। तभी हमें यह ज्ञात होगा कि बार्ली के न होने से यह दुनिया रसातल में नहीं चली जाएगी।

मनुष्य क्या खाता है या क्या पहनता है, इससे आदमी का मूल्यांकन नहीं होता, चम्पी। मनुष्य का परिचय उसके विचार और उसके कार्यों से मिलता है। भूषण ने मन ही मन चम्पी को समझाया। वह रोबिंसन की बार्ली नहीं ला पाया। इसीलिए यह उससे नाराज है। अरे, यह तो सिर्फ एक परिवार की एक सामयिक समस्या है। भूषण ने मन ही मन कहा, मगर वह जिस समस्या के समाधान की बात सोच रहा है उसमें बृहत्तर मानवता की समस्याओं का समाधान और कल्याण निहित है।

इसीलिए व्यर्थ की चिंताओं में मन न लगाकर भूषण अपने कमरे में कुकिंग पुली का नक्शा बनाने जा घुसा।

चार

बर्तन मांजते-मांजते चम्पी उदास हो गई। कोल्हूपाड़ा में किसी के घर शादी है। पोखर के पश्चिमी किनारे पर से लाइन लगाकर लोग जा रहे हैं। एक शहनाई तीखी आवाज में चीख रही है। ढोल और ताशा जैसे चीखती हुई शहनाई को सांत्वना दे रहे हैं।

चम्पी उधर ही देख रही थी। उसके सामने अधमंजी थाली पड़ी हुई है। दो-चार बार हाथ चलाने से वह साफ हो जाएगी। फिर भी उसके हाथ रुक गए। एक समय अंतिम स्त्री भी रास्ते के मोड़ पर ओझल हो गई। शहनाई और ढोल-ताशे की आवाज अब सुनाई नहीं दे रही थी। फिर भी वह हाथ पर हाथ धरे बैठी रही। काम करने का उसका उत्साह एक पल में जैसे कोई उसके भीतर से खींच ले गया।

शाम होने में अभी भी देर थी। जेठ महीने की प्रचंड गर्मी सारा दिन गांव को जैसे तपती बालू में भुनती रही है। इस समय पोखर के पानी से जैसे भाप उठ रही है। फिर भी यहां काफी ठंड है। घर के अंदर तो जैसे आग सुलग रही है।

मगर पोखर का यह घाट भी अब चम्पी को आराम नहीं दे पा रहा है। हालांकि आराम पाने के लिए ही वह काफी दिन रहते जल्दी से घाट पर आकर बैठ गई। एक खंचिया में बर्तन भर कर लाई थी। बड़े मनोयोग से मांजने बैठी थी। ऐसे ही समय कोल्हूपाड़ा की तरफ से स्त्री-पुरुषों का एक दल पोखर के किनारे पूजा करने आया और बाजे बजाता हुआ फिर गांव की ओर लौट गया। तभी जैसे गरम हवा का एक झोंका चम्पी के कलेजे को खाली करता हुआ चला गया। उसकी आंखों में अपार शून्य भर गया।

चम्पी न कुछ कर पा रही थी, न कुछ देख पा रही थी और न ही कुछ सुन पा रही थी।

जिस घाट पर चम्पी ताड़ के लट्ठे पर बैठी थी उसके आसपास ढेर सारी छोटी-बड़ी मछलियां बुज-बुज करती हुई घूम रही थीं। वह मोटी-तगड़ी मछली, जिसका नाम चम्पी ने भोंबल रखा था, धीरे-धीरे उसके काफी नजदीक आकर पानी के तल पर लेटी विश्राम कर रही थी। और दिनों चम्पी उसके साथ खूब बातें करती है। मुट्ठी-मुट्ठी-भर दाने छींटकर उसे खिलाती है। अगर आसपास कोई न हो तो नरम आवाज में अनेक लोगों की उससे निंदा भी करती है।

बहुत देर से भोंबल उसकी प्रतीक्षा कर रही थी, मगर चम्पी का ध्यान उधर नहीं था। जैसे किसी चाभी वाली पुतली में चाभी खत्म हो जाने से वह अचानक थम गई हो।

इस गांव की किसी और लड़की का ब्याह फलीभूत हुआ। चम्पी ने जैसे यह खबर खुद अपने मन को दी। और साथ ही, एक गहरी सांस उसकी छाती में से निकल पड़ी। किस लड़की की शादी है? कोल्हूपाड़ा के किसी आदमी को वह नहीं जानती, इसीलिए समझ

नहीं पा रही है।

निश्चय ही वह मुझसे छोटी होगी। कोल्हूपाड़ा वाले खूब छोटी-छोटी लड़कियों की शादी कर देते हैं। बड़ी दीदी की भी बहुत कम उम्र में ही शादी हो गई थी। पिताजी ने कन्यादान किया था। मझली दीदी की उम्र तेरह पार भी न हुई थी कि पूरे गांव में हाय-हाय मच गई। पिताजी अन्न-जल त्यागकर वर खोजने निकल पड़े थे। मंझली दीदी की शादी में बहुत अच्छी जमीन का एक टुकड़ा भी बेचना पड़ा था। इस पर मझले काका बहुत नाराज हुए थे। बहुत दिनों तक घर में झगड़ा और अशांति चली थी। मझले काका छोटे काका और संझले काका की तरह नहीं है। बाप दादों की जायदाद को लेकर उनके भीतर अधिकार की भावना बहुत प्रबल है। आखिर तक उन्होंने अपने हिस्से के रुपयों का अधिकार नहीं छोड़ा था। इसीलिए छोटे काका की शादी में जो दहेज के रुपए मिले थे उन्हें पिताजी ने मझले काका को दे दिया था और प्रतिज्ञा की थी कि बाप-दादों की संपत्ति बेचकर लड़कियों की शादी नहीं करेंगे।

इसीलिए तो हमारी शादी करने के लिए पिताजी को अब उतनी जल्दी नहीं है।

चम्पी ने हताश होकर जैसे मन ही मन पोखर को सुनाकर कहा। उसके सोलह साल पूरे हो गए। स्वास्थ्य अच्छा होने के कारण वह और भी बड़ी दीखती है। इसी कारण उसे उठते-बैठते ताने सुनने पड़ते हैं। उसका नाम ही हथिनी पड़ गया है।

चम्पी की उम्र जैसे-जैसे बढ़ रही है, वैसे-वैसे ही वह अपने को चारों ओर से संकुचित करती जा रही है। उसका वश चलता तो वह पाताल में प्रवेश कर जाती। कितनी छोटी दुनिया है उसकी! केवल अपना घर, और घर भी पूरा नहीं, सिर्फ रसोईघर और उसके सोने का कमरा। इन्हीं दो कमरों के बीच वह चक्कर लगाती रहती है। बस पोखर-घाट पर आकर उसे मुक्ति का स्वाद मिलता है।

यह पोखर भी मेरी ही तरह है। इसके लिए भी अपनी चौहद्दी के बाहर जाने का कोई उपाय नहीं है। ओ पोखर, तुम भी चौहद्दी के बाहर नहीं जा सकते, और मैं भी नहीं, जैसे एक अभागिन दूसरी अभागिन के साथ सहानुभूति जता रही हो।

अभागिन नहीं तो और क्या है चम्पी? इस गांव में कोई जवान लड़की कुंवारी नहीं रही। उसकी उम्र की जो लड़कियां थीं, उनकी मांग में कब का सिंदूर भर दिया गया। इस बीच उनमें से अनेक के बाल-बच्चे भी हो गए। अकेली वह बैठी हुई है, जिसकी कोई गति नहीं। इस गांव में उससे भी छोटी बहुत-सी लड़कियां हैं। उनमें से भी बहुतेरी पार लग गई हैं। उनकी मां और काकियां घाट पर आती हैं। उनके बारे में ढेर-सी बातें करती हैं। अगर वे बातें मां के कान तक पहुंच जाएं तो चम्पी उनकी निगाह में बहुत गिर जाएगी।

चुपचाप बातें सुनने वाली लड़की नहीं चम्पी। उसने भी एक दिन मुंहतोड़ जवाब दिया था। मां के साथ झगड़ा किया था। उसकी शादी नहीं हो रही है, जैसे यह भी उसी का

दोष है। जैसे दुनिया के तमाम योग्य लड़कों के पिताओं के साथ वह षड्यंत्र किए बैठी है कि कोई उसे पसंद न करे।

लोगों का बात करने का तरीका देखकर चम्पी की देह में आग लग जाती है।

जिन दिनों वह झगड़ा करती थी, उन दिनों भी उसकी आशा मरी नहीं थी। वह नियमित शिव की पूजा करती थी। शिव जैसा वर पाने के लिए वह मन, वचन और कर्म से प्रार्थना करती थी। इस तरह चौदह पार करके वह पंद्रह में गई और पंद्रह पार करके सोलह में। और अब तो उसका सोलहवां भी पूरा हो चुका है।

उम्र बढ़ने के साथ-साथ चम्पी की आशा भी खत्म होती जा रही है। पिछले कुछ वर्षों में पांच बार उसे देखने लोग आए। एक ने भी उसे पसंद नहीं किया। हर बार वह करीने से सजी, कुछ अपरिचित लोगों के सामने सिर झुकाए बैठी और अपनी योग्यता के अनुसार परीक्षा भी दी, मगर किसी ने भी उसे पसंद नहीं किया। उसका रंग काला है, वह देखने में अच्छी नहीं है, हथिनी जैसी मोटी है। वह हथिनी है।

इन परीक्षाओं के बाद कई दिनों तक उसके ऊपर निःशब्द लांछनों का प्रहार होता रहा है। पिताजी जाने कैसी आंखों से एकटक उसे देखते हैं, मां के स्तब्ध होठों के पीछे से कैसी मुखर व्यंजना होती है, पड़ोसियों के चेहरे का हल्का विद्रूप कलेजे में कितना गहरे चुभता है! मगर उपेक्षा का एक कठोर कवच ओढ़े चम्पी घूमती-फिरती रही है। एक भी बाण उसकी देह को भेद नहीं पाया है। कारण यह कि उसकी आशा मरी नहीं है। इसी तरह बड़ी बहादुरी से उसने चार बार आत्मरक्षा की है।

मगर पांचवी बार वह ऐसा न कर सकी। वह बुरी तरह हारकर टूट गई। इस बार जो लोग उसे देखने आए थे उन्होंने जूथी को बहुत पसंद किया था। उन्होंने जूथी के लिए विवाह प्रस्ताव लेकर कई बार आदमी भी भेजे थे। उनका आग्रह इतना प्रबल था कि नाम-मात्र के खर्चे में जूथी को पार लगाया जा सकता था। मगर उसके पिता ने स्वीकार नहीं किया था। उन्होंने कहा था, "चम्पी बड़ी है। उसे छोड़कर छोटी की शादी करना अच्छा नहीं लगेगा।" इसीलिए अंततः वह प्रस्ताव रद्द करना पड़ा।

इसके बाद फिर कई दिनों तक उसके पिता वैसी ही अजीब आंखों से उसे देखते रहे, मां के चेहरे से वैसी ही अव्यक्त शिकायत झरती रही। पड़ोसियों की आंखों से विद्रूप के बाण छूटते रहे। चम्पी तब भी विचलित नहीं हुई थी। मगर सबसे मारक आघात किया था उस पर जूथी ने, उससे दो साल छोटी उसकी अपनी बहन जूथी ने।

जूथी की आंखों से विष झड़ने लगा था। उसकी तीव्रता से चम्पी व्याकुल हो उठी थी। जूथी की दृष्टि में कितना विद्वेष, कितनी घृणा देखी थी उसने! जूथी के शरीर से आग निकलकर जैसे चम्पी को झुलसाने लगी। उसकी गर्वभरी भंगिमा जैसे बार-बार चम्पी से कहने लगी—खुद तो हमेशा इसी तरह पड़ी-पड़ी बूढ़ी हो जाएगी, मगर हमारा भविष्य भी

चौपट कर देगी। तेरे जीवन को धिक्कार है। तू मर क्यों नहीं जाती? मर जा तू।

उसके बाद से जूथी ने कभी उसे बड़ी बहन का सम्मान नहीं दिया। घर-गृहस्थी का जो भी कामकाज उसके हिस्से था उसे भी उसने नौकरानी मानकर चम्पी के सिर मढ़ दिया। पहले जैसी बात होती तो चम्पी कभी भी इसे बर्दाश्त न करती। मगर अब चम्पी पहले वाली चम्पी नहीं रह गई थी। इसीलिए सारा अपमान वह पी जाती है और चुप रहती है।

जूथी को लोग इतना पसंद क्यों करते हैं? वह क्या जानती है? जीवन में कभी किसी किताब का पन्ना तक नहीं पलटा। मामूली-सा लिखना जानती है, मगर उसकी लिखावट कितनी गंदी होती है ! खाना पकाना भी नहीं जानती। सिलाई-कढ़ाई के तो पास भी नहीं फटकती। फिर भी उसका इतना ऊंचा दाम! कारण सिर्फ यह है कि उसका रंग गोरा है।

और चम्पी काली है। उसकी चमड़ी के कालेपन ने उसके तमाम गुणों को शून्य कर दिया है। गांव के स्कूल से उसने छात्रवृत्ति लेकर परीक्षाएं पास की हैं। पढ़ाई-लिखाई करती रहती तो वह बहुत आगे बढ़ जाती। मगर लड़कियों का हाई स्कूल झिनैदा में था और उसे वहां भेजने का कोइ उपाय न था। इसीलिए आगे उसकी पढ़ाई न हो सकी। उसकी लिखाई मोती के दानों जैसी सुंदर होती है। उसने बख्शी परिवार की मझली बहू के हाथ पांव जोड़कर क्रोशिए की कढ़ाई सीख ली। कितने ही तरह के पकवान बनाना जानती है। कीर्तन में उसके गले की मधुरता सुनकर लोग दंग रह जाते हैं। वह हर चीज सीखना चाहती थी, मगर कुछ भी ठीक सें सीख न सकी। उसे मौका नहीं मिला। उस ठेठ देहाती गांव में उसे कोई सहारा देने वाला न था। किसी ने उसे मामूली-सा भी उत्साह नहीं दिलाया। फिर भी वह इस गांव की सर्वगुण संपन्न लड़की है। मगर उसका रंग काला है। इसीलिए वह कुछ नहीं है, कुछ भी नहीं।

चम्पी की कढ़ाई दिखाकर श्रीनाथ काका की लड़की सुजाता का विवाह पक्का हुआ था। सिर्फ श्रीनाथ काका ही क्यों, कायस्थ मुहल्ले के अनेक पिताओं ने चम्पी के हाथों बने तरह-तरह के सिलाई-कढ़ाई के काम दिखाकर अपनी लड़कियों को गुणवती प्रमाणित किया था। वे सभी लड़कियां पार हो गईं। केवल चम्पी बैठी है। भगवान का यह कैसा न्याय है? नकली चीज असली चीज से भी ज्यादा तेज चलती है !

या फिर चम्पी जिन चीजों को आज तक गुण मानती रही है, वे गुण हैं ही नहीं। बंगाली के घर की लड़की का एकमात्र गुण है उसकी चमड़ी का रंग। यहीं पर चम्पी ने मार खाया है। वह काली है।

गांव में एक-एक करके शादियां होती जा रही हैं और वे जैसे चम्पी को याद दिलाती जा रही हैं कि वह काली है। उसका ब्याह नहीं होगा। वह काली है। काली।

नया दिन आता है तो चम्पी के लिए कोई नया संवाद लेकर नहीं आता। उसकी रातें अर्थपूर्ण नहीं हो उठतीं। छः ऋतुओं का नियत परिवर्तन किसी संभावना की सूचना नहीं

देता। चम्पी ने पूजा छोड़ दी है। शिवजी के सामने हाथ जोड़कर अब वह प्रार्थना नहीं करती। अधिकांश समय चुपचाप काम में जुटी रहती है। बस कभी-कभी विद्रोह कर उठती है।

अगर उसे जूथी के साथ एक ही बिस्तर पर सोना न पड़ता तो कितना अच्छा होता! बिस्तर के उस छोटे से दायरे में दोनों बहनों की देह जैसे बहुत पास-पास आ पड़ती हैं। दो देह नहीं बल्कि चमड़ी के दो टुकड़े हैं। एक काला और दूसरा गोरा। बिस्तर पर जूथी के साथ लेटी चम्पी मन ही मन जैसे मर जाती है।

एक बार फिर दूर शहनाई का स्वर गूंजा। वे लोग फिर पोखर की पूजा करने आ रहे हैं। यह क्या, इतनी देर में एक भी बर्तन उसने नहीं मांजा ! छिः !

चम्पी को होश आया तो जल्दी-जल्दी हाथ चलाने लगी। पता नहीं किसने पुकारा, "चम्पी है न, ओ चम्पी !"

चम्पी ने दूसरे घाट की तरफ आंखें फिराईं। ओ हां! यह तो शैल दीदी हैं। वाह! शैल दी कितनी सुंदर हो गई हैं! कब आई?

चम्पी ने शैल दीदी की तरफ देखकर कहा, "शैल दी हो न? कब आई?" और मुस्कराई।

शैल ने कहा, "कल ही तो आई हूं रे। पिताजी ने कहा, शैल, तू बहुत दिनों पर देश जा रही है, आम, कटहल खाकर ही आना। उन्होंने भी हां कर दी तो चली आई। घर की सफाई करने में ही कल का और आज का दिन कट गया। सफाई करके अब हाथ-मुंह धोने आई हूं।"

चम्पी ने कहा, "ठीक ही किया। चार-पांच साल हो गए, तुम लोगों ने इधर रुख ही नहीं किया। चिट्ठी मिली तो पता चला तुम्हारा विवाह कलकत्ता में हुआ है। तुम्हारा भाग्य बहुत अच्छा है, शैल दी। इस गांव की सभी लड़कियों की तुम सिरमौर बन गई। कलकत्ते में ससुराल होना कोई मामूली बात तो नहीं है !"

बातें करते हुए चम्पी ने तेजी से हाथ चलाया। ढेर सारे बर्तन थे। उधर शाम होने को आई। धीरे-धीरे अंधेरा शैल और चम्पी के बीच एक पर्दा-सा खींचने लग गया। उनके चेहरे एक-दूसरे के लिए धूमिल होने लगे। एक समय केवल आभास से दोनों एक-दूसरे के अस्तित्व को पहचान पा रही थीं।

"अभी कुछ दिन रहोगी न, शैल दी? आम-कटहल खत्म होने पर ही तो जाओगी?"

"अरे नहीं रे! इतने दिन कहां रह पाऊंगी। ससुराल का प्यादा तो पीछे लगा हुआ है। सिर्फ सात दिन की छुट्टी मिली है। वे खुद साथ में नहीं आ पाए, आफिस का बहुत काम था। काम न और कुछ !"

खिलखिलाकर शैल दीदी हंस पड़ीं। शैल दीदी की हंसी। शैल दीदी के गले की आवाज चम्पी की तरह मीठी नहीं है। फिर भी शैल दीदी का ब्याह हो गया। उनकी चमड़ी गोरी जो है। पर अब, चम्पी ने सोचा, अंधेरा हो जाने पर जब देह की चमड़ी न दीखे, तब अगर

शैल दी और वह दोनों साथ खड़ी हों और सिर्फ बातें करें, हंसें, तो क्या शैल दी उसके सामने ठहर पाएंगी?

काम न कुछ और !

शैल खिलखिलाकर हंसी।

"दरअसल बात क्या है तुझे बताती हूं, उन्हें मलेरिया से बड़ा डर लगता है। इसीलिए पिताजी से बहाना बना दिया।"

चम्पी भी हंस पड़ी। जैसे सितार के तने हुए तारों पर निपुण उंगलियों से किसी ने एक झंकार दी हो।

"क्या कहती हो, शैल दी? जीजाजी मलेरिया से इतना डरते हैं !"

चम्पी फिर हंसी। उसकी अपूर्व सुरीली हंसी पूरे पोखरे को तरंगाइत कर उठी। बहुत दिनों बाद चम्पी हंसी थी। आजकल उसे ऐसा कोई मौका ही नहीं मिलता कि वह थोड़ा हंस सके। शैल दी को सुनाने के लिए ही वह अपनी सुरीली हंसी का उपयोग कर रही थी। उसने देखा, उसका यह प्रयास व्यर्थ नहीं गया।

शैल, खुद भी लगता है, अवाक हो गई। भला हंसी में ऐसी झंकार उठती है! शैल भी हंसी।

"अरे! सिर्फ मलेरिया का ही तो डर नहीं है, और भी कितने तरह के डर हैं। अब तुझे क्या बताऊं? यहां अकेली आकर मैं कहीं गुम न हो जाऊं, इसीलिए अपने लक्ष्मण भाई को साथ में भेजा है।"

"लगता है, मलेरिया उन्हें नहीं छुएगी? जैसे मलेरिया उनकी कुछ लगती है !"

चम्पी फिर हंसी। अब वह हर बात हंसेगी। हंस रही है। वह समझ गई है, शैल की हंसी का रंग इसी बीच एकदम बुझ गया है। शैल हंस तो रही है, मगर चम्पी की हंसी के सामने उसकी हंसी कितनी मटमैली लग रही है !

चम्पी ने कहा, "अपनी जान का दाम तो अठारह आना और बाकी सब नीलाम वाले छः-छः पैसे।"

"क्या बात कही तूने !"

इस बार शैल और चम्पी दोनों एक साथ हंस उठीं।

"भाभी, ओ भाभी जी !"

सुहास ने परेशान स्वर में पुकारा। चम्पी के कानों में एक हल्की लड़कियों जैसी पतली आवाज बज उठी। शैल दीदी का देवर। बाप रे! छोकरे को अपनी भाभी से बड़ा प्यार है।

चम्पी की हंसी फूट पड़ी। खिल, खिल, खिल, सुरीली हंसी। कलकत्ते के लोग सोचते हैं जैसे गांव देहात में आदमी रहते ही नहीं।

चम्पी ने कहा, "यह लो, शैल दी, लगता है, तुम्हारे प्यादा महाशय आ धमके। अब तुम जाओ, कहीं उन्हें मलेरिया न लग जाए।"

इस पर शैल और चम्पी इतने जोर से हंसी कि शैल का देवर एकदम भौंचक रह गया। फिर शैल उठ खड़ी हुई।

चम्पी से कहा, "कल दोपहर में आओ न, भाई। थोड़ी बातचीत हो। और कौन है ही यहां !"

चम्पी ने कोई जवाब नहीं दिया। वह कान उटेरे शैल दी के देवर की बातें सुनने लगी थी।

सुहास कह रहा था, "शाम को पोखरे के पानी में नहा रही हो? बुखार आ गया तो? माना कि बाप के यहां की सभी चीजें अच्छी लगती हैं, तो क्या इसीलिए मलेरिया भी अच्छी है?"

अचानक चम्पी को सुनाई पड़ा, "भाभी जी, कौन हंस रहा था? बड़ी सुंदर हंसी है, है न!"

शैल की खुश आवाज सुनाई पड़ी, "वह बड़ी गुनी लड़की है, देवर जी। उसकी हंसी ही सुंदर नहीं है, उसमें और भी अनेक गुण हैं।"

चम्पी को और कुछ सुनाई न पड़ा। शैल दी के इस एक ही वाक्य से उसकी आंखों में आंसू आ गए। रोज की अवहेलना, उपेक्षा, विद्वेष और विद्रूप के बीच जैसे अचानक ईश्वर ने ही शैल दी के मुंह से यह प्रशंसा भेजी है। बहुत-बहुत दिनों बाद चम्पी के मन के बंद दरवाजे खुले। अंधेरा छंट गया। उसके मन में खुली हवा दौड़ भाग करने लगी। एक अकारण खुशी सारे दुखों को ठेलती ऊपर उठने लगी। उसका मन जैसे गुनगुनाने लगा।

शैल ने जब चम्पी को अपने घर आने का न्यौता दिया था, तब चम्पी ने उसकी बात का कोई जवाब नहीं दिया था। कारण यह कि चम्पी आजकल कहीं आती-जाती नहीं, जबकि पहले जूथी की उम्र तक वह मोहल्ले में खूब घूमती-फिरती थी। कितनी ही लड़कियां उसे बुलाकर अपने घर ले जाती थीं। उससे आसनी बनाना सीखती थी। कितनी लड़कियों को उसने ऊन की आसनी बनाकर दी है इसका कोई ठिकाना ही नहीं। आसनी बनाना सीखने के लिए लड़कियां उसे बुलाकर ले तो जाती थीं, मगर कोई भी सीखती न थी। पैसा खर्च करके वे सामान खरीदतीं। अच्छे-अच्छे टाट के टुकड़े, ऊन, लेस, रंगीन धागे और कढ़ाई के दूसरे सामान। जोड़-तोड़ करके आसनी बनाना शुरू भी करतीं, मगर उसके बाद उनका मन न लगता। किसी में भी काम पूरा करने का उत्साह न होता। वे परिश्रम करना नहीं चाहतीं। दो-चार फंदे डालकर काम को रख छोड़ती थीं। चम्पी वह सब अपूर्ण काम अपने घर ले आ ी थी। देर रात तक जागकर उन्हें पूरा करती थी। फिर जिसकी चीज होती उसे दे आती।

एक और काम भी वह करती। अच्छे-अच्छे ऊन, कपड़ों के टुकड़े, लेस और क्रोसिया वह छुपाकर रख लेती। टूनी नाम की एक खुशमिजाज लड़की थी, इसी शैल दी की चचेरी बहन। बड़ी काहिल थी। वह भी अपने काम चम्पी से करवाती। चम्पी ने उसकी एक कैंची चुरा ली थी। टूनी को उस पर संदेह तो हुआ था, मगर मुंह खोलकर उसने चम्पी से कुछ न कहा था। फिर भी सभी घरों में कह आई थी कि चम्पी चोर है। इसके बाद से ही सभी उसे संदेह की नजर से देखने लगे। चम्पी को जिस दिन इस बात का पता चला वह बुरी तरह आहत हुई। अपमान से उसका चेहरा काला पड़ गया। वह चोर है ! चोर? क्या इसे चोरी कहते हैं? ऐसी सुंदर चीज तेरे हाथ में रहती तो इसे जंग लग जाता। किसी काम न आती। मैं इसे काम में लगा रही हूं तो मैं चोर हो गई! मगर चम्पी को खुद अपने तर्क खोखले लगते। उसे लगता, उसने ठीक नहीं किया। दरअसल उसने चोरी ही की है। इसीलिए आजकल वह कहीं निकलती नहीं। कई बार उसने सोचा है कि कैंची लौटा ही आए। टूनी से कह देगी भूल से उसके पास आ गई थी। यह लो भाई, तुम अपनी चीज। देख लो, इसे खराब नहीं किया है।

मगर चम्पी ऐसा न कर सकी। ऐसा करना आसान भी न था। टूनी बड़ी बकबकिया लड़की है। वह और भी कितने कलंक उस पर लगा देती। इससे तो अच्छा है कैंची लौटाई ही न जाए। कह दिया, नहीं लिया है, तो नहीं लिया है। जिसके मन में जो आए सोचे। चम्पी अपने मन से तो किसी के घर जाती नहीं। अब बुलाने पर भी नहीं जाएगी।

वह आजकल सचमुच कहीं नहीं जाती। टूनी की शादी हो गई। वह गांव छोड़कर चली गई। फिर भी चम्पी घर से नहीं निकली। आजकल उसे घर से निकलने की इच्छा ही नहीं होती।

इसीलिए शैल के बुलाने पर उसने हां-ना कुछ न कहा था। मगर शैल के मुंह से अपनी प्रशंसा सुनने के बाद उसका मन घूम गया। वह बड़ी गुणी लड़की है। गुणी लड़की, उसका भी कोई मूल्य है। वह तुच्छ नहीं है, बेकार नहीं है, गुणी लड़की है। सारा दिन यह बात उसके मन में बजती रही। अनेक बार इससे उसका मन खुशी से झूम उठा है। घर का प्रत्येक आदमी, प्रत्येक काम उसे आज असामान्य लग रहा है।

शैल दी खुद अच्छी हैं, इसीलिए सभी को अच्छी नजरों से देखती हैं, घर के काम खत्म करके भीगे गमछे से मुंह पोंछती-पोंछती चम्पी सोचने लगी। उसने घर के बाहर झांककर देखा, धूप बहुत कड़ी थी। इतनी धूप में जाएगी? एक बार उसने सोचा। नहीं। फिर मन हुआ एक बार घूम ही आए, वर्ना शैल दी जाने क्या सोचें! कितने दिनों बाद देश आई हैं। कौन जाने अब फिर आएंगी भी कि नहीं, फिर उनसे मुलाकात होगी भी या नहीं? कितनी ही लड़कियों के ब्याह हुए, वे गांव छोड़कर चली गईं। क्या उनसे फिर मुलाकात होती है? एक दिन वह भी तो चली जाएगी। मगर उसकी ससुराल शैल दी की तरह कलकत्ता

में तो नहीं ही होगी। कौन जाने उसका अन्न-जल किस निपट देहात में लिखा है?

घुमा-फिराकर फिर वही बात मन में आती है, ब्याह की बात। रात-दिन यही भावना चम्पी का पीछा करती रहती है। क्या इससे वह किसी तरह भी निस्तार नहीं पा सकेगी?

घर में धुली धोती पहनकर चम्पी तैयार हो गई। चम्पी के पास कुर्ती न थी। एक मोटी समीज से उसने अपनी सबसे बड़ी लाज ढक रखी थी। बार-बार वह अपना आंचल उसके ऊपर खींच लेती थी। फिर चम्पी को लगता था, जैसे वह पर्याप्त नहीं है। बहुत दिनों से घर से नहीं निकली है। कदम-कदम पर दुविधा उसे घेर रही थी।

निकलने लगी तो उसकी मां ने कहा, "ओ रे, तू अपनी फूलू काकी से कहना, शैल को लेकर एक दिन आ जाए। कितने दिन हुए उन्हें देखा ही नहीं। और देवर जी से पूछना, तेरे संझले काका का कोई समाचार उन्हें मालूम है?"

बख्शी बाड़ी की टूटी ड्योढ़ी के भीतर जैसे चम्पी के पांव ही नहीं उठ रहे थे। बख्शी लोगों का दालान पक्का और बहुत बड़ा है। उनके पट्टीदारों का अंत नहीं है। इसीलिए मकान का कोई हिस्सा तो चमाचम कर रहा है, और कोई एकदम खंडहर हो रहा है। सभी लोग गांव में नहीं रहते, कई लोग तो कभी आते भी नहीं हैं। टूनी के बाप ने झिनैदा में मकान बनवा लिया है और वहीं रहने लगे हैं। कूल बख्शी एक तरह से अब झिनैदा के ही निवासी हो गए हैं। शैल दी के पिता ससुराल की संपत्ति पाकर कलकत्ता रहने लगे हैं।

पूजाघर के दालान में से गुजरती हुई चम्पी की आंखों के सामने उसके बचपन की धूमधाम की तस्वीर नाच उठी। शैल दी के दादा जी तब जीवित थे। कितनी ही बार वह यहां जात्रागान, कीर्तन, टप्पा आदि सुनने आई है, इसकी कोई गिनती नहीं है। एक बार तो यहां थियेटर भी हुआ था। चम्पी का दुर्भाग्य कि वह उस समय बुखार में अचेत पड़ी थी। जीवन की इतनी बड़ी खुशी का मौका उसने गंवा दिया।

पूजाघर का दालान पार करके बाएं हाथ की तरफ पारुल की बुआ का मकान है। सुना है, छोटे काका पारुल के लिए संन्यासी हो गए थे। गांव के कुछ लड़कों ने इसे लेकर गाना बनाया था, "पारुली-पारुली क्या किया, भूषण का कच्छा खुलवा दिया।" चम्पी को हंसी आ गई।

इसके बाद टूनी के परिवार का हिस्सा है। टूनी की विधवा बुआ यहां रहती हैं। टूनी के पूरब ओर का दालान शैल दीदी का है। मकान दोतल्ला है। ओ बाबा ! बाहर के कमरे में कितने लोग जमा हैं। सुबल काका तो, देख रही हूं, खूब गोरे हो गए हैं। सिर गंजा होना शुरू हो गया है। आंचल खींचकर अपनी छातियां ढकती हुई चम्पी आगे बढ़ी। इतने सारे पुरुषों के सामने अचानक आ पड़ने से उसे बहुत शर्म आ रही थी। पता नहीं, केवल समीज पहनकर बाहर निकलने पर इतनी परेशानी क्यों होती है। समीज के भीतर जो लज्जा ढकी है उसका अस्तित्व हर पल बेधता रहता है। बार-बार डर लगता है, कहीं दिख न जाए।

सुबल काका की गंभीर आवाज सुनाई पड़ी। वे किसी से पूछ रहे थे, "विलास की लड़की है न?"

किसी और ने जवाब दिया, "हां ! विलास इसका शादी-ब्याह कर नहीं रहा है। घर में बिठाए हुए है।"

सिर नीचा किए चम्पी भीतर घुस गई। उसने उपेक्षा का जो कवच पहन रखा था, उसे पहनना भूल ही गई थी। इसलिए अचानक चलाया हुआ यह बाण उसके मन में जा बिंधा। वह क्यों मरने आ गई यहां? यह ठीक नहीं हुआ।

फूलू चाची पलंग पर सोई हुई थीं। एक नौकरानी झालरदार पंखे से उन्हें हवा कर रही थी। चम्पी को देखकर वे खिल उठीं।

"आओ बेटी, आओ। अरे रहने दो, रहने दो। लेटे हुए आदमी के पांव नहीं छूते। जीती रहो, जीती रहो। जेठ जी, बड़ी दीदी, दादी सब ठीक हैं न?"

फूलू काकी की बातों से चम्पी का मन शांत हो गया। देखो तो, बड़े घर की बेटी और इतने बड़े घर की बहू, मगर जरा भी घमंड नहीं।

चम्पी ने एक-एक करके फूलू काकी के सारे सवालों का जवाब दिया।

फूलू काकी ने कहा, "अच्छा, बता तो हमारे संन्यासी देवर की क्या खबर है? सुना है,शादी हो गई। बहू कैसी है?"

फूलू काकी की बातें सुनकर चम्पी खिखिलाकर हंस पड़ी।

ऊपर से शैल की आवाज सुनाई दी, "कौन हंस रहा है, मां? चम्पी आई है क्या?"

फूलू काकी ने कहा, "हां, बस चली आ रही है। धूप में एकदम झुलस गई है। जरा ठंडा हो ले, फिर भेजती हूं। अरे चारी, जरा जोर से हाथ हिला न। बच्ची की देह में थोड़ी हवा लगे।"

चारी खौंखिया उठी, "मैं कोई मशीन तो नहीं हूं, बच्चा, जो फर-फर करके दिन-रात चलती रहूंगी। हाथ एकदम भर गए हैं। जहां पर बिजली नहीं है वहां क्या आदमी नहीं रहते। रात होते ही घुप्प अंधेरा। पता भी नहीं चलता कि पांव सांप के ऊपर पड़ रहे हैं या बिच्छू के। डर से जान निकलती रहती है। हे काली माई !"

चारी की बातें, शैल दी के पति की बातें, और उसके उस छोकरे देवर की बातें, जैसे सब एक स्वर में बोल रहे हों। ये सब कलकत्ते के लोग एक ही जैसे हैं।

"चुप रह बच्ची, चुप रह, तुझे साथ लाकर ही गलती हो गई। तुझे कल ही कलकत्ता भेज देती हूं।"

"हां, भेज दो। मैं इस जंगल में अब और नहीं रह सकती।"

"तुम्हें यह जंगल क्या निगल ले रहा है। चुप कर, जरा बात करने दे। हां तो मैं क्या कह रही थी? हां, हमारे संन्यासी देवर की बहू कैसी है?"

चम्पी ने अपनी छोटी काकी की बहुत प्रशंसा की।

"और बच्चा भी बहुत सुंदर हुआ है, काकी! देखने में एकदम छोटे काका की तरह है। कितनी शरारत करता है। थोड़ा-थोड़ा चलना भी सीख गया है। उसे संभालना मुश्किल है।"

"ओ मां, तुम कितनी देर चम्पी को रोके रखोगी। मेहरबानी करके अब उसे छोड़ दो।"

फूलू काकी ने कहा, "जाओ बेटी, जाओ, जाओ। शैल तो हमेशा चम्पी-चम्पी ही करती रहती है। यहां उसका और कोई संगी-साथी भी तो नहीं। दोनों बेटे भी साथ नहीं आए हैं। शैल को अभी भी गांव से लगाव है। कहते ही एकदम राजी हो गई। उसके एक देवर ने कभी देहात नहीं देखी थी। वह भी आने को राजी हो गया। वह भी बहुत खुश है। सभी एक साथ आ गए।"

"मां !"

अब फूलू काकी चिढ़ गईं।

"इस लड़की के ढंग तो देखो, जैसे मैं चम्पी को खा डालूंगी। वह क्या भीमनाथ का संदेश है कि मैं उठाकर टप से मुंह में रख लूंगी। इतने दिनों पर गांव आई हूं। लोगों के साथ दो-चार बातें करूंगी, मगर ये लोग करने दें तब न! इस लड़की का यही हाल है। जाओ बेटी, जाओ। वर्ना चीख-चीखकर पूरा घर सिर पर उठा लेगी।"

चम्पी फिर खिलखिलाकर हंस पड़ी। अभी भी शैल दी वही छुटपन की दुलारी बेटी बनी हुई हैं।

काफी हल्के मन से चम्पी सीढ़ियों से ऊपर आ गई। मकान बहुत दिनों से बंद था, इसलिए एक तरह के बासीपन की गंध अभी गई न थी। उस दुर्गंध के बीच भी किसी सुगंधित पाउडर या इत्र की सुगंध चम्पी की नाक में गई। शैल के कमरे में घुस ही रही थी कि कुछ देखकर चौखट के बाहर ही ठमक कर खड़ी हो गई। शैल दी के बिस्तर पर वह कौन आदमी लेटा पड़ा है? चम्पी को घबराहट हुई।

शैल ने पुकारा, "आओ भाई चम्पी, भीतर आओ। इससे क्या शर्म? यह मेरा देवर है।"

सुहास ने हसंते हुए कहा, "या फिर कह सकती हैं, भाभी का वही प्यादा।"

यही वह छोकरियों जैसी मिनमिनाती आवाज है जो कल शाम को चम्पी ने सुनी थी। प्यादा शब्द जसोर की तरफ जैसे बोलते हैं, वैसे ही कहा गया था। चम्पी को हंसी आ रही थी, मगर वह हंस नहीं पाई। कमरे में लजाती हुई घुस गई और सिर नीचा किए एक किनारे पर खड़ी हो गई। खड़े-खड़े उसे पसीना छूटने लगा। कल शाम को सुहास की आवाज सुनकर चम्पी ने सोचा था, हद से हद बारह या तेरह साल का छोकरा होगा। वह इतना बड़ा होगा, चम्पी ने सपने में भी नहीं सोचा था। इस बारे में उसे जरा भी संदेह होता तो

वह आज आती ही नहीं। कम से कम इस तरह नहीं आती।

साड़ी हालांकि साफ है, मगर कई जगह से सिलाई की हुई है और समीज भी ढीली है। ढीली समीज की परेशानी हजार गुना बढ़ गई। चम्पी अपने बारे में अत्यंत सचेत हो गई। जीवन में पहली बार एक अपरिचित युवक के इतने निकट वह आ पाई है। शैल दी पास में है, इससे क्या !

सुहास उठकर बैठ गया।

बोला, "भाभी जी, तुम बिस्तर पर बैठो। मेरा चेयर छोड़ दो।"

कितना स्पष्ट और बेलाग उच्चारण है! चम्पी ने सोचा, भले ही इसका गला लड़कियों जैसा है, मगर इतने सुंदर तरीके से बात करने वाला कोई लड़का क्या इस गांव में है। नहीं, नहीं, करके भी चम्पी ने कनखी से उसकी तरफ एक बार देख ही लिया। रंग बहुत साफ नहीं है, चेहरा भी ऐसा कोई सुंदर नहीं है, फिर भी सुहास उसे बहुत अच्छा लगा। पहली बार उसकी नजरों के सामने एक नए ढंग का युवक आया था। इतने अच्छे ढंग से हजामत किए चिकने गाल चम्पी ने किसी और पुरुष के नहीं देखे थे। इतनी गर्मी में भी उसने एक पतला कुर्ता पहन रखा था। भीतर से उसकी सैंडो बनियान और सुहास की छाती और हाथों की बनावट झांक रही थी। उसकी धोती पांवों की पिंडलियों तक को ढके हुए थी। सुहास कितना वजनदार ढंग से बोलता है। एक पल में चम्पी के मन पर सुहास के उस रूप की गहरी छाप पड़ गई। चम्पी इससे और भी लजा गई, पसीना-पसीना हो उठी।

सुहास नीचे उतर आया। अब चम्पी से उसकी दूरी डेढ़ हाथ से भी कम थी। कैसी तो मृदु और मनोरम सुगंध सुहास की देह से निकलकर चम्पी की नाक में आ घुसी। सीढ़ियां चढ़ते हुए भी उसे ऐसी ही गंध मिली थी। अभी तक चम्पी ने नंगी देह, घुटनों के ऊपर धोती उठाए, बक-बक करने वाले गांव के जिन युवकों को देखा था, वे सभी सुहास के सामने असभ्य, जंगली भूत और निरर्थक लगे।

"बैठिए, खड़ी क्यों हैं?"

सुहास ने उसे आप कहकर संबोधित किया। उस गंवार, काली और उम्रदराज चम्पी को इसके पहले इतना सम्मान किसी ने न दिया था। चम्पी को लगा, क्या सचमुच यह सब घट रहा है, या कि वह दिवास्वप्न देख रही है।

"हम जाने कब से आपकी प्रतीक्षा में बैठे हैं।"

चम्पी ने सोचा, हमारे लिए ये लोग प्रतीक्षा कर रहे हैं, हमारे इंतजार में बैठे हैं? कहीं मजाक तो नहीं कर रहा सुहास !

"जानती हो चम्पी? देवर जी को पता नहीं क्यों ऐसा लगा था कि तुम आओगी ही नहीं।"

"सचमुच मुझे तो ऐसा ही लगा था।"

सुहास बाबू और कलकत्ते के सभी लोग सुंदर वन के बाघों की तरह अलग तरीके से बोलते हैं। चम्पी ने यह बात कहीं सुनी थी। अब देखा, वह बात सच ही थी।

"मैंने ऐसा क्यों सोचा था, जानती हैं? भाभी जानती हैं। बात यह है कि मैं मन ही मन जिस चीज की आशा करता हूं वह नहीं होती। मैंने बहुत आशा की थी कि आप आएंगी। इसीलिए सोच रहा था, शायद आप न आएं।"

सुहास बाबू मेरे आने की आशा कर रहे थे! मेरे! सब मन बहलाने की बातें हैं। फिर भी, इस तरह मन बहलाने के लिए भी, झूठी ही सही, कितने लोगों ने चम्पी से ऐसी अच्छी बातें की हैं? चम्पी काली है, चम्पी हथिनी है, चम्पी चोर है, ऐसी ही अनेक कठोर बातें वह रोज सुनती आई है। ये बातें सच हैं, मगर सत्य केवल उसे पीड़ा देता है, दुख देता है। उसके मन में सत्य के प्रति कोई आकर्षण नहीं। वह जानती है, कलकत्ते से आया यह शिक्षित, परिमार्जित और सुंदर वेशधारी तरुण उससे निछक झूठ बोल रहा है। मेरे लिए ये उम्मीद लगाए, इंतजार किए बैठे थे ! मैं ऐसी कौन-सी ऊंची चीज हूं? जैसे मैं महारानी विक्टोरिया हूं! इंग्लैंड की महारानी के बारे में अभी भी चम्पी को याद है। छात्रवृत्ति की परीक्षा में प्रश्न आया था। उसने लिखा था—दयामयी महारानी विक्टोरिया जिस पथ से आती हैं, उस पथ के दोनों ओर आबालवृद्धवनिता उनके दर्शन के लोभ में घंटों खड़े रहते हैं। इंग्लैंड की वह महारानी कौन है? चम्पी को याद है, उसने लिखा था—महारानी विक्टोरिया। इस समय सुहास की बातों से लगता है जैसे वह भी इंग्लैंड की महारानी के पद पर पहुंच गई है। घंटों से ये लोग उसके दर्शन की आशा में प्रतीक्षा कर रहे हैं। अजूबा और किसे कहते हैं? कलकत्ते के लोग बड़े चालू होते हैं। हों चालू। बोलें झूठ। फिर भी वह झूठ सुनने में अच्छा लगता है। चम्पी के बारे में एक सुरुचिपूर्ण पुरुष को झूठ बोलने की इच्छा होती है, चम्पी के लिए यही काफी है। सुहास के प्रति चम्पी कृतज्ञ हुई। उसने उसका दाम बढ़ा दिया है। सुहास जैसे नीलामी करने वाले का नकली खरीददार है। चीज खरीदेगा नहीं, मगर बोली ऊंची करवा देगा। जिस लड़की को किसी ने कभी कानी कौड़ी बराबर भी नहीं समझा, उसके लिए इतना ही काफी है।

चम्पी इससे खुश ही हुई।

शैल ने कहा, "सच चम्पी, लेखक हैं न, कल शाम को अंधेरे में तुम्हें देख नहीं पाए थे, केवल तुम्हारी हंसी सुनी थी। उसी से हमारे देवर जी की कविताई जाग उठी थी। कल से ही हम दोनों सिर्फ तुम्हारी बातें कर रहे हैं।"

सपना, सपना, यह सिर्फ सपना है। झूठ, झूठ, यह निछक झूठ है। अभी, इसी क्षण, इसी असंभव और अजूबे स्वप्न को देखते-देखते मैं मर क्यों नहीं जाती? इतनी उपेक्षा, इतना अपमान, इतनी अवहेलना और घृणा सह-सह कर भी मैं जिसलिए आज भी जिंदा

हूं, मन के किसी गहराई में जो आशा चुपचाप पाल रही हूं कि एक दिन कुछ मिलेगा, ऐसा कुछ, जो दिन-रात की इस दीनता और ग्लानि के पार हमें एक नए जीवन में, नए बाजार में ले जाएगा, जहां नए सिरे से मेरा मूल्यांकन होगा, क्या यह वही है। और आज अगर भाग्यवश मुझे वह क्षण मिल गया है, मेरी वह आकांक्षा पूर्ण हो गई हैं, तो हे भगवान, हे मदनमोहन, हे शिवशंकर, हे मां भगवती, अगर मैंने इतने दिनों से शुद्धचित्त से तुम लोगों की पूजा की है, तो मुझे उसका फल दो, मुझे अपनी गोद में उठा लो। मेरे जीवन में आने वाला कल न आए। मैं काली हूं, काली हूं, कुछ नहीं हूं, कुछ नहीं हूं, इस भयंकर और कठोर सत्य के तीखे दांतों के बीच मुझे अब और मत फेंको, दुहाई है तुम्हारी!

"आप गाती हैं? जरूर गाती होंगी !"

चम्पी वह बात नहीं सुन सकी। उसका मन प्रार्थना में लीन था।

"देवर जी, तुम तो जैसे ज्योतिषी हो। हमारे गांव में यही तो है जो कुछ जानती भी है।"

यह बात भी चम्पी के कानों में नहीं पहुंची। उसे लगा, सुहास और शैल धीरे-धीरे उसके पास से पीछे हटते जा रहे हैं। उनकी बातचीत सुनाई नहीं दे रही है, जैसे गूंगों की तरह वह सिर्फ अपने होंठ हिला रहे हैं। बड़ी दूर चले गए हैं वे। खिड़की के बाहर शून्य में तैर रहे हैं। एक तेज रोशनी उन्हें घेरे हुए है। बीच-बीच में वे उंगली से इशारा करते हैं। हंसते हैं। नहीं, सुहास की आंखों में, शैल दी की आंखों में कोई विद्रूप नहीं हैं, कोई अवहेलना नहीं हैं। जाने सुहास ने उससे क्या कहा। फिर कहा। उसकी आंखों में विस्मय है। शैल दी उससे कुछ कह रही हैं। दुबारा कह रही हैं, तिबारा कह रही हैं। क्या वे दोनों गूंगे हो गए? नहीं, केवल वे दोनों नहीं, सारी दुनियां स्तब्ध हो गई है। सारी दुनिया से जैसे ध्वनियां लुप्त हो गई हैं। अब कभी कोई उसे बुरी बात नहीं कह सकेगा। किसी ने कहा भी तो वह सुन नहीं पाएगी। अच्छा हुआ। जैसे उसका दम अटक रहा हो। अटकने दो। ध्वनियां, हवा, शैल दी, सुहास, जूथी, मां-पिताजी, यह संसार, दुनिया सब इसी क्षण समाप्त हो जाएंगे। चम्पी भी खत्म हो जाए। उसे अब और कुछ नहीं चाहिए।

मगर बड़ी तकलीफ है ! बेहद तकलीफ ! ओह ! हवा ! हवा ! यह क्या हुआ? छाती में यह कैसा दर्द है ! जैसे कोई विशाल पत्थर उसकी सांस की नली में अटक गया है। वह हट नहीं रहा है, हट नहीं रहा है। रह-रहकर हजारों बरछे जैसे चम्पी की छाती में धंसे आ रहे हैं ! ओह ! ओह !

तो क्या चम्पी मर रही है? क्या यही मुक्ति है? इतनी यंत्रणा ! नहीं-नहीं, तब वह नहीं मरेगी। मरना नहीं चाहेगी, नहीं चाहेगी, नहीं चाहेगी। और चम्पी यंत्रणा के गहरे खड्ड में गिर पड़ी।

सुहास बाबू, सुहास बाबू, अपना हाथ बढ़ाइए, हाथ आगे बढ़ाइए, चम्पी जोर से चीख

उठी, मगर सुहास तो शून्य में तैर रहा है। इतनी जल्दी आगे नहीं आ पा रहा। मगर आखिर में वह पास आ गया है। उसने चम्पी की ओर हाथ भी बढ़ाया, मगर चम्पी उसे पकड़ पाती इसके पहले ही सुहास उलट गया। चम्पी शाम के गहरे अंधकार में लुप्त हो गई।

पांच

बहुत ऊंचे, बहुत ऊंचे आकाश की गोद में बादल का एक सफेद टुकड़ा तैर रहा था। दूध की तरह बेहद सफेद। और उसके चारों ओर जैसे लहरों की झालर थी।

फिर बादल का वह टुकड़ा नीचे उतरने लगा। उतरते-उतरते एकदम चम्पी के सिर के पास आकर थम गया। जाने किसने उसके चारों कोनों पर रस्सी बांधकर उसे टांग रखा था, ठीक मसहरी के चंदोवे की तरह। ओ मां ! मसहरी ही तो है ! एकदम साफ-सुथरी जालीदार, झालर लगी मसहरी। उसके घर की ललछोंही, मैली, बदबूदार मसहरी नहीं, जिसमें चारों ओर कई रंगों की सिलाई की हुई है, और जगह-जगह जिसमें रस्सी बंधी हुई है, जिसके चारों कोनों पर खटमल मारने के निशान हैं और बदबू है, यह वह मसहरी तो नहीं है। इसमें जरा भी बदबू नहीं है। जालीदार मसहरी के छेदों को जैसे चीनी मिट्टी के चौकोर दानों की तरह बराबर माप कर काटा गया है।

इस मसहरी में कौन लोग सोते हैं? वे ही लोग, जिनके बारे में छुटपन में उसने दादी मां के मुंह से कहानियां सुनी हैं। वही शंखमाला, कांचनमाला, मणिमाला आदि राजकुमारियां इसमें सोती होंगी। सोने के पलंग पर चिड़ियों के नरम पंखों के बिछौनों पर वे सोती हैं। उनके सिरहाने घी के प्रदीप जलते है। कालपरी और निद्रापरी जब उनके नगर के ऊपर से उड़ती हैं तो उन राजकन्याओं का रूप देखकर आकाश में ही ठहर जाती हैं और आपस में बातें करती हैं, इस राजकन्या के योग्य वर उज्जयिनी का सुंदर राजकुमार रूपकुमार ही हो सकता है। चलो आज इन्हें मिला दें। इतना कहकर वे राजकन्या की आंखों में नींद का काजल लगाकर पलंग समेत उसे ले जाकर राजकुमार रूपकुमार के देश में पहुंचा देती हैं। यह मसहरी उसी राजकन्या या उसी राजपुत्र की है।

चम्पी यहां कैसे आई? उसने अपनी नजरें चारों ओर घुमाई तो एक जोड़ा व्यग्र आंखों में उसकी नजरें आ अटकी हैं। ये आंखें चम्पी की जानी-पहचानी हैं। उसने जैसे स्वप्न में ही यह चेहरा देखा है। स्वप्न के अलावा ऐसा सुंदर चेहरा उसके पास और कौन ला सकता है? अभी भी तो वह स्वप्न ही देख रही है।

चम्पी को आंखें खोले देखकर वह सुंदर चेहरा हंसी से भर गया। चिंता से भरी दो

बड़ी-बड़ी आंखें एक पल में साफ सुथरी हो उठीं। चेहरे पर झलकती हंसी आंखों तक फैल गई। चम्पी ने देखा, उस सुंदर चेहरे वाले व्यक्ति के एक हाथ में पंखा है। वह जी-जान लगाकर पंखा झल रहा है। उसकी मुट्ठी में बंद पंखे की डंडी पर चम्पी की नजर पड़ी। वह बहुत नरम बिछौने पर लेटी है। क्या चिड़ियों के पंखों से बना गद्दा ऐसा ही नरम होता है।

हंसी से भरे उस चेहरे को देखकर चम्पी के चेहरे पर भी एक क्षीण हंसी आ गई। चम्पी उस हंसी को नहीं देख पा रही थी, देख रही थी उस व्यक्ति को, जिसकी आंखों में वह हंसी इन्द्रधनुष के रंग फैला रही थी।

"अरे भाभी जी, देखिए न, इन्होंने आंखें खोल दीं।"

चम्पी ने सुना, एक लड़कियों जैसी आवाज, जिसमें चिंता और व्यग्रता फूटी पड़ रही थी। साथ-साथ ही उसने देखा कि उन दोनों आंखों में उभरने वाले इन्द्रधनुषी रंग मिट गए। दो चमकती हुई उज्ज्वल आंखों के तारे उसकी तरफ टोह लेती नजरों से देख रहे थे। इन आंखों को वह पहचानती है और उस लड़कियों जैसी आवाज को भी। यह तो सुहास बाबू हैं।

मगर सुहास बाबू उसकी तरफ ऐसे क्यों देख रहे हैं? उसने सुहास बाबू को अपने इतने नजदीक क्यों आने दिया? चम्पी परेशान हो गई। छिः, छिः ! वह जल्दी से उठने लगी। तुरंत सुहास ने उसके माथे पर हाथ रखकर उसे फिर सुला दिया। चम्पी की पूरी देह में जैसे एक उत्ताप लहरा गया। बात क्या है? वह कहां है?

"उठो मत बेटी, उठो मत। इतनी गर्मी में, इतना लंबा रास्ता चलकर आई हो। लगता है, इसलिए तुम्हें चक्कर आ गया है। नहीं, अभी पड़ी रहो। मैं थोड़ा गरम दूध भेजती हूं।"

फूलू काकी की आवाज थी। हां, वही हैं। सामने कुर्सी पर बैठी हैं। और शैल दी उनके घुटनों के पास बैठी हैं। वह बेहोश हो गई थी क्या? छिः ! छिः ! यह क्या किया? फूलू काकी उठकर चली गई।

शैल ने कहा, "मैं और देवर जी अपने आप बोले जा रहे थे। यह किसी बात का जवाब ही नहीं दे रही थी। मैं सोच रही थी इसे क्या हुआ? अंत में यह हुआ। बाप रे, मैं तो डर के मारे मर ही गई थी।"

सुहास ने कहा, "डरकर मरने में एक सुविधा है, हाथों में दर्द नहीं होता। मैं तो हवा करते-करते मर गया।"

सुहास ने अपने हाथों से अद्भुत मुद्रा बनाते हुए दिखाया कि दोनों हाथ बेकार हो गए हैं और मुंह बनाते हुए बोला, "अगर पहले से जानता तो डर से मर जाने की ही कोशिश करता, कम से कम हाथों के दर्द से तो बच जाता।"

सुहास की बातों से सभी हंस पड़े। चम्पी को शर्म आई, मगर वह भी हंस पड़ी।

एक पल बाद चम्पी बोली, "मैं अब चलूंगी।"

सुहास ने कहा, "देखिए, उठ तो रही हैं, मगर दुहाई है, अबकी गिरिएगा नहीं। अगर फिर गिरीं तो इस बार मैं आपको पंखा नहीं झल सकूंगा।"

चम्पी लजाती हुई उठ कर बैठ गई। सिर नीचा किए वह शर्म से पसीना-पसीना होने लगी। सचमुच उसने बड़ा तमाशा कर डाला। वह क्यों बेहोश हो गई थी? छिः छिः !

शैल ने सुहास को डांटा।

"यह क्या देवर जी, भला ऐसे कहीं कहते है? छिः!" फिर चम्पी से बोली, "चम्पी, तुम इनकी बात का बुरा न मानना। ये तो ऐसे ही हैं। दिन-रात जिस-तिस के पीछे पड़े रहते हैं।"

सुहास ने हंसते हुए कहा, "अब तो आपने हमारी कीर्ति सुन ही ली। अब बाकी क्या रहा? भाभी जी की बातें सुनकर तो मुझे ऐसा लग रहा है कि इन्होंने आपके गुणों की जो फेहरिश्त हमें थमाई थी वह भी उतनी ही सच है जितनी मेरे बारे में कही गई इनकी बात।"

सुहास की बातें सुनकर चम्पी ने अचकचाकर शैल की ओर देखा। उसका चेहरा जैसे पूछ रहा था, शैल दी ने क्या कहा? तुम लोग आपस में क्या बातें कर रहे थे? चम्पी की छाती धड़कने लगी। चम्पी को विशेष रूप से वे गलतियां याद आने लगीं, जो उसने अब तक की थीं। क्या उसने टूनी की जो कैंची चुराई थी वह शैल दी को मालूम है? क्या ये उन दिनों यहां थीं? भले यहां न रही हों मगर टूनी चिट्ठी लिखकर इन्हें सूचना तो दे सकती है? एक पल के लिए लोभ में पड़कर उसने कितनी बड़ी गलती कर डाली थी, इसका एहसास इस समय सुहास के सामने बैठे-बैठे हो रहा है। सुहास बाबू क्या वह बात जानते हैं? ये उसके बारे में क्या सोचते होंगे? आपके गुणों की जो फेहरिश्त भाभी जी ने दी है...। कैसी चालाकी से सुहास ने यह बात कही। फेहरिश्त में क्या-क्या लिखा है। क्या यह भी लिखा है कि वह अपने बाप के गले का कांटा बनकर बिनब्याही बैठी हुई है? मगर इसमें मेरा क्या दोष है? उसने मन ही मन सुहास से निवेदन किया। शैल दी ने और क्या कहा है? और क्या-क्या कह सकती हैं? वह झगड़ालू है, अगर एक बार उसका मुंह खुल जाए, तो कोई उसके सामने खड़ा नहीं हो सकता। क्या यह बात भी शैल दी ने कही है? यह सच है कि वह झगड़ालू है, वह गलत बात बर्दाश्त नहीं कर पाती। अपमान उसके कलेजे में तीर की तरह लगता है और वह उसका प्रतिवाद भी करती है। मगर वह झूठमूठ किसी से लड़ने नहीं जाती। इस गांव के दूसरे लोग भी वरन इस मामले में बहुत आगे हैं। अगर कोई उसका अपमान करे तो वह आसानी से उसे नहीं छोड़ती। सुहास बाबू, आप ही बताइए, ऐसे में आप क्या करते हैं? अगर कोई आपका अपमान करे तो क्या आप सह लेते हैं? उसने मन ही मन सुहास से पूछा। इस गांव के लोग उसे किस नजर से देखते हैं, इस बारे में पूरी जानकारी न होते हुए भी चम्पी ने एक धारणा बना रखी है। वैसे यह उनकी हीन भावना है। वह समझती है कि लोग उसे अच्छा नहीं मानते। और इस धारणा को उसने मजबूती से पकड़ रखा है। मगर क्या सुहास ने भी ऐसी ही नजर से उसे देखा है?

वह सुहास भी, जो कलकत्ते का एक शिक्षित तथा सुसंस्कृत युवक है, जो उसे आप कहकर बुलाता है, क्या वह भी उसके बारे में ऐसा ही सोचता है। जीवन में पहली बार एक आदमी ने उसे इतना सम्मान दिया है, उसे घंटों पंखा झलता रहा है, व्यग्र आंखों से उसके चेहरे की ओर घंटों देखता रहा है। "उठिएगा नहीं, उठिएगा नहीं" यह स्वर वह जीवन में कभी भूल नहीं पाएगी। भूल नहीं पाएगी कि सुहास ने उसके माथे पर हाथ रखकर उसे बिस्तर पर लिटा दिया था। उसका हाथ कोमल था या कठोर? जीवन में यह दूसरी बार उसे परपुरुष का स्पर्श मिला है। पहली बार जो स्पर्श मिला था वह बहुत ही कुत्सित था। वासंती पूजा के मूर्ति विसर्जन के दिन चाकला की कचहरी की भीड़-भाड़ में किसी बदमाश में उसका गाल टीप दिया था। उसने उस आदमी को देखा नहीं था, केवल अनुभव किया था कि उस आदमी का स्पर्श बहुत ही कठोर है। सुहास का स्पर्श कैसा था उसने ध्यान नहीं दिया, मगर उस स्पर्श की जो अनुभूति अभी भी उसके शरीर में बनी हुई है, वह उसे खराब नहीं लग रही है। चम्पी नहीं चाहती कि सुहास उसे बुरा समझे। सुहास उसके होश में आने के लिए व्याकुल हो रहा था। सुहास बाबू कभी-कभी बातें बहुत अजीब करते हैं! मगर सुहास बाबू का जो चेहरा होश में आने पर उसने अपने निकट पाया था उसकी दोनों आंखों में उसके लिए गहरी चिंता थी।

शैल ने कहा, "लो, चम्पी से ही पूछ लो, मैंने कोई गलत बात कही है क्या? चम्पी का गला बहुत सुंदर है। इतना अच्छा गाती है !"

सुहास ने कहा, "क्या हमारा भी यह सौभाग्य होगा?"

(सुहास उसके चेहरे की ओर कितनी देर तक देखता रहा !)

शैल ने कहा, "चम्पी, एक गाना सुना दे।"

(जब तक वह बेहोश थी तब तक क्या सुहास बाबू लगातार उसका चेहरा ही देखते रहे? अच्छा, उसे बिस्तर पर किसने सुलाया? क्या सुहास बाबू ने?)

सुहास ने पूछा, "गा सकेंगी क्या? लगता है, अभी इनकी तबीयत ठीक नहीं है।"

(जरूर ही सुहास ने उसे उठाकर बिस्तर पर सुलाया होगा। उसके अलावा उसकी इस भारी देह को उठाकर बिस्तर पर रखना किसके वश में था? चम्पी तो हथिनी है, ढेंकी है।)

शैल ने पुकारा, "चम्पी ! ओ चम्पी !"

(सुहास ने उसे सावधानी से उठाया होगा। सावधानी से बिस्तर पर लिटा दिया होगा और बड़े जतन से पंखा डुलाया होगा।)

"चम्पी, ओ चम्पी, अरे भई कुछ बोलती क्यों नहीं?"

(यत्न, यत्न, यत्न। सुहास जैसे एक युवक ने उसके जैसी मामूली लड़की के लिए कितना कष्ट उठाया ! मैं क्या इस योग्य हूं? यह सच नहीं है, मैं कहती हूं, यह सच नहीं है। यह एक माया है।)

"ऐ, ऐ, आपको क्या हुआ है?"

अचानक सुहास ने चम्पी के दोनों कंधे पकड़कर हिलाए। चम्पी होश में आ गई। क्या हो रहा है। उसकी समझ में नहीं आ रहा था।

सुहास ने फिर पूछा, "क्या बात है? तबीयत कुछ खराब हो रही है क्या?"

चम्पी जल्दी से बोल उठी, "नहीं, नहीं।"

शैल ने पूछा, "तो फिर? लगता है, कमजोरी लग रही है?"

चम्पी ने जल्दी से हां में सिर हिला दिया।

सुहास ने कहा, "भाभी जी, आप जल्दी से दूध ले आइए।"

शैल ने कहा, "अच्छा।"

शैल के कमरे से चले जाने के बाद चम्पी ने पाया कि कमरे में केवल वह और सुहास हैं। उसे बड़ा अजीब लगा। छिः, छिः ! कितनी गंदी बात है ! उसी समय कमरे से बाहर निकल पाती तो चम्पी की जान में जान आती। मगर उसकी हिम्मत न हुई। सचमुच उस समय कमजोरी लग रही थी। उठने की कोशिश में अगर उसे फिर कुछ हो जाए तो? तो फिर इस खाली कमरे में एक बार फिर सुहास... नहीं, नहीं, उससे तो अच्छा है वह चुपचाप बैठी रहे। मगर इस तरह कमरे में सुहास के साथ अकेले बैठे रहने में भी तो कैसा-कैसा लग रहा था। उसके कान गरम हो रहे थे और एक झंकार कानों में बज रही थी। कलेजा धक-धक कर रहा था। उसे पसीना छूट रहा था। सुहास की ओर बिना देखे ही वह समझ पा रही थी कि सुहास उसे अच्छी तरह निरख रहा है। कोई आड़ मिलती तो चम्पी के लिए बड़ी सुविधा होती, मगर उन दोनों के बीच कोई आड़ न थी। निचाट मैदान में जैसे धूप अपनी पूरी प्रखरता के साथ बरसती है, उसी तरह चम्पी की देह पर सुहास की दृष्टि चुभ रही थी। चम्पी ने चोली नहीं पहन रखी थी। अचानक उसे यह बात याद आई। एक ही चोली थी उसके पास, जो अब फट चुकी थी। उसे तो पता न था कि सुहास नामक एक युवक इस दुनिया में है। उसे तो यह भी पता न था कि उसे इस तरह अरक्षित होकर सुहास की बाधाहीन दृष्टि के सामने बैठे रहना होगा। उसे पता होता तो वह आती ही नहीं। आती भी तो खूब सावधानी से आती। और कुछ नहीं तो छोटी काकी की कुर्ती पहनकर आती। केवल समीज पहनने से उसकी लज्जा नहीं ढक रही है। आंचल से सारा शरीर ढककर बैठी है तब भी नहीं। कितनी मुसीबत में वह फंस गई!

यह शैल दी क्यों नहीं आ रही हैं? उन्हें जाने की भी क्या जरूरत थी? सुहास बाबू को ही भेज देतीं?

"वाकई, आपके चेहरे पर शिल्पी-जैसा भाव है।"

अचानक सुहास के यह कहने पर चम्पी ने चौंककर उसकी ओर देखा। सुहास की आंखों में गंभीरता थी, कोई विद्रूप न था। उसकी आंखों में इन्द्रधनुषी माया भी न थी।

इन आंखों की तरफ फिर भी देखा जा सकता है। मगर सुहास की बात उसकी समझ में न आई। शिल्पी शब्द का मतलब क्या है, वह समझ नहीं पाई। उसने कभी नहीं सुना था। शायद यह कलकत्ते का कोई शब्द है। शिल्पी-जैसा भाव? यह शब्द सुनकर उसे दीए वाली बात याद आई। तो क्या वह दीया की तरह है? क्या उसका चेहरा दीया से मिलता है? धत ! उसे हंसी आई। और आश्चर्य की बात है कि इससे उसे जो परेशानी हो रही थी बहुत-कुछ कम हो गई।

सुहास ने पूछा, "किस तरह के गीत गाती हैं, आप?"

क्या वह गाना जानती है? जो गीत वह जानती है वे क्या किसी को सुनाने लायक हैं? गांव की लड़कियों को वह पहले गाने सुनाती थी। जो भी गाने सुनती, हुबहू उनकी नकल कर लेती। केवल एक बार किसी वैष्णवी से उसने कुछ भजन सीखे थे। और एक बार अपने मझले काका के पास वह पांच-एक महीने जसोर में रही थी। तब काका की गाने वाली मशीन से उसने कुछ गीत सीखे थे। उन दिनों वही गाने वह गाती थी। तब वह जूथी से भी छोटी थी। कई बार ब्याह के घर में गाने के लिए उसे बुलाया जाता। वह जाती थी और गाने गाती थी। उन दिनों उसकी प्रशंसा भी खूब होती थी। नयन, वीणा और कमला के दूल्हों ने भी उसकी खूब तारीफ की थी। नयन वगैरह गाना तो क्या गाने का 'गा' भी नहीं जानती थीं। इस बारे में उन दिनों चम्पी को बड़ा घमंड था। भगवान ने उसका घमंड चूर-चूर कर दिया। गाना न जानने वाली वे लड़कियां कब की ससुराल चली गईं और गुणवती, नायिका चम्पी अभी भी अपना काला मुंह लिए बाप के घर पड़ी हुई है। बहुत दिनों से उसने गाना बंद कर रखा है। लगता है, शैल दी ने यही बात सुहास को बताई है। हाय री किस्मत!

फिर भी तो एकमात्र शैल दी हैं, जिन्होंने यह बात याद रखी। कलकत्ते के अपने देवर से इसकी चर्चा की। सुहास गाना गाने के लिए हृदय से आग्रह कर रहा है और किसी को तो लगता है, यह बात याद ही नहीं। खुद चम्पी भी तो यह बात भूल ही गई थी। अब जैसे अद्‌भुत प्रेरणा उसे मिल रही है। रोजमर्रा के जीवन की व्यर्थता, हताशा और अपमान से कोई उसका हाथ पकड़कर जैसे एक ऊंची जगह पर ले जाने के लिए आया है। वह जैसे बक्से के कोने में पड़ा हुआ एक पैसे का एक सिक्का है, जिसकी एक पीठ बुरी तरह घिस गई है। अभी तक उसका वह घिसा हुआ रूप देखकर ही लोग उसका मूल्य आंकते रहे हैं। आज शैल दी ने आकर जैसे उस सिक्के को उलट दिया है। उलटने पर देखा गया कि सिक्के का दूसरा पहलू एकदम नया-नकोर है। तस्वीर साफ है, अक्षर एकदम साफ पढ़े जा रहे हैं। उसे ही देखकर जैसे सुहास कह रहा है, यह पैसा एकदम खोटा नहीं है, चल सकता है। इसीलिए वह उसे उलट-पुलट कर देख रहा है। चम्पी जैसी लड़की के लिए इतना ही क्या कम है?

उसने लजाकर हंसते हुए कोमल स्वर में कहा, "शैल दी ने मेरे बारे में खूब बढ़ा-चढ़ाकर कहा है।"

सुहास ने कहा, "चलो, मुंह से आवाज तो निकली। अब सुर भी निकलने की उम्मीद बंध रही है।"

सुहास इतना कहकर हंस पड़ा। तभी शैल हाथ में दूध का कटोरा लिए कमरे में घुसी।

दूध का कटोरा मेज पर रखकर बोली, "क्यों भई, यह हंसी किस बात की है? मैं तो सुन ही नहीं पाई।"

सुहास ने हंसते हुए कहा, "भाभी जी, आप भी सुन सकें, इसी बात की इतनी देर से कोशिश कर रहा हूं। अब जाकर कहीं इनके मुंह से कुछ बोल फूटे हैं।"

शैल के कमरे में आ जाने से चम्पी का संकोच बहुत कुछ कम हो गया था। वह बहुत कुछ सहज हो गई थी। इतनी देर बाद उसका मन स्थिर हो पाया था।

शैल ने कहा, "चलो, अच्छा हुआ। चम्पी, तुम यह दूध पी लो।"

चम्पी ने कहा, "नहीं, शैल दी, मैं दूध नहीं पीऊंगी।"

उन्होंने बहुत कहा, लेकिन चम्पी ने दूध नहीं पिया। वह अब पर्याप्त स्वस्थ हो उठी थी। बीमार भी वह कहां थी? क्यों ऐसे अचानक उसे चक्कर आया, यह बात वह खुद भी समझ नहीं पा रही थी।

शैल ने कहा, "तो फिर एक गाना सुना दो न? हमारे देवर जी कलकत्ता वाले हैं। इन्हें भी पता लगने दो कि हमारा मायका कोई ऐसा-वैसा नहीं है। मेरे जैसे लोगों को भगवान ने औरत तो जरूर बनाया, मगर औरत का गला नहीं दिया। हमारे गले से तो हांड़ी में करछुल चलाने की सी आवाज छोड़कर और कुछ निकलता ही नहीं।"

"नहीं, शैल दी, वह सब बातें पुरानी हो गईं। गाने-वाने का शौक खत्म हुए भी बहुत दिन हो गए।"

सुहास बोल उठा, "शौक खत्म होने से क्या आदमी की आवाज भी बदल जाती है? गाना और रोना भी भला कोई भूलता है ! ये तो किसी भी समय शुरू किए जा सकते हैं। चलिए, अब जल्दी से शुरू हो जाइए।"

चम्पी का कोई जोर नहीं चला। उसने फिर गाने का मन बनाया। अचानक उसके मन में उत्साह का एक प्रबल ज्वार आया। विस्मृति की अंधेरी खाई से ढेर सारे गाने एक साथ ऊपर आकर उसकी चेतना में अपना अस्तित्व दर्ज कराने लगे। उसकी देह में उत्तेजना का एक कंपन फैल गया। सुहास और शैल दी सामने बैठे हैं। दोनों उसकी ओर एकटक देख रहे हैं। सुहास की आंखों में आग्रहपूर्ण प्रतीक्षा है। कलकत्ते में कितने-कितने अच्छे गाने होते हैं ! कितने अच्छे-अच्छे गाने सुहास बाबू सुनते होंगे ! वह बेचारी उन्हें क्या गाना सुनाएगी? उसका गाना सुनकर मन ही मन वे हंसेंगे। मित्रों के बीच उसका मजाक उड़ाएंगे।

चम्पी डर गई। घबरा गई। क्षण-भर में ही वह सारे गाने भूल गई। उसका दिमाग एकदम खाली हो गया। किसी गाने की एक पंक्ति भी, एक सुर भी उसे याद न रहा। उसके आसपास जो कुछ था सब जैसे गायब हो गया। न वह कमरा था, न शैल दी, न सुहास, कुछ भी न था। केवल दो प्रतीक्षारत उज्ज्वल आंखें उसे निहार रही थीं। उन आंखों की इच्छा वह पूरी नहीं कर पा रही थी। नहीं कर पाएगी। आंखें बंद किए वह निश्चल बैठी रही। गाने उसके मन में बिजली की तेजी से इधर-उधर दौड़ने लगे। चम्पी पूरी ताकत से अंधे की तरह हाथों से टटोल रही है। धुंधला-धुंधला कुछ दिखाई पड़ रहा है। दूसरे ही पल विस्मृति के अंतहीन अंधकार में वह लुप्त हो जाता है। वह पकड़ नहीं पा रही है। चम्पी ने हार मान ली। असंभव। उससे नहीं होगा। वह अब निराश हो गई थी, हाथ पांव एकदम ढीले पड़ गए थे, तभी एक सुर गुनगुनाता हुआ उसकी पकड़ में आ गया। एक गाना धीरे-धीरे उसे याद आने लगा। उसने गाया :

माधव बहुत मिनति करि तोय,
सेई तुलसी तिल, एइ देह समर्पिलु,
दया जनु न छाड़बि मोय !

विद्यापति का पद। अनन्त वैष्णवी ने उसे यह गीत लिखवाया था। चम्पी के मन में जो पुंजीभूत व्याकुलता थी, आत्मसमर्पण की जो तीव्र आशा पल रही थी, उसी को बड़े यत्न से, बड़े ही गुप्त रूप से गीत की पंक्तियों में ढाल दिया उसने। लगा जैसे उसकी छाती पर से एक भारी बोझ, एक शिला उत्तर गई हो। चम्पी का मन आनंद से भर उठा। उसकी आंखों की कोरों से आंसुओं की धारा बह चली।

सुहास की उच्छ्वसित प्रशंसा में कोई मिलावट नहीं थी, यह बात चम्पी उसकी आंखें देखकर ही समझ गई थी। उसकी रहस्यमय और चपल दोनों आंखें मुग्ध होकर गहरी शांति से एक बिंदु पर स्थिर हो गई थीं। उसकी दोनों पुतलियों में इन्द्रधनुष की अद्भुत छटा तरंगाइत हो रही थी। चम्पी को अब किसी प्रशंसा की जरूरत नहीं थी, कुछ बताने की जरूरत न थी। वह खुद ही सब कुछ समझ गई थी। उसे मुग्ध दृष्टि में खिले इन्द्रधनुष का अर्थ समझ में आ गया था। चम्पी को बहुत अच्छा लग रहा था।

ऐसी अनुभूति उसे पहले कभी नहीं हुई थी। कलकत्ते के रहने वाले सुहास की प्रशंसा, सच्ची प्रशंसा पाना आसान नहीं था। कलकत्ते में वे लोग अच्छे से अच्छे गाने सुनते होंगे। फिर भी उन्हें चम्पी का गाना अच्छा लगा। एक गाना खत्म होने पर उसने दूसरे की फरमाइश की। चम्पी भी आनंद में डूबी एक के बाद एक गाने गाती चली गई। चार-पांच गाने उसने गा डाले।

सुहास ने गदगद होकर कहा था, "आप कलकत्ता में होतीं तो आपका बहुत आदर होता।"

उसने यह भी कहा था, "गाने तो बहुत से लोग गाते हैं, बहुत से लोग सीखते हैं, मगर आप जैसा गला कितने पाते हैं? गले में मिठास के साथ इतना दर्द कितनों में होता है। लगता है, आपके जैसे सुंदर गले के लिए ही ये गाने लिखे गए थे।"।

प्रशंसा के भार से चम्पी झुक गई थी। खुशी और संकोच से वह सिर नहीं उठा पा रही थी। फिर भी प्रशंसा की उसकी प्यास नहीं मिटी थी। बोलो, सुहास, बोलो और कुछ कहो। वह जैसे रजनीगंधा की एक डाल थी, जो फूलों के भार से झुकी जा रही थी, फिर भी और फूल खिलाने की आकांक्षा वह छोड़ नहीं रही थी।

चम्पी के लिए वह एक आश्चर्यजनक दिन था। पहले कभी उसके जीवन में ऐसा दिन नहीं आया था। सोए-सोए चम्पी सोचने लगी। उसे नींद नहीं आ रही थी। जाने कितनी रात हुई ! वह बिस्तर पर जूथी की बगल में लेटी थी। आज उसे जूथी के साथ लेटने में जरा भी असहज नहीं लगा था। जब से उसे देखने आए लोगों ने जूथी को पसंद किया था, तभी से जूथी के प्रति उसके मन में तीव्र ईर्ष्या जाग उठी थी। जूथी के सामने उस दिन उसकी चरम पराजय हुई थी। आज उसे लेकर कोई आक्रोश उसके मन में न था। जूथी को जिन लोगों ने पसंद किया था वे तो ठेठ गंवार लोग थे। क्या चम्पी सुहास जैसे परिष्कृत, भद्र और शिक्षित व्यक्ति को मुग्ध कर पाएगी। नहीं, जूथी ऐसा नहीं कर सकेगी। आज चम्पी की बहुत बड़ी जीत हुई है।

'आप कलकत्ते में होतीं तो आपका बहुत आदर होता।' कितने सुंदर ढंग से सुहास ने कहा था। कलकत्ता बहुत अच्छी जगह है। संझले काका भी तो वहीं पर रहते हैं। काकी उसे भी तो कलकत्ता ले जाना चाहती थीं। बहुत पहले की बात है, जब वह बहुत छोटी थी, प्रायः दस साल की। जब उसे परीक्षा में छात्रवृत्ति मिली थी। मां ने तब उसे जाने नहीं दिया था। मां को छोड़कर जाने में उसे भी खराब लगा था। उसका मन कैसा-कैसा तो कर रहा था। इसके अलावा मां काकी को पसंद नहीं करती थीं। उन्होंने कहा था, "तेरी काकी को नौकरानी की जरूरत है, इसीलिए तुझे ले जा रही हैं।"

यह बात सुनकर वह भी काकी पर नाराज हो गई थी।

'आप कलकत्ता में होतीं तो आपका बहुत आदर होता।' इश्श! चम्पी ने क्या बेवकूफी कर डाली? क्यों तब उनके साथ कलकत्ता नहीं गई? चम्पी का मन हाय-हाय कर उठा। कलकत्ता उसके जीवन में इतना महत्वपूर्ण हो उठेगा, यह बात चम्पी आज दोपहर तक भी समझ नहीं पाई थी। सुहास से मिलने से पहले तक कलकत्ता इतना मोहक न था। सुहास जिस कलकत्ता का बाशिंदा है, वही कलकत्ता चम्पा से वहां जाने की याचना कर रहा था। इतने बड़े निमंत्रण की उपेक्षा की थी चम्पी ने। आज पछतावे के अलावा और उपाय ही क्या है?

न हो, वह नौकरानी बन के ही रहती। यहां ही उसकी क्या हैसियत है ! नौकरानी ही तो है वह। अगर कलकत्ता गई होती तो वह कलकत्ता की नौकरानी होती, मगर थोड़ा लिख-पढ़ जाती, गाना सीख जाती, सिलाई-कढ़ाई सिख जाती। उसकी ऐसी असहाय अवस्था न होती। और कुछ न भी होता तो संझली काकी की बहन की तरह वह किसी स्कूल में नौकरी तो कर ही सकती थी। इस गांव की तरह कलकत्ता कोई खराब जगह नहीं है। वहां पान पर से चूना खिसकने जैसी छोटी बात से किसी की निंदा नहीं होती। गांव ने मुझे क्या दिया है, क्या दे सकता है? कोई अच्छी शिक्षा? जरा भी नहीं। गांव तो केवल निंदा दे सकता है, केवल कलंक दे सकता है। गांव के पेड़ पर देने के लिए यही दो फल लगते हैं और गांव के लोग इन्हें ही दोनों हाथों से लुटाते हैं।

और कलकत्ता? कलकत्ता गुण का आदर करता है। उसी कलकत्ता की पुकार चम्पी ने अनसुनी कर दी। इसीलिए इस गांव की दमघोंटू प्रकृति धीरे-धीरे उसे ठेलकर मुडेर के कोने तक ले गई है। एक पांव बढ़ाते ही उसका अस्तित्व समाप्त हो सकता है। अजीब बात है कि एक दिन इसी गांव को छोड़ने की बात सोचकर वह व्याकुल हो उठी थी।

'आप कलकत्ता में होतीं तो आपका बहुत आदर होता!' मेरा बहुत आदर होता। सुहास बाबू की नजरों में मैं और ऊंची होती। मगर सुहास बाबू से मेरी मुलाकात ही कैसे होती? क्यों, शैल दी कभी मुझे अपने घर नहीं ले जातीं? और नहीं तो काकी की छोटी बहन मोनिका के साथ ही मैं एक दिन शैल दी के यहां चली जाती। तब मैं भी थोड़ा पढ़-लिख जाती। सुहास बाबू के सामने ऐसी गूंगी होकर बैठी न रहती। मैं भी अच्छे ढंग से दो बातें बोल सकती। इस समय मैं जो उनके सामने मुंह नहीं खोलती, लाज से मरी जाती हूं, वह सिर्फ इसलिए कि मैं कुछ जानती नहीं।

आज सुहास बाबू ने जब उसे घर छोड़ आने की इच्छा प्रकट की तो चम्पी सिहर क्यों उठी? क्या वह नहीं चाहती थी कि सुहास बाबू उसके साथ आए। उसे याद नहीं कि तब उसका मन क्या चाहता था। ऐसी अद्भुत संभावना की बात सोचकर वह मन ही मन इतनी उत्तेजित हो गई थी, थोड़ी घबरा भी गई थी कि अब उसे अपने उस समय के मनोभाव के बारे में कुछ भी याद नहीं। अब उसे लग रहा है कि सुहास बाबू उसे छोड़ने आते तो वह खुश ही होती। मगर इस गांव में, इस अभागे स्थान पर क्या ऐसा होना संभव था? कल से ही इस गांव में जो हंगामा शुरू होता कि रहना मुश्किल हो जाता। उसकी निंदा से धरती और आकाश गुंजायमान हो जाते।

इसीलिए तो सुहास बाबू के प्रस्ताव पर उसने डरकर अस्वीकृति जताई थी और अकेली घर चली गई थी। अगर आज वह कलकत्ता में होती तो सुहास बाबू निश्चय ही बिना किसी दुविधा के उसे घर तक छोड़ आते। वह मना न करती और कोई दूसरा भी इसे कुछ बेजा न समझता।

इस गांव और कलकत्ता में कितना बड़ा अंतर है। इसी अंतर को चम्पी ध्यान से परख कर देखने लगी। फूलू काकी और उसकी मां में जो अंतर है, शैल दी और टूनी में जो अंतर है, सुहास बाबू और इस गांव के नंग-धड़ंग, तोंदियल और पान-बीड़ी-खैनी फांकने वाले विष्णुपद, अभय और छने घोष में जो अंतर है, वही अंतर कलकत्ता और इस गांव में है। एक पल के लिए शैल दी के जिस साफ-सुथरे घर-संसार की छवि चम्पी ने देखी थी उसके साथ अपने घर-संसार की तुलना करके वह देखने लगी। उसके घर के लोग तो शैल दी के पांव के नाखूनों जैसी योग्यता भी नहीं रखते। कहां चमकती हुई, दमकती हुई सजी-सजाई मयूरपंखी नाव और कहां सौ छेदों वाली, गंदी-संदी ताल की डोंगी। इनमें कोई तुलना संभव ही नहीं है।

कलकत्ता का मतलब है फूलू काकी, शैल दी और सुहास बाबू। काली चमड़ी के भीतर भी गुण की जो चमक है, वह केवल ऐसे ही लोगों की आंखों में पड़ती है।

उसका सौभाग्य था कि वह शैल दी के यहां गई। वह सोचने लगी, आज सवेरे किसका मुंह देखकर उठी थी। नहीं, दिन तो शुरू हुआ था और दिनों की तरह ही। उसमें कोई नयापन, कोई चमक न थी। सिर्फ उसका समापन असाधारण था। बहुत ही अच्छा, जैसे अपनी मनपसंद चीजों के भोज से उसने वह दिन समाप्त किया था। भोज समाप्त करके भी जैसे चम्पी पत्तल छोड़कर उठी नहीं थी। अभी भी, तृप्त होकर भी, वह जैसे कोई-कोई व्यंजन उठाकर अपने मुंह में डाल लेती थी।

अचानक उसने सुना, दादी धीमे स्वर में चिरपरिचित कंठ से भगवान श्रीकृष्ण के सतनाम की आवृत्ति कर रही हैं :

जय जय गोविन्द गोपाल गदाधर,
कृष्णचन्द्र करो दया करुणासागर।
जय राधेगोविन्द गोपाल बनमाली,
श्रीराधा प्राणधन मुकंद मुरारी।।

चम्पी चौंक उठी। मर गई ! क्या उसने सारी रात आंखों में ही काट दी? हां, दादी ने रुककर अभी एक लंबी जम्हाई ली है। और दूसरे ही क्षण दादी का हल्का मधुर स्वर, एक तान किसी कलकल झरने की तरह बहने लगा :

हरि नाम बिना रे गोविन्द नाम बिना,
विफल मनुष्य जन्म जाय दिना दिना।
दिन गया व्यर्थ काम, रात्रि गई नींद में,
लगा नहीं मन कृष्णचरणारविन्द में।।

चम्पी ने जब से होश संभाला तभी से सुनते-सुनते ये पद उसे याद हो गए थे। दादी की पुकार पर जैसे उसके मन का सोया सुर भी जाग उठा। दिन गया व्यर्थ काम, रात्रि

गई नींद में ! आज का दिन, नहीं आज का नहीं, कल का दिन तो उसका व्यर्थ नहीं गया था और रात भी उसने नींद में नहीं काटी थी। साल दर साल जिस खेत में बारिश की एक बूंद भी न पड़ी थी, कल उसमें करुणा की धारासार वृष्टि हुई थी। मन ही मन चम्पी गुनगुनाई कृष्णचन्द्र करो दया करुणासागर ! क्यों उसकी आंखों में ऐसे अचानक बार-बार आंसू आ रहे हैं? लेटे-लेटे ही चित होकर चम्पी ने दोनों हाथ जोड़कर प्रणाम किया। कितने दिनों बाद मुंह अंधेरे देवताओं को प्रणाम करने का अभ्यास फिर से शुरू हुआ है ! जिन चिंताओं ने उसके मन को सारी रात मथे रखा, उसे जगाए रखा, वे शतनाम कीर्तन के इस स्रोत में न जाने कहां बह गए !

एक समय चम्पी ने पाया कि दादी की गुनगुनाहट के साथ सुर मिलाकर वह भी गा रही है :

कृष्ण भजन के लिए अगर संसार में आया नहीं,
झूठी माया के बंधन में बंधा वृक्ष सम तू भी।
फल रूपी कन्या पुत्रों से डाल टूटने वाली,
तेरे घर में काल रूप पक्षा का वास हुआ री।।

वैसे दीदी मां बार-बार पक्षी को पक्षा ही बोलती थीं और आश्चर्य की बात है कि चम्पी भी पक्षा ही बोल गई। दादी के स्वर से जैसे वह सम्मोहित हो गई थी। दादी की गुनगुनाहट का स्रोत उसे जिस दिशा में बहाए लिए जा रहा था, वह देह ढीली किए उसी दिशा में बहती जा रही थी। चम्पी की आवाज सुनकर एक पल के लिए दादी भी थमी थीं, मगर फिर उनका स्वर-प्रवाह आगे बढ़ गया था। दोनों के स्वर एक में मिलकर जैसे एकस्रोत हो गए थे :

"जब कृष्ण जन्मे देवकी के उदर से मथुरा में देवताओं ने पुष्पवृष्टि की। बासुदेव रख आए बालक को नन्द के मंदिर में। नन्द के आलय में दिन-दिन कृष्ण लगे बढ़ने। श्रीनन्द ने रखा नाम नन्दनन्दन, यशोदा ने रखा जादूगर, बाछा, धन-सोना..."

छह

सारा दिन, अभी कुछ क्षण पहले तक चम्पी का मिजाज बहुत अच्छा था। देह-मन में जैसे उत्साह का ज्वार आया हुआ था। घर का काम समेटने में उसे जरा भी विरक्ति न हुई थी। अपने छोटे भाई को गोद में लेकर उसने खूब दुलारा था। छोटा-सा तो है, मगर इसके पेट में कितनी बुद्धि है, बिना देखे विश्वास करना मुश्किल है। आवाज तो जैसे शंख की आवाज

की तरह बुलंद है। पता नहीं बड़ा होकर इसकी आवाज कैसी होगी? थप-थप करके चलता हुआ आएगा और दोनों हाथों से तुम्हें जकड़ लेगा। तब क्या तुम उसे उठाकर छाती से लगाए बिना रह सकोगे? उसे बिना चूमे रह सकोगे? आज बच्चे के लिए चम्पी के मन में दुलार का सागर उमड़ रहा था। उसे उसने इतना दुलारा, उसके साथ इतना खेली कि शंख थककर सो गया।

इसके अलावा उसने जो कुछ किया घर का और कोई नहीं जानता। केवल चम्पी जानती है और उसका मन जानता है। वह सारा दिन गुमगुनाती रही है। अपने मन से वह केवल एक व्यक्ति को सारा दिन गाना सुनाती रही है। 'क्या सुर बाजे, मेरे कलेजे, मैं जानूं मेरा मन जाने।' मझले काका के जसोर वाले घर में गाने की मशीन से यह गाना चम्पी ने सुना था। गायिका थीं अंगूरबाला। बहुत सुंदर गाना था। अचानक चम्पी का कलेजा उछल पड़ा। केवल क्या यही गाना अच्छा था? और इन्दुबाला का वह गाना? 'मेरी निंदिया में आए मनोहर, करूं मैं प्रणाम।' फिर एक और गाने की पंक्ति याद आई—'चुपके से बैठकर मेरे सिरहाने, किसने मिलाए नयन।' यह पंक्ति याद आते ही कल शैल दी के घर का वह दृश्य उसे याद आ गया। चम्पी के सिरहाने भी एक आदमी चुपचाप आंखें मिलाए बैठा था। एक पल के लिए यह दृश्य उभरा और गायब हो गया। चम्पी के हृदय का रक्त तेजी से उछला। उसे बड़ी लज्जा लगी। उसने चौंककर चारों ओर देखा। कहीं किसी को खबर तो नहीं लग गई?

सारा दिन उसका इसी तरह कटा। बात-बेबात आज उसे गाने याद आते रहे। सवेरे वह फूल चुनने गई, तो नीहारबाला का एक गीत उसके मन में उभरने लगा :

पूरी सुबह मैंने बैठ के गूंथी है साधों की माला,
पहनाऊंगी मैं तुम्हारे गले में अपनी ये साधों की माला।

पहनाऊंगी मैं तुम्हारे गले में...तुम्हारे गले में ...बार बार यह टुकड़ा उसके मन में चक्कर लगाने लगा। जैसे एक बड़ा-सा भौंरा बार-बार एक छोटे-से फूल पर बैठने की कोशिश करता है, पर हर बार भौंरे के बोझ से फूल झुक जाता है। साथ-साथ भौंरा फिर उड़ने लगता है। पहनाऊंगी मैं तुम्हारे गले में...किसके गले में चम्पी माला पहनाना चाहती है? उसका हृदय फिर धड़कने लगता है। किसी के नहीं, किसी के नहीं, वह किसी के गले में माला नहीं पहनाना चाहती। वह तो सिर्फ एक पुराना गीत गा रही है। नहीं, गा नहीं रही है, बल्कि गीत अपने आप उसके मन में बज रहा है। इसके लिए चम्पी क्या करे ! मगर आज उसके मन में केवल गीत ही क्यों गूंज रहे हैं? इस प्रश्न का उत्तर चम्पी नहीं जानती, सचमुच नहीं जानती।

कल उसे यह गीत याद नहीं आया था। अच्छा ही हुआ जो नहीं याद आया। नहीं तो क्या पता वह यही गीत गा बैठती! तो फिर क्या होता! कितनी लज्जा की बात होती!

सुहास बाबू धीमे-धीमे मुस्कराते। शैल दी हंसती। वे लोग इसे लेकर आपस में खुसर-पुसर करते। इस कलूटी के अरमान तो बहुत ऊंचे हैं! बौनी होकर चांद छूना चाहती है। मगर चम्पी ने तर्क किया—यह गीत मैंने तो नहीं बनाया है! रिकार्ड में जैसा सुना, वैसा ही गा रही हूं। मगर फिर चम्पी ने खुद से कहा—यह तो खोखला तर्क है। क्या इन गीतों में तुम्हारे ही मन की भावना नहीं लिखी हुई है। अब चम्पी चुप हो गई। इस सवाल का उसके पास कोई जवाब न था। जवाब हो भी क्या सकता है ! तो ठीक है, वह आज के बाद कभी किसी के सामने गाएगी ही नहीं, कभी नहीं गाएगी।

सारे दिन बहुत सोच-विचार करके भी चम्पी इसी निर्णय पर पहुंची है, जैसे उसके विचारों के सारे रास्ते इसी चौराहे पर मिलते हों। दोपहर का खाना-पीना समाप्त करके उसने थोड़ी देर आराम किया। बाहर देखा, तब भी काफी धूप थी। उसने सोचा, आज थोड़ी देर से वह शैल दी के घर जाएगी और ज्यादा देर रुकेगी भी नहीं। चम्पी ने अपना बक्सा खोलकर देखा, उसके पास एक भी अच्छी साड़ी न थी। कल तो एकदम चुड़ैल की तरह शैल दी के घर चली गई थी। साड़ी के सिले हुए दोनों हिस्सों को बार-बार ढके रखने की चेष्टा करके भी वह सफल न हुई थी। एक हिस्सा छिप जाता तो दूसरा सामने आ जाता। बार-बार उसको लग रहा था, सुहास बाबू की एकटक नजरें जैसे उसकी साड़ी की सिलाई पर ही टिकी हुई हैं। बरसात के दिनों में जैसे किसी फटी हुई छत का पानी लुढ़क कर नाली में जाने के बदले छत की दरारों में ही अटक जाता है और रिस-रिसकर कमरे के फर्श पर चूने लगता है, ठीक उसी तरह चम्पी को लग रहा था जैसे सुहास की नजर चम्पी की साड़ी की उन दरारों पर ही अटक गई थी और उनके भीतर से रिस-रिसकर जैसे उसकी चमड़ी पर चू रही थी। इसी संकोच के मारे कल चम्पी बेहाल हो रही थी, जैसे कोई चोर-कांटा उसके मन में बार-बार बिंध रहा था। नहीं, आज वह फटी साड़ी पहनकर नहीं जाएगी।

उसने सोचा, वह छोटी काकी से उनकी एक अच्छी-सी साड़ी मांग ले और साथ में कुर्ती भी। निकलने के पहले अच्छी तरह साबुन से नहा भी लेगी। कल उसे बड़ा पसीना आया था। पसीने से चिपचिपाती हुई देह लेकर सुहास बाबू के इतने पास बैठकर उसे बड़ी परेशानी हुई थी। उसने अपने बक्से में एक सुगंधित साबुन छिपा रखी थी। कुछ महीने पहले बड़े भैया जब घर आए थे तब चम्पी ने उनका साबुन चुपके से उठाकर रख लिया था। बंगलक्ष्मी टर्किश बाथ साबुन पर लिखा हुआ था। अभी तक उसने एक बार भी साबुन का उपयोग नहीं किया था। आज उसी से वह अच्छी तरह नहाएगी।

मगर साबुन गया कहां? बक्से को उलट-पुलटकर चम्पी ने कई बार देखा, मगर साबुन कहीं नहीं मिला। अजीब बात है! साबुन कौन ले सकता है? किसने लिया? एक बार, दो बार, तीन बार, उसने बक्से की पड़ताल की, मगर साबुन उसमें नहीं था। फिर उसने सोचा,

हो सकता है, साबुन कपड़ों की तह में घुस गया हो। चम्पी ने यहां-वहां से इकट्ठे किए गए तरह-तरह के कपड़ों के टुकड़े, गरम कपड़े, सिलाई का डिब्बा, सब उतार कर देख लिया। साबुन कहीं नहीं था। चम्पी की आंखें भर आईं। कहां रखी उसने? या किसी ने हाथ साफ कर दिया? भले ही वह साबुन का एक छोटा-सा टुकड़ा था, मगर चम्पी के लिए उसका दाम बहुत ज्यादा था। सौंदर्य-प्रसाधन के बतौर साबुन का वह छोटा-सा टुकड़ा ही उसका संबल था। कितनी ही बार उसका मन हुआ था, एक बार साबुन लगाकर देखे। साबुन में हल्की-सी महक थी। कई बार उसे सूंघकर उसने फिर बक्से में रख दिया था। सोचा था, एक कीमती चीज बेकार में क्यों खर्च करे। मगर आज किसी ने उसका सर्वनाश कर दिया। वह सूनी आंखों से खुले हुए बक्से की तरफ देखती रही।

थोड़ी देर बाद साड़ी की खस-खस आवाज से उसे होश आया। उसने देखा, जूथी नहाकर, छोटी काकी की लाल साड़ी और एक अच्छी-सी कुर्ती पहनकर आईने के सामने खड़ी बालों में कंघी कर रही है।

चम्पी थोड़ा अवाक हुई। अचानक जूथी को चांद बीवी की तरह सजने का शौक कैसे हुआ! वाह! इसके ढंग तो देखो! आईने में घुमाफिराकर कितनी बार अपना चेहरा देख रही है! रूपगर्व से उसके पांव ही धरती पर नहीं पड़ रहे हैं ! तो फिर हमारी चांद बीवी इस समय कहां जा रही हैं? उसने सोचा, एक बार पूछ कर देखे। मगर पूछा नहीं।

जूथी ने खुद कहा, "चलती हूं, एक बार शैल दी के घर घूम आती हूं।"

ओह! तो यह कहो न! शैल दी के घर चली है सवारी। तभी तो सज-धजकर परी बनने का शौक चढ़ा है! ईर्ष्या ने चम्पी की छाती में अपने विषदंश घुसाए। सोचा, कितनी जलन करने वाली है यह छोकरी! कल मैं जो शैल दी के यहां गई थी, तो आज इसे भी वहां जाने की जल्दी पड़ी है। उधार के कपड़े पहनकर खूबसूरती दिखाने में लाज भी नहीं आती ! थू ऐसी सजावट पर ! जाओ न, उस घर के लोग तुम्हारे जैसे गंवार नहीं हैं, वे सब कलकत्ता के लोग हैं। चट से कोई चीज भूलते नहीं हैं। जाओ, कुछ गाने ही सुना आओ! गाने! भैंस की तरह तो गला है! चीखने-चिल्लाने के अलावा कुछ जानती भी है?

अचानक चम्पी को संदेह हुआ। जूथी के हाथ, पांव और मुंह ऐसे चमक क्यों रहे हैं? वह जाकर जूथी के एकदम पास खड़ी हो गई।

एक पल बाद चम्पी ने पूछा, "मेरा साबुन ली थी?"

जूथी पहले तो चौंकी फिर दूसरे ही क्षण उसने अपने को संभाल लिया। उसने अत्यंत उपेक्षा से केवल चम्पी की तरफ देखा, कुछ कहा नहीं, आईने में मुंह बिचकाया और अपनी मांग सीधी करने लगी। चम्पी की देह जल उठी।

बोली, "मुंह में क्या कीड़े पड़े हैं? बोलती क्यों नहीं? तूने मेरा साबुन क्यों चुराया?"

जूथी ने पहले की तरह अवज्ञा दिखाते हुए कहा, "खा नहीं गई हूं तुम्हारा साबुन।

जरा-सा लगाया-भर है।"

"जरा-सा भी क्यों लगाया? वह क्या तेरी चीज है?"

"नहीं तो क्या तुम्हारी है? ससुराल से लाई थी क्या?" जूथी खौंखिया उठी।

चम्पी गुस्से से कांपने लगी। अपना गुस्सा न संभाल पाकर उसने जूथी के गाल पर एक जोरदार थप्पड़ जमा दिया।

थप्पड़ खाकर जूथी नागिन की तरह फुफकार उठी, "हरामजादी, कलमुंही, हाथी, तूने मुझे मारा? तुझे वह साबुन कहां मिला? क्या तूने भैया के बक्से से उसे नहीं चुराया था? तू समझती है कि मैं कुछ जानती ही नहीं? चुड़ैल कहीं की ! तेरे हाथ में कोढ़ हो। मर जा तू !"

चम्पी का मन हुआ, गला दबाकर जूथी को मार डाले। वह उसकी जन्म की दुश्मन है। मगर चम्पी कुछ कर पाती, इसके पहले जूथी पैर पटकती वहां से चली गई। दुख, अपमान और ईर्ष्या से चम्पी दहकने लगी। वह मेरी दुश्मन है, दुश्मन, दुश्मन, दुश्मन ! चम्पी की आंखों से जैसे आग बरसने लगी।

जूथी के जाने के कुछ ही देर बाद रणचंडी बनकर मां उस कमरे में घुसीं, पीछे-पीछे जूथी।

उस समय दामिनी ऐसे गुस्से में थीं, जैसे चम्पी के ऊपर कूद पड़ेंगी।

"क्यों रे ढेंकी, तूने जूथी को मारा? तेरी हिम्मत तो बहुत बढ़ गई है ! मैं कहती हूं, नागिन, तू कब जाएगी हमारा घर छोड़कर?"

दामिनी गुस्से में अपना सिर पीटने लगीं।

चम्पी ने कहा, "उसने मेरा साबुन क्यों चुराया?"

"तेरा साबुन?" जूथी चिल्लाई।

चम्पी भी चीख उठी, "तो फिर क्या तेरा साबुन है? एक तो चोरी ऊपर से सीनाजोरी!"

"तू चोर है, तू चोर है, चोर है तू।" मां के पीछे से जूथी बोल उठी। दामिनी जूथी के ओर से लड़ने लगीं।

"अगर थोड़ी सुंदर होती तो पता नहीं क्या करती ! राक्षसी जैसी तो है! अरे राक्षसिनियां साबुन नहीं लगातीं, मरघट की राख मलती हैं देह पर। अभी दो थप्पड़ लगाऊं मुंह पर तो सही हो जाएगी। काम-धाम कुछ नहीं, दिन-रात झगड़ा ! आने दो उन्हें आज, कह दूंगी, कल सवेरे नींद खुलते ही जो सामने पड़ेगा, चाहे वह डोम हो या चमार, तुझे उसी के हाथ में दे देंगे। अब और बर्दाश्त नहीं होता !"

चम्पी को लग रहा था, जैसे उसकी देह पर कोई अंगारे डाल रहा हो। असह्य यंत्रणा से वह मरी जा रही थी।

गुस्से से कांपती हुई बोली, "मैं तो तुम्हें आंख की किरकिरी लगती हूं न, तभी तो

तुम्हारी दुलारी बेटी की गलती तुम्हें नजर नहीं आती। मां होकर भी तुम दो आंखें करती हो? ऊपर और भी कोई है, जो यह सब देख रहा है। वे ही इसका न्याय करेंगे।"

"क्या बोली, हरामजादी !"

दामिनी ने आगे बढ़कर चम्पी की चोटी पकड़ ली और कहा, "क्यों रे हरामजादी ! तू मां को शरापती है?"

यही सब कहते हुए दामिनी चम्पी की पीठ पर धमाधम घूंसे मारने लगीं। चम्पी ने कोई प्रतिवाद नहीं किया। वहां से जाने की कोई कोशिश नहीं की। अपनी देह कड़ी करके जिद्दी बच्चे की तरह चुपचाप मार खाती रही और मन ही मन कहती रही।

(मारो, मारो, मुझे मार डालो। एकदम खत्म कर दो। तभी मैं सारे अपमान, सारी जलन और यंत्रणा से हमेशा के लिए रिहाई पा सकूंगी।)

"हरामजादी, तू हमारे गले का पत्थर बनी हुई है। तुझे हिलाना भी मुश्किल है। ब्याह हो गया होता तो दो-तीन बच्चों की मां हो जाती। हे भगवान ! मैंने कैसी लड़की को जन्म दिया! अब भी यह मेरे गले का कांटा बनी हुई है।"

(तुमने मुझे कोख में रखा, क्या इसमें भी मेरी ही गलती है ! तुमने मुझे पेट में रखा ही क्यों? क्या मैं हाथ-पैर जोड़कर कहने गई थी—ओ जी, मुझे अपनी कोख में धारण करो।)

"गांव में हम मुंह दिखाने लायक नहीं हैं। तेरे बारे में लोग कितनी बातें करते हैं। तू काल बनकर जन्मी है? तेरी चिंता में सबकी नींद उड़ गई है।

(क्या मैं तुम्हारी आंखों में रोज खोंचा मारती हूं कि तुम्हें नींद नहीं आती?)

"मर, मर, मर। तू मर गई तो मेरा जी जुड़ा जाएगा।"

(हां, मैं मरूंगी। तुम ठीक कहती हो। मुझे मर जाना चाहिए। मरकर केवल तुम्हारा ही नहीं, मेरा जी भी ठंडा हो जाएगा।)

चम्पी ने इतनी गालियां सुनीं, इतनी मार खाई, मगर आश्चर्य कि उसने चूं तक नहीं किया। दामिनी हांफ रही थीं। भयानक परिश्रम से उनका दिल धड़क रहा था। इतनी बड़ी लड़की को मारना कोई कम परिश्रम का काम है ! उनकी दह से पसीना चूने लगा। वे बुरी तरह परेशान हो गईं। जूथी वहां नहीं थी। उसने शैल दी के घर की ओर पांव बढ़ा दिए थे। दामिनी को लगा, थोड़ी पंखे की हवा खा लेने पर मन ठीक हो जाएगा। खंभे से पीठ सटाकर वे दरवाजे पर बैठ गईं। उनकी देह थर-थर कांप रही थी। उन्हें जूथी पर भी गुस्सा आया। काम के समय राजकुमारी जी पता नहीं कहां गायब हो जाती हैं। चम्पी पत्थर की मूरत की तरह पास ही खड़ी थी। मगर उसे पीटकर फिर उसके हाथों से पंखे की हवा तो नहीं खाई जा सकती। कुछ भी हो, इतनी शर्म तो दामिनी में अभी भी थी। वे आंचल बिछाकर वहीं लेट गईं।

मैं हूं, चम्पी।

शाम के गहराते अंधेरे में, पोखर के पानी में गले तक डूबी चम्पी सोच रही थी, तो यही हूं मैं? सभी के गले का कांटा, परिवार के सिर पर एक अनावश्यक बोझ, सारी दुनिया की ठुकराई हुई एक अवांछित जीव। मेरे लिए लोगों की नींद खराब होती है, उनके मन में अशांति है। कहीं भी स्नेह-प्यार की एक बूंद नहीं। भविष्य में भी रोशनी की कोई झलक नहीं। मेरी चमड़ी का रंग जैसे काला है मेरा भविष्य भी वैसे ही अंधकारमय है।

लगता है, उसके जन्म के समय जैसे विधाता ने अपनी दावात की स्याही चम्पी के भाग्यलेख पर उलट दी थी। वही स्याही आज आकाश में फैल गई है। और पोखर के जल पर लोट रही है। इसीलिए पोखर का जल गाढ़े काले रंग का हो गया है। चम्पी ने एक अंजुली में जल उठाया और फिर उसे गिरा दिया। यह तो पानी नहीं, स्याही है। उसने एक अंजुली में फिर पानी भरा और अपनी चमड़ी से मिलाकर देखा। दोनों मिलकर एकाकार हो गए थे, सब कुछ काला लग रहा था। चम्पी इस अंधेरे में बड़े मजे से छुप जा सकती है और वह भी बिना किसी विलंब के। यही अच्छा है। सभी यही चाहते हैं। उसने अपने परिवार में एक जटिल समस्या खड़ी कर दी है। नहीं, समस्या उसने नहीं, उसके भविष्य ने खड़ी की है। उसकी और जूथी के मां-बाप एक ही हैं, एक ही गर्भ से उसने और जूथी ने जन्म लिया है, मगर क्यों उसकी चमड़ी पर स्याही पुती हुई है और जूथी की चमड़ी पर सोना, क्यों? इसका कारण तो उसकी किस्मत ही है। मझली दीदी भी तो काली थीं, बड़ी दीदी का रंग भी तो ऐसा कुछ खास न था, फिर भी क्या उमकी शादियां नहीं हुई? हुई, कारण यह कि तब पिताजी के पास शादी के लायक पैसे थे। फिर जब उसकी बारी आई तो उनके हाथ खाली क्यों हो गए? सब भाग्य की बात है ! उसका रंग भी काला है और उसके पिता के हाथ में पैसे भी नहीं हैं। और क्या मजाक है? सब गलती उसी की है। और नहीं तो किसकी है? उसकी किस्मत की।

पोखर के किसी भी घाट पर कोई न था। होता भी तो क्या फर्क पड़ता। डूबती हुई चम्पी पर किसी की नजर न पड़ती। वह अपने रंग में मिल गई थी। ठीक इसी तरह अंधेरे के काले रंग में मिलकर पानी के अतल में पहुंच जाएगी। अब वह किसी को परेशान नहीं करेगी, रोज अशांति का कारण न बनेगी और किसी का अन्याय, किसी की गाली-गलौज भी उसे सहनी न होगी।

पोखर के अतल में जो चिर अंधकार है उसमें एक शांतिप्रद बिछौना बिछा हुआ है। उस पर सोकर ही उसके मन की आग ठंडी होगी। तभी जूथी का रास्ता खुलेगा। सुगंधित साबुन लगाने में कोई उसका हिस्सेदार न होगा। कोई उसके ब्याह का रास्ता रोके खड़ा न होगा। इस बार लोग जूथी को देखने आएंगे। चाहे जो भी जूथी को देखने आए, उसे देखते ही पसंद कर लेगा। जूथी को चम्पी की तरह तीन दर्जन फालतू सवालों का जवाब

न देना होगा। कैसी बेवकूफी के सवाल करते हैं लोग? दाल में कितना नमक पड़ता है? चम्पी को याद आया कि दूसरी बार जो लोग उसे देखने आए थे—एक दुजाहू वर के लिए, उनमें से एक आदमी, जो एकदम मरघिल्ला था, और शायद वह वर का दोस्त था, उससे पूछा था, "बताइए तो, सीरे में कितना नमक पड़ता है?" चम्पी का जी किया था कि तड़ाक से उसके गाल पर एक थप्पड़ जड़ दे। मगर उस दुजाहू वर के लिए भी चम्पी को पसंद नहीं किया गया था। पसंद करने की एक शर्त थी—चार हजार रुपए नगद और बीस तोला सोना। हाय रे! क्या काला होना इतना बड़ा अपराध है! क्या दुजाहू वर का भी पैसों का लोभ नहीं जाता!

चम्पी और थोड़े गहरे पानी में गई। पानी अब उसके मुंह तक आ गया था। काई की गंध उसके नाक में घुसी। एक छोटी मछली कुट से उसके गले में काटकर भाग गई।

काले और गोरे में कितना फर्क होता है? वह फर्क कितनी देर टिकता है? चम्पी को यह जानने की बड़ी इच्छा होती है। वह जानना चाहती है कि जो लोग गोरी लड़की, गोरी लड़की, करके पागल हो रहे हैं, वे जब रात में अपनी स्त्री के पास सोते हैं, जब कमरे की बत्ती बुझी होती है, क्या तब भी वे काले और गोरे का फर्क समझ पाते हैं? क्या पता, शायद समझ पाते हों। चलो उससे जूथी को कोई असुविधा न होगी। उसके पास गोरेपन की ताकत है। उससे तो शायद लड़की देखने वाले कोई प्रश्न भी न करें। देखेंगे और पसंद कर लेंगे। कोई मांग भी न करेंगे। जूथी की शादी आराम से हो जाएगी।

चम्पी बिना आवाज किए तैरने लगी। पानी में जरा भी आवाज नहीं होने दी। उसकी देह की दोनों बगलों से असंख्य छोटी-छोटी लहरें चक्कर खाती हुई आवर्त बनाती किनारे पर जाकर लौटने लगीं। चम्पी समझ रही थी कि लहरें उठ रही हैं। मगर वह उन्हें देख नहीं पा रही थी। वह जानती है, लहरें ऐसे ही उठती हैं। अच्छा, लहरें किनारे की ओर इस तरह क्यों दौड़ती हैं? क्या वे भी किनारे का आश्रय चाहती हैं? चम्पी ने देखा है, पानी में हाथ डालते ही कैसा तीव्र आलोड़न उठता है ! जैसे एक पल पहले किसी ने लहरों के हाथ-पांव बांध रखे थे। चम्पी ने उन्हें मुक्त कर दिया और मुक्त होते ही वे चारों ओर के किनारों की तरफ हांफती हुई भाग चलीं। उसका भतीजा शंख डर जाने पर जैसे उसकी गोद में या छोटी काकी की गोद में जा दुबकता है, वैसे ही ये लहरें भी तट की मिट्टी में जाकर दुबक जाती हैं। शंख? हां, शंख उसे प्यार करता है। वह काली है इसलिए वह उससे कभी मुंह नहीं फिराता। बच्चा है न ! अभी तो वह देवताओं में शामिल है।

चम्पी पोखर के बीचोंबीच जा पहुंची। अपने घर की दिशा में देखा। घर की चौहद्दी काफी ऊंची है। पूरा घर नहीं दीखता। सिर्फ उसके और छोटे काका के कमरे की छत दीख रही है, और कुछ नहीं। दूर कहीं कीर्तन हो रहा है, शायद जेलेपाड़ा में अथवा बाइतिपाड़ा

में। कीर्तन की अस्पष्ट ध्वनि तैरती हुई आ रही है। जूथी कभी भी पोखर के बीच में नहीं आ सकती। वह तो तैरना भी नहीं जानती। जूथी जानती ही क्या है? जानने की उसे जरूरत भी क्या है? जिन लड़कियों का रंग गोरा है, उन्हें कुछ जानने या सीखने की जरूरत ही नहीं होती। चमड़ी के रंग पर ही उनका बेड़ा पार हो जाता है।

चम्पी ने डुबकी लगाई। पानी में भी उसने अपनी आंखे खुली रखीं। एक तरल काले अंधकार में वह कैसे अनायास डूबती जा रही है। उसे कोई ताकत नहीं लगानी पड़ रही। पानी के ऊपरी हिस्से में अंधेरा फिर भी कुछ फीका था। धीरे-धीरे एक भारी, भयंकर और हिंस्र अंधकार चारों ओर से चम्पी को पूरी ताकत से दबाने लगा। चम्पी के मुंह से बुलबुले निकले। उसका दम घुटा जा रहा था। घुटने दो। उसकी छाती पर असह्य बोझ पड़ रहा था। पड़ने दो। दोनों आंखें धीरे-धीरे पुतलियों को ठेलकर बाहर निकल आना चाहती थीं। चम्पी छटपटाने लगी। पानी के तल में जो अशरीरी काला राक्षस बैठा था उसकी छाती में चम्पी अपने दोनों पांव से लात मारने लगी। दोनों हाथों से पूरी शक्ति लगाकर पानी को ठेलने लगी। वह काला कबंध क्रमशः चम्पी को पूरी ताकत से दबाने लगा। चम्पी को लगा उसका शरीर फटकर टुकड़े-टुकड़े हो जाएगा। धीरे-धीरे चम्पी का उस अंधकार के जबड़ों से निकल भागने का मन करने लगा। वह ऊपर उठने की कोशिश करने लगी। पानी का राक्षस उसे नीचे दबाने लगा। चम्पी को नहीं मालूम, उसने उस राक्षस से कितनी देर संग्राम किया, दो मिनट, दस मिनट, एक घंटा या एक युग। सिर्फ उसे यह लग रहा था कि वह उससे हार रही है, नीचे चली जा रही है। और पूरी ताकत से उसने कई बार पानी में पैर चलाया। देखते-देखते वह ऊपर आ गई। कई बार उसने हिचकी ली फिर कई बार जोर से सों-सों करके हवा भीतर खींची। एक बार थोड़ा पानी भी हवा के साथ उसकी नाक और मुंह में घुस गया। उसे लगा, नाक के भीतर से गले तक किसी ने तीखी तलवार घुसा दी हो। वह बुरी तरह खांसने लगी। इसके बाद थकान से चूर-चूर अपनी देह को किसी तरह तैराते हुए वह किनारे तक ले आई और किनारे की मिट्टी में लेट गई। उस समय भी वह बुरी तरह हांफ रही थी।

चित लेटी चम्पी ने देखा, इस बीच आकाश में तारे निकल आए हैं। असंख्य तारे। आकंद फूल की तीखी बोझिल गंध तैरती हुई आकर उसकी नाक में घुसी। उसके सामने पूरा पोखर स्तब्ध पड़ा था और एक जमा हुआ अंधकार उसे अपनी गोद में लेने को उत्सुक बाहें फैलाए खड़ा था, मगर चम्पी वहां न जा सकी। तब वह जाएगी कहां? अपने घर लौट जाएगी? अनादर और घृणा के बीच। यहां, घाट की इस मिट्टी पर हमेशा तो वह लेटी रह नहीं सकती।

उसके कानों में पानी घुसकर खट-खट कर रहा था। उसे ठंड लग रही थी। उसकी आंखों से आग निकल रही थी। सिर में टिप-टिप दर्द हो रहा था। चम्पी बुरी तरह थक

गई थी। उसमें जो भी ताकत थी उसे पोखर के तल में बैठे उस राक्षस ने जैसे दबाकर बाहर निकाल लिया था। जैसे चम्पी केवल अपनी देह की खोल लेकर वहां से भाग सकी है।

चम्पी मर नहीं पाई। डूब नहीं पाई। वह बहुत अच्छा तैरना जानती है, इसीलिए गांव की कोई भी लड़की तैरने में उसका मुकाबला नहीं कर सकती। उसने तैरना अच्छी तरह सीख लिया था, इसीलिए वह डूब न सकी। क्यों उसने तैरना सीखा था?

अब घर लौटने के सिवा चम्पी के सामने कोई चारा न था। दुबारा फिर उसे उसी लांछना और अपमान-भरे जीवन में घुसना होगा। उसी दुनिया में जहां उसके लिए दबी हुई घृणा फुफकार रही थी। जहां असहाय होकर उसे तब तक मार खाना होगा, जब तक स्वाभाविक मृत्यु आकर उसे अपनी गोद में नहीं ले लेती। अब अपनी इच्छा से वह आत्महत्या करने नहीं जाएगी। उसे आज ही पता चला कि आत्महत्या कितनी कष्टदायक है। वह बड़ी विकट है, बड़ी भयंकर। नहीं, नहीं, अब चम्पी उस रास्ते पर पांव नहीं रखेगी।

उसे न आत्महत्या में रुचि थी और न अपनी दुनिया में वापस लौट जाने का आग्रह था। वह कितनी असहाय है, चम्पी सोचने लगी। वह जैसे धोबी का कुत्ता हो गई थी, जो, घर का होता है न घाट का। वह जैसे मुर्दा नहीं थी, वैसे ही जिंदा भी न थी। वह जैसे निरंतर एक अपमृत्यु के बीच जीवित थी। हालत भी ऐसी ही थी और उसने उसे स्वीकार भी कर लिया था। जो भी आशा और भरोसा था, उसे पानी में फेंककर उसने दुखद वर्तमान के साथ समझौता कर लिया था। उसी के बीच से उसने एक कामचलाऊ रास्ता अपना लिया था। नया दुख न पाने को ही उसने सुख नाम दे दिया था।

चम्पी मजे में ही थी, मगर अचानक उसके मन का संतुलन बिगड़ गया। उसके लिए शैल दी जिम्मेदार हैं। और...एक आदमी और जिम्मेदार है। सवेरे से लेकर मन ही मन जो इतने गीत वह गाती रही है, गाकर जिस आदमी को सुनाती रही है, वह आदमी कौन है? शैल दी? नहीं। तो फिर? नहीं, उसका नाम नहीं लेगी चम्पी। वह खुद को भी उसका नाम बताना नहीं चाहती। उस बात को रूपकथा ही रहने दो।

क्या यह पूरा मामला कपोल कल्पना जैसा नहीं है? जो घटना जीवन में नहीं घटती उसे ही तो रूपकथा कहते हैं। जिसका जन्म कल्पना में होता है और जो कल्पना में ही रहता है। चम्पी के पास रूप नहीं है मगर गुण तो है। कितने ही दिन चम्पी ने कल्पना की है कि अपने उन्हीं गुणों से वह अपने प्रेमास्पद को मुग्ध करेगी। उसने जैसी-जैसी कल्पना की थी, ठीक वैसी-वैसी ही बातें घटित हुई थीं सुहास के साथ। सुहास की दोनों मुग्ध आंखें क्या आज भी उसकी प्रतीक्षा में होंगी? आज तो वह गई नहीं? (सखि री, वे दो नयन मेरा पथ क्यों अगोरे हर छन!) सचमुच क्या सुहास हर क्षण उसकी ओर देखता रहा था?

सुहास की बातें, सुहास का व्यवहार चम्पी की कल्पना को परवान चढ़ा रहे थे। तो क्या सुहास ही उसका वह प्रेमी है? यह बात तो सोचना भी हास्यास्पद है? कहां सुहास और कहां चम्पी ! सुहास आसमान का चांद है और चम्पी पोखर की काई। चांद आसमान में रहता है। वह तो शायद जानता भी नहीं कि उसकी अपार करुणा चांदनी के रूप में एक गंवई पोखर में जन्मी काई की पूरी देह पर फैली हुई है। ऐसी कितनी ही जगहों पर चांद की किरणें पड़ती है। चांद क्या उनका हिसाब रखता है? चांदनी की किरणें बिखेरना ही उसका स्वभाव है। इसीलिए अगर वह यह सोचने लगे कि उस पर चांदनी बिखेरकर चांद उसका हो गया है, अपनी किरणें वह उसी पर निछावर कर रहा है, तो क्या उसका यह पागलपन न होगा? मगर चम्पी तो अभी पागल नहीं हुई है। अच्छी-अच्छी बातें करना, भद्रता दिखाना सुहास का स्वभाव है। दूसरे का मन रखने के लिए, उसे खुश करने के लिए प्रीतिकर बातें करने का सुहास को अभ्यास है। उसी स्वभाव को, उसी अभ्यास को अगर चम्पी कुछ और सोचने लगे तो भाड़ में जाए चम्पी। उसे क्या अपनी औकात का पता नहीं है?

अगर उसे अपनी औकात का पता है तो यह सुनकर कि जूथी शैल दी के घर जा रही है, वह इतना नाराज क्यों हो उठी? कभी नहीं, कभी नहीं। उसने जूथी के ऊपर इसलिए गुस्सा किया था कि वह शैल दी के घर जा रही थी। गुस्सा इसलिए किया था कि जूथी ने उसका साबुन चुराया था। गुस्सा इसलिए किया था कि जूथी उसका निरादर कर रही थी। और देखा नहीं, वह लड़की कितनी बेहया है ! छोटी काकी से साड़ी और कुर्ती मांगकर वह अपनी सुंदरता की बहार दिखाने चली थी। यह कंगालपना चम्पी को अच्छा नहीं लगता। तू जो इस तरह मोहिनी बनकर चली है, किसे ठगने जा रही है? तेरी इस भीख की सजावट देखकर वे नहीं मोहित होंगे। ऐसी ढेर सारी सजावट, ऐसा शृंगार वे रोज ही देखते हैं। कलकत्ते में तो नौकरानियां भी तुझसे कम नहीं सजतीं। इन्हीं सब कारणों से चम्पी को गुस्सा आया था।

हर आदमी को अपनी औकात देखकर चलना चाहिए। कम से कम चम्पी तो ऐसा ही मानती है।

अचानक चम्पी के पास ही पोखर के पानी में एक मछली ने छलांग लगाई।

चम्पी चौंक उठी। उसे घाट पर आए बहुत देर हो गई। अब उसे उठना होगा यहां से। एक बार फिर चम्पी को बीच पोखर में जाने की इच्छा हुई। इस समय तो वहां वैसा अंधेरा नहीं है। वह अगर डूब ही जाती तो क्या होता? निश्चय ही थोड़ा समय और बीतने पर उसकी खोज शुरू होती। पोखरघाट पर भी लोग जमा होते। वे कैसे जानते कि चम्पी डूब मरी है। किसी ने तो उसे घाट पर आते देखा नहीं। चम्पी को लगा, जैसे वह पानी के तल में लेटी-लेटी सब कुछ देख पा रही है। ढेर सारे लोग परेशान होकर उसे ढूंढ़

रहे हैं। किसी ने टार्च की रोशनी फेंकी है। कोई अचानक बोल उठा है, "अरे ! यह घड़ा किसका है?"

चम्पी को अचानक घड़े की याद आई। घाट के पास ही तो पड़ा है। इसे देखकर ही लोग समझ जाते कि चम्पी ने कैसा सर्वनाश किया है। उसे तो घड़े की याद ही न रही। उस समय घड़े की बात याद रहती तो चम्पी को पानी के ऊपर आना न पड़ता। भरा घड़ा लेकर ही वह डूबती। कमर में अथवा गले में घड़े को बांध लेती।

तो फिर क्या होता? सर्वनाश! चम्पी की डर से फटी-फटी आंखों के सामने एक भयावह तथा दारुण तस्वीर घूम गई। वह जितनी बार ऊपर उठने की कोशिश करती यह घड़ा, पानी भरने का यह शांत निरीह पात्र, उतनी ही बार एक विकट हिंसक उल्लास के साथ उसका गला दबाकर उसे पोखर के तल में दबा लेता। वहां न रोशनी थी, न हवा और न निस्तार पाने का और कोई रास्ता। इतनी देर बाद चम्पी को डर लगा। भयानक डर से उसकी देह थर-थर कांपने लगी। उसके माथे पर पसीने की बूंदें चुहचुहा आईं। धड़ाम-धड़ाम करके उसका हृत्पिंड पछाड़ खाने लगा। डर के मारे घड़ा छूने की भी उसकी हिम्मत न हुई।

नहीं, नहीं, नहीं, ऐसी भयंकर और क्रूर मृत्यु की उसे अभिलाषा नहीं है। इससे तो अच्छा है, जो विडंबनापूर्ण जीवन वह जी रही है उसे ही जीती चली जाए। और कुछ हो न हो, सुहास से एक बार मुलाकात तो हो सकती है। वह तो आज भी जा सकती थी, मगर गई क्यों नहीं? क्या जूथी वहां जा रही थी इसलिए? जा रही थी जूथी तो जाती, चम्पी के साथ उसका क्या संबंध? शायद जूथी शैल दी के साथ बातें करती। उनकी साड़ियां और गहने छू-छूकर देखती, जैसा कि पहले भी वह करती आई है। यह भी उसकी एक बुरी आदत है। गांव की कोई भी लड़की बाहर से आती है तो जूथी दौड़कर उसके यहां जाती है और देख आती है कितनी साड़ियां, कितने गहने उसे मिले हैं। इसके बाद कुछ दिनों तक घर में बड़े विस्तार से उसी की चर्चा होती है। चर्चा करते समय जूथी की लोभ से आतुर जीभ से जैसे लार टपकने लगती है। वह ऐसी ही बेहया है ! जूथी जरूर शैल दी का बक्सा खुलवाती और बिना एक-एक चीज देखे वहां से नहीं हिलती।

और चम्पी क्या करती? सुहास बाबू के सामने बैठी रहती। केवल वह और सुहास। सुहास एक के बाद एक फरमाइश करता जाता और चम्पी अपने गीतों की पूंजी उस पर लुटा डालती। आज उसके मन में अनेक गीत जमा हो गए हैं। सुहास के मुंह से प्रशंसा ऐसे झड़ती जैसे बकुल के फूल अपने-आप झड़ते रहते हैं। चम्पी धन्य हो जाती। उसका जीवन सार्थक हो जाता।

धत, यह सब क्या सोच रही है वह? क्या यह सब यहां संभव है! शायद कलकत्ता में ऐसा हो सकता। एक पिछड़े हुए गांव में किसी अल्प परिचित युवक के सामने बैठकर

कोई जवान लड़की गाने गा सकती है क्या? जिस कमरे में अकेला सुहास था क्या उसमें घुसने का साहस भी चम्पी को होता? वह तो बस मौसी के पास बैठी रहती। अगर फूली मौसी उसका गाना सुनना चाहतीं तो इसी से वह अपने को कृतार्थ मानती ! वैसे फूली मौसी के सामने बैठकर गाते हुए भी चम्पी अपने गाने को इच्छित व्यक्ति के पास पहुंचा दे सकती थी। फिर वह आज क्यों नहीं गई? अपनी ही गलती से उसने एक बहुमूल्य अवसर नष्ट कर दिया। चम्पी का मन हाहाकार कर उठा। वह बुद्धू है, बुद्धू है, बहुत कम अक्ल है। एक तुच्छ साबुन के लिए उसने अपना पूरा दिन नष्ट कर दिया, वह तुच्छ चीज उसके लिए इतनी बड़ी हो गई !

दो लड़कियां गप-शप करती पोखर के किनारे-किनारे आ रही थीं। बीच-बीच में वे हंस पड़ती थीं। उनकी हंसी और उनकी बातचीत से चम्पी का डर कम हो गया। अभी तक घड़ा छूने की भी उसे हिम्मत न हुई थी। अब उसने घड़ा उठा लिया। वह बहुत देर से भीगे कपड़ों में थी। ऊपर का हिस्सा तो काफी कुछ सुख गया, मगर सिर भारी हो रहा था। घड़े में पानी भरकर चम्पी पोखर से बाहर आ गई।

लगता था, दोनों लड़कियां उसके घर की ओर ही जा रही हैं।

एक लड़की ने हंसते हुए कहा, "ध्यान से, यहां सांप बहुत हैं, पांव पड़ते ही काट खाएंगे।"

यह जूथी है। चम्पी ने नजरें गड़ाकर उनकी तरफ देखा।

इसके उत्तर में दूसरी जनाना आवाज आई, "और शायद तुम लोगों की देह की महक से सांप भाग जाते हैं। तुम लोग नेवला हो क्या?"

अरे ! ये तो सुहास बाबू हैं ! चम्पी के कलेजे में जैसे किसी ने जोर से घूसा मारा हो। उधर जूथी खिलखिलाती हुई जैसे गिरी जा रही थी।

सात

उनमें से किसी ने भी चम्पी को नहीं देखा। न सुहास ने और न ही जूथी ने।

चम्पी उनके इतने पास आ गई थी कि अगर उन्हें होश होता तो चम्पी को न देखने जैसी कोई बात ही न थी। पोखरघाट से चम्पी के घर का पिछवाड़ा ऐसा कुछ दूर भी न था। बीच के खाली रास्ते को दो छलांग में पार किया जा सकता था। आकाश में तारे बिखरे हुए थे और अंधेरे को बहुत कम कर रहे थे। पोखरघाट के पेड़ भी ऐसे बड़े न थे कि उनकी छाया में चम्पी को देख पाना संभव न था।

चम्पी खड़ी रही। भरे घड़े को कमर पर रखे हुए चम्पी निश्चल, स्थिर खड़ी थी। उसे देखकर निश्चय ही सोचा जा सकता है कि कोई पत्थर की प्रतिमा गढ़कर वहां छोड़ गया है। चम्पी केवल स्वयं जमकर पत्थर नहीं हुई थी, बल्कि दिन-भर जिस सुंदर मूर्ति को उसने तिल-तिलकर बड़े यत्न से गढ़ा था, वह जीवंत मूर्ति भी जमकर पत्थर हो गई थी। कुछ क्षण पहले उसका सिर भारी हो रहा था, ठंड लग रही थी, उसके पूरे शरीर में एक सनसनाहट-सी फैल गई थी और पानी से भरा घड़ा बहुत भारी लग रहा था। मगर अब जैसे उसके भीतर कोई चेतना ही न थी।

अगर उसे किसी बात का होश होता तो उसकी आंखों के सामने जूथी और सुहास जो बेहयाई कर रहे थे, जिस तरह एक-दूसरे की देह पर गिरे जा रहे थे, क्या उसे चम्पी बर्दाश्त कर पाती? जलन से भस्म न हो जाती? लज्जा से उसका सिर झुक न जाता? घृणा से उसका मन जहरीला न हो उठता? मगर ऐसा कुछ न हुआ। रक्त-मांस से बनी उसकी देह पलक झपकते ही ढलाई की गई शीशे की मूर्ति हो गई।

इसीलिए जब सुहास ने गदगद होकर जूथी का एक हाथ पकड़कर, अपने स्वर में मधु ढालते हुए कहा कि 'तुम्हारे जैसी सुंदरी मैंने आज तक नहीं देखी, कितने नरम हैं तुम्हारे हाथ !' और जूथी को अपनी ओर खींचा, और भावाविष्ट जूथी उसके सीने से जा लगी, जब सुहास ने दोनों हाथों से जूथी का चेहरा पकड़कर ऊपर उठाया और उस निर्जन वातावरण में जूथी के होंठों पर सुहास के होंठ उतर आए, और जब जूथी ने "जाइए, आप बड़े असभ्य है !" कहकर इठलाते हुए अपने को अलग कर लिया और अजीब-से भरे-भरे स्वर में कहा, "कल दोपहर को आऊंगी" और जब सुहास ने दुबारा उसकी ओर हाथ बढ़ाया तो उसकी गिरफ्त में आने के पहले ही बिजली की तरह मुस्कराकर जूथी अपने घर में घुस गई और सुहास के दोनों हाथ हवा में चक्कर काटकर नीचे आ गए, तब भी (यह सब देखती हुई भी) चम्पी जरा भी व्यग्र न हुई। उसके लिए जैसे यह सब घटित ही नहीं हुआ था। न जाने कौन उनके दरवाजे तक आया था और अब हिलता-डुलता पोखर के किनारे के रास्ते पर कदम रखते हुए अंधकार में विलीन हो गया। अब घाट शून्य था, रास्ता शून्य था, सब कुछ शून्य था। सब कुछ शून्य। सब कुछ जैसे धोखाधड़ी का एक अनोखा करतब लग रहा था। इस दुनिया में सुहास नाम का कोई युवक नहीं हैं, कलकत्ता नाम का कोई उदार शहर नहीं है और विश्वास नाम की, अच्छाई नाम की कोई चीज नहीं है।

चम्पी अब खामखा वहां क्यों खड़ी है? भारी मन और भारी घड़ा ढोती शीशे के भारी पांव मुश्किल से उठाती चम्पी घर आई। उसकी समझ में आ गया कि इतना बोझ ढोने की शक्ति अब उसकी देह में नहीं है। उसने किसी तरह घड़ा उतारकर नीचे रखा। फिर भी वह पथरीला घाव अपने शरीर पर से किसी तरह भी झाड़कर फेंक नहीं पा रही थी। जैसे किसी ने उसके

सिर पर, कंधों पर, छाती पर और हाथों-पांवों पर सैकड़ों भारी घड़ों का वजन एक साथ डाल दिया हो। इसी कारण दालान की सीढ़ियां चढ़कर ऊपर जाने में वह हांफ उठी, भीगे कपड़े उतारने से जैसे उसके हाथ इनकार करने लगे।

चम्पी का पथरीला भाव धीरे-धीरे कम होने लगा और जैसे-जैसे वह कम होने लगा वैसे-वैसे ही अपने बांधों को तोड़कर आती हुई यंत्रणा की लहरें अपनी पूरी शक्ति के साथ चम्पी की आत्मा से टकराने लगीं। चम्पी को लगा जैसे उसकी देह में सिर और छाती के अलावा और कुछ है ही नहीं। उसे लगा जैसे उसका सिर फट जाएगा और उसकी छाती पर इतना बड़ा बोझ आ पड़ा था कि उसे सांस लेने में भी कष्ट हो रहा था।

किसी तरह एक चटाई बिछाकर चम्पी उस पर लुढ़क गई।

चम्पी बहुत दिनों तक बीमार रही। प्रायः डेढ़ महीने तक भूषण ने जैसे यमराज से युद्ध किया। आखिर में जीत भूषण की ही हुई। चम्पी जवान थी, स्वास्थ्य भी अच्छा था, इसलिए डबल निमोनिया उसे आसानी से काबू में नहीं ला सका। चम्पी की बीमारी को लेकर उस घर के लोगों ने ये 45 दिन किस तरह काटे, भगवान ही जानता है। दामिनी ने खाना-पीना प्रायः छोड़ ही दिया था। गले में फांसी लगाकर कभी वे मदनमोहन के मंदिर में पड़ी रहती थीं, कभी मंगल चंडी के स्थान पर, तो कभी पीर साहब की दरगाह पर। अनेक रातें जागकर जूथी ने चम्पी के माथे पर भीगी पट्टियां रखते हुए बिताई थीं, पुराना घी लगाकर मदार के पत्तों को गरम कर उसकी छाती की सिंकाई की थी और सिरहाने बैठकर पंखा झला था। दादी ने लगातार बैठकर जप किया था और ठाकुरद्वारे की मिट्टी लाकर चम्पी के माथे पर पोतती हुई लगातार रोई थीं। घर-गृहस्थी का सारा काम गिरिबाला ने संभाला था, चम्पी के लिए फलों का रस और पथ्य तैयार किया था। बीच बीच में विलास पैसों की व्यवस्था करने जाते और फिर चम्पी के बिस्तर के पास आकर चुपचाप बैठ जाते। ज्वर के सन्निपात में जब चम्पी अक-बक करती, दांत पीसती तो विलास चम्पी के मुंह के पास अपना मुंह ले जाकर कातर स्वर में कहते, "क्या कह रही हो, बेटी? दर्द हो रहा है? ठीक हो जाएगा, मैं हूं न, तुम्हारा बाप। मुझे पहचान रही हो? हे भगवान ! हे राम ! हमारी ऐसी अच्छी बेटी को क्या हुआ? अरे ओ भूषण, ओ जूथी, मां, बहूरानी, तुम सभी जल्दी आओ। हाय हाय ! लगता है अब मेरी बच्ची नहीं बचेगी।" कह-कहकर वह अपनी छाती और सिर पीटने लगते। पूरा घर उन्हें संभालने में परेशान हो उठता। उधर शंख भी लोगों को तंग कर डालता था। "दीदी-दीदी" करते हुए वह दौड़कर चम्पी के पास जाता, कोई न होता तो वह उसकी छाती पर चढ़ जाता और उसके लिहाफ को खींचकर फेंक देता। दवा की शीशियां गिराकर तोड़ डालता और पुड़िया मुंह में डाल लेता।

फिर भी चम्पी बच गई। प्रायः दो महीने बाद बालम चावल का छटाक-भर भात और

मांगुर मछली का रस देकर उसका उपवास तोड़ा गया। देह में ताकत आने में और दो महीने लगे।

कितना अच्छा स्वास्थ्य था चम्पी का! उसका काला रंग लावण्य की स्निग्धता से चमकता रहता। उसकी वह चमक चली गई। उसकी देह में जो अमित प्राणशक्ति थी वह भी जैसे समाप्त हो गई। जाने कैसी हो गई चम्पी! एकदम उदास, चुप और स्थिर। ज्यादा हिलना-डुलना उसे अच्छा न लगता। कुछ कहो तो कर देती, नहीं तो चुपचाप बैठी रहती। कोई भी चीज, कोई भी घटना, कोई भी व्यक्ति उसकी उत्सुकता नहीं जगा पाता था।

कई बार लगता, वह मन ही मन कुछ सोच रही है। दरअसल वह कुछ भी सोचती न थी, सोच पाती ही न थी। उसके जीवन के एक-एक दिन सूखे पत्तों की तरह निःशब्द झरते जा रहे थे। महीने बीत रहे थे, ऋतुएं बदल रही थीं, गर्मी के बाद वर्षा, फिर शरद, हेमंत और जाड़ा आया, फिर चला गया। वसंत आया और चला गया। गांव की एक और लड़की ब्याही जाकर विदा हो गई। शहनाई का करुण स्वर हवा में तैरता हुआ चम्पी के पास भी आया, मगर चम्पी के मन के भारी कपाट बंद के बंद रहे। जैसे किसी ने उस दरवाजे में कीलें ठोक दी हों, उसमें लगे ताले में जंग लग गया हो। इसीलिए कोई भी चीज उसके बंद दरवाजों को भेद नहीं पा रही थी।

आठ

कभी-कभी गिरिबाला को आशंका होती, क्या इसका मन एकदम ही पत्थर हो गया है? पहले की तरह अब घर के कामों में इसे सुख नहीं मिलता, क्यों?

और फिर इस घर में उसके लिए सुख पाने जैसी चीज भी क्या है?

चूल्हे में आग जलाकर बैठी थी वह। जेठानी पति की प्रतीक्षा में अभी तक बैठी थीं, तुरंत उठकर गई हैं। घर में चावल नहीं है। पति से कहते-कहते जेठानी का मुंह थक गया है। एक आदमी के पास कुछ धान उधार है, उसी की वसूली करने गए हैं विलास। भूषण अपनी क्लिनिक गया है।

भूषण की क्लिनिक कहने भर को है। उससे कोई कमाई नहीं होती। क्लिनिक से वह किराए के पैसे भी नहीं निकाल पाता। इसीलिए पहले जो कमरा किराए पर लिया था उसे छोड़ देना पड़ा। किराया चुकता करने के लिए उसे अपना गोल्ड मेडल बंधक रखना पड़ा था। उसने अब एक और छोटे-से कमरे में क्लिनिक खोली है। एक दर्जी की दुकान का आधा हिस्सा, बहुत कम किराए पर, मिल गया है।

भूषण ने गिरिबाला से कहा था, "दर्जी के साथ क्लिनिक खोलने से अच्छा ही है। दर्जी के खरीदारों को कोई रोग होगा तो भूषण के यहां दवा लेने आएंगे और भूषण के रोगियों को कपड़े सिलवाने होंगे तो वे दर्जी से सिलवाएंगे। इस तरह वे एक-दूसरे का सहयोग करेंगे।" भूषण ने गिरिबाला को समझाया था कि आज के युग में जिंदा रहने का एक बहुत अच्छा रास्ता है सहयोग। लगे हाथों इसका उदाहरण भी भूषण ने दिखा दिया था। दर्जी का लड़का बीमार पड़ा तो भूषण ने उसे ठीक कर दिया। उसके कुछ ही दिनों बाद दर्जी ने शंख के लिए एक झंगोला सिलकर दिया। भूषण इससे बहुत उत्साहित हुआ था। इसी तरह चले तो उसे कोई चिंता नहीं। मगर सहयोग का ऐसा जाज्वल्यमान उदाहरण ज्यादा प्रस्तुत नहीं कर सका भूषण। दरअसल सहयोग के इस सिद्धांत का एकमात्र उदाहरण वही रहा, जिसकी चर्चा हम कर चुके हैं। संभवतः दर्जी के घर और कोई व्यक्ति बीमार नहीं हुआ।

अगर और होता भी तो उससे कौन-सा ऐसा सुफल मिलने वाला था। हद से हद शंख के लिए एक और झंगोला आ जाता। मगर क्या उससे घर वालों का पेट भरता ! गिरिबाला के सौ बार समझाने पर भी भूषण यह बात क्यों नहीं समझता?

अब आज की ही बात लो, घर में चावल का एक दाना नहीं है। गिरिबाला चूल्हे में आग जलाकर चुपचाप बैठी है। पता नहीं, कब जेठ जी चावल लाएंगे? तब कहीं जाकर रसोई बनेगी। क्या यह बात भूषण की समझ में कभी नहीं आएगी? क्या वह हमेशा अपने को लेकर ही व्यस्त रहेगा? जिस काम से दो वक्त का भात भी न जुटे उसे करने का लाभ ही क्या है? मगर यह बात भूषण से कहना भी मुश्किल है। कहने पर वह कोई ऐसा व्यवहार शुरू कर देगा, जिसे संभालने में उन लोगों की जान आफत में आ जाएगी।

इस बीच भूषण ने व्यापार भी कम नहीं किए ! मछली का व्यापार किया जिसके लिए 150/- रुपए का घाटा अभी कुछ दिनों पहले ही भरा गया है। गिरिबाला के गहने बंधक रखकर उसने मछली के व्यापार में लगाए थे। उसका हिस्सेदार पैसे लेकर लापता हो गया। भूषण ने पैसों की वसूली की कोई व्यवस्था नहीं की। डरते हुए गिरिबाला ने एक बार पूछा था, "पुलिस में रिपोर्ट लिखाई है या नहीं?"

भूषण ने भौंचक्का होकर कहा था, "पुलिस ! अगर पुलिस पैसे दिलवा पाती तो बात ही क्या थी ! तुमने कभी सुना है कि पुलिस ने किसी के पैसे दिलवाए हैं? इसके अलावा मेरे पैसे चुराकर उस आदमी ने अपना कितना नुकसान किया, यह भी तो सोचकर देखो। अगर वह ऐसा न करता और व्यापार को बनाए रखता तो ऐसे कितने डेढ़ सौ रुपए वह हर महीने कमाता, इसका कोई ठीक है। चोरी करके तो उस बेवकूफ ने खुद अपने पांवों पर कुल्हाड़ी मार ली।"

बस, हो गया मछली का व्यापार। इसके बाद कुछ दिनों ठेकेदारी करने का भूत सवार

हुआ भूषण पर। इसी बीच चम्पी बीमार हो गई, इसलिए भूषण उधर ध्यान नहीं दे पाया। अब गिरिबाला देख रही है, कई दिनों से भूषण जाने क्या-क्या हिसाब-किताब लगा रहा है। इस बार उसके दिमाग में क्या चल रहा है वही जाने।

घर में इतना अभाव है, फिर भी भूषण कोई मदद नहीं कर पाता, अपने बच्चे और अपनी बहू के पेट भरने लायक भी आमदनी नहीं कर पाता, यह बात साफ-साफ न कहकर भी उसके बड़े भाई ने किसी-किसी बहाने से उसे समझा दी है। लज्जा और दुख से गिरिबाला धरती में समा जाना चाहती है। कभी-कभी उसका मन करता है, भूषण से यह सब कहे, मगर उसे डर लगता है, कहीं भूषण नाराज न हो जाए! इसीलिए वह सब कुछ सहती जा रही है।

मगर आदमी सहे भी कहां तक! आज मन ही मन गिरिबाला गरम हो उठी थी। इतना दिन चढ़ गया, अभी तक उसके मुंह में कुछ न गया। चम्पी और जेठानी भी मुंह बांधे पड़ी हैं। चावल की थोड़ी-सी खुद्दी थी, उसी की उसने पतली खिचड़ी बना ली थी। जेठ जी, भूषण, बख्शी महाशय और जूथी ने थोड़ी-थोड़ी खिचड़ी खाई थी। शंख को भी उसने थोड़ी खिचड़ी खिलाई थी। उसके लिए थोड़ा रख भी दिया था। थोड़ी देर पहले भूख से वह बिलख रहा था, मगर किसी भी तरह उसने मुंह में खिचड़ी नहीं रखी। बड़ी मुश्किल से गिरिबाला ने उसे छाती धराकर सुलाया है। गिरिबाला को जो दूध होता है उससे शंख का पेट नहीं भरता। नींद टूटते ही वह खाने के लिए परेशान करेगा। तब गिरिबाला उसे क्या देगी?

अचानक गिरिबाला ने जेठ जी की आवाज सुनी। विलास चीखते हुए घर में दाखिल हुए।

"ओ जी, सुनती हो? कहां गए सब? सुनो, हो गया सत्यानाश !"

गिरिबाला का कलेजा धड़कने लगा। अब क्या सत्यानाश हुआ? किसी आशंका से उसका कलेजा बुरी तरह कांपने लगा।

दामिनी भी जल्दी से अपने कमरे से निकल आईं। जूथी भी बरामदे में आकर खड़ी हो गई।

दामिनी ने बड़ी बेचैनी से पूछा, "क्या हुआ? क्या बात है?"

"चम्पी को एक सज्जन देखने आए हैं। स्कूल में बैठा आया हूं। बड़े सज्जन आदमी हैं। चलो, अब इसकी व्यवस्था करो।"

गिरिबाला की जान में जान आई। बाप रे ! भसुर जी भी कमाल के हैं ! क्या का क्या बोल जाते हैं !

"क्या कह रहे हो?" दामिनी जैसे आसमान से गिरी, "सवेरे तो तुमने बताया नहीं?"

"बताता क्या, इसमें बताने को क्या था?"

विलास चिढ़ गए।

"मैं क्या खुद भी जानता था! घर से तो निकला था भादड़ा जाने को। बख्शी के घर के पास पहुंचा था कि उन सज्जन से मुलाकात हो गई। वे मुंह बाए मुझे देख रहे थे। मुझे भी चेहरा जाना-पहचाना लग रहा था। अचानक याद आया, काजीपाड़ा के मामा लोगों के यहां उन्हें देखा है। मैंने बताया तो बोले हां, मुझे भी पहचान लिया। हमारे साथ उनका दूर का कुछ रिश्ता भी लगता है। मामा लोगों के रिश्ते से वे हमारे भाई लगते हैं। उन्होंने कहा कि वे अपने भानजे के लिए कोई लड़की देखने आए थे। लड़की पसंद नहीं आई। फिर सुना, मेरी भी एक लड़की है तो उन्होंने सोचा इसे भी देखते चलें।"

विलास अपनी धुन में सारी बातें कह गए। दामिनी की समझ में न आया कि वे रोएं या हंसें।

दामिनी बोलीं, "तो अब तक क्या कर रहे थे? थे कहां?"

"क्यों, स्कूल में बैठा हुआ था। बहुत ठंडी जगह है और शांत भी है। शास्त्रों को लेकर थोड़ी बातचीत हुई। मैं समझ गया कि उन्होंने भागवत-वागवत अच्छे ढंग से पढ़ा है। मैंने भी अपना उद्धव-प्रसंग सुना दिया, समझी? वही, जिससे शांतिपुर के गोसांई महाराज को भी ठंडा कर दिया था मैंने, याद नहीं है?"

दामिनी की देह में आग लग गई। मन किया फांसी लगाकर जान दे दें। उनकी समझ में नहीं आया कि इस आदमी को लेकर वे क्या करें। सारा जीवन इसी तरह उसने दामिनी को जलाया है। गया था धान लाने, जानता है, घर में एक दाना नहीं है, और रास्ते में लोगों को इकट्ठा करके इतनी देर शास्त्र-मीमांसा कर रहा है। और घर में आकर कहता है—लड़की दिखानी है। डेढ़ पहर बीत गया। अब दामिनी क्या करे? अपना सिर पीटे या इसका?

उधर विलास बाबू अपने आप मे बोलते जा रहे थे, "शास्त्र तो सभी पढ़ते हैं, पर उसका मर्म कितने लोग समझते हैं? असल बात तो यही है। मर्म को समझना होगा। इसीलिए मैं कहता हूं—राधा नहीं, चन्द्रावली नहीं, ललिता और विशाखा भी नहीं, उद्धव की बात करो। मैं इसीलिए उद्धव पर जोर देता हूं। क्यों?"

"भाड़ में जाएं तुम्हारे उद्धव। भरी दोपहरी में बात बढ़ाओ मत। और जिस उद्धव को अभी ले आए हो, उसकी कुछ व्यवस्था करो।"

विलास ने कहा, "व्यवस्था मैं क्या करूंगा? व्यवस्था तो तुम लोगों को करनी है। चम्पा को थोड़ा सजा-बजाकर रखो। मैं थोड़ी देर बाद ही उन्हें लेकर आता हूं।"

दामिनी ने हताश होकर कहा, "उससे क्या होगा? खाने-पीने की कुछ व्यवस्था तो करनी होगी कि नहीं? वह कौन करेगा?"

विलास इस बार बाकायदा चिढ़ गए, "क्या बात करती हो? घर में इतनी औरतें हैं तो क्या मेहमान को खिलाने की व्यवस्था मुझे करनी होगी? तुम लोगों के हाथों में क्या कोढ़ फूटी है?"

दामिनी ने कहा, "घर में कुछ है भी कि खाने-पीने की व्यवस्था ही करूं? अनाज-पानी कुछ लाओगे तभी तो पकेगा?"

विलास गरज उठे, "जिस दिन से घर में तुम्हारे चरण पड़े हैं, उसी दिन से घर में कंगाली छाई है। मजाल है जो घर में कुछ रहे !"

बिना कुछ जवाब दिए दामिनी अपने कमरे में चली गई। विलास थोड़ी देर चीख-पुकार मचाते रहे। फिर अचानक जूथी से बोले, "जरा थैला देना तो।"

थैला लेकर विलास हनहनाते हुए पोखर के किनारे वाले रास्ते से कोल्हूपाड़ा की ओर रवाना हो गए।

भूषण लौटकर जब घर पहुंचा तब खाना-पीना करके बगलाकान्त बाबू आराम फरमा रहे थे। भूषण ने उनके साथ थोड़ी बातचीत की।

बगलाकान्त बाबू की उम्र चालीस के आसपास थी। सिर गंजा हो रहा था। अच्छी-खासी तोंद थी। मोटे-ताजे, खाए-पीए आदमी थे।

तीसरे पहर लड़की दिखाने की व्यवस्था हुई। चम्पी ने साबुन लगाकर अच्छी तरह स्नान किया। यह वही साबुन था, जिसे लेकर एक दिन जूथी के साथ उसका झगड़ा हुआ था। गिरिबाला और जूथी ने मिलकर उसे सजाया। अपनी छोटी काकी के कपड़ों में सजते हुए आज चम्पी को जरा भी परेशानी न हुई। सिर नीचा किए दबे पांव आकर बड़े संकोच से वह बगलाकान्त बाबू के सामने रखे आसन पर बैठ गई।

चम्पी का स्वास्थ्य देखकर ही बगलाकान्त मुग्ध हो गए।

हंसकर बोले, "विलास बाबू, आपकी बेटी का स्वास्थ्य तो बहुत अच्छा है। हां, गृहस्थों के घर की बहू के हाथ-पांव ऐसे ही होने चाहिए, जिससे वह सभी तरह के बोझ संभाल सके। वह सब जो पतली कमर वाली लड़कियां होती हैं, उन्हें हमारे घर के लोग अच्छी नजर से नहीं देखते।"

बगलाकान्त बाबू की बात सुनकर विलास फूले न समाए। विलास इसी बात से आनंदित थे कि बगलाकान्त बाबू ने लड़की के कालेपन को लेकर उन्हें लज्जित नहीं किया और कम से कम लड़की की एक चीज उन्हें पसंद आई।

हाथ मलते हुए विलास ने कहा, "अभी आप जो देख रहे हैं यह तो बिटिया के स्वास्थ्य का आधा ही है। कुछ ही दिन पहले डबल थी। निमोनिया से पैंतालीस दिनों तक पीड़ित रही। मैंने तो इसकी आशा ही छोड़ दी थी। बीमारी के बाद से हमारी बेटी पहले जैसी तंदुरुस्ती न पा सकी। न तो अच्छा खाना-पीना है और न सेवा-जतन।"

"सब होगा, विलास बाबू, अच्छा खाना-पीना भी होगा, अच्छी सेवा-जतन भी होगी।"

बगलाकान्त बाबू हंसने लगे। थोड़ी देर हंसने के बाद बोले, "हमारे घर में बहुओं को

खाने-पीने का कोई अभाव नहीं है। फसल मारी जाने पर भी हमारे घर में चार गोले धान से भरे हुए हैं। दो पोखरों में मछलियां और आठ-आठ दुधारू गाएं हैं। खाए न, कितना खाएगी ! बगला विश्वास के घर खाने-पीने की कमी नहीं है। भरोसा न हो तो काजीपाड़ा के अपने मामा लोगों से पूछ लीजिएगा। और सेवा-जतन की बात! हा! हा! हमारे घर की बहुएं हमारे माथे की मणि, हमारे घर की लक्ष्मी होती हैं, श्रीमान जी ! यह बात भी अपने मामा लोगों से पूछ लीजिएगा। अगर बगला विश्वास की एक भी बात झूठी निकल जाए तो जो सजा चोर की वह मेरी।"

विलास एकदम गलकर मोम हो गए। लगातार अपने दोनों हाथ मसलते रहे। बोले, "हमारा ऐसा भाग्य कहां कि हमारी बेटी आपके घर की बहू बने।"

"यह बात कोई नहीं कह सकता।" बगला बाबू बोले, "जिसका जैसा भाग्य! अगर आपकी लड़की के भाग्य में हमारे घर का अन्न लिखा है, तो क्या उसे कोई रोक सकता है? न आप रोक सकते हैं, न मैं और न मेरा भानजा। सब भाग्य की बात है, महाशय, भवितव्यम्!"

"यह बात तो ठीक है।" विलास बाबू ने समर्थन किया।

बगलाकान्त बोले, "अगर आप बुरा न मानें तो मैं आपकी बेटी के हाथ देखना चाहूंगा। आप तो जानते हैं, मैं थोड़ी ज्योतिष विद्या भी जानता हूं। लड़की देखते समय फालतू बातें मैं पसंद नहीं करता। बाल देखना, दांत देखना, यह सब मुझे असभ्यता लगती है। मैं क्या कोई गाय-बैल खरीदने आया हूं कि दांत देखूंगा?"

बगलाकान्त बाबू की बातें सुनकर बाहर-भीतर हंसी की धूम मच गई।

बगलाकान्त बाबू बोले, "मगर हां, जो देखना है उसे तो देखना ही होगा। स्वास्थ्य देख लिया, अब भाग्यरेखा देख लूं, बस खत्म। जरा दिखाना तो बेटी, अपना हाथ?"

बगलाकान्त बाबू ने पहले चम्पी का दाहिना हाथ अपनी बाईं हथेली पर चित करके रखा। एक-दो बार बड़ी मुलायमियत से दबाया। हाथ दबाने का उनका तरीका ऐसा था कि चम्पी की देह गनगना उठी, चेहरा लाल हो उठा। फिर उन्होंने चम्पी का पंजा उलट दिया। पहले की तरह एक-दो बार फिर टीपा। हर उंगली की कोर देखी। फिर पंजे को उलट दिया। हथेली की रेखाओं को देखा। दो-तीन बार अंगूठे को मोड़कर देखा। इस प्रकार दाहिनी हथेली देख चुकने के बाद इसी प्रक्रिया में फिर बायां हाथ देखा। इसके बाद एक साथ दोनों हाथ देखे। अपरिचित पुरुष के हाथों का दबाव अपनी हथेलियों पर बार-बार महसूस करने से चम्पी को पसीना आ गया। उसका दिल धड़कने लगा। हाथ देखना खत्म हुआ तो उसकी जान में जान आई।

काफी देर से बगलाकान्त बाबू तन्मय होकर हाथ देख रहे थे। अब वह काम समाप्त होने पर विलास की ओर देखकर हंसे।

बोले, "आपकी लड़की के लक्षण बहुत अच्छे हैं। जहां भी जाएगी सुखी रहेगी।"

विलास की आंखों में आंसू भर आए।

बोले, "मगर उसे किसी घर में देने की मेरी सामर्थ्य ही नहीं है।"

बगलाकान्त बाबू बोले, "भाग्य के ऊपर किसका वश है? जो घर उसके भाग्य में लिखा है वहां वह जाएगी ही। हम-आप चाहें या न चाहें। हां, हमारे कुल का एक और नियम है।"

कहकर उन्होंने अपनी जेब से सोने का एक जोड़ा कंगन निकला।

बोले, "अगर ये कंगन आपकी लड़की के हाथ में अंट जाए, तो समझ लीजिए मंगनी हो गई। इसके बाद आप लोग जाकर लड़का और उसका घर-बार देख आइए। फिर विवाह की तिथि बता दीजिए। उसी दिन हम लोग आकर विधि-विधान से अपने घर की बहू विदा करा ले जाएंगे। जरा दिखाना तो हाथ।"

चम्पी को अपने कानों पर विश्वास न हुआ। न दामिनी को, न विलास को, न वहां उपस्थित और किसी को। क्या ऐसी आश्चर्यजनक घटनाएं भी घटती हैं? क्या ऐसे आदमी भी इस दुनिया में होते हैं? यह आदमी है या देवता?

चम्पी ने अपना एक हाथ आगे कर दिया। बहुत दिनों बाद उसके मन में फिर से उत्साह जागा। एक कंगन लेकर बगलाकान्त बाबू चम्पी के हाथ में पहनाने लगे। कंगन थोड़ा छोटा था। बगलाकान्त बाबू चम्पी का हाथ दबा-दबाकर तरह-तरह से कोशिश करके बड़े निपुण हाथों से कंगन पहनाने लगे। चम्पी ने महसूस किया कि बगलाकान्त बाबू की हथेली भी पसीना-पसीना हो रही है। एक भीतरी उल्लास से वे दोनों वयस्क हाथ थरथराने लगे थे। अचानक एक बार चम्पी की नजर बगलाकान्त बाबू से मिल गई। उसने देखा उनकी आंखों में जैसे रोशनी की लकीरें खिंची हुई थीं।

नौ

भूषण के कमरे को वासरघर बनाया गया था। शाम होते ही लग्न थी, इसीलिए सब कुछ जल्दी ही निपट गया।

चम्पी की बड़ी बहन कमला अभी तक वर के पास ज्यादा बैठ नहीं पाई थी। चम्पी के विवाह के सिलसिले में पिता के घर आकर अभी तक वह रो-पीट रही थी। गोद के बच्चे को बुखार था। लगता था, खसरा है। बच्चा बार-बार बेहोश हो जाता था। उधर बहन का विवाह सिर पर था, इधर कमला अपने बच्चे को लेकर परेशान थी।

मझली लड़की विमला ही वासरघर को सजाने की कोशिश कर रही थी। गिरिबाला का मन हो रहा था कि वह भी विमला के साथ शामिल हो जाए। उसकी अपनी शादी में तो वह खुद वधू थी। हंसी-मजाक और मौज-मस्ती में उसे शामिल नहीं होना था। अब एक मौका मिला है, मगर इसका फायदा उठाने में भी उसे हिचक हो रही है। मगर विमला ने एक बार उसे बुलाया तक नहीं। इसीलिए वह नाते-रिश्तेदारों की सेवा में लगी है। मौका मिलता है तो वासरघर में भी झांक आती है। ये लोग बड़े स्वार्थी हैं। हंसी-खुशी के मौके पर उसे अलग किए रहते हैं, मगर जब कुछ लेना होता है, कोई नेग-चार होता है तो इनसे जरा भी भूल नहीं होती। तब तो आकर बड़े मीठे स्वर में बोलती हैं—छोटी काकी, जरा अपनी बनारसी साड़ी दिखाना, जरा अपना हार दिखाना, यह दिखाना, वह दिखाना। तब खूब प्रेम छलकता है इनका। गिरिबाला मन ही मन बहुत चिढ़ गई थी। उसका गुस्सा सभी के ऊपर था।

गुस्से का कारण भी था। चम्पी के गले में इस समय जो चेन पड़ी है उसे गढ़ाने के लिए भूषण गिरिबाला का हार ले गया था। छः तोले का हार था। कोई मजाक नहीं है! उसे तुड़ाकर चम्पी के गले की चेन और वर के लिए अंगूठी और बटन बने थे। हार देते समय गिरिबाला का मन बहुत उदार हो उठा था। भूषण ने ऐसा करने के लिए अपनी वाग्मिता का जो कौशल दिखाया था उससे गिरिबाला के पांव उखड़ गए थे। उसने एक तरह से स्वेच्छा से ही अपनी एक हंसली निकालकर दे दी थी। जेठानी ने दो चार दिन सौ-सौ मुंह से देवरानी की प्रशंसा की। गिरिबाला कृतार्थ हो गई। उसने सोचा, लगता है, इस बार वह एक अदृश्य अवरोध पार करके उन लोगों के हृदय में प्रवेश कर गई है।

मगर उसका ऐसा सोचना गलत था, भूल थी। यह उसकी कितनी बड़ी भूल थी, उसकी समझ में तब आया जब उसकी दोनों ननदें ससुराल से आईं। गिरिबाला ने देखा, कैसे चिड़िया फिर अपने झुंड में मिल गई और अपने घोंसले में एक-दूसरे के गले में गला-डालकर कूकने लगीं। पहले जैसे वह उनके घोंसले के बाहर थी, उसी तरह अब भी वह चारदीवारी के बाहर ही रह गई। भलमनसाहत दिखाने का नतीजा यह हुआ कि उसे अपना इतना सुंदर और कीमती हार खो देना पड़ा। अब क्या फिर ऐसा हार वह बनवा सकेगी? वासरघर के दरवाजे के भीतर जितनी बार उसने नजर दौड़ाई है उतनी ही बार वहां के शोरगुल, फूहड़ हंसी-मजाक और बकबक के बीच, हंडे की रोशनी में चम्पी के गले में चमकती हुई चेन उसकी नजरों में चुभी है और उसका मन अपने हार के लिए हाहाकार कर उठा है। वह तो उनकी कुछ भी नहीं लगती। तो फिर क्यों उसने अपना इतना बड़ा नुकसान कर डाला !

पूरे घर में लोग भरे हुए थे। घर की सुख-शांति एकदम समाप्त हो गई थी। जसोर के मझले

जेठ के साथ बड़े जेठ जी और उनकी मझली लड़की का रात-दिन झगड़ा चल रहा था। ऐसे वातावरण में गिरिबाला एकदम आजिज आ चुकी थी। किसने अपने लड़के को चोरी से मछली खिलाई, किसने मिठाइयां चुराईं, किसने किसका अपमान किया इन्हीं बातों को लेकर झगड़े हो रहे थे। शादी से पहले इसी बात को लेकर तुमार बंधा हुआ था कि बासरघर के लिए कौन अपना कमरा खाली करे। झगड़ा इतना बढ़ा कि गिरिबाला की मंझली ननद ब्याह के पहले ही लौट जाने के लिए अपने कपड़े-लत्ते समेटने लगी और मझले जेठ स्टेशन जाने के लिए बैलगाड़ी लेने चले गए। दूसरी तरफ विलास ने अपने बाल नोंच, उछल-कूद मचा, मुंह से फेन छोड़ते हुए दामिनी की दस पुश्तों को गाली देकर उद्धार कर डाला। इसके बाद दामिनी ने अपने कमरे में घुसकर अंदर से सांकल लगा ली और विलास प्रायश्चित करने पूजाघर में बैठ गए। भूषण और बख्शी महाशय ने बीच-बचाव करके किसी तरह मामला शांत किया। इस बीच गिरिबाला को कई दिनों के लिए अपना कमरा छोड़ना पड़ा। बिचारी शंख को लेकर भंडारघर के एक कोने में पड़ी रही।

घर में इतना कुछ हंगामा हो रहा था, मगर एक आदमी ऐसा था जिसे यह सब जरा भी विचलित नहीं कर पा रहा था। वह थी चम्पी। चम्पी आश्चर्यजनक रूप से शांत और गंभीर थी। आज बासरघर में भी उसके भीतर कोई उत्तेजना नहीं व्याप रही थी।

जिस दिन बगलाकान्त बाबू उसे देखने आए थे और कंगन पहनाकर मंगनी पक्की की थी, उस दिन उसके मन में थोड़ी उत्तेजना जागी थी, मगर जब कन्या पक्ष से विलास और बख्शी महाशय वर का टीका करने गए थे और आकर बताया था कि बगलाकान्त ही वर है, तब घर में इसे लेकर कुछ देर के लिए तो चकचक मची थी जरूर, मगर चम्पी का मन आश्चर्यजनक रूप से शांत हो गया था। उसे लगा था कि अगर ऐसा न होता तो ही शायद उसे अजीब लगता। अब यह सब जानकर उसे सब कुछ विश्वसनीय लग रहा था। पहले तो यह सब एक सपना, एक माया जैसा लगता था। जो हो रहा था अब उसे बहुत स्वाभाविक लग रहा था। इसमें कोई सपना नहीं था, कोई छल नहीं था और न ही किसी चालाक शहरी युवक की धोखेबाजी थी। यह विवाह एक बूढ़े और चतुर व्यक्ति का दृढ़ निर्णय था। बहुत सोच-विचार करके और चुनकर उसने चम्पी के हाथों में कंगन पहनाए थे। चम्पी को विश्वास हो गया कि इस बार उसका उद्धार सुनिश्चित है। उसकी सारी शंकाएं समाप्त हो गई थीं, इसीलिए वह इतनी शांत और इतनी स्थिर हो गई थी।

वर का टीका करके आने के बाद विलास ने थोड़ी कैफियत जरूर दी थी। उन्होंने बताया था कि बगलाकान्त बाबू ने कुछ ज्यादा झूठ नहीं कहा था। उनके घर में वाकई धान से चार गोले भरे हैं, मछलियों के दो पोखरे और आम-कटहल के कुछ बागीचे भी हैं। कुछ व्यापार भी करते हैं। इसके अलावा पहले की दो शादियों से उनके दो बेटे भी हैं। बड़े की उम्र तेरह साल और छोटे की सात साल है। दोनों पत्नियां अपना एक-एक

चिह्न छोड़ गई हैं। उनका कोई भानजा नहीं है, यह बात सच है। इतना ही झूठ वे बोल गए थे। स्वभाव से थोड़े शर्मीले होने के कारण अपने लिए खुद लड़की देखने आने में उन्हें शर्म आ रही थी। वैसे बहुत सज्जन व्यक्ति हैं। किसी तरह की बुरी आदत नहीं है। और सज्जनता का यह हाल है कि आते समय शुभ कार्यों के लिए विलास के हाथ में पांच सौ रुपए रख दिए। अब ऐसा आदमी कहां मिलेगा। चम्पी बड़े सुख से रहेगी।

बूढ़े वर की बात सुनकर दामिनी ने रोने-धोने की लंबी तैयारी कर ली थी, मगर ये सारी बातें सुनने के बाद उनकी रुलाई बीच रास्ते में ही जाने कहां गायब हो गई। उन्होंने मन ही मन सोचा, यह चम्पी की शिव-पूजा का फल है। उसे शिव जैसा ही वर मिला है। चम्पी का भाग्य अच्छा है !

वासरघर के कार्यकलाप और कितनी देर चलते, कौन कह सकता था? विमला का ढाकन-ढोकन और कौड़ी का खेल समाप्त हुआ। मुहल्ले की लड़कियों ने तरह-तरह से दामाद जी को बेवकूफ बनाने में अपनी चतुराई झाड़ी। जूथी अपने रूप का बहार दिखाती हुई कई-कई बार खिलखिलाती हुई बगला बाबू की देह पर लोटपोट हुई। सबसे आखिर में बख्शी बाड़ी की बाल विधवा कुन्ती दीदी मैदान में उतरीं।

बोलीं, "वर महाशय, बुढ़ापे में ब्याह करने तो आए हो, मगर जवान बहू को कैसे संभालोगे, जरा बताना तो? जरा गोद में बिठाकर दिखाओ? अपने मुंह से उसके मुंह में मिठाई खिलाकर दिखाओ तो जरा।"

इतनी देर से बेकार की मसखरेबाजी चल रही थी। बगलाकान्त बाबू को अच्छा नहीं लग रहा था, खिन्न हो रहे थे। पहली बार जब उनकी शादी हुई तब शायद चम्पी का जन्म भी नहीं हुआ होगा। उस बार भी ऐसा ही हंसी-ठट्टा चला था। जैसे लोगों को कोई और हंसी-मजाक आता ही नहीं। फिर भी उस समय उम्र कम थी, सिर पर गंजापन नहीं था, तोंद नहीं निकली थी, पहली बार शादी हो रही थी, इसलिए वह सब अच्छा ही लगा था। किसी औरत ने उनके गालों पर चुटकी भी काटी थी। दूसरी शादी को भी प्रायः दस साल होने को आए। उस समय भी बगलाकान्त बाबू को ऐसा ही फूहड़ हंसी-ठट्टा झेलना पड़ा था। इस बार भी वही सब हो रहा था। इसीलिए उनके मन में कोई उत्साह न था। अब कुन्ती दीदी की बातें सुनकर वे उत्साहित हुए और जरा जमकर बैठ गए। सोचा, हां, अब न हुई कोई बात! उन्हें याद आया, चम्पी की हथेलियां बड़ी नरम हैं। साथ ही उसे अकेले में पाने की वासना फनफना उठी। और कितनी देर ये औरतें परेशान करेंगी, उन्होंने सोचा।

बगला बाबू बोले, "अब बहुत हो गया, मुझे आराम चाहिए। आप लोग हमें क्षमा करें।"

कुन्ती दीदी बोलीं, "अरे, देखो तो बूढ़े को, हम लोग बर्दाश्त नहीं हो रही हैं। लगता

है, पुराना अभ्यास सिर पर चढ़कर बोल रहा है। यह नहीं होगा बुढ़ऊ, परीक्षा देनी होगी, तभी हाथ लगाने पाओगे बहू को। वर्ना हम नहीं छोड़ने वालीं? लो, सभी बैठती हैं गांठ बांधकर।"

सभी औरतें खिलखिलाती हुई एक-दूसरे पर लोटपोट होने लगीं।

विमला ने होंठ दबाकर हंसते हुए कहा, "बस, इस परीक्षा में पास हो जाइए तो आपकी छुट्टी।"

बगलाकान्त बाबू ने कुछ और कहे बिना गुड़ीमुड़ी हुई चम्पी को अपनी गोद में खींच लिया। इतने लोगों के सामने चम्पी शर्म से काठ हो गई। भीतर ही भीतर बेहद परेशान, मगर चुप बैठी थी। बगलाकान्त बाबू ने एक मिठाई उठाकर उसका एक हिस्सा खा लिया और बाकी जबरदस्ती चम्पी के मुंह में ठूंस दिया। चम्पी अपना मुंह बंद किए चुपचाप बैठी रही। मुंह में रखी मिठाई को घिन छूटने पर भी वह थूक न सकी। पूरा कमरा कहकहों से गूंज उठा। बाल विधवा कुन्ती दीदी के मन की भूख उनकी आंखों में चमकने लगी।

अपनी जलती हुई देह को किसी तरह संभालकर वह बोल उठीं, "चल विमली, चल। चम्पी की आंखें जैसे ढली पड़ रही हैं, उससे लगता है, बूढ़े की गोद में गिर पड़ने को वह बेताब है। चलो रे, चलो सब। अपने अपने घर जाओ। अब हमारे यहां रहने से इनकी देह में फफोले पड़ रहे हैं, क्यों बुढ़ऊ दूल्हा महाशय?"

इसके बाद सभी कमरे से चले गए। चम्पी थोड़ा हटकर बैठ गई, हालांकि उन्हीं के साथ उसका भी चले जाने को मन कर रहा था। अब उसके मन में डर घुस रहा था। यह तो सुहास नहीं है कि महीन-महीन बातों से वह निस्तार पा जाएगी। (पता नहीं क्यों अचानक उसे सुहास की याद आई)।

बगलाकान्त बाबू उठे और जाकर दरवाजा बंद कर दिया।

रेशम का कुर्ता उतारते हुए बोले, "अब और कितनी देर ऐसे सज-धजकर बैठा रहा जा सकता है?"

कुर्ता उतारने के बाद उन्होंने बनियान भी उतार फेंकी। कपड़ों के भीतर से काले बालों से ढकी छाती और गोल तोंद निर्लज्ज भाव से सामने आ गए।

"ओह ! क्या गर्मी है !"

बगलाकान्त बाबू एक किनारे खाट पर पांव लटकाकर बैठ गए और हाथपंखे से हवा करने लगे।

"बाप रे ! कितनी घमोरियां निकली हैं! काट-काट कर मुझे परेशान कर दीं।"

इसके बाद बगलाकान्त बाबू पंखे की बेंट से घिस-घिसकर अपनी पीठ की घमोरियां फोड़ने लगे। चम्पी ठंडी आंखों से उन्हें देखने लगी। बगलाकान्त बाबू की छाती में गुच्छे-गुच्छे बाल थे। कानों के किनारों पर से भी लंबे-लंबे बाल लटक रहे थे। इनमें कुछ पके

थे, कुछ कच्चे। छाती से होकर बालों की एक सरल रेखा निकलकर गोल तोंद पर से होती हुई नीचे उतर गई थी। लगता था, जैसे दूर किसी नदी की ढलान पर बकरियों का एक रेबड़ कतार बांधकर उतर रहा है। बगलाकान्त बाबू के कंधों और बांहों पर बनियान पहनने की छाप पड़ी हुई थी। उनके कंधे पर झाईं पड़ी हुई थी और पूरे शरीर में घमोरियां। चम्पी ने सब कुछ अच्छी तरह देखा। फिर सिर नीचे झुका लिया।

तभी अचानक बगलाकान्त बोल उठे, "क्यों जी लाजवंती !"

बगलाकान्त की आवाज से चम्पी चौंक उठी।

"अरे घूंघट तो खोलो। मेरी तरफ देखो, तुम्हें पसंद हूं कि नहीं?"

चम्पी ने कोई जवाब नहीं दिया।

"तुम्हें किसी चीज की कमी नहीं होने दूंगा। कितनी साड़ियां चाहिए, कितने गहने चाहिए ! बगला विश्वास को किसी बात की कमी नहीं है। उसके पास जो कुछ भी है तुम्हारा ही तो है। मैं तो अब इन्हीं चरणों का दास हूं। देहि पदल्लवमुदारम्। हें...हें...समझ गई न । हें...हें...। जिस पल तुम्हें देखा, उसी पल मैं तुम्हारा गुलाम हो गया था। तुम्हारी देह, क्या कमाल है। ऐसी ही भरी-पूरी देह मुझे पसंद है। हें...हें...हें...हें...। बूढ़ा समझकर बेजार हो रही हो क्या? पुराना चावल और पुरामा मर्द, वही जो क्या कहते हैं, हें...हें...। समझ गई न। आओ, आओ, पास तो आओ। सोच रही हो, बूढ़ा मर्द किस काम का। अरे भई, उम्र से कोई बूढ़ा थोड़े ही होता है !"

इसके बाद उन्होंने चम्पी को अपनी तरफ खींच लिया। चम्पी का सिर बगला बाबू की घमोरियों और बालों से ढकी छाती पर जा टिका। चम्पी ने न कोई आग्रह दिखाया न ही तिलमात्र विरोध किया।

उसी रात को बगला बाबू ने अपने स्वामित्व का अधिकार दिखाने की जो अतिशय चेष्टा की उसका भी चम्पी ने कोई विरोध नहीं किया। वह समझ गई थी कि अब उसकी इच्छा-अनिच्छा का कोई अर्थ नहीं है। बहुत दिन पहले उसकी देह पर एक छिपकली आ गिरी थी। तब उसके शरीर के रोंगटे खड़े हो गए थे। मगर बगला बाबू छोटी-सी छिपकली तो न थे। चम्पी को लगा, एक विशालकाय गिरगिट जैसे सारी रात उसकी पूरी देह पर बड़े उत्साह से घूमता फिर रहा है और जगह-जगह गंदगी करके उसकी देह को कुत्सित किए जा रहा है। घिन से उसके रोंए गनगना उठे। एक भयानक अपवित्रता का भाव, गंदगी में लिथड़े होने का भाव हर क्षण उसे पीड़ित करने लगा।

चम्पी समझ गई, उसके भावी जीवन में उसकी रातें जिस तरह कटने वाली हैं उसकी यह एक शुरुआत है। फिर भी वह टूटी नहीं और न ही उसे फफककर रोते देखा गया। उसने इस दारुण स्थिति को स्वीकार कर लिया। होनी को कौन टाल सकता है? हर रात

उसकी देह पर एक गिरगिट विचरण करेगा, अपनी क्षमता का परिचय देने के लिए एक विकृत उल्लास से भर-भर उठेगा, अश्लील नृत्य करेगा, यही तो उसके भाग्य में लिखा है। इसमें संदेह नहीं कि यह एक भला आदमी है। उसने उसकी चमड़ी का काला रंग देखकर भी उसे ठोकर नहीं मारी। तभी तो उसका उद्धार हुआ।

नहीं, वह अपने सिर पर हाथ मारकर भाग्य को दोष नहीं देगी, किसी और पर भी दोषारोपण नहीं करेगी। एक दिन तो वह खुद ही पानी में डूबकर मरने गई थी। तो फिर अब उसे क्या डर? चम्पी जानती है, अब उसकी वापसी के सारे रास्ते बंद हो गए हैं। और फिर जरूरत ही क्या है?

इतना उत्पीड़न सहने के बाद भी न जाने कब चम्पी को नींद आ गई थी। जब वह जागी तो उसका मन घिसे हुए कांच की तरह पारदर्शी हो रहा था। नए-नए परिवेश ने, जिसका उसे अभ्यास नहीं था, उसे बहुत अधिक पीड़ा नहीं पहुंचाई थी। नई चादर, नया गद्दा, नया तकिया और नई मच्छरदानी जो कहीं से भी झूल नहीं रही थी। शरीर की बासी गंध आसपास बिखरे फूलों की गंध के साथ मिलकर एक अद्भुत गंध की सृष्टि कर रही थी। इस अद्भुत गंध से चम्पी के नथुने भरे हुए थे। पास में सोए पड़े नंग-धड़ंग आदमी की नाक अजगर की तरह गर्जन कर रही थी। यह आदमी तुम्हारा पति है, चम्पी जैसे अपने से ही अपने पति का परिचय दे रही थी। ऐसे नरम बिस्तर पर चम्पी कभी सोई न थी। नहीं, एक बार जरूर सोई थी और शायद वह बिस्तर इससे भी नरम था। शैल दी के घर। अब चम्पी अपने ही घर में सोई पड़ी है, छोटी काकी के कमरे में, दहेज में मिले नए बिस्तर पर। वह अब अकेली नहीं है। बगल में उसका पति भी है। पति का एक हाथ उसकी छाती पर पड़ा हुआ है। चम्पी ने निर्विकार भाव से पति का हाथ उठाकर नीचे रख दिया, जैसे चूल्हे के पास पड़ी एक लकड़ी को उसने उठाकर परे रख दिया हो।

इसके बाद वह चुपचाप उठ बैठी। जल्दी से बाहर आ गई। भोर हो गई थी, मगर अभी सूरज की किरणें नहीं निकली थीं। घर में कोई जाग नहीं रहा था। बांस के खंभे का सहारा लेकर चम्पी खड़ी रही। बांस के उस मजबूत टुकड़े के भीतर जैसे शून्य भरा हुआ था। इसी तरह मजबूत देह वाली चम्पी का मन भी सूना-सूना था। कहीं तिलमात्र उत्तेजना न थी, न आकाश में, न इस घर में, न चम्पी के मन में।

खट से किसी कमरे का दरवाजा खुला। चम्पी चौंक उठी। शंख ! पता नहीं कैसे भंडारघर का दरवाजा खोलकर वह बाहर आ गया था। लगता है, छोटी काकी अभी सो रही हैं।

चम्पी पर नजर पड़ते ही शंख का चेहरा हंसी से खिल उठा।

उसने पुकारा, "दीदी, आओ।"

इतनी देर बाद पहली बार शंख की पुकार सुनकर चम्पी के कलेजे में हूक-सी उठी।

उसने दौड़कर शंख को उठा लिया और अपनी छाती से लगा लिया। शंख उसकी नथनी, हार और कान की बाली खींच-खींचकर देखने लगा। उसने पहले दीदी को यह सब पहने हुए नहीं देखा था। उसे बड़ा मजा आ रहा था।

फिर वह बोला, "दीदी, घुम्मू।"

शंख बाहर जाकर घुमा लाने के लिए चम्पी से कह रहा था। शंख अब मुहल्ले में घूमने लगा है। उसे बाहर घूमना अच्छा लगता है। चम्पी ने उसका मुंह चूमा और उसे गोद में लिए पोखरघाट पर आ गई। झिर-झिर ठंडी हवा बह रही थी। चम्पी का शरीर जैसे जुड़ा रहा था। शंख लगातार उसके गहनों से खेल रहा था।

शंख बोला, "दीदी बऊ।"

दो साल का वह नन्हा-सा बच्चा सब समझता है। समझता है कि दीदी बहू बन गई है। चम्पी हंसी। उसका मन थोड़ा हल्का हो आया। कई दिनों से उसके मन में एक शून्य भरा हुआ था। शून्य का वह कुहासा अब फटने लगा। उसने कई दिनों से बोलना-चालना बंद कर दिया था। गत चौबीस घंटों से शंख से भी उसकी मुलाकात नहीं हुई थी।

उसने कहा, "शंख, मैं तो अब चली जाऊंगी रे।"

शंख बोला, "जाना नहीं। मारूंगा।"

चम्पी ने पूछा, "मैं चली जाऊंगी तो क्या तू रोएगा?"

"रोएगा। दीदी जाना नहीं। शंख रोएगा।"

शंख को छाती से चिपटाकर चम्पी रो पड़ी। काफी देर बाद उसकी आंखों में आंसू आए थे।

उसने मन ही मन कहा—तू रोएगा, मैं जानती हूं। और कोई नहीं रोएगा, कोई नहीं। सभी को मुझसे छुट्टी मिल जाएगी। मैं तो सभी की आंखों का कांटा थी। तू देखना, अब सभी सुख से रहेंगे। मन ही मन शंख से यह सब कहकर उसने प्रतिज्ञा की—अब कभी मैं इस घर में नहीं आऊंगी। जाने कब से चम्पी की छाती में जमी हुई रुलाई अब गलकर बहने लगी थी। अब यहां कभी नहीं आऊंगी। कभी नहीं, कभी नहीं। मैं जानती हूं, समझती हूं, कोई मुझे नहीं चाहता है। मैं सबकी आंखों में चुभती हूं।

चम्पी की आंखों से आंसू बहते देखकर शंख ने अपनी दोनों नन्ही-नन्ही हथेलियों से उसकी दोनों आंखें पोंछ दीं और बोला, "बछ, बछ, रोना मत। मारूंगा नहीं। रोना मत। शंख गंदा, दीदी अच्छी। दीदी को मारूंगा नहीं।"

चम्पी बोली, "सिर्फ तेरे लिए मैं अच्छी हूं। सिर्फ तू मुझे प्यार करता है, और कोई नहीं। न मां, न बाप। देखा नहीं, कैसे मुझे ठेलकर बाहर कर दिया ! अच्छी बात है, मैं भी अब कभी जीवन में यहां पांव नहीं रखूंगी।"

अब चम्पी बुरी तरह फफककर रो पड़ी। उसकी देह पर बनारसी साड़ी थी, जिसके

खूंट से अभी भी दूल्हे की रेशमी चादर बंधी हुई थी। चम्पी चारों ओर से बंध गई थी। उसकी मांग में सिंदूर था। मगर मांग अभी सिंदूर की अभ्यस्त न हो सकी थी। जरा-सा घिसने पर ही छूट जा सकती थी। शादी के समय बगलाबाबू ने सिंदूर की जो मोटी रेखा उसकी मांग में लगाई थी वह अभी भी अच्छी तरह बैठी न थी।

रोने के थोड़ी देर बाद चम्पी का मन हल्का हो गया। वह ज्यादा देर घाट पर नहीं बैठी। दोनों ने हाथ-मुंह धोया और घर लौट आए।

शंख को घर में न पाकर गिरिबाला परेशान हो उठी थी। घर के कोने-अतरे में खोजती फिर रही थी। अब उसे चम्पी की गोद में देखकर उसकी जान में जान आई।

गिरिबाला ने हंसकर कहा, "ओ मां ! यह पाजी तुम्हारे पास है? मैं चिंता से मरी जा रही थी। सोच रही थी, आखिर गया कहां? तुम्हें कहां मिला?"

चम्पी ने कहा, "मैं उठी तो देखा यह दरवाजा खोलकर बाहर आ गया है। बोला, चलो घुमाओ, इसीलिए मैं इसे लेकर पोखरघाट तक घूम आई।"

शंख दीदी की गोद से मां की गोद की तरफ झपटा।

गिरिबाला बोली, "ठीक ही तो था दीदी की गोद में। इसी को कहते हैं घोड़ा देखकर लंगड़ा होना, क्यों?"

चम्पी भी भंडारघर की चौखट पर बैठ गई। धीरे-धीरे करके और भी लोग जागने लगे।

विदाई के समय चम्पी जरा भी न रोई। प्रथा के अनुसार उल्टा मुंह करके चूहे के बिल की एक मुट्ठी मिट्टी मां के आंचल में फेंककर सहज और स्पष्ट स्वर में बोली, "मां, इतने दिनों से तुमने जो कुछ खिलाया-पिलाया, पहनाया वह सब चुका रही हूं। अगर कुछ कमी रह गई हो, मुझसे कुछ गलती हुई हो तो माफ कर देना।"

कहकर वह तेजी से चलकर पालकी में बैठ गई। किसी की ओर उसने देखा तक नहीं। उसकी आंखों से किसी के लिए एक बूंद आंसू नहीं निकला। उसकी बड़ी बहनें, मां, छोटी काकी, दादी सभी कल शाम से ही रो-रोकर पागल हुई जा रही थीं। यहां तक कि उसके बाप की आंखें भी सूखी न थीं। केवल चम्पी की आंखें नहीं भीगीं। वह अपने साथ घर की नौकरानी को भी ले जाने को राजी न हुई। अकेली ही ससुराल चली गई।

यह बात इतनी अस्वाभाविक थी कि इसके पहले धक्के से ही सभी को काठ मार गया। सभी का रोना-धोना बंद हो गया। पहले धक्के को संभालने के बाद घर की औरतों की गोल बैठक हुई और सभी की जीभों की लगाम खुल गई।

सबसे पहले जसोर की मंझली बहू ने मुंह खोला। उन्होंने कहा, "धन्य बेहया हैं, बाबा, आजकल की लड़कियां।"

विमला बोली, "मैं तो अपनी विदाई के समय इतना रोई कि मेरा गला बैठ गया था।

घर से निकलने के लिए जैसे मेरे पांव ही नहीं उठ रहे थे। बाबू जी और काका लोगों ने किसी तरह मुझे गोद में उठाकर पालकी में रखा था। और यह छोकरी ! कैसे खटाखट खुद जाकर पालकी में बैठ गई।"

दामिनी की रुलाई बहुत पहले ही बंद हो चुकी थी। चम्पी का हाव-भाव देखकर तो जैसे उनकी अक्ल ही गुम हो गई।

माथे पर हाथ मारकर बोलीं, "और उसकी बातें सुनीं? इतने दिन जो खाया, पीया, पहना सब एक मुट्ठी मिट्टी में ही चुकता कर गई?"

कमला ने इस पर कहा, "तो इसमें चम्पी का क्या दोष? यह तो नियम है। सभी को करना पड़ता है।"

इस पर दामिनी बोलीं, "मगर भला कोई इस तरह बोलता है? मां, तुम्हारा खाया-पीया सब चुकता किया, यह बात क्या मुंह से किसी के निकल पाती है? याद कर, तू खुद कितना बिलखी थी विदाई के समय? ऐसे बोल पाई थी क्या?"

और दामिनी भोकार छोड़कर रो पड़ीं।

बोलीं, "क्या मां-बाप का कर्ज कोई चुका सकता है? एक बार उसे निमोनिया हुआ था। यमराज सिर पर आ खड़े हुए थे। महीना-भर पलक नहीं झपका सकी मैं। दुजाहू वर के साथ ब्याहने के लिए राजी होने में हमारी छाती फट गई है। मगर करती क्या? अगर इसे भी छोड़ देती, तो पता नहीं क्या होता? अगर दूसरा वर नहीं मिलता, तो हम क्या करते? इसीलिए तो मैं हार मानकर राजी हो गई थी। और उसी वर के घर जाने के लिए यह कुलच्छनी नाचती हुई पालकी में जा बैठी? हम लोगों के लिए उसे जरा भी दर्द नहीं? कैसी नमकहराम लड़की जन्माई मैंने, हे राम?"

मगर जाते समय चम्पी की रुलाई की सारी कमी विमला ने पूरी कर दी। वह इतना रोई, इतना रोई कि सारा मुहल्ला जमा हो गया ! धीरे-धीरे लोग जाने लगे। जसोर के सभी लोग चले गए। कमला कुछ दिनों के लिए रुक गई। उसका बच्चा ठीक हो जाए, तो चली जाएगी।

दस

इस बीच भूषण को भूपति का एक पत्र मिला। पत्र बहुत संक्षिप्त, मगर स्पष्ट था।

भूपति ने लिखा था :

सुना है, तुम गांव में कुछ कर नहीं पा रहे हो। मैं नहीं चाहता कि तुम इस तरह अपना

समय नष्ट करो। पत्र पढ़ते ही कलकत्ता चले आओ। तुम्हारे लिए एक अच्छा-सा काम देखा है। तुम्हें श्रीहट जाना होगा। वहां एक चायबागान खरीदा गया है। इस चायबागान के डाक्टर की नौकरी तुम्हें दी जा रही है। आशा करता हूं, तुम सभी सकुशल होगे।

तुम्हारा भाई,
भूपति

भूषण इसके लिए तैयार न था। अचानक यह बुलावा पाकर वह चंचल हो उठा। वह जाने को तैयार था, लेकिन मुश्किल खड़ी हो गई गिरिबाला को लेकर। श्रीहट की चर्चा होते ही गिरिबाला डर गई। जाने में ही दो दिन लग जाते हैं। वहां कोई मददगार भी नहीं है। दुख-मुसीबत पड़ने पर कौन सहारा देगा? इसी तरह की चिंताओं ने गिरिबाला को घेर लिया था। भूषण भी कभी श्रीहट नहीं गया था। फिर भी उसने गिरिबाला के सामने श्रीहट का ऐसा सुंदर और चमत्कारी वर्णन किया कि गिरिबाला का मन भी अंततः पसीज गया।

गिरिबाला के नरम होने का एक और भी कारण था। श्रीहट जाने के लिए भूषण उसकी रजामंदी मांग रहा है, इसका मतलब यह है कि वह उसकी उपेक्षा नहीं कर रहा है। इतना ही नहीं, वे रोज रात में इस विषय पर बातें करते थे। चलो, इसी बहाने गिरिबाला से उसकी बातचीत तो हो रही है। इसके पहले तो भूषण के साथ बातें करने के लिए, उससे कुछ पूछने के लिए गिरिबाला लालाइत रहती थी, मगर उसकी यह मामूली-सी मांग भी भूषण पूरी नहीं कर पा रहा था।

सवेरे-सवेरे निकल जाता तो तीसरे पहर वापस आता। नहा-धोकर खाना-पीना करके वह थोड़ा विश्राम करता। वैसे भी दिन में उससे बातें करने का कोई मौका न मिलता था। मगर रात में भी कहां मिलता था? बहुत रात गए जब घर के कामकाज खत्म करके वह अपने कमरे में सोने आती तो देखती, भूषण की नाक बज रही है। कभी-कभी ऐसा भी होता कि कमरे में आकर वह भूषण को जगा पाती, मगर बातचीत करने का मौका उसे तब भी नहीं मिलता। वह देखती कि भूपण कागज-पेंसिल लेकर न जाने किस चीज के लंबे-चौड़े हिसाब में जुटा हुआ है। अगर बीच में वह कुछ बोल पड़ती तो भूषण उस पर कौंकिया उठता।

जब से भूषण को संझले भैया की चिट्ठी मिली है, तब से गिरिबाला देख रही है, उसकी कीमत बढ़ गई है। भूषण रोज देर रात तक उसके साथ बैठकर बातचीत करता है। तमाम बातों में उसकी राय मांगता है। वह किसी बात में डरती है तो उसे हिम्मत बंधाता है, उसकी आंखों के सामने सुखी जीवन के रंगीन सपने बुन देता है।

गिरिबाला कुछ दिनों से अनुभव कर रही थी कि उसके और भूषण के बीच प्यार का जो गरम सोता बहता था, वह जैसे धीरे-धीरे ठंडा होता जा रहा है। जैसे उनके मनों के

बीच कोई दीवार खड़ी हो गई थी जो उन्हें अलग किए दे रही थी।

अब, श्रीहट जाने के प्रस्ताव के बाद से गिरिबाला जैसे फिर से थोड़ा-थोड़ा पहले वाले भूषण को पा रही है।

देहात में रहकर भूषण कुछ नहीं कर पाया, इसीलिए उसने श्रीहट जाने का मन बनाया, यह बात भी नहीं है। यह सच नहीं है कि यहां रहकर वह कुछ नहीं कर सका। थोड़े ही समय में उसने अपने को स्थापित कर लिया था। उसका यश चारों ओर फैल गया था और दूर-दूर के गांव से उसे बुलाया जाने लगा था।

चिकित्सा करना ही उसके वश में है। यही उसका दायित्व है, इसीलिए वह जी-जान से बीमारों की चिकित्सा में जुटा हुआ है। इसके बदले पैसे उसे जरूर नहीं मिले हैं। मिले भी हैं तो बहुत मामूली, प्रायः नहीं के बराबर। मगर इसके लिए भूषण को जिम्मेवार मानना गलत है। कारण यह है कि पैसे देने का काम तो रोगियों का है। रोगी अपना कर्तव्य पालन नहीं कर रहे थे, नहीं कर पा रहे थे।

ऐसे में क्या यह कहना उचित होगा कि तुम कुछ भी नहीं कर पा रहे हो—देहात में रहकर। भूषण, तुम कुछ भी नहीं कर पाए। नहीं-नहीं, ऐसा क्यों कहते हो? भूषण ने खुद से कहा। उससे जितना हो सका, उसने किया। क्या अनेक असुविधाओं, उपेक्षा और उपहास के बावजूद उसने जनहित के लिए तरह-तरह के आविष्कार करने की कोशिश नहीं की? क्या डाक्टरी के अलावा भी पैसे कमाने के लिए दूसरे उपाय करने से वह पीछे हटा? कभी नहीं, वह कभी भी ढीला नहीं पड़ा।

दरअसल बात यह नहीं है। अपने प्रयासों में असफल होकर अथवा अभाव की मार से घबराकर वह अपना गांव नहीं छोड़ रहा है। व्यर्थता क्या चीज है, भूषण नहीं जानता। भूषण की दुनिया में अभाव नाम की किसी चीज का अस्तित्व ही नहीं है। फिर भी भूपति की चिट्ठी पाकर जाने के लिए वह इतना उतावला हो उठा है, उसका कारण कुछ और है। भूषण के खून में जैसे चंचलता बैठी हुई है। इसी कारण वह कभी स्थिर नहीं हो पाता। उसके भीतर की यह चंचलता उसे दौड़ाती रहती है। यह एक तरह का नशा है, जिसने उसे दीवाना बना रखा है। गृहस्थ जीवन में आने के बाद कुछ दिनों के लिए नएपन की उसकी यह खोज, उसकी यह चंचलता काफी दिनों तक दबी रही। अपने भाई की चिट्ठी पाते ही वह फिर से जैसे जाग उठी और इसी कारण बहुत दिनों से एक सीमित और परिचित दायरे में घूमते रहना उसके लिए अत्यंत तुच्छ लगने लगा।

सच तो यह है कि जिस दिन भूषण को भूपति की चिट्ठी मिली, उसी दिन वह श्रीहट के उस अपरिचित चायबागान में चला गया। जिस भूषण को अभी भी सब लोग गांव में चलते-फिरते देख रहे थे, वह असली भूषण नहीं, बल्कि उसकी खोल थी।

मगर वह खोल भी अकारण महीने-भर यहां क्यों पड़ी रहे? इसी बात से भूषण मन ही मन बहुत खिन्न हो उठा। भूषण जल्दी से जा नहीं पा रहा है, इसका मुख्य कारण गिरिबाला है। गिरिबाला ने बड़ी व्यग्रता से उससे कहा था कि किसी नई दुनिया में जाने में उसे बड़ा डर लगता है। भूषण कहता, "इस दुनिया में भला कोई चीज नई या अपरिचित होती है? आज जो चीज नई और अपरिचित है, दो दिन में ही वह परिचित हो जाती है। आज के अपरिचित लोग दो दिन बाद ही अंतरंग मित्र हो जाते हैं।" मगर भूषण इस कूपमंडूक गिरिबाला का क्या करे? इस दुनिया में इसने तो कुछ देखा ही नहीं, वह कुछ जाने भी तो कैसे।

जो भी हो, उसने बड़ी मुश्किल से अंततः गिरिबाला को समझा-बुझाकर तैयार कर लिया। भूषण इस बात से बहुत खुश है कि उसने गिरिबाला का डर बहुत कुछ दूर कर दिया। अब वह निरर्थक विलंब नहीं करना चाहता। भूषण का मन कहता है, चायबागान जाकर ही उसके बहुत से सपने पूरे होंगे। पहले तो आमदनी का एक पक्का जरिया होने से उसे घर-गृहस्थी की चिंताओं से मुक्ति मिलेगी। निश्चिंत होकर वह एक-एक करके अपने अपूर्ण आविष्कारों को लेकर जुट जाएगा।

उसने तय किया कि उसके पास दवाओं की जो दो अलमारियां हैं उनमें से एक (जो अपेक्षाकृत खराब है) वह बेच देगा। दूसरी को घर में रख देगा। साइकिल वह साथ ले जाएगा। उसे अलमारी का खरीददार भी मिल गया था। महिन्दी का एक व्यक्ति सरकारी अस्पताल में कंपाउंडर था। वहां से पेंशन पाकर वह अपनी निजी डाक्टरी चलाना चाहता है। बूढ़ा बड़ा कंजूस है। शुरू में उसने इतना कम दाम लगाया कि भूषण ने उसे तुरंत वहां से भगा दिया। मगर इसके बाद भूषण ने देखा कि वहां अलमारी का खरीददार पाना मुश्किल है। अंत में महिन्दी के उस बूढ़े कंपाउंडर की ही जीत हुई। साठ रुपए मूल्य की अच्छी लकड़ी की बनी वह अलमारी केवल पच्चीस रुपए में बेची गई। चलो, जो हुआ ठीक है, भूषण को इसका भी कोई पछतावा न था। उसने सोचा—अच्छा ही हुआ, अभी भी इस अलमारी में दवाएं ही रखी जाएंगी।

बस, अब वह मुक्त है। अब वह कलकत्ता जाएगा। संझले भैया से आवश्यक निर्देश लेकर वह श्रीहट चला जाएगा। हां, एक और काम बाकी है। कलकत्ता जाने के पहले गिरिबाला को उसके मायके छोड़ आना है। कलकत्ते से लौटने पर वह उसे साथ ले जाएगा। बस, व्यवस्था पूरी। सिर्फ एक छोटा-सा काम बच जाता है, कुछ पैसों का जुगाड़ करना। भूषण की कलकत्ता यात्रा, गिरिबाला को मायके ले जाना आदि कामों के लिए कुछ पैसों की जरूरत तो पड़ेगी। भूषण ने पहले कोशिश की कि जो पैसे लोगों के पास उधार हैं, मांग ले। मगर इसमें उसे सफलता न मिली। वह जानता है, उधार के पैसे पाना संभव नहीं है। अलमारी बेचकर जरूर उसे कुछ पैसे मिले थे, मगर उतने से काम नहीं चलना

है। कुछ पैसे और चाहिए। अंत में उसने देखा कि अपने आखिरी सहारे, गिरिबाला के गहनों पर ही हाथ लगाना होगा।

मगर यह प्रस्ताव सीधे-सीधे गिरिबाला के सामने रखना उसे आसान न लगा। कारण यह कि उसके बक्से में जो भी गहने थे वे विभिन्न कामों में, जैसे—मछली का व्यापार, ठेकेदारी, क्लिनिक का बाकी किराया, दुकानदारों का उधार और अंत में चम्पी का ब्याह—एक-एक करके अदृश्य हो गए थे। किसी बार गिरिबाला ने अपनी मर्जी से दिया था, सूद समेत असल को वापस पाने के वायदे पर। मछली का व्यापार करते समय जब भूषण ने गिरिबाला के आर्मलेट का जोड़ा लिया था तब कहा था कि मुनाफे के रुपयों से (भूषण ने हिसाब करके देखा था कि मछली के व्यापार में एक सौ रुपए लगाने से ढाई सौ रुपए घर आएंगे) आर्मलेट तो वह गिरिबाला को लौटा ही देगा, ऊपर से सूद के हिसाब से गिरिबाला की पसंद का एक गहना और बनवा देगा।

गिरिबाला ने कोई आपत्ति न की थी और आर्मलेट का जोड़ा निकाल कर दे दिया था। उस पर गिन्नियां लगाई गई थीं। काफी कीमती था आर्मलेट। गिरिबाला ने कहा था कि सूद के रुपयों से भूषण उसके लिए एक मटरमाला बनवा दे। गांव के सुनार से गढ़वाने से काम नहीं चलेगा, कलकत्ते की नामी दुकान बी. सरकार की चीज चाहिए। भूषण ने सिर हिलाकर हां की थी।

अपने बचपन में गिरिबाला ने बी. सरकार की दुकान में बनी हुई मटरमाला देखी थी। बड़ी होकर भी उस मटरमाला को वह भूल नहीं पाई थी। उन दिनों वह डोमार में रह रही थी। उसके पिता वहां काम करते थे। तब उसकी मां भी जिंदा थी। अचानक एक दिन चारों ओर शोर मच गया, जल्दी से अच्छे-अच्छे कपड़े पहन लो। मैनेजर की बड़ी लड़की लावण्य ने गिरिबाला को बताया कि 'पूजा स्पेशल' आ रही है। ठेठ देहात की लड़की गिरिबाला को मालूम न था कि 'पूजा स्पेशल' क्या चीज है। लावण्य ने उसे बताया था कि वह एक बहुत अच्छी चीज है। असल में तो रेलगाड़ी है, मगर उस पर पैसेंजर नहीं बैठते। पूरी गाड़ी में दुकानें लगी होती हैं। जादू का खेल, बाइस्कोप, कपड़ों, गहनों, कलकत्ते की खाने-पीने की चीजों और दूसरी सुंदर-सुंदर चीजों की दुकानें होती हैं। लावण्य की बातें सुनकर गिरिबाला चकित हुई थी। उसने जब 'पूजा स्पेशल' देखी तो उस देहाती लड़की की भोली-भाली आंखों के सामने जैसे स्वर्ग उतर आया। मन ही मन उसने पूरी ट्रेन की सारी चीजें खरीद डालीं। वैसे सबसे ज्यादा आकर्षित किया था बी. सरकार की दुकान पर टंगी मटरमाला ने। उस दिन वह मटरमाला खरीद नहीं पाई थी। शायद इसीलिए मटरमाला की इच्छा उसके मन में हमेशा के लिए घर कर गई थी।

भूषण यह बात जानता था। वह यह भी जानता था कि गिरिबाला का आर्मलेट बेचकर जो पैसे मिले हैं उनसे तीन से चार बार मछली की सप्लाई करते ही जो पैसे मिलेंगे उनसे,

बड़े आराम से मटरमाला गढ़ाई जा सकती है। भूषण फालतू बात नहीं करता। वह धोखा देना नहीं जानता। उसने बाकायदा हिसाब करके देख लिया था कि व्यापार चालू करने पर सात पेटी मछली प्रतिदिन भेजकर, भले ही बहुत कम मुनाफे पर बिक्री की जाए, महीना बीतते न बीतते डेढ़ हजार रुपए का लाभ होगा। उसने गिरिबाला को समझाया था—चलो, इसमें से भी पांच सौ रुपए निकाल दो, फिर भी एक हजार रुपए में तो कोई टोटा नहीं है। भूषण ने वह व्यापार गिरिबाला के नाम से ही शुरू किया था। केवल मछली का व्यापार ही क्यों, गिरिबाला के गहने बेचकर उसने जो भी व्यापार शुरू किया था उसमें प्रोप्राइटर के रूप में गिरिबाला का ही नाम था। अगर मुनाफा हुआ होता तो गिरिबाला को ही मिलता। मगर हर बार कोई न कोई ऐसा झमेला आ खड़ा हुआ था कि व्यापार में नुकसान ही हुआ था। इसी कारण गिरिबाला का कोई गहना वापस नहीं आ सका था।

चम्पी के विवाह के समय भी गिरिबाला ने घर की लाज रख ली थी। हालांकि, भूषण जानता है, वह बहुत खिन्न हुई थी। फिर भी, चम्पी के विवाह में कुछ त्याग करने का एक अपना आनंद था। मगर इस बार भूषण गिरिबाला का गहना जिस कारण से मांगना चाहता है, उसमें न तो किसी लाभ की आशा है और न ही बड़ा काम करने का आनंद ही।

क्या गिरिबाला इस बार अपना गहना देने को राजी हो जाएगी? उससे यह बात कही कैसे जाए?

भूषण लेटे-लेटे यही सोच रहा था। कोई और दिन तो अब तक उसकी नाक बजने लगती, मगर आज उसकी पलकें जैसे बंद होना ही भूल गई थीं। एक ओर कलकत्ता जाने के लिए उसका मन छटपटा रहा था, समय एकदम नहीं था, दूसरी ओर राहखर्च का जुगाड़ भी वह नहीं कर पा रहा था। बेचारा भूषण बड़ी मुश्किल में पड़ गया था।

घर के काम पूरा करके जब गिरिबाला अपने कमरे में घुसी, तब भी लज्जा उसकी पूरी देह में ऐसे लिपटी हुई थी, जैसे बबूल की गोंद। अंत तक वह अपनी जेठानी की आंखों को धोखा न दे सकी थी। उसका हाव-भाव देखकर बड़ी जेठानी को संदेह हो गया था। थोड़ी देर पहले वे उससे ऐसी जिरह करने लगीं कि गिरिबाला को सिर झुकाए सब कुछ स्वीकार कर लेना पड़ा।

दामिनी ने हंसते हुए कहा, "यह तो बहुत अच्छी बात है। देवर जी को बताया है?"

गिरिबाला ने कोई उत्तर नहीं दिया। सिर नीचा किए सामने पड़े खाली थाल में एक उंगली से आड़ी-तिरछी रेखाएं खींचने लगी।

दामिनी ने उसे डांटा, "यह क्या कर रही है ! थाली में अंक बनाने से देनदारी होती है, सिर पर कर्ज चढ़ता है। ऐसे ही उधार और देनदारी क्या कम है सिर पर !"

गिरिबाला ने हाथ रोक लिया तो दामिनी फिर पहले के प्रसंग पर आ गई।

नरम स्वर में बोलीं, "अरे ओ बुद्धू ! यह बात तू क्यों छिपाए फिर रही है? यह भी कहीं छिपता है?"

गिरिबाला नहीं कह सकी कि इसके पहले वह खुद भी तो यह बात नहीं समझ पाई थी। दामिनी का आज का व्यवहार गिरिबाला को बहुत अच्छा लगा था। बीच-बीच में इनके आचार-व्यवहार से गिरिबाला बड़े गोरखधंधे में पड़ जाती है। वह समझ नहीं पाती कि इनका कौन-सा रूप असली है ! कभी वह इनका व्यवहार देखकर दुख में डूब जाती है तो कभी आनंद के सागर में गोते लगाने लगती है। उसे लगता है कि इस घर के लोगों में जैसे एक ही देह में दो अलग-अलग व्यक्ति हों, एक रणचंडी तो दूसरी जगत्माता।

कमरे में घुसते ही गिरिबाला समझ गई कि भूषण जाग रहा है, नहीं तो उसकी नाक बजती। पता नहीं क्यों, उसे लगा कि बड़ी जेठानी की तरह कहीं भूषण को भी उसकी हालत का अंदाजा न लग गया हो। मारे लाज के उसने भूषण की ओर ठीक से देखा भी नहीं। सीधे अपने बिस्तर पर जाकर उसने शंख को गोद में उठा लिया। बिस्तर गीला कर दिया था शंख ने। उसकी कथरी बदलने लगी तो वह ठिन-ठिन करने लगा। बड़ा पाजी हो गया है छोकरा। पहले कैसे सारी रात सोता था। अब दिन तो दिन, रात में भी इसकी शरारतों का अंत नहीं। गिरिबाला कभी-कभी सोचती है, क्या यह कभी थकता नहीं !

शंख ठिन-ठिन करते हुए अपने दोनो हाथों से गिरिबाला का आंचल खींच रहा था। अब यह किसी तरह नहीं मानेगा। गिरिबाला ने हंसकर मन ही मन कहा—रुक जा, बाबा, रुक जा। थोड़ा सब्र कर। ओह ! क्या कर रहा है ! जैसे एकदम पागल हो गया है !

थकी हुई गिरिबाला अपनी कुर्ती के बटन खोलती हुई लेट गई। अपनी इच्छित वस्तु पाकर शंख शांत हो गया था और चुक-चुक करके दूध पीने लगा। एक क्षण पहले उसने हाथ-पांव चलाकर गिरिबाला को बेहाल कर रखा था। दूध पीते हुए बच्चे के शरीर पर हाथ फेरती हुई गिरिबाला मन ही मन कहने लगी—अरे मुन्ना, अब तो तुम बड़े हो गए। अब तो मेरी जान बख्शो। इसके बाद जब इसका एक और हिस्सेदार आ जाएगा तो तू क्या करेगा?

गिरिबाला के मन में जो संदेह उमड़ रहा था, दामिनी के मुंह से उसका समर्थन पाकर पहले तो वह भौंचक रह गई। फिर थोड़ी देर में जब वह अपने ऊपर काबू पाने में सफल हुई तो एक दबी हुई उत्तेजना से उसका शरीर कांप उठा। फिर उसे अपना प्रथम अनुभव याद आया तो आतंक से उसके रोंगटे खड़े हो गए।

परदेश जाने की बात सुनकर गिरिबाला का डर और भी बढ़ गया। पहली बार तो वह अपने बाप के घर थी, अपने लोगों के बीच, इसीलिए वह सब कुछ सह गई। इस बार न जाने किस अजनबी मुल्क में जा रही है ! वहां अपना कोई न होगा। कौन इसकी देखभाल

करेगा? नहीं, नहीं, नहीं, वहां गई तो गिरिबाला बचेगी नहीं। वह भयंकर दिन जब आएगा, तब...तब तो गिरिबाला मर ही जाएगी।

भूषण क्यों उसे ऐसी हालत में ठेल रहा है? इन सारी गड़बड़ियों के लिए बार-बार वह भूषण को ही दोष देने लगी।

"क्यों, सो गई क्या?"

भूषण की आवाज सुनकर भी गिरिबाला कुछ बोली नहीं। थोड़ा सा हिल-डुलकर चुपचाप पड़ी रही। अब दुलार दिखाया जा रहा है ! मगर गिरिबाला नाराज न हुई, वरन उसे अच्छा ही लगा। एक पल के लिए उसके मन में आया कि क्या वह भूषण को यह समाचार दे दे? समाचार पाकर क्या वह भी गिरिबाला की तरह भौंचक रह जाएगा? गिरिबाला ने एक चीज लक्ष्य की, शंख के समय इन सब मामलों में वह जितना लजाती थी, इस बार उतनी अधिक लाज उसे नहीं आ रही है। शंख ने उसकी लाज को काफी कुछ हल्का कर दिया है। शंख के समय उसकी लज्जा जितनी प्रबल थी, भय अथवा आतंक उतना प्रबल न था। दर्द उठने के बाद उस पर डर सवार हुआ था। उस भयानक यंत्रणा का आभास तक भी अब उसकी स्मृति में नहीं है। अगर कुछ है तो एक प्रबल आतंक की अनुभूति। आज जब यह बात सामने आई तो उसे शर्म जरूर आई थी, मगर उतनी नहीं। दरअसल अब उसकी गर्दन पर डर ज्यादा सवार है।

क्या पहली बार यह गुप्त समाचार भूषण को देने की इच्छा कभी उसके मन में जागी थी? ओ बाबा ! उस समय तो उसे लगता था, पाताल में जाकर छिप जाती तो अच्छा था! पति के साथ पहली रात बिताकर दूसरे दिन सवेरे जैसे वह शर्म से किसी के सामने सिर नहीं उठा सकी थी, उसी तरह जब पहले-पहल शंख के पेट में आने का उसे पता चला था तो वह शर्म से मर गई थी। आदमी में कितने बदलाव आते हैं ! आश्चर्य !

इस बार यह बात उसके लिए इतनी सहज हो जाएगी, गिरिबाला पहले सोच भी नहीं सकती थी। यह बात भूषण को बताने के लिए अब वह कितनी आसानी से सोच पा रही है।

भूषण ने फिर कहा, "क्यों जी, बोलती क्यों नहीं? सुनो, तुम्हारे साथ एक जरूरी बात करनी है।"

यह कहते हुए भूषण गिरिबाला की ओर थोड़ा खिसक आया। क्या भूषण को भी पता चल गया है? गिरिबाला कान लगाकर प्रतीक्षा करने लगी।

भूषण ने कहा, "देखो, अलमारी बेचकर आज पैसे ले आया हूं। सिर्फ पच्चीस रुपए मिले हैं। इतने में सारे खर्च पूरे नहीं होंगे। मुझे कलकत्ता जाना है, तुम्हें तुम्हारे मायके पहुंचा आना है। और फिर कितने दिनों बाद वहां वापस जा रही हो, तुम्हारे हाथ में भी तो कुछ पैसे होने चाहिए। कपड़े-लत्ते भी खरीदने होंगे। जब तक हम लोग यहां है, तब तक सिर्फ

अपने लिए कपड़े खरीदने से काम कैसे चलेगा? मां, भाभी, जूथी और बड़े भैया इनमें से किसी के पास भी तो कपड़े नहीं हैं। उनके लिए भी खरीदना होगा। बस, चायबागान पहुंचने की देर है, फिर हमें कोई चिंता ही नहीं रहेगी।"

भूषण ने अपना अंतिम वाक्य बहुत जोर देकर कहा।

"कारण यह है कि वहां तो बंधी-बंधाई तनखा मिलेगी। ऐसा नहीं कि आज दो रुपए मिले तो चार दिन तक एक पैसे के भी दर्शन नहीं। वहां तो एकदम फर्स्ट डे ऑफ द मंथ यानी महीने की पहली तारीख को ही सारे पैसे तुम्हें मिल जाएंगे। फिर जैसी तुम्हारी इच्छा, मन-मुताबिक खर्च करो। नौकरी में यही एक सबसे बड़ी सुविधा है। पैसों की चिंता नहीं करनी होती। मान लो, पैसे खत्म भी हो गए, तो भी कोई परवाह नहीं। अगली पहली को फिर तुम्हें पैसे मिलेंगे। जैसी मर्जी, खर्च करो। व्यापार में यह सुविधा नहीं होती।"

गिरिबाला ने सोचा था, शायद भूषण कोई बहुत जरूरी बात करने वाला है। क्या पता क्या कहेंगे ! हे राम ! यह भी कोई बात हुई ! यही कहने के लिए इतने उतावले हो रहे थे।

गिरिबाला झट से बोल पड़ी, "अगर नौकरी में इतनी ही सुविधा है तो इतने दिनों तक कोई नौकरी क्यों नहीं की?"

यह कैसी बात? भूषण एकदम भौंचक्का रह गया। अचानक उससे कुछ कहा न गया। यों ही लोग थोड़े ही कहते हैं कि औरत जात बड़ी अजीब होती है ! भूषण थोड़ी अवज्ञा के साथ ही गिरिबाला की बात का जवाब देने को तैयार हुआ।

मगर इससे पहले ही गिरिबाला ने भूषण का हाथ पकड़ लिया और अपने दोनों हाथों में दबाकर नरम स्वर में बोली, "वहां जाने की जरूरत नहीं है। दूसरों की गुलामी करके क्या होगा। यहीं पर तुम्हारी खूब कमाई होगी, तुम देख लेना। तुम वरन भसुर जी को लिख दो कि वे कोई और आदमी देख लें।"

भूषण ने कहा, "पागल हो गई हो, भला ऐसा भी होता है। मैंने पहले ही चिट्ठी लिख दी है कि मैं आऊंगा। भैया मेरी आस लगाए बैठे होंगे। अब बिना गए कोई चारा नहीं है। इसके अलावा यह तो दूसरों की गुलामी नहीं है। भैया ने खुद अपना चायबागान खरीदा है। उन्हें अपना विश्वासपात्र आदमी चाहिए।"

गिरिबाला एकदम से चिढ़ गई।

बोली, "तुम्हारे अलावा भी उनके पास ढेरों विश्वासी लोग हैं। तुम तो ऐसे बोल रहे हो कि तुम न गए तो उनका बागान ही बंद हो जाएगा।"

गिरिबाला की आंखों से आंसू अब गिरे कि तब। असली बात समझता क्यों नहीं भूषण? ऐसी हालत में गिरिबाला कैसे उस बेगाने देश में जिंदा रहेगी? कभी नहीं। क्या भूषण चाहता है कि गिरिबाला वहां जाकर दुख भोगे ! इसका मतलब है, भूषण गिरिबाला को एकदम

नहीं चाहता, जरा भी नहीं। उसने देखा है कि भूषण के लिए सारी दुनिया के लोग कुछ मतलब रखते हैं। केवल गिरिबाला का कोई दाम नहीं। भैया की बात पर श्रीहट दौड़े जा रहे हैं, मगर गिरिबाला की विनती को पांवों तले कुचलने में इन्हें जरा भी संकोच नहीं। कभी-कभी गिरिबाला को यह जानने की बड़ी इच्छा होती है कि क्या सभी लोग अपनी पत्नियों की भूषण की तरह ही अवहेलना करते हैं !

गिरिबाला ने धीरे-धीरे भूषण का हाथ छोड़ दिया। भूषण का हाथ गिरिबाला के पांव पर से फिसल कर बिछौने पर जा गिरा। इसके साथ ही गिरिबाला ने करवट बदल ली और शंख की देह पर हाथ रखकर अपना जी जुड़ाने की कोशिश करने लगी।

भूषण किसी तरह भी समझ नहीं पा रहा था कि गिरिबाला चायबागान जाने से इतनी बेजार क्यों हो रही है। एकदम पागलों की तरह ऊलजलूल बोल रही है। बहुत देर तक समझाने के बाद गिरिबाला थोड़ी नरम होती है, भूषण की बात मान लेती है, मगर फिर दूसरे ही दिन वह अपनी राय बदल देती है। अच्छी मुसीबत में फंसा है भूषण ! अब वह कैसे गिरिबाला को समझाए ! हताश होकर वह चुपचाप पड़ा रहा।

चलो, न हुआ तो भूषण अपनी इच्छा को मार लेगा। हालांकि अब एक पल के लिए उसका वहां रहने को मन नहीं कर रहा था। फिर भी गिरिबाला का मुंह देखकर, चलो, उसने अपनी इच्छा का दमन कर लिया (शादी-ब्याह करने के बाद कोई आदमी जीवन में कोई बड़ा काम नहीं कर सकता), मगर गिरिबाला की समझ में यह बात क्यों नहीं आती कि संझले भैया जो निर्णय लेते हैं वह एकदम अटल होता है। डाक्टरी पढ़ने के लिए अमेरिका न जाकर एक बार उसने उनके आदेश की अवहेलना की है। अब दूसरी बार ऐसा करने की हिम्मत भूषण में नहीं है। इसे देखते हुए संझले भैया का फिर उसे बुलाना और उस पर महत्वपूर्ण उत्तरदायित्व डालना, उसके पहले के अपराध को क्षमा करना—यही भूषण के लिए अचिंतनीय था। मगर वह देख रहा था कि गिरिबाला को समझाना नाली में घी उड़ेलने जैसा है। भाड़ में जाए ! भूषण बहुत चिढ़ गया।

मगर वह निराश नहीं था। उसने प्रयास जारी रखा।

थोड़ी देर बाद वह बोला, "अच्छा, तुम जरा खुलकर बताओ तो कि वास्तव में तुम्हें परेशानी क्या है?"

गिरिबाला ने कोई जवाब नहीं दिया और न ही उसकी ओर मुंह घुमाया। फिर भी उसे यह सोचकर थोड़ी खुशी हुई कि भूषण उसे फूंक मारकर उड़ा नहीं पा रहा है। भूषण उसे बता रहा है कि अगर गिरिबाला उसकी बात समझ जाए तो वह खुशी से भर उठेगा। चलो, इन्हें थोड़ा साधते हैं, गिरिबाला ने सोचा।

भूषण ने फिर कहा, "नहीं-नहीं, सच्ची, गुस्सा करने की बात नहीं है। खुलकर बोलो, तुम इस बात का इतना विरोध क्यों कर रही हो? मुझे जरा भी बुरा न लगेगा।"

अब कहीं जाकर गिरिबाला ने उसकी ओर मुंह घुमाया।

बोली, "मेरे शरीर की हालत ठीक नहीं है। ऐसे में इतनी दूर जाना ठीक नहीं होगा।"

भूषण बात को ठीक से पकड़ न सका। उसने सोचा, गिरिबाला एक नई पेंच कस रही है। मजे में तो है। आजकल तो इस पर और चिकनाई चढ़ रही है। क्या हुआ है इसको! हुंह !

भूषण ने थोड़ा मजाक में कहा, "तुम्हारी हालत ऐसी क्या खराब है, यह बात तो मेरी समझ में नहीं आती।"

अच्छा ! तो मुझे ताना दिया जा रहा है ! मतलब यह है कि मुझे झूठी भी बताया जा रहा है। गिरिबाला चिढ़ गई।

बोली, "समझोगे कैसे? तुमने क्या कभी मुझे समझने की कोशिश भी की है? मेरा सुख-दुख तो कभी तुम्हारी नजर में पड़ता ही नहीं। तुम समझते हो, बेवकूफ औरत है, कुछ समझती-बूझती नहीं। अरे ! मैं सब समझती हूं। समझ कर भी कुछ बोलती नहीं। किसी ऐसी-वैसी के पल्ले पड़े होते तो अब तक समझ जाते कि अपनी औरत की उपेक्षा करने का क्या मजा मिलता है।"

भूषण जल्दी से बोल पड़ा, "आहा ! इतनी रात को बेकार में बात क्यों बढ़ा रही हो? क्या हुआ है, बताओ न? ऊल-जलूल बोलने का फायदा क्या है?"

गिरिबाला आगबबूला हो उठी।

"मैं कोई बात कहती हूं तो तुम्हारी देह पर फफोले पड़ जाते हैं। मुझसे अब और बर्दाश्त नहीं होगा। देखो, तुम मुझे मायके छोड़ आओ, फिर जहां मर्जी हो, जाओ।"

अब भूषण वाकई घबरा गया। उसने कभी गिरिबाला को इतना गुस्सा होते नहीं देखा। गिरिबाला इस बीच गुस्से से तेज सांस लेने लगी। यह तो अच्छा तमाशा है ! इतनी रात में कहां तो दो चार बातें करके भूषण काम निकालना चाहता था और कहां यह इतनी नाराज हो गई। पासा ही पलट गया।

यथासंभव मुलायम स्वर में उसने कहा, "देखो, तुम्हारा जी दुखाने के लिए मैंने यह बात नहीं कही थी। तुमने कहा न कि तुम्हारी हालत ठीक नहीं है, मैं वही बात जल्दी से जानना चाहता हूं।"

गिरिबाला चुप रह गई। उसका गुस्सा अभी गया न था। एक पल बाद बोली, "मेरी बात का तो तुम्हें भरोसा होगा नहीं। न हो, तुम कल बड़ी दीदी से पूछ लेना।"

भूषण ने गिरिबाला का स्वर नरम देखा तो उसे अपने पास खींच लिया।

बोला, "यह भी कोई बात की बात हुई। तुम्हारी बात तुम्हारे मुंह से सुनने में मुझे अच्छा लगता है।"

अरे रहने भी दो ! कितनी चालाकी से बात करते हैं ! भूषण के बोलने के तरीके

पर गिरिबाला को हंसी आई। अचानक उसे थोड़ी शर्म-सी लगी। एक पल के लिए अपनी हिचकिचाहट पर काबू पाकर उसने कहा, "जाओ, ऐसी बातें भी कहीं मुंह खोलकर कही जाती हैं, दूसरे को अपने आप समझ लेना पड़ता है।"

कहकर उसने भूषण के सीने में मुंह छिपा लिया और फुसफुसाकर बोली, "तुम कैसे डाक्टर हो जी कि घर के रोगी पर तुम्हारी नजर ही नहीं पड़ती !"

ग्यारह

लगता है, गिरिबाला को इतना आनंद पहले कभी नहीं मिला था। नाव पर चढ़ने में उसे हमेशा डर लगता था। मगर आज, ऐसे चमकदार दिन में, नाव पर चढ़ने में उसे पहले जैसा डर नहीं लग रहा था।

सवेरे जब वे घर से विदा हुए तो गिरिबाला का मन भारी था। शंख को कलेजे से लगाकर उसकी सास बुरी तरह रो पड़ी थी। लगता था, जैसे कोई मर गया हो। जेठानी ने गिरिबाला को बांहों में भरकर खूब आंसू बहाए थे। गिरिबाला खुद भी रोई थी। ऐसे में क्या बिना रोए रहा जा सकता है ! लगातार तीन साल तक वह इस घर में रही है। इस घर की सभी अच्छी-बुरी चीजों का उसे अभ्यास हो गया था।

जितने दिन वह इस घर में रही उतने दिन इसकी अवहलेना और उपेक्षा उसको सालती रही। इस घर में आकर ही गिरिबाला को पता चला, अभाव किसे कहते हैं। अपने बाप के घर कभी उपवास नहीं करना पड़ा था, कभी चूल्हे पर पतीली रखकर चावल के इंतजार में बैठे नहीं रहना पड़ा था। इस घर में तो वह सब अब रोजमर्रा की चीज हो गई है। इस घर में आकर ही गिरिबाला का ईर्ष्या-द्वेष से परिचय हुआ था। बड़े शौक से खरीदी गई उसकी सारी साड़ियां एक-एक करके फट गई थीं और उसके गहने एक-एक करके अदृश्य हो गए थे। अनेक बार उसका मन भागने-भागने को हुआ था। फिर भी कितने ताज्जुब की बात है कि यह घर छोड़ने का समय हो गया है, इस बात से उसे बहुत तकलीफ हो रही है। अपने बाप का घर छोड़कर आते समय उसे जैसा कष्ट हुआ था, ठीक वैसा ही कष्ट उसे अब हो रहा है। जो जूथी उसे एक आंख नहीं भाती थी, उसी जूथी के लिए उसका मन हाहाकार कर रहा है। उसे चम्पी की भी याद आ रही थी। कितनी मानिनी थी वह लड़की कि ब्याह के बाद यहां से विदा होते समय उसकी आंखों में एक बूंद भी आंसू न था। एक बार अष्टमंगला के व्रत पर वह दो दिनों के लिए आई थी, फिर ससुराल लौट गई। उसके बाद से न कभी इधर रुख किया, न कोई चिट्ठी-चपाठी ही लिखी।

नाव थोड़ी सी हिली तो गिरिबाला चौंक उठी। उसने देखा, नाव किसी पुल के नीचे से गुजर रही है। थोड़ी देर पहले ही नाव चली थी। अभी झिनैदा की सीमा भी पार नहीं कर पाई थी।

भूषण बेहद खुश था। उसकी आंखें चमक रही थीं और चेहरे पर खुशी थी। अंत में अपने ठहरे हुए जीवन की जंजीर तोड़ने में वह सफल हुआ था। अब वह रास्ते पर निकल पड़ा है। अभी वह अपनी ससुराल जा रहा है। गिरिबाला को छोड़ने। वहां से वह कलकत्ता जाएगा। वहां से श्रीहट जाना है। श्रीहट जाने के पहले वह गिरिबाला को ले जाएगा। भूषण ने यही फैसला किया है। इसमें गिरिबाला की भी सहमति है।

पुल के नीचे से उनकी नाव जा रही थी और ऊपर से एक इक्का जा रहा था। भूषण के सामने यह पुल तैयार हुआ था। देखते-देखते पच्चीस साल हो गए।

भूषण ने गिरिबाला से कहा, "इसी पुल पर से होकर चम्पी की ससुराल जाना होता है।"

यह बात सुनकर गिरिबाला को लगा जैसे वह पछाड़ खाकर गिर पड़ेगी।

भूषण ने कहा, "जानती हो, यह पुल किसने बनवाया था? यतीनदा ने। बाघा यतीन।"

गिरिबाला आंखें फाड़े भूषण की ओर देखती रही। इससे पहले तो उसने कभी सुना नहीं कि इस नाम का भूषण का कोई भाई है।

भूषण ने पूछा, "बाघा यतीन का नाम नहीं सुना?"

गिरिबाला ने सिर हिलाकर बताया, 'नहीं'। भूषण हंसने लगा।

बोला, "बच्चों से लेकर बूढ़ों तक सारे देश के लोग उनका नाम जानते हैं, और तुम नहीं जानती? तुम भी अद्‌भुत हो?"

गिरिबाला अब सचमुच ही लज्जित हुई।

उसने पूछा, "भसुर जी करते क्या हैं?"

भुसर जी !

भूषण की दोनों आंखें फैल गईं।

"किसकी बात कर रही हो?"

धत्! भूषण भी कैसे हैं! अब भला गिरिबाला अपने भसुर का नाम कैसे ले?

"तुम जो अपने दादा की बात कर रहे थे, जिन्होंने यह पुल बनवाया है।"

सुनते ही भूषण हो-हो करके हंस पड़ा।

"भसुर जी ! हा-हा-हा ! बाघा यतीन...भसुर जी ! हा-हा-हा।"

गिरिबाला और भी बेवकूफ बन गई। उसने कोई ऐसी-वैसी बात कह दी क्या?

कुछ पल बाद भूषण की हंसी थमी।

वह बोला, "तुमने भी ठीक ही कहा। भुसर जी ही तो हैं। एक तरह से सोचा जाए

तो तुम्हारी बात भी ठीक ही है। उनके भीतर अपने-पराए का भाव न था।"

भूषण गंभीर हो गया, जैसे कुछ सोच रहा हो। स्मृतियों के पंखों पर उड़कर उसका मन अतीत में जा पहुंचा।

उसने कहा, "जानती हो, वे सब अद्भुत लोग थे। देश को आजाद कराने का व्रत लेकर इस दुनिया में आए थे। देश के काम में अपना जीवन दे दिया।"

भूषण ने गहरी सांस ली। नाव अब दूसरी दिशा में मुड़ गई थी और पुल आंखों से ओझल हो गया था।

भूषण धीरे-धीरे बोलने लगा, "हम उन दिनों स्कूल में पढ़ते थे। हमारे मझले भैया जसोर-झिनैदा रेल लाइन पर झिनैदा के स्टेशन मास्टर थे। मैं उनके पास ही रहता था। पास के ही एक घर में यतीनदा रहते थे। उनकी पत्नी को मैं भाभी कहता था। उनकी बड़ी लड़की की भी मुझे याद है। नाम था आशा। महेशपुर में उसकी शादी हुई। अब तो निश्चय ही वह अच्छी-खासी गृहस्थिन बन गई होगी। यतीनदा उन दिनों ठेकेदारी करते थे। मैंने जिस पुल की बात की, शैलकूपो जाने वाले उस पुल को वे उन दिनों बनवा रहे थे। ऐसा हट्टा-कट्टा, प्रभावशाली आदमी मैंने कभी देखा ही नहीं। हाफ पैंट और हाफ शर्ट पहनकर और सिर पर सोला हैट लगाकर वह कामकाज देखते थे। उनका वही रूप हमेशा मेरी आंखों के सामने रहता है। जानती हो, उनका बाघा नाम क्यों पड़ा?"

भूषण थोड़ा रुका। उसका गला भर आया। गला साफ करके वह फिर बोलने लगा।

"उन्होंने लाठी से पीटकर एक बाघ को मार डाला था। उन्होंने बाएं हाथ की कोहनी बाघ के मुंह में डाल दी थी और दाहिने हाथ में पकड़कर बाघ पर वार किया था। बाघ मारा गया था। मैंने उनकी कोहनी पर बाघ के दांतों के निशान देखे हैं। वे हम लोगों को व्यायाम कराते थे। बीच-बीच में मजाक भी करते थे। हमें फर्श पर चित लिटा देते थे। फिर कुर्सी पर बैठकर अपने पांव का अंगूठा हमारे पेट पर रखकर कहते थे, 'उठ, उठ जा।' मगर हम में से कोई उनके पांव के अंगूठे को ठेलकर उठ नहीं पाता था। वे कहते थे, 'हिम्मत मत हारो, अपने अंदर और ताकत पैदा करो।' और कहते थे, 'ऐसे ही जिन लोगों ने हमें अपने बूटों-तले दबा रखा है, उन्हें भी तो एक दिन उलटना है। शरीर को ताकतवर बना।' तब हम छोटे थे। सब बातें समझ नहीं पाते थे। मगर उनकी बात मानकर हम लोग बड़ी खुशी से स्वास्थ्य बनाने में लग गए थे। फिर एक दिन सुना, यतीनदा गायब हो गए। किसी को उनका पता न चला। भाभी भी शायद वहां का घर छोड़कर अपने पिता के घर चली आईं। इसके प्रायः एक साल बाद एक दिन क्या हलचल हुई ! सुना, बालेश्वर के अपने चार शागिर्दों को लेकर अंग्रेजों के साथ आमने-सामने की लड़ाई लड़ते हुए यतीनदा मारे गए थे, शहीद हो गए थे।"

भूषण चुप हो गया। लगता है, समय से पहले बरसात खत्म होने जा रही है। आकाश जैसे अभी से शरद ऋतु के आगमन की सूचना दे रहा है। धूप बेहद चमकीली हो गई है। पानी से भरे काले बादल का एक टुकड़ा कुछ क्षणों के लिए उन पर छाया करके तैरता हुआ आगे बढ़ गया है। ठंडी हवा चल रही है और यहां-वहां दो-चार लाल रंग के कुईं के फूल मुंह उठाए खड़े हैं। बीच-बीच में भिखारन चीलें करुण स्वर में चीखती हुई मछुआरों के आसपास उड़ती फिर रही हैं।

सारे दुखों और यंत्रणाओं को दबाकर गिरिबाला का मन एक विशेष आनंद से भर रहा है। वह इस आंनद को किसी तरह भी दबाए नहीं रख पा रही है। शंख बहुत देर से सो रहा है। भूषण उदास आंखों से कुछ सोच रहा है। एक मांझी बैठकर तंबाकू पी रहा है। तंबाकू की कड़ी गंध चक्कर लगाती हुई तैर रही है। दूसरा मांझी नदी के कगार पर चलता हुआ रस्सी से नाव को खींचता चल रहा है। कभी दिखाई पड़ता है, तो कभी अदृश्य हो जाता है।

धोबीघाट का मोड़ वे पार कर चुके थे। सामने पबहाटी था। नदी के उस पार सलीमुल्ला चौधरी का विशाल मकान दिख रहा था। लगता था, मकान नदी में से उठ रहा है। सलीमुल्ला चौधरी कौन है, यह मकान कितना पुराना है, यह सब गिरिबाला नहीं जानती। इस गांव का नाम भी उसने कभी सुना है, ऐसा याद नहीं आता, मगर सलीमुल्ला चौधरी का मकान उसके मन पर खुद-सा गया है। यह खुदाई शायद कभी नहीं मिटेगी। मकान देखकर जैसे गिरिबाला के रोंगटें खड़े हो जाते हैं। जब वह बहुत छोटी थी तब भी इस मकान को देखकर वह बुरी तरह सहम जाती थी, आज भी उसे ऐसा ही महसूस होता है।

बाकली के मोड़ पर जाकर मांझियों ने नाव बांध दी। वे थोड़ा आराम करेंगे, खाना भी खाएंगे। फिर नाव चलाएंगे। गिरिबाला के मायके के घाट पर पहुंचते-पहुचंते शाम हो आई। गिरिबाला ने सोचा, बैलगाड़ी से आई होती तो ही अच्छा था। भूषण ने पहले ऐसा ही सोचा था। मगर जिस आदमी की यह नाव है उसने ही उन्हें नाव से ले जाने की जिद ठान ली। वह शायद भूषण का रोगी है। भूषण ने उसकी लंबी चिकित्सा की है। मगर वह भूषण को कुछ भी दे नहीं पाया था। भूषण गांव छोड़कर जा रहा है, यह सुनकर डबडबाई आंखें लिए उससे मिलने आया था। उसने ही जिद की थी कि थोड़ा खटकर वह भूषण का कुछ तो ऋण चुका सकेगा।

भूषण उन्हें खिलाने ले गया। गिरिबाला का मन चंचल हो रहा था। अभी भी काफी रास्ता बाकी था। बाकली से आगे जाने पर हरिशंकरपुर आएगा। वहां पर माधो बाबू का पक्का घाट है। इसी माधोपुर के स्कूल में एक समय सुधामय पढ़ता था। उसके छोटे मामा वहां हेडमास्टर थे। उसके बाद आएगा बोस बाबू का घाट। जिस बोस बाबू ने अलजेबरा की किताब लिखी है यह घाट उन्हीं बाबू के.पी. बोस का है। गिरिबाला के.पी. बोस को

नहीं पहचानती। वह यह भी नहीं जानती कि अलजेबरा क्या बला है। सांप है कि बिच्छू, यह भी गिरिबाला नहीं जानती, मगर बचपन से ही जितनी बार इधर से वह गुजरी है उतनी ही बार उसने यह बात सुनी है। सुनते-सुनते यह सब उसे याद हो गया है।

हरिशंकरपुर छोड़ने पर उस पार मधुपुर का घाट आएगा। कोठी की मेम साहब वहां रहती हैं। वहां पहुंचने पर उसके मायके का आधा रास्ता वे लोग पार करेंगे। मधुपुर के बाद गोविन्दपुर, फिर सूतुल इस पार और उस पार कड़ईतला। कड़ईतला की काली बड़ी जागृत देवी हैं। कड़ईतला के बाद आएगा पलेनपुर, फिर पाइकपाड़ा। पाइकपाड़ा के सामने उस पार लोहाजांगा है। गोपाल विश्वास का मकान वहीं पर है। नदी के घाट पर ही नवीन तांती का घर है। कई बार नाव में बैठे-बैठे उसका गाना भी सुनाई पड़ता है। छोटे काका का वह जबरदस्त दोस्त है। लोहाजांगा का घाट पार करने के बाद थोड़ा ही आगे जाने पर उनके गांव के मछुआरों का घाट आ जाएगा।

भूषण और मांझी लोग काफी देर से गए थे, लौटने का नाम ही नहीं ले रहे हैं। नाव बंधी थी। तेज हवा चल रही थी। फिर धूप भी बहुत तेज थी और गिरिबाला पसीने से नहा उठी थी। शंख भी जाग गया था। वह भी करीब-करीब पसीने से नहा उठा था। गिरिबाला परेशान हो उठी।

तभी भूषण आया। वह रसगुल्ले, दही, चूड़ा, केले ले आया था।

"भूख लगी है न? आओ, थोड़ा खा लो।" भूषण ने कहा।

भूषण क्या पागल हो गया है? वे लोग मुसलमानों की नांव में चढ़कर आ रहे हैं, यह बात भी क्या भूषण के मगज में नहीं घुसती। घर जाकर नहा-धोकर ही वह मुंह में कुछ डालेगी। इसके पहले एक दाना भी मुंह के पास नहीं ले जाएगी।

यह सब गिरिबाला ने मन ही मन सोचा, ऊपर से बोली, "तुम खा लो। मुझे भूख नहीं है।"

यह कहकर गिरिबाला एक करवट लेट गई और लेटते ही उसे नींद आ गई।

जब नाव गिरिबाला के बाप के घाट पर पहुंची तब शाम होने ही वाली थी। बरसात के लंबे दिन पार होने में समय लगता है। इन लोगों के नाव के साथ ही एक और छोटी नाव तेजी से घाट पर आकर लगी।

कुछ लोग उस नाव में उत्तेजित भाव से बातचीत कर रहे थे।

एक आदमी बोला, "मुख्तयार मियां जब रेफरी बने तभी मैंने जान लिया था, आज नसकटे साले जीतेंगे।"

एक दूसरा आदमी बोला, "अगर साला पीर मुहम्मद हमारे फारवर्ड को घायल न कर देता तो उनका जीतना हम निकाल देते।"

एक तीसरा बोला, "अरे भाई, एक माघ में जाड़ा नहीं भागता। मैं उस साले पीर मुहम्मद की गर्दन तोड़ दूंगा किसी और मैच में, अभी से कहे देता हूं।"

"आज तो ये साले खेलने नहीं आए थे, कुछ और ही काम करने आए थे। भला लाठी-सोटा लेकर कोई मैच खेलने आता है?"

"आएं न साले इस बार हमारे अपने मैदान में, खोदकर गाड़ दूंगा सालों को।"

"चलते हैं, गोपाल ताऊ को आज यह मामला बताकर आते हैं।"

कई लड़के उछल-उछलकर नाव से उतरे। एक के हाथ में फुटबाल था। उसने अपने कान पर बीड़ी खोंस रखी थी।

गिरिबाला को देखते ही वह ठमककर खड़ा हो गया।

बोला, "अरे ! यह तो बड़ी दीदी हैं ! एकदम दुर्गा जी की तरह लग रही हैं !"

उसने फुटबाल एक कांख में दबाकर झट से पांव छूकर गिरिबाला को प्रणाम किया।

गिरिबाला आश्चर्य से जैसे चीख उठी, "ओ मां ! यह तो नरा है ! कितना बड़ा हो गया है ! कहां गया था, नरा?"

नरा ने भूषण की ओर एक बार देखकर गर्व से जवाब दिया, "मैच खेलने गया था। आज मधुपुर और पलेनपुर के बीच मैच था। पलेनपुर के लोग हमें हायर करके ले गए थे।"

गिरिबाला की खुशी से भरी हुई अवाक आंखों के सामने खड़ा नरा हंसने लगा।

बारह

काफी देर पहले स्कूल की छुट्टी हो गई थी। सभी अध्यापक चले गए थे। सागर अकेडमी के हेडमास्टर के कमरे को छोड़कर स्कूल के सभी कमरे बंद हो गए थे और स्कूल का चपरासी श्रीकंठ बैठा-बैठा ऊंघ रहा था। पता नहीं, मझले बाबू कब घर जाएंगे?

स्कूल के मैदान में बच्चे खेलने की तैयारी कर रहे थे। अचानक स्कूल का घंटा बजा। घंटे की आवाज से ऊंघता हुआ श्रीकंठ हड़बड़ाकर चारों ओर देखने लगा। उसने देखा, कहीं कोई न था, सिर्फ घंटा हल्के-हल्के हिल रहा था। घंटे के नीचे एक झांवें की ईंट पड़ी थी। श्रीकंठ बुरी तरह चिढ़ गया। दौड़कर नीचे उतरा और स्कूल के कोने-अतरे में देख आया, मगर कोई नहीं मिला।

खेल के मैदान की ओर गया तो तीसरी कक्षा के सात-आठ लड़के उसे देखकर ताली बजा-बजाकर गाने लगे :

ओ मेरी जान ! तू कहां जा रही है?
पांव में चट्टी, गले में चंद्रहार।
नाक में बेसर झुला रही है।
ओ मेरी जान ! तू कहां जा रही है?

श्रीकंठ कटक का रहने वाला है, मगर इसी इलाके में वह बूढ़ा हुआ है। पहले वह पालकी ढोता था। उसके बाद बहुत दिनों तक हरिशंकरपुर के स्कूल में दफ्तरी था। उम्र हो गई तो काम छोड़कर घर में बैठ गया। जब इस स्कूल की नींव पड़ी, तब से करीब तीन साल हुए वह यहां काम कर रहा है। हरिशंकरपुर का स्कूल बड़ा था, हाई स्कूल था। सागर अकेडमी मिडिल स्कूल है। मझले बाबू ही इसके हेडमास्टर और सेक्रेटरी दोनों हैं। मझले मालिक के खिलाफ श्रीकंठ के मन में कोई बात नहीं है। उसकी सारी शिकायत स्कूल के अभागे, बदमाश, गुंडा और बंदर जैसे शरारती इन लड़कों के खिलाफ है। मौका मिलते ही वे श्रीकंठ को चिढ़ा मारते हैं।

श्रीकंठ ने उन्हें दौड़ाया तो वे भाग गए। फिर भी उसकी पहुंच के बाहर जाकर वह खड़े हो गए। और ताली बजा-बजाकर वही पुराना गाना शुरू कर दिया, "ओ मेरी जान! तू कहां जा रही है?"

थोड़ी देर उनके पीछे भागकर श्रीकंठ थक गया और उसने हार मान ली। बड़बड़ाता, बकझक करता वह लौट आया। मझले मालिक से शिकायत करने के लिए वह उनके कमरे में घुसा तो देखा, एक खुली हुई चिट्ठी उनकी मेज पर पेपरवेट के नीचे रखी हुई है और मझले मालिक गहरी सोच में डूबे हुए हैं। श्रीकंठ ने उन्हें छेड़ना उचित नहीं समझा और बाहर जाकर बैठ गया।

मझले मालिक को उस दिन दो पत्र मिले थे। एक पत्र स्कूलों के जिला इंस्पेक्टर और दूसरा सुधामय का। इंस्पेक्टर की चिट्ठी पढ़कर वे खिन्न हुए थे। खिन्न होने की बात भी थी। इतनी मेहनत से वह इस स्कूल को खड़ा कर रहे हैं, मगर एक के बाद एक बाधाएं आकर उन्हें आजिज कर रही हैं। हालांकि ज्यादातर पैसा मकर विश्वास ने लगाया था, फिर भी मझले मालिक ने गांव के और भी अनेक लोगों से इसके लिए मदद ली थी। किसी ने जमीन दी थी, तो किसी ने बांस और फूस, तो कुछ ने श्रमदान किया था। अपने-आप भला कोई किसी अच्छे काम में मदद देता है ! इस देश के लोग मनसा-पूजा, दुर्गा-पूजा में खूब पैसे खर्च करते हैं, यहां तक कि सरस्वती-पूजा में भी ढेरों पैसे लगाने को राजी हो जाते हैं, मगर स्कूल बनाने के काम में उनकी मुट्ठी ही नहीं खुलती। फिर भी मझले मालिक ने बिना कुछ लिए उन्हें नहीं छोड़ा था। मगर मिद्दा साहब के व्यवहार से उन्हें सबसे बड़ा आघात लगा था। मझले मालिक के इस काम में वे शरीक नहीं हुए थे।

मझले मालिक की इच्छा थी कि स्कूल खड़ा करने के इस काम में वे सभी को शामिल करें। मिडिल स्कूल नहीं, मझले मालिक तो सीधे हाई स्कूल की नींव रखना चाहते थे। गोपाल विश्वास की इच्छा नहीं थी कि मिद्दा साहब को इस काम में हाथ डालने दिया जाए, मगर मझले मालिक की दृढ़ता और मकर विश्वास के दबाव से अंत में गोपाल भी राजी हो गया था।

इसके बाद मझले मालिक ने मिद्दा साहब से स्कूल के काम में शामिल होने का प्रस्ताव किया था। मिद्दा साहब ने स्वीकार किया था कि उनके गांव में एक स्कूल की जरूरत तो है। उन्होंने यह भी बताया था कि बहुत दिनों से उनके मन में भी यह बात चल रही है। इसके बावजूद उनकी इस बातचीत का कोई नतीजा नहीं निकला। मिद्दा साहब एक के बाद एक ऐसी शर्तें रखने लगे, जिनका कोई मतलब नहीं था। उन लोगों के सामने तमाम छोटी-छोटी बातें बहुत बढ़ा-चढ़ाकर रखी गईं।

पहले तो नाम को लेकर ही झमेला हुआ। मिद्दा साहब को सागर अकेडमी नाम पसंद नहीं था। हालांकि उन्होंने मझले मालिक से साफ-साफ कुछ नहीं कहा, मगर तरह-तरह से आपत्ति जताकर उन्हें यह बात समझा दी थी। मगर यह कैसे हो सकता है? मकर विश्वास के पैसों से उसके बाप के नाम पर स्कूल खोला जाएगा, यह शर्त मानकर ही मझले मालिक ने इस काम में हाथ लगाया था। काफी आगे बढ़ गया था—स्कूल का काम। अब कैसे मकर विश्वास से कहा जाए कि स्कूल का नाम बदलना होगा? और फिर वे राजी ही क्यों होंगे?

मिद्दा साहब ने दूसरा झमेला खड़ा किया था स्कूल कमेटी को लेकर। उन्होंने कहा था कि स्कूल कमेटी में आधे मुसलमान होंगे और आधे हिंदू। और हिंदुओं में सिडूल कास्ट के लोगों को भी रखना होगा।

मिद्दा साहब के इस प्रस्ताव से गोपाल विश्वास और उसके लोग गरम हो गए थे। मझले मालिक तो जैसे आकाश से गिरे। वे यह नहीं समझ सके थे कि इस मामले में वे लोग राजनीति भी घुसा देंगे। इस कमेटी का मूल उद्देश्य था स्कूल की उन्नति करना। मझले मालिक ने मिद्दा साहब को समझाने-बुझाने की बहुत कोशिश की, कहा, "यह स्कूल है, कोई यूनियन बोर्ड या जिला बोर्ड या कौंसिल नहीं है। स्कूल कमेटी में चुने हुए लोगों को शामिल करना ही ठीक होगा।"

मिद्दा साहब ने यह बात नहीं मानी। बोले, "मैं जो कुछ भी करूंगा, उसमें मुस्लिम बिरादरी की खिदमत होनी ही चाहिए। ऐसा कोई काम हम मर कर भी नहीं करेंगे, जिसमें मेरी जाति के स्वार्थों की हानि हो।" मिद्दा ने यह भी कहा था, "अब मुस्लिम कौम नींद से जाग उठी है। अपने अधिकारों और सम्मान के मामले में वे बहुत सचेत हो गए हैं, खासकर वे छोकरे, जो पढ़ लिख गए हैं। भले ही मैं उनका नेता हूं, मगर अपनी कौम के खिलाफ जाने की हिम्मत मुझमें नहीं है।"

मझले मालिक को यह समझने में जरा भी देर न लगी कि ये बातें दरअसल मिद्दा साहब की नहीं, उनके दामाद के दिमाग की उपज हैं। मिद्दा को वे बहुत दिनों से जानते हैं। उन्हें दुख हुआ कि मिद्दा जैसा आदमी भी ऐसी सारहीन बातें बोलने लगा है और वह भी किससे? खुद मझले मालिक से। मिद्दा के दामाद मुख्तार मियां के साथ भी उनकी बात हुई थी। उस छोकरे ने अब अपने नाम के आगे मौलवी लिखना शुरू कर दिया था। अब मुख्तार मियां पुकारने से वह चिढ़ता है। अब वह मौलवी मुदव्वर हुसैन बन गया है। उसका चालू नाम मुख्तार मियां है।

यह मुख्तार मियां ही दरअसल उस अंचल के मुसलमान-समाज का नेता था। मिद्दा साहब धीरे-धीरे शिखंडी की भूमिका में आ गए थे। उसी छोकरे ने मझले मालिक से सी.आर. दास की दुहाई देकर हिंदू-मुस्लिम पैक्ट की बात की थी। उसने बताया था कि स्वराज्य को लेकर सी.आर. दास ने जो समझौता किया है, उसमें हिंदुओं और मुसलानों के स्वतंत्र रूप से अधिकार पाने की शर्त लिखी हुई है। बैरिस्टर नेता सी.आर. दास ने जनसंख्या के आधार पर हिंदू-मुस्लिम प्रतिनिधित्व की मांग स्वीकार की थी, इसलिए वह समझौता स्कूल कमेटी के मामले में लागू न किए जाने का कारण क्या है? मुख्तार मियां ने मझले मालिक से पूछा था, "तो क्या सी.आर. दास का समझौता बेकार है या कि हिंदू अब उसका विरोध करना चाहते हैं?"

इस तर्क के पीछे बल था। मझले मालिक मुख्तार मियां की चालाकी देखकर चौंक उठे थे। साथ ही, एक राजनीतिक भूल के भयंकर परिणामों की बात सोचकर उन्हें चिंता भी हुई थी। चुनाव की वैतरणी पार करने के लिए सी.आर. दास ने जिस विषवृक्ष को रोपा था, वह दो वर्षों में ही अपनी जड़ें कितनी दूर फैला ले गया था ! कमाल है ! सी.आर. दास जैसे महान व्यक्ति को भी सांप्रदायिकता के साथ हाथ मिलाना पड़ा था ! उन्हें इससे क्या मिला? कांउसिल में एकछत्र बहुमत। इसका लाभ क्या था? इसका लाभ था—दल बनाकर गवर्नर की कांउसिल के कामों में बाधा डालना।

मझले मालिक जैसे खुद से सवाल कर रहे थे। इन दो सालों में देशबंधु ने क्या किया? मंत्रियों का वेतन न बढ़ने पाए, इसी बात को लेकर तो हल्ला-गुल्ला करते रहे हैं। मगर इसके बदले में उन्हें क्या कीमत चुकानी पड़ी? सांप्रदायिकता के बाघ के मुंह में उन्होंने मांस डाला था। ऐसा कोई आंदोलन क्यों नहीं खड़ा हो पाया, जो लोगों के मन से इस हिंसक बाघ को दूर भगा पाता? नहीं, नहीं, ऐसा करने पर जनता का प्रेमपात्र नहीं हुआ जा सकता था। अनेक अप्रिय समस्याओं का सामना करना पड़ सकता था। सब्ज बाग नहीं दिखाया जा सकता था। इसीलिए किसी नेता ने उस तरफ पांव नहीं बढ़ाए।

मझले मालिक ने मन ही मन कहा—ऐसे आंदोलन में कोई उत्तेजना नहीं है और उत्तेजना फैलाए बिना कोई आंदोलन खड़ा नहीं किया जा सकता, ढेरों लोग एकत्र नहीं किए जा सकते। इसके लिए उन्हें इस आलसी समाज की जड़ों को हिलाना पड़ेगा। मझले मालिक

ने सोचा—इस काम में प्रिय होने के बदले अप्रिय होने की ज्यादा संभावना थी। हम क्यों एक सीधी बात भूल जाते हैं? बार-बार मझले मालिक ने खुद से पूछा था। अगर भीत ठीक से जुड़ी न हो तो इमारत खड़ी करके उस पर जितना भी रंग-रोगन लगाया जाए, उसकी उम्र ज्यादा नहीं होती। लोना खाई ईंट से क्या मजबूत भीत बनाई जा सकती है? हम हिंदू हैं, हम मुसलमान हैं, हम ईसाई हैं, हम ऊंची जाति के हैं, हम नीची जाति के हैं—अगर यही सब हमारा पाथेय हो तो कितनी दूर चल सकते हैं? कम से कम मझले मालिक को इसका अंदाजा नहीं है।

जैसे खान से लौह खनिज निकालकर, उसकी सारी गंदगी जलाकर उसे इस्पात बनाया जाता है, उसी तरह सांप्रदायिकता की गंदगी से मनुष्य के मन को साफ करने के बाद ही स्वाधीन समाज की नींव डाली जा सकती है—इस विषय में मझले मालिक के मन में कोई दुविधा नहीं है। और इसीलिए तो बुढ़ापे में अपनी बची-खुची ताकत लगाकर वे एक कोशिश कर रहे हैं, मगर चारों ओर से बाधाओं का सामना करके वे जैसे पस्त हो उठे हैं।

मझले मालिक की इच्छा थी कि वे कुसंस्कार-मुक्त शिक्षा की आधारशिला रख पाएंगे। वे ऐसी शिक्षा के प्रसार की कोशिश करेंगे, जिससे मनुष्य के मन में मानव-मूल्यों को सहज भाव से स्वीकारने की प्रेरणा प्राप्त होगी।

उनके जीवन की दबी हुई स्मृतियां बहुत दिनों बाद फिर उन्हें इशारे से बुलाने लगी थीं। बार-बार उन्हें दो महापुरुषों की याद आने लगी थी। ये महापुरुष थे डिरोजिओ और विद्यासागर। दोनों ही शिक्षा से जुड़े हुए थे। उन दोनों में से किसी को यह मुगालता नहीं था कि वे अंतिम बात कह रहे हैं। मनुष्य के मन में सीखने की प्रवत्ति को जागृत करके ही वे अपने कर्तव्य की इतिश्री मान लेते थे। उन्होंने जो मशाल जलाई थी उसकी रोशनी में ही हम इतनी दूर आगे बढ़ सके हैं। मगर, मझले मालिक सोचते हैं, कितना दुर्भाग्य है कि उस रोशनी को चारों दिशाओं में फैलाने की कोई कोशिश अब नहीं हो रही है।

इसीलिए तो वे अंत में मकर विश्वास के प्रस्ताव पर राजी हुए थे। उनकी इच्छा थी कि वे सभी को साथ लेकर चलेंगे, मगर वह इच्छा कहां पूरी हुई।

मिद्दा और उनके लोग अलग हो गए। न केवल अलग हो गए, बल्कि मझले मालिक के स्कूल खुलने के एक साल बीतते न बीतते, थोड़ी दूर पर, बड़े धूम-धड़ाके से उन्होंने मुस्लिम मिडिल मदरसा खोल दिया। मुख्तार मियां ने उस स्कूल के उद्घाटन के लिए जिले के एस.डी.ओ. मिस्टर मुनीर हुसैन साहब को बुलाया था। उसने एस.डी.ओ. साहब को ही मदरसे का प्रेसीडेंट बनाया और खुद सेक्रेटरी बना। मुस्लिम कौम की तरक्की के लिए एकमुश्त दस हजार रुपयों का दान देकर मिद्दा साहब सरकार की नजर में सुर्खरू हो गए। खूब चर्चा हुई कि इसी साल न्यू इयर के मौके पर मिद्दा साहब को खान साहब का खिताब मिल जाए, इसके लिए एस.डी.ओ. साहब सरकार से सिफारिश कर रहे हैं और बड़े अफसरों के दरबार में हाजिरी लगा रहे हैं। खिताब पाने के बाद मिद्दा साहब हज पर जाएंगे।

मगर अब, उस निर्जन अपराह्न में, स्कूल की छुट्टी के बाद अपने कमरे में बैठे मझले मालिक इस बात से जरा भी परेशान नहीं हैं। उनकी शिकायत यह नहीं है कि मिद्दा साहब को खिताब क्यों मिल रहा है। मिद्दा साहब को खिताब मिले, वे हज पर जाएं, यहां तक कि मदरसा खोलने के उपलक्ष में मिद्दा साहब खैरात बांटें—इन बातों से मझले मालिक का कोई विरोध नहीं है। वे दुखी हैं, आशंकित हैं यह बात सच है, मगर इसका कारण कुछ और है। दुनिया की हवा जैसे बदल रही है, उसे देखकर ही उनके मन में हताशा पैदा हुई है।

सरकार इन दिनों आगे-पीछे सोचना छोड़कर मुसलमान समाज को सिर पर उठाए नाच रही है। मझले मालिक के मन में इसे लेकर आशंका है कि इसका परिणाम अच्छा न होगा। मझले मालिक ने यह कभी नहीं सोचा था कि इस गांव में हिंदू और मुसलमान के बीच जो नाराजगी है वह आपसी विरोध का रूप लेकर सामने आ खड़ी होगी।

मुसलमान समाज अपने नए मालिक अंग्रेजों से दूर हट गए थे। अब वे बड़ी तेजी से यह दूरी कम करने के प्रयास में लग गए हैं। उधर हिंदू समाज अपने पुराने मालिक मुसलमानों के विकल्प के रूप में ही अंग्रेजों की तरफ हो गया था। अंग्रेजों की अच्छाई-बुराई, गुण-दोष सभी को हिंदू-समाज बिना किसी दुविधा के बहुत दिनों से अपनाता रहा है। हिंदू समाज में अंग्रेजी शिक्षित, पूरी तरह नौकरी पर निर्भर एक मध्यवर्ग उठ खड़ा हुआ था। बंगाल ही आधुनिक क्लर्कों की जन्मभूमि है। कितना विचित्र है यह मध्यवर्ग ! परस्पर विरोधी विचारधाराओं की लहरों पर डूबता-उतराता चला जा रहा है !

बीच-बीच में मझले मालिक को ताज्जुब होता हे। वे सोचते हैं—एक तो यूरोप में औद्योगिक क्रांति हुई, फिर फ्रांसीसी क्रांति हुई और पुराने ढांचे को अपनी फूंक से उड़ाकर एक मध्यवर्ग सामने आया, जो अपने विचारों, अपने काम और जीविकोपार्जन के तरीकों में एकदम नया था, जिसने दुनिया का चेहरा बदल दिया। मनुष्य के बारे में मनुष्य की धारणाओं का स्वरूप, अंधविश्वास, कुसंस्कार और धर्म की नींव पर खड़ी संकीर्णता की सीमाओं को पार करके यह वर्ग एक बृहत्तर परिधि में व्याप्त हो गया। तर्क, विवेक और विज्ञान के आधार पर नए सिरे से मनुष्य का मूल्य-निर्धारण संभव हुआ। यूरोप के मध्यवर्ग का यह एक नया अवदान था।

और हम भी तो मध्यवर्ग हैं, मझले मालिक ने खुद से कहा। हमने तो अपने अतीत को जरा भी नहीं छोड़ा। एक नया कपड़ा पहनकर हमने अपना पुराना ढांचा ढक लिया है। हमारी यह मध्यवर्गीय शक्ल हमें अंग्रेजों की मार्फत मिली है। हमने जैसे मैकेंजी लायल के नीलामघर से एक पुराना सोफा खरीदकर अपनी चेतना का चंडी मंडप सजा लिया है। इसीलिए हमारा ब्राह्मणत्व कम नहीं हुआ है, हमारा हिंदूपन जरा भी नहीं गया है। इसीलिए मुसलमानों के साथ पड़ोसी बनकर रहने के बाद भी हम उन्हें आदमी मानना नहीं सीख पाए हैं। अब मुसलमान भी मध्यवर्ग में प्रवेश कर रहे हैं। स्कूलों-कालेजों में दाखिला लेकर

अंग्रेजी सीख रहे हैं। मगर उनमें भी जितना मनुष्यत्व नहीं जाग रहा है, उससे कहीं ज्यादा प्रबल वेग से मुसलमानीयत सिर उठा रहा है। शुरू-शुरू में कुछ ही दिनों पूर्व अपने साम्राज्य को किसी तरह टिकाए रखने के लिए जिन अंग्रेजों ने एक समय हिंदुओं का तुष्टीकरण शुरू किया था, उन्हीं अंग्रेजों ने अब अपने पतन-काल के प्रारंभ में, उसी साम्राज्य को बनाए रखने के लिए बड़े उत्साह से मुस्लिम-समाज का तुष्टीकरण शुरू किया है। अपने देश से मानव-प्रेम, न्याय और धर्म-निरपेक्षता के मंत्र में दीक्षित होकर यहां पर आए अंग्रेज इस देश में विभेद, विद्वेष और घृणा के बीज बो रहे हैं। नियति का यह कैसा भयंकर परिहास है !

मेज पर जो सरकारी चिट्ठी पड़ी थी उसे देखकर मझले मालिक के चेहरे पर एक कड़वी हंसी खेल गई।

जिले के स्कूल इंस्पेक्टर ने लिखा था—फिलहाल आपके स्कूल को सरकार की मंजूरी देना संभव नहीं है। इसके लिए हमें खेद है। न चाहते हुए भी नीचे लिखे कारणों से हमें यह निर्णय लेना पड़ रहा है :

1. आपके गांव में ही एक मुस्लिम मिडिल मदरसा को इस बार स्वीकृति दी गई है। इसका कारण यह है कि अल्पसंख्यक समुदाय के बीच शिक्षा के प्रसार को वरीयता देना वर्तमान सरकार की नीति है। और
2. हम यह भी मानते हैं कि आपकी कमेटी में विभिन्न समुदायों को उचित प्रतिनिधित्व नहीं दिया गया। हम आशा करते हैं कि कमेटी के पुनर्गठन के बारे में आप विचार करेंगे। इति।

निवदेक
राय साहब आर.सी. मित्र
डिप्टी इंस्पेक्टर आफ स्कूल

चिट्ठी को एक बार और पढ़कर मझले मालिक ने खिन्न मन से उसे दराज में डाल दिया। मिडिल स्कूल की भी अनुमति नहीं मिली ! ठीक है, मझले मालिक ने सोचा, कल एक कड़ा जवाब तैयार करना होगा। स्कूल को इसी साल हाई स्कूल के स्तर तक पहुंचा देना होगा। मेरे छात्र अपने बल पर खड़े हो सकते हैं। अगर आगामी दो वर्षों में भी सरकार की स्वीकृति न मिली तो छात्रों को हरिशंकरपुर के स्कूल से परीक्षा दिलाई जाएगी। फिर विश्वविद्यालय के सामने, सर आशुतोष मुखर्जी के दरवाजे के सामने चाहे धरना क्यों न देना पड़े।

"तुमने क्या सोचा है, मुझे फूंक मारकर उड़ा दोगे ! नहीं, तुम ऐसा नहीं कर सकोगे।" मझले मालिक चिट्ठी की तरफ देखकर जोर से बोल उठे।

साथ-साथ ही श्रीकंठ कमरे में आ खड़ा हुआ।

मझले मालिक ने पूछा, "क्या बात है?"

श्रीकंठ ने कहा, "मैंने सोचा, आपने पुकारा है।"

मझले मालिक बोले, "नहीं तो। अच्छा सुन, तू घर जा, मुझे देर होगी। स्कूल की चाभियां मुझे दे जा। और हां, लालटेन भी जलाकर दे जाना।"

स्कूल इंस्पेक्टर की चिट्ठी पढ़कर तो मझले मालिक खिन्न हुए ही थे, मगर सुधामय की लंबी-चौड़ी चिट्ठी ने उन्हें और भी चिंता में डाल दिया था।

शाम गहरा रही थी। स्कूल के मैदान में एक भी बच्चा न था। लोग खरीदारी करके हाट से वापस आ रहे थे। किसी-किसी की बात मझले मालिक के कानों में भी पड़ रही थी। उनके चेहरे धीरे-धीरे स्पष्ट होते जा रहे थे। जाने के पहले श्रीकंठ लालटेन जलाकर रख गया था। मझले मालिक ने उसकी बत्ती तेज कर दी। हुक्का पीने की बड़ी इच्छा कर रही थी, मगर वहां इसकी कोई व्यवस्था न थी।

गत तीन सालों से सुधामय घर नहीं लौटा है। बड़े भैया, मझली दीदी और बड़ी बहू उसके व्याह के लिए परेशान हो उठे हैं। मझले मालिक खुद भी चाहते हैं कि सुधामय का विवाह हो जाए। मगर कहां है सुधामय? पता नहीं, कितने दिन पहले परीक्षा पास करने का समाचार लिखकर भेजते हुए उसने सूचित किया था कि वह नौकरी की तलाश में है, इसलिए घर नहीं आ सकेगा। फिर बहुत दिनों बाद उसने लिखा कि बड़ी कोशिशों के बावजूद वह नौकरी नहीं पा सका है। फिर इसके कुछ दिनों बाद उसने लिखा, असम-बंगाल रेलवे में एक नौकरी लेकर लमडिंग जा रहा है। अचानक आदेश मिलने से वह घर आने का समय नहीं पा रहा है। दो महीने बीतते न बीतते उसकी नौकरी चली गई थी, यह बात भी कलकत्ता वापस आकर उसने लिखी थी। बस, इसके बाद से उसका कोई समाचार न मिला। क्या करता है, क्या नहीं करता, कुछ नहीं बताता। मझले मालिक ने इस बार उसे जोर देकर आने को लिखा था। जोर देने का कारण भी बताया था। उसी का जवाब दिया है—सुधामय ने। प्रायः दो महीने पहले मझले मालिक ने उसे चिट्ठी लिखी थी, जिसका जवाब उन्हें आज मिला है।

सुधामय ने साफ-साफ बता दिया है कि अभी ब्याह करने की उसकी जरा भी इच्छा नहीं है। कारण यह कि एक अनिश्चित भविष्य को लेकर वह जी रहा है। अभी तक उसे कोई नौकरी नहीं मिली है। मिलेगी भी या नहीं, यह भी नहीं जानता। ऐसी अवस्था में विवाह के प्रस्ताव को अस्वीकार करने के अलावा और कोई रास्ता नहीं है। इसके लिए सुधामय सभी का क्षमाप्रार्थी है।

यह सुनकर बड़ी बहू को बहुत दुख हुआ। उनके प्राण तो सुधामय में ही लगे रहते हैं। सुधामय को एक नजर देखने के लिए वे हैरान-परेशान हो उठी हैं, मगर मझले मालिक

इस बात को लेकर परेशान नहीं हैं। उन्हें चिंता एक और बात की है।

सुधामय ने लिखा है :

"मैं अनुभव कर रहा हूं कि मुझे ऐसा कुछ करना चाहिए जिससे मेरी सारी ग्लानि धुल-पुंछ जाए। मैं इस बारे में निश्चिंत हूं कि जब तक अंग्रेज इस देश में हैं तब तक हमारा कोई भविष्य नहीं है। मुझे अपने देश में प्रतिष्ठा नहीं मिलेगी। मेरी दक्षता चाहे जितनी हो, ज्ञान चाहे जितना हो, मगर चूंकि मैं अंग्रेज नहीं हूं, केवल इसी कारण मुझे योग्य पद पर नियुक्ति नहीं मिलेगी। इसी अपमान से मैंने रेलवे की नौकरी छोड़ दी है। एक अत्यंत मूर्ख अंग्रेज बच्चे को मुझसे तीन गुना वेतन देकर मेरे सिर पर बिठा दिया गया। नौकरी तो छोड़ दी मैंने, मगर अपमान की आग मुझे जला रही है। यह अकेली घटना नहीं है। इस तरह के और भी अनेक घाव मेरी छाती में लगे हैं। अब नौकरी करने का मोह समाप्त हो गया है। मझले काका, नौकरी न करने का निर्णय मैंने आसानी से नहीं लिया है। मुझे पता है, आप लोगों को दुख होगा। मुझसे आप लोगों को बड़ी आशाएं थीं। मैं उन्हें पूरी नहीं कर पा रहा हूं। मैं अपने पिताजी और अपनी मां का चेहरा साफ-साफ देख पा रहा हूं। वे लोग मुझे धिक्कार देने के लिए तैयार बैठे हैं, मगर मैं क्या करूं?"

चिट्ठी पढ़ते-पढ़ते मझले मालिक का मन करुणा से भर उठा। नहीं, नहीं, धिक्कार क्यों देंगे? तुम्हारा तो कोई दोष नहीं है, उन्होंने जैसे सुधामय को मन ही मन सांत्वना दी।

वे फिर चिट्ठी पढ़ने लगे :

"मगर मैं क्या करूं? यूनिवर्सिटी की डिग्री होने से ही नौकरी नहीं मिलती। नौकरी पाने के लिए मुझे या तो अंग्रेज होना होगा, या मुसलमान और कुछ नहीं तो सिडूल कास्ट।"

बेचारा ! मझले मालिक का मन सहानुभूति से भर उठा। वे फिर चिट्ठी पढ़ने लगे :

"देश के आजाद हुए बिना, जब तक देश हमारा नहीं हो जाता, तब तक हमारा कोई भविष्य नहीं है। इसीलिए काका जी, मैं अब एक व्यवस्थित काम में लगूंगा। ऐसा काम, जिसका मूल्य कभी कम न होगा, जिसका गौरव कभी मलिन न होगा। मैं जानता हूं कि जिस रास्ते पर हम चल रहे हैं उस पर फूलों की माला लेकर कोई हमारी प्रतीक्षा नहीं कर रहा है। जो लोग अपने खून से जीवन का जयगान लिख गए हैं, उन्हीं का अनुसरण करना मुझे ठीक लग रहा है।"

सुधामय की चिट्ठी के आखिरी हिस्से में एक-एक शब्द से आक्रोश फूट पड़ रहा है। यही नहीं, जाने कैसी एक स्थूलता का परिचय भी चारों ओर बिखरा हुआ है। इसका साफ-साफ अर्थ क्या है? सुधामय क्या करना चाहता है?

एक बात समझ में आ रही है कि सुधामय ने फिर अपना आराध्य बदल लिया है। उसने साफ ही लिखा है :

"कांउसिल में दल बनाकर घुसने और विरोध का खेल खेलने से अंग्रेजों का शासन

हटाया नहीं जा सकेगा। अहिंसा के कायर प्रतिरोध से भी अंग्रेज साहब बहादुर को जरा भी हिलाया नहीं जा सकेगा। सभा के मंच पर खड़ा होकर 'स्वराज्य चाहिए, स्वराज्य चाहिए' चिल्लाने से अंग्रेज स्वराज्य नहीं दे देंगे। अंग्रेज को भगाने का एक ही उपाय है और वह उपाय बोली नहीं, गोली है, यह बात जो लोग कहते है वे ही मेरे प्रणम्य हैं।"

नहीं, सुधामय ने कोई अस्पष्टता नहीं रख छोड़ी है। साफ-साफ समझ में आ रहा है कि उसने वेदी पर नए देवता की प्रतिष्ठा कर ली है। असहिष्णु, आजकल के लड़के बड़े असहिष्णु हैं। मझले मालिक को अपने कालेज के दिनों की याद आई।

उन दिनों उनके मन में भी देशप्रेम जागा था। मगर उसमें ऐसा पागलपन न था। उत्तेजना कम थी, यह बात भी नहीं। जिन दिनों उन्होंने मेट्रोपोलिटन कालेज में दाखिला लिया था उन दिनों सुरेन बाडुज्ए को लेकर कितना हंगामा नहीं हुआ था ! सुरेन्द्रनाथ को इंडियन सिविल सर्विस से बर्खास्त कर दिया गया था। इसे लेकर छात्रों के बीच कितना भयंकर तूफान खड़ा हुआ था ! सी.आर. दास उन दिनों सिर्फ चित्तरंजन थे, प्रेसिडेंसी कालेज के एक छात्र। वे कलकत्ते के विवादरहित छात्र नेता थे। उनके कपड़े-लत्ते देखकर ही गांव के इस शर्मीले छात्र की आंखें फैल गई थीं। उन दिनों स्टूडेंट एसोसिएशन का बोलबाला था। मझले मालिक ने गरमागरम भाषण उन दिनों भी सुने थे। उनके मन में भी पराधीनता की ग्लानि खटकी थी। फिर भी अंग्रेजों के प्रति गहरे असंतोष का भाव तब उनके मन में नहीं जागा था।

अंग्रेजों की न्यायप्रियता के प्रति उनके मन में विश्वास था। उनके श्रद्धेय बुजुर्गों में ऐसे अनेक लोग थे, जो मानते थे कि अंग्रेजों के संपर्क में आकर भारतीयों ने नई विचारधारा आत्मसात कर ली है। हम जब लायक हो सकेंगे, तभी अपने भाग्य का फैसला करने का अधिकार हम अंग्रेजों से प्राप्त कर सकेंगे। उन्हें विश्वास था कि मानवता के उदार बंधन में दोनों देशों के मन बंध जाएंगे। भारत और इंग्लैंड केवल दो अलग-अलग भौगोलिक क्षेत्र नहीं हैं, दो सभ्यताओं के प्रतीक भी हैं।

मझले मालिक इतिहास के छात्र थे। वे जानते थे, सभ्यता कोई माल नहीं है, जिसे कोई विशेष जाति या देश, दूसरे देशों को निर्यात कर सके। सभ्यता पर समूची मानव जाति का अधिकार है। पृथ्वी के किसी भी कोने में किसी सभ्यता का जन्म क्यों न हो, उसके प्रसाद पर समूची मानव जाति का अधिकार है। इस अधिकार से कोई किसी को वंचित नहीं कर सकता। एक समय भारत सभ्यता की चोटी पर था। और एक दिन ऐसा भी आया जब धीरे-धीरे वह नीचे उतर गया। तब अरब सभ्यता आगे आई थी। अपना काम करके वह भी विदा हो गई। यूरोपीय सभ्यता का पुनर्जागण हुआ। भारतीय सभ्यता के विस्तार का बहुतेरा लाभ अरब सभ्यता को मिला था और अरब सभ्यता की बहुत-सी विशेषताओं ने यूरोप की नई सभ्यता के उन्मेष में सहायता की थी। यूरोपीय सभ्यता की ही एक धारा

को बहाकर अंग्रेज यहां लाए हैं। इसीलिए तो आशा हुई थी कि इस नई सभ्यता के प्रभाव में आकर भारत की जड़ता कट जाएगी। जो विराट मानव-आत्मा इस देश में छोटे-छोटे विधि-निषेधों के बंधन में पड़कर कष्ट पा रही है वह इस नई धारा के विशाल प्रवाह में सारे निषेधों से मुक्त हो जाएगी।

मगर वह आशा पूरी न हुई। शिक्षक की भूमिका लेकर आए अंग्रेज शासक की भूमिका के प्रति ज्यादा लालाइत दिखे। इससे उन्होंने न केवल मानव जाति को क्षति पहुंचाई, बल्कि स्वयं को भी दीनता के गर्त में डाल दिया। उन्होंने अपनी सभ्यता, अपनी संस्कृति के साथ ही बहुत बड़ा विश्वासघात किया। गणतंत्र के प्रवक्ता अंग्रेज भांडों और पाखंडियों में परिणत हो गए।

अंग्रेजों ने इस देश में इतनी परस्पर विरोधी प्रवृत्तियों को जन्म दिया, जिसकी सीमा नहीं। जो अंग्रेजी शिक्षा एक समय सारे भारत में एकता की भावना फैलाने में सफल हुई थी, वही अंग्रेजी शिक्षा अब फूट डालो और राज्य करो के षड्यंत्र के तहत संकीर्ण सांप्रदायिकता और प्रांतीयता को जन्म दे रही है। मझले मालिक साफ-साफ देख पा रहे हैं, ऐसा भी दिन आएगा, जब ये ही अंग्रेजी शिक्षाप्राप्त लोग सभी प्रकार के संकीर्णतावादी आंदोलनों का नेतृत्व करेंगे। प्रतिगामिता और जड़ता के धारक-वाहक और प्रचारक बनेंगे।

इस देश के वैचारिक क्षेत्र में जो आग लगनी चाहिए थी उसे अंग्रेजों ने भड़कने नहीं दिया। उन्होंने प्राचीन विचारों के साथ पूरी तरह तालमेल बनाए रखा। इसीलिए अध्यात्मवाद का जीर्ण ढांचा अभी भी हम जी-जान से पकड़े बैठे हैं। अंग्रेजों ने औद्योगिक क्रांति का प्रसार नहीं होने दिया। जिस अंग्रेज ने दीर्घकालीन आंदोलनों के द्वारा अपने देश से सामंतवाद का उच्छेद किया, विज्ञान की उन्नति के लिए जीविकोपार्जन के नए रास्ते बनाए, उसी अंग्रेज ने भारत में सामंतवाद के साथ गठबंधन किया। स्वभाव से व्यापारी, अंग्रेजों ने अपनी बनिया-बुद्धि के बल पर इस देश में केवल समझौते किए। ऐसा न करते तो इस देश में अपना माल वे नहीं बेच सकते थे।

जिस अंग्रेज ने अपने देश में कानून-राज्य की प्रतिष्ठा की थी, उसी अंग्रेज ने कानून का रास्ता छोड़कर भारत पर लाठी के कानून से शासन करना शुरू कर दिया। भारत के अंग्रेज प्रतिनिधियों ने स्वयं को ही बार-बार अस्वीकार किया।

उन्नीसवीं शताब्दी में जिस उदार विचारधारा ने इस देश में जन्म लिया था, उसे अंग्रेज समझ नहीं सके। अवहेलना और उपेक्षा के कारण वह विचारधारा मजबूत न हो सकी और उसके फलस्वरूप इस देश में अंग्रेज विरोध का उग्र और हिंसक स्वरूप सामने आया। सुधामय के खून में भी अंग्रेज-विरोध की वही आग धू-धू करके जल उठी है। क्या इसी को प्रतिफल कहते हैं?

मझले मालिक की आंखों के सामने कितने ही आंदोलन हुए, कितनी ही आंधियां आई

गई। बंग-भंग, स्वदेशी, आतंकवाद, असहयोग, सिविल नाफरमानी—अनेक नरम और गरम आंदोलन।

कितनी ही मांगें उठीं, होमरूल, डोमिनियन स्टेट्स और अब स्वराज्य की मांग।

मझले मालिक को इस बारे में जरा भी संदेह नहीं है कि देश जाग उठा है। अगर उन्हें संदेह है तो केवल इस बात का कि इसका परिणाम क्या होगा। विद्वेष की आग केवल दूसरे को जलाकर ही नहीं थम जाती, विद्वेष करने वाले का चेहरा भी जला देती है। संभवतः यह बात समझ पाने की क्षमता सुधामय में नहीं है। बच्चा ठहरा। दिमाग की बजाए खून की गर्मी पर ही उसका ज्यादा विश्वास है। चलो, सुधामय बच्चा है, मगर हमारे नेता तो बच्चे नहीं हैं? मगर वे भी तो एक ही चर्खी में चक्कर लगा रहे हैं।

कल के 'अमृत बाजार पत्रिका' ने लिखा है, मझले मालिक ने पढ़ा था, गोलमेज बैठक चल रही है। 'डोमिनियन स्टेट्स' अगर नहीं भी मिले, तो उसके आसपास की एक जवाबदेह सरकार का गठन करने की इजाजत तो मिलनी ही चाहिए, फिलहाल उसी से काम चल जाएगा। अभी तो नेताओं का यही अभिमत है।

सुधामय और उसके साथी इससे संतुष्ट नहीं हैं। वे उग्रवाद का रास्ता अपनाना चाहते हैं। मगर मझले मालिक कुछ और ही सोच रहे हैं। वे सोचते हैं, हमारी राजनीतिक चेतना जितनी विकसित होनी चाहिए, हो चुकी है। मगर क्या हमारी सामाजिक चेतना भी उसी तुलना में आगे बढ़ी है? राजनीतिक परिवर्तन से देश थोड़ा-बहुत आगे बढ़ता है, मगर मनुष्य तो सामाजिक परिवर्तन के द्वारा ही आगे बढ़ता है। शायद यह बात समझने लायक धैर्य आज किसी के पास नहीं है।

सुधामय ने उन्हें बहुत मानसिक परेशानी में डाल दिया है। उससे एक बार मिलना जरूरी है। क्या उन्हें एक बार कलकत्ते जाना ही होगा? हां, इसके अलावा उपाय क्या है? उसकी चिट्ठी पढ़ने के बाद क्या निश्चिंत होना संभव है?

तभी नरा हांफते हुए दौड़ा आया और बोला, "मझले बाबू, बड़ी दीदी और जीजा जी आए हैं।"

अभी भी मझले मालिक के दिमाग में सुधामय की बातें ही घूम रही थीं। वे चौंक उठे।

"सुधा आया है?"

नरा ने उत्तर दिया, "जी नहीं, बड़ी दीदी और जीजा जी और उनका बच्चा। बाबू, बड़ी मां ने कहलाया है कि आप बाजार से खाने-पीने का सामान लेते आएं। घर में कुछ भी नहीं है।"

नरा की बातें सुनकर मझले मालिक के दिल में खुशी की एक लहर-सी उठी, मगर फिर आशंका हुई, अचानक गिरिबाला क्यों आ गई? पहले से कुछ लिखा भी नहीं !

उन्होंने नरा से कहा, "रोशनी बुझा दे। दरवाजे में ताला लगा दे। चल, चलते हैं।"

तेरह

कुत्ते के दोनों पिल्ले बड़े पाजी हैं। जरा भी कहना नहीं मानते। शंख ने बड़ी मुश्किल से उनके लिए एक नाव का जुगाड़ किया है। नाव का मतलब है, सुपारी के पेड़ की एक डाल जो नाव के आकार की है। उसकी जड़ एकदम डोंगी की तरह है। उसे ही शंख ने नाव मान लिया है।

निश्चय ही इस नाव का आविष्कार शंख ने नहीं, नरा ने किया है। नाव पर बैठकर शंख मामा के घर आया है, इसीलिए नाव पर चढ़ने का उसे शौक हुआ है। तीन-चार दिन तक शंख नाव की रट लगाता रहा। अचानक नरा के दिमाग में एक ख्याल आया। सुपारी की एक डाल लाकर उसकी जड़ के डोंगे में शंख को बिठाकर वह पूरे आंगन में खींचता फिरा। ले, कितना चढ़ेगा नाव पर। बाबू लोगों के बाग में सुपारी के ढेर सारे पेड़ हैं।

सुपारी की डाल की डोंगी पर चढ़कर शंख बहुत खुश हुआ। अभी कुछ देर पहले तक उसे बिठाकर नरा सुपारी की डाल खींचकर नाव को चला रहा था। थोड़ी देर पहले ही वह बाजार चला गया। शंख अकेला हो गया। वह अकेला रहना नहीं चाहता। उसे अच्छा नहीं लगता। यह घर कितना बड़ा है ! इस घर के चारों ओर कितने झाड़-झोंप हैं! शंख को डर लगता है, वह सिहर जाता है। बड़ा डरपोक है। उसे अकेले रहने में डर लगता है।

झीसियां पड़ रही थीं। भीगकर उसे अच्छा ही लगा। थोड़ा और भीगता तो और अच्छा लगता। मगर मौसी चीख-पुकार करने लगीं। दीदी भी दौड़ी हुई आई और उसे उठाकर बरामदे में ले गई, आंचल से उसका सिर और मुंह पोंछ दिया और उसे दूध पीने को दिया। शंख को दूध अच्छा नहीं लगता। कैसा पानी-पानी-सा होता है। छिः! एकदम बेकार। बड़े लोग जाने क्या-क्या खाते हैं ! बड़े-बड़े पीढ़ों पर बैठकर बड़ी-बड़ी थालियों और कटोरियों में रखी कितनी ही अच्छी चीजें वे खाते हैं। उसके बाप ने दो-एक बार उन चीजों के छोटे-छोटे टुकड़े उसके मुंह में रख दिए हैं। मां, दीदी, दादा जी, मौसी और दिद्दा ने भी। कोई चीज उसे अच्छी लगती है, तो कोई खराब। फिर भी वह खा लेता है। उन चीजों में जो एक तीखापन है वह शंख को नए स्वाद के रोमांच से भर देता है। ये सब चीजें छोड़कर दूध? छिः ! यह भी कोई पीने की चीज है !

मगर यह बात बड़ी मां नहीं समझतीं, न ही उसकी मां समझती है। सभी मिलकर जबरदस्ती उसे दूध पिलाते हैं। उसके विरोध पर कोई ध्यान नहीं देता। पहले से पता होता तो वह भाग जाता। दूध पीकर उसका मिजाज खराब हो जाता है। वह थोड़ी देर गुमसुम बैठा रहा। धीरे-धीरे सभी अपने काम-काज में लग गए। वह फिर अकेला हो गया।

कमरे में चुपचाप बैठा रहना भी उसे अच्छा नहीं लगा। वह बाहर आया।

बरामदे में ढेर सारे हुक्के और चिलम पड़े थे। उन्हें देखकर वह खुश हो गया। बड़े लोगों के मुंह से मुंह भिड़ाकर ये चीजें भुड़ुक भुड़ुक करके जाने क्या कहती हैं। इनके भीतर क्या है? उसने एक हुक्का उठाया। जरा-सा टेढ़ा किया कि चिलम गिरकर टूट गया। चलो, अच्छा हुआ। इसके भीतर तो कुछ भी नहीं है, सिर्फ राख भरी हुई है। असली चीज शायद इसके काले पेट में छुपी हुई है। उसने दो-तीन बार हुक्के को जोर से हिलाया। पता नहीं, क्या चीज हिल रही है, पानी जैसी। अरे ! इसमें से तो पानी निकल रहा है ! पानी गिरकर फर्श पर फैल गया। वाह ! चलो, देखते हैं, इसके भीतर और क्या है? इसके भीतर से कौन बोलता है? हुक्के की नलकी पकड़कर उसने कई बार जोर से हिलाया, फिर धांयं-धांयं करके उसे जमीन पर पटकने लगा। उसकी ठक-ठक आवाज उसे बहुत अच्छी लगी। ठक, ठक, ठकास ! मार, और जोर से मार ! ठक-ठक, ठकास-ठकास ! नलकी में से हुक्के का गोला छिटक पड़ा। वाह ! बड़ा मजा आया। कैसा लुढ़क रहा है ! हुक्के की नलकी की कितनी सुंदर लाठी बनी है। शंख खुशी से भर उठा। नलकी से हुक्के के गोले को गेंद की तरह मारते हुए वह खुश होकर उछलने लगा।

रामकिष्टो ने आकर देखा कि बड़े मालिक के हुक्के की कपालक्रिया हो रही है। सत्यानाश ! बड़े बाबू देखेंगे तो मुझे जिंदा नहीं छोड़ेंगे। रामकिष्टो ने जल्दी से शंख के हाथ से हुक्के की नलकी ले ली।

बोला, "मुन्ना जी, देखता हूं तोड़फोड़ करने में एकदम माहिर हो गए हो? लगता है, एक पल भी तुम्हारा मन स्थिर नहीं रहता, क्यों? तुम्हारा सारा गुस्सा काम की चीजों पर ही है ! लाओ, इसे मुझे दो।"

शंख नलकी देना नहीं चाहता था। किसी तरह भी नहीं।

बोला, "लाठी ! हमारी लाठी। मारूंगा।"

रामकिष्टो बोला, "तुम्हारे लिए इससे भी अच्छी लाठी मैं बना दूंगा। मेरे राजा बेटा, अब नलकी मुझे दे दो। तुम्हारे नाना जी इससे तंबाकू पीएंगे।"

"नहीं, तंबाकू नहीं। मेरी लाठी। मारूंगा तुम्हें।"

रामकिष्टो के हाथ में ढेर सारे काम हैं। उसके पास बातचीत करने का समय नहीं है। अब जरा भी देर किए बिना उसने शंख से नलकी ले ली। शंख को बहुत गुस्सा आया। यह क्या बात है ! वह जो भी चीज उठाता है, ये बड़े लोग फट से उससे छीन लेते हैं ! ठीक है, उसे नहीं चाहिए, इन लोगों की कोई चीज उसे नहीं चाहिए। कोई उसे प्यार नहीं करता। कोई नहीं, कोई नहीं। उसका मन रोष और मान से भर गया। आंखों में आंसू भर आए। थोड़ी देर रोता रहा। अचानक आंगन में पड़ी डोंगी की तरफ उसकी नजर गई और उसंका रोना बंद हो गया।

शंख आंगन में उतर आया। नाव को खींचते हुए पूरे आंगन में घूमने लगा। हां, अब उसे एक अच्छा काम मिला है। कुछ देर नाव खींचने के बाद उसे ख्याल आया कि उसकी नाव खाली है। उसमें कोई यात्री नहीं हैं। उसने इधर-उधर देखा। थोड़ी दूर पर कूड़े के ढेर पर दो छोटे पिल्ले खेल रहे थे। शंख खुश हो गया। उसे अपनी नाव के लिए दो यात्री मिल गए थे।

उसने पुकारा, "आ जा, आ जा।"

पिल्लों ने उसकी पुकार अनसुनी कर दी। कई बार पुकारने पर भी जब वे नहीं आए तो शंख खुद उनके पास गया।

बोला, "आ, नाव पर चढ़ेगा?"

पिल्ले फिर भी उसके पास नहीं आए। तब शंख ने एक पिल्ले को पकड़कर अपनी नाव में बिठा दिया। इसके बाद दूसरे को पकड़ने लगा। उसे लेकर जब वह अपनी नाव के पास आया तो पहले वाला पिल्ला कहीं और चला गया था। शंख को बड़ा ताज्जुब हुआ। कहां गया एक यात्री?

उसने हाथ के पिल्ले को नाव में बिठा दिया और पहले यात्री के पीछे दौड़ा। यात्री भी भागने लगा। थोड़ी भाग-दौड़ करने के बाद जब उसे पकड़कर वह नाव के पास ले आया तो उसने देखा नाव से उतर कर दूसरा यात्री भागा जा रहा है।

उसने पुकारा, "आ आ ! चुक्! चुक् !"

मगर कौन सुनता है उसकी बात ! शंख बड़ी मुश्किल में पड़ गया। जब तक वह एक पिल्ले को नाव में बिठाकर दूसरे को पकड़ने जाता, तब तक पहले वाला अपना रास्ता पकड़ लेता। वह दौड़-दौड़कर हैरान हो गया। उसे गुस्सा भी आया। उसने एक पिल्ले के पेट में लात मारी। वह कें-कें कर उठा। वाह ! यह तो मजेदार खेल है ! उसने पिल्ले को एक लात और जमाई। पिल्ला इस बार देर तक कें-कें करता रहा। वाह! वाह! खुशी-से उछल पड़ा शंख और ताली बजाकर हंसने लगा।

उसने पिल्ले को धमकाया, "और करेगा बदमाशी? पाजी कहीं का !"

उसने पिल्ले को फिर लात मारी। बार-बार मारता रहा और बार-बार पिल्ले आर्तनाद करते रहे। उसे भी खूब मजा आ रहा था। पिल्लों की चीख सुनकर गिरिबाला बाहर आई और शंख को पिल्लों के साथ खेलते देखकर नाराज हो उठी।

उसने पुकारा, "मुन्ना। चल ऊपर आ ! गंदा कहीं का ! पिल्लों को क्यों मारता है? शैतान कहीं का ! चल ऊपर आ।"

शंख ने मां को देखकर शिकायत की, "मारूंगा। ये पाजी हैं, मारूंगा।"

"रहने दो, तुम्हें उन पर हुकुम चलाने की जरूरत नहीं। तुम अब इधर आओ। पूरी देह में मिट्टी लगाकर भूत बने हुए हो। आओ, नहला दूं।"

गिरिबाला बच्चे का हाथ पकड़कर उसे खींचती हुई ले गई। उसके पास बहुत काम है।

बड़ी मां को बुखार था, चम्पा को भी। दोनों को मलेरिया ने जकड़ रखा था। उन्हें बहुत तकलीफ हो रही थी। फूली की मां और फूली भी नहीं थीं। फूली की मां लड़की के साथ साल भर पहले अपने ससुराल चली गई थी। छोटी काकी काका के पास थीं। काका की बदली झिकरगाछा हो गई थी। प्रायः एक महीने से घर के सारे काम शुभदा ही संभाल रही थीं। गिरिबाला के आने पर उनकी खटनी थोड़ी कम हो गई थी।

इस बार मायके आकर गिरिबाला को कड़ी मेहनत करनी पड़ रही है। वह जरा भी फुर्सत नहीं पा रही है। बाप के स्कूल जाने से पहले ही उनके लिए खाना बनाना पड़ता है। दो-दो रोगियों की सेवा करनी पड़ती है। बीच-बीच में चावल खत्म हो जाने पर उसे धान भी कूटना पड़ता है। लग ही नहीं रहा है कि वह बाप के घर आई है। एक सप्ताह होते न होते वह जैसे थकान से भर गई।

तीन साल तक वह मायके नहीं आई थी। इतने दिनों से अपने बाप के घर की जो तस्वीर उसकी आंखों में तैरती रही है, वह तीन साल पहले की है। इस बीच इस घर में क्या-क्या परिवर्तन हुए हैं, इसकी कोई धारणा ही उसे न थी। इसीलिए नदीघाट पर नरा को देखकर वह चकित रह गई थी। जिस नरा को वह तीन साल पहले देख गई थी, उसके साथ, जिस नरा को उसने उस दिन देखा, कोई तुलना न थी। उन दोनों में, जमीन-आसमान का अंतर था। अब गिरिबाला धीरे-धीरे समझ गई है कि सिर्फ नरा में ही नहीं, यहां की सारी चीजों में परिवर्तन हुआ है।

जब वह ससुराल में थी तो उसकी तुलना में गिरिबाला को अपना मायका कहीं ज्यादा श्रेष्ठ और खुशहाल दीखता था। इस बार उसे अपने मायके और ससुराल में कोई विशेष अंतर नहीं दीख रहा था। इस बार उसके मायके में भी खाने-पीने की चीजें रोज-ब-रोज बाजार से आती हैं। भंडारघर खाली पड़ा है। मकान के बाहर का रूप भी बिगड़ा हुआ है। पहले बाहरी और भीतरी हिस्सों के बीच जो चारदीवारी थी वह हमेशा चाक-चौबंद रहती थी। इस बार गिरिबाला ने आकर देखा, चारदीवारी न केवल जीर्ण-शीर्ण हो गई है, बल्कि एक किनारे से गिर भी गई है, जिसके फलस्वरूप घर बेआबरू हो रहा है। बुआ जी का मिजाज हमेशा खराब रहता है, बड़ी मां और चम्पा दुबली-पतली और बीमार हैं, पिताजी बहुत गंभीर हैं और ताऊ जी चिंता के भार से झुक गए हैं। कुल मिलाकर वहां जिस वातावरण का निर्माण हुआ था, उससे पहले की तरह गिरिबाला को वहां आने के लिए कोई खास उत्साह नहीं महसूस हो रहा था। उसे लग रहा था, जैसे पहले की गर्मजोशी बहुत कुछ ठंडी पड़ गई है।

बाहर से देखने पर जितने परिवर्तन नजर आते हैं, भीतर से हुए हैं कि नहीं, गिरिबाला नहीं जानती। वह केवल अनुभव कर रही है, जैसे यह घर उसके पास से थोड़ा दूर सरक गया है। इसमें उसका दोष है या इस घर का, गिरिबाला यह भी नहीं जानती। ससुराल से यहां आने के लिए जो उसके प्राण इतने आकुल-व्याकुल हो रहे थे, अब जैसे उसका कोई संगत कारण वह ढूंढ़ नहीं पा रही है। ससुराल में रहते हुए उसने सोचा था, भूषण एक बार उसे मायके छोड़ आए, तो गिरिबाला देख लेगी वह कैसे उसे चायबगान ले जाता है !

अब भूषण उसे यहां छोड़कर कलकत्ता चला गया है। कुछ ही दिनों में वापस आकर उसे आसाम ले जाएगा। ससुराल में रहते हुए गिरिबाला ने मन ही मन खूब सोच-विचार किया था और श्रीहट न जाने के पक्ष में उसने अनेक अकाट्य तर्क जुटा लिए थे, मगर अब उस जैसी डरपोक स्त्री को भी लग रहा है कि उन सब तर्कों का कोई अर्थ नहीं है। ससुराल में रहते हुए बार-बार उसे लगता था कि बाप का घर ही उसका सबसे बड़ा आश्रय है। मगर अब उसे लग रहा है कि अगर वह चायबागान चली भी गई तो ऐसा कुछ बुरा न होगा। अर्थात उसके बाप के घर का जो वातावरण था उसमें अच्छी तरह सोच-विचार करने के बाद भी, ऐसा कोई अवलंब उसे नहीं मिल रहा था, जिसके बल पर अपनी श्रीहट यात्रा का वह प्रबल विरोध कर सके। वरन इसका उल्टा ही हुआ है। गिरिबाला मन ही मन श्रीहट जाने को तैयार होकर भूषण के कलकत्ते से लौट आने का इंतजार करने लगी।

चौदह

बुखार जब आता है तब बड़ी बहू को शुरू-शुरू में कुछ खास तकलीफ नहीं होती, बल्कि अच्छा ही लगता है। कैसा तो एक नशा-सा छा जाता है। रसोई बनाने बैठी हों, बर्तन मांजने या कि कपड़े धोने पोखरघाट गई हों, अचानक उन्हें लगता है कि उनके खून में एक चंचलता, एक सुरसुरी-सी उठ रही है। वे समझ जाती हैं कि बुखार आएगा। मलेरिया ऐसे ही आता है। फिर बड़ी बहू जहां तक हो सकता है, जल्दी से अपने हाथ का काम निबटा लेती हैं। जानती हैं, माथे की नसों में जो टपकन शुरू हुई है वह बुखार का लक्षण है। और वे होश खो बैठेंगी।

इसीलिए बड़ी बहू समय रहते सतर्क हो जाती हैं। बुखार का लक्षण महसूस होते ही हाथ का काम कर डालती हैं। यहां तक कि दांतों पर तंबाकू का चूरा भी घिसना नहीं भूलतीं। इसके बाद चम्पा को या किसी और को, काम निबटाते-निबटाते बिस्तर लगाने को कहती

हैं। बिस्तर पर लेटते न लेटते मलेरिया का कंपन शुरू हो जाता है। भयानक ठंड लगती है। रजाई पर रजाई, कथरी पर कथरी लादने पर भी ठंड नहीं जाती। चम्पा या कि फूली या फूली की मां या शुभदा कांपना रोकने के लिए ऊपर से उन्हें दबाए रहती हैं। तब भी उनकी देह थरथराती रहती है और बुखार की गर्मी बढ़ती रहती है, कानों के भीतर हजारों झींगुरों की झीं-झीं आवाज सुनाई पड़ती है और माथे की टपकन सौ गुना बढ़ जाती है। उसके बाद आता है ज्वार, महाप्लावन.... । बड़ी बहू की देह बुखार के धक्कों से टूटने लगती है, खंड-खंड होने लगती है, बिखर-सी जाती है। उनके विचार गड्डमड्ड होने लगते हैं। फिर पता नहीं, कब देखने, समझने और सुनने की शक्ति भी लुप्त होने लगती है। जानी-पहचानी दुनिया जाने किस गर्त में समा जाती है और काफी देर तक किसी चीज का होश नहीं रहता।

अचानक पता नहीं, कितनी देर बाद एक समय उनकी चेतना वापस आती है और बड़ी बहू पाती हैं कि•उनकी निर्जीव देह रजाइयों और कथरियों के एक विराट स्तूप के नीचे पसीने से लथपथ हो रही है। मुंह का स्वाद बिगड़ गया है और देह सुन्न पड़ गई है। हिलने-डुलने को भी मन नहीं करता। उन्हें लगता है, कोई एक हिंसक दैत्य उनकी देह का सारा रस चूसकर ठठरी फेंक गया है। तब बड़ी बहू को बहुत बुरा लगता है। वे बड़ी असहाय हो जाती हैं।

ऐसे में उन्हें केवल सुधामय की याद आती है।

कैसा है सुधा? घर आने के लिए उसे इतना लिखा जा रहा है, मगर वह आ क्यों नहीं रहा? कितने दिनों से वह घर नहीं आया? एक साल, दो साल, एक युग? अब क्या वह नहीं आएगा? एकदम आएगा ही नहीं? अगर अचानक वे मर जायं तो सुधा का मुंह भी नहीं देख पाएंगी। कितना बुरा होगा! उनकी छाती धड़कने लगती है और निस्तेज आंखों से लगातार आंसू बहने लगते हैं।

सुधा को लेकर उन्होंने कितने सपने देखे थे। उन्हें उससे कितनी उम्मीद थी। यहां की पढ़ाई खत्म करके कलकत्ता जाकर पढ़ने की सुधा ने जिद की थी। बड़ी बहू का जरा भी मन न था। उन्हें मझले बाबू की बात याद थी। कलकत्ते से उन्हें बड़ा डर लगता है। उनकी धारणा है कि कलकत्ता जाने से आदमी के धर्म-कर्म का नाश हो जाता है। फिर मझले बाबू की बात मानकर, उन पर भरोसा करके उन्होंने दिल कड़ा कर लिया था। लड़के को हिम्मत करके कलकत्ता भेज दिया था। और वही हुआ, आखिर कलकत्ता उसे निगल गया। उन्हें जो डर था, वहीं हुआ। अब मझले बाबू कोई बात क्यों नहीं करते? सुधा-सुधा करके जब उनके प्राण निकलने को हो रहे हैं, तब भी वे उसके बच्चे को क्यों नहीं ला पा रहे हैं उसके पास? तब तो बड़ी हिम्मत बंधाई थी।

कभी-कभी बड़ी बहू को लगता है, सुधा जिंदा ही नहीं है। सब लोग मिलकर उसे पट्टी पढ़ा रहे हैं। सुधा जिंदा नहीं है? सटाक-सटाक उनकी पीठ पर जैसे कोई चाबुक

मारता है। यह क्या सोच रही हैं वे। तैंतीस कोटि देवताओं से प्रार्थना करती हैं बड़ी बहू, जागृत देवताओं की मनौती मानती हैं, सुधा को मेरी गोद में लौटा दो, प्रभु। वे अपनी छाती चीरकर अपना खून देवताओं के पांव पर चढ़ा देंगी।

कभी उन्हें लगता, सुधा को पढ़ाना-लिखाना ठीक नहीं हुआ। पढ़ाई-लिखाई के बिना उनका बच्चा उनकी गोद में रहता। अपनी जमीन-जायदाद की देखभाल करता। वे उसका ब्याह कर देतीं। अभी तक तो वे और उनकी बहू पोता-पोती लेकर अपनी गृहस्थी में रम गई होतीं। पढ़ाई-लिखाई किए बिना कोई महाभारत अशुद्ध न हो जाता। पढ़ने-लिखने का क्या नतीजा निकला। यह तो मां-बाप को भी किसी गिनती में नहीं लेता। निश्चय ही सुधा ने कलकत्ते में कोई कांड कर रखा है, वरना घर क्यों नहीं आता? बड़ी बहू का मन कहता है, सुधा के साथ जरूर कुछ गड़बड़ हुई है। कुछ दिनों से उनका मन केवल बुरे विचारों से भरा हुआ है। घर आने के लिए चिट्ठी पर चिट्ठी लिखी जा रही है... सुधा में उनकी उपेक्षा करने की हिम्मत कहां से आई? इस बीच उसकी दो-तीन अच्छी शादियों के रिश्ते आए। विनोदपुर के अक्षय घोष की लड़की तो घर के मालिकों को भी पसंद आ गई थी। लड़की का बाप भी इस घर में शादी करने को बड़ा इच्छुक था। पिछले डेढ़ सालों से उसने कितने चक्कर लगाए, मगर लड़के का तो कुछ पता ही नहीं। हारकर उन्होंने पिछले बैसाख में उसकी शादी कहीं और कर दी।

कहीं सुधा ने कलकत्ते में ही तो शादी-वादी नहीं कर ली? क्या उन्हें बिना बताए सुधा ऐसा काम कर बैठेगा? नहीं, नहीं, यह बात नहीं है। सुधा ऐसा कभी नहीं करेगा। मगर नहीं करेगा, इसका ही क्या भरोसा? बड़ी बहू खिन्न हो उठीं। आजकल के लड़कों की मति-गति का कोई ठिकाना है! पिछले डेढ़ सालों से तो बड़ी बहू बिस्तर पर पड़ी हुई हैं। पता नहीं, कब चल बसें। ये सारी बातें सुधा को लिख कर भेजी गई हैं। वह सब कुछ जानता है, फिर भी एक बार उन्हें देखने तक नहीं आया। क्या बड़ी बहू कभी सोच भी सकती हैं कि उनकी बीमारी की खबर पाकर भी सुधा उन्हें देखने नहीं आएगा? जो लड़का ऐसा कर सकता है, उसके लिए इस दुनिया में असाध्य भी क्या है?

बड़ी बहू सुधा-सुधा करके मरी जा रही हैं और सुधा मां के लिए पैसा-भर चिंता नहीं करता। बड़ी बहू जब निर्जीव होकर बिस्तर पर पड़ी रहती हैं तो सुधा को लेकर कितने ही बुरे विचार उनके मन में घुमड़ते हैं।

आज कुछ ही देर पहले बुखार उतरा है। थोड़ी तंद्रा-सी लग रही थी। उन्होंने देखा, सुधामय की चेतनाहीन देह को कंधे पर लादे भूषण आ रहा है। वह गाड़ी नहीं पकड़ सका। पैदल ही कलकत्ता से आ रहा है। सुधामय का सिर फट गया है। सिर से भलभला कर खून बह रहा है। उसे बरामदे में लिटा दिया गया है। उसके घावों से इतना खून बह रहा है कि

बरामदा और आंगन खून से रंग गए हैं। तभी तेज बारिश शुरू हो जाती है और आंगन में गले तक पानी जमा हो जाता है। सुधा के खून से वह पानी लाल हो उठा है। बड़ी बहू उस समय रसोईघर में थीं। जल्दी से गले तक पानी में चलकर गोदाम के बरामदे में पहुंचीं और पछाड़ खाकर सुधा की देह पर जा गिरीं। सुधा की देह भी फिसलकर पानी में जा गिरी और पता नहीं कौन बोल उठा—हाय अभागिन! बच्चे को तूने पानी में ठेल दिया। बड़ी बहू जल्दी से हाथ बढ़ाकर सुधा को पकड़ने गईं कि तभी पानी के तेज बहाव का ज्वार आया और पलक झपकते ही सुधा की देह बहकर अदृश्य हो गई।

"अरे! पकड़ो, पकड़ो!" कहकर बड़ी बहू चीख उठीं। उनकी नींद टूट गई। भय और आतंक से उनकी देह थरथराने लगी। उनकी सांस छाती में अटक गई। बड़े मालिक बगल के कमरे में थे। चीख सुनकर वहां आ गए और बड़ी बहू की हालत देखकर पूछा , "क्या हुआ?"

बड़ी बहू निर्जीव आंखों से कुछ पल पति को निहारती रहीं। तब भी वे हांफ रही थीं।

बड़े मालिक ने दुबारा पूछा, "क्या हुआ, बड़ी बहू? इस तरह चीख क्यों उठीं?"

बड़ी बहू ने गहरी सांस ली। फिर थोड़ा शांत होने की कोशिश की, और अचानक उनकी आंखों से आंसू झड़ने लगे।

थोड़ी देर बाद अपने को थोड़ा संभालकर वे बोलीं, "सुनो जी, तुम लोग आदमी नहीं, पत्थर हो। आज तक तुम हमारे सुधा को हमारे पास नहीं ला सके।"

बड़े मालिक बोले, "क्या करूं, तुम ही बताओ, चिट्ठी लिखता हूं तो हरामजादा जवाब ही नहीं देता।"

बड़ी बहू ने कहा, "तो एक काम करो। मुझे कलकत्ता ले चलो। मेरा मन बहुत घबरा रहा है। उल्टे-सीधे सपने देख रही हूं। मुझे कलकत्ता ले चलोगे न?"

बड़े मालिक बोले, "कलकत्ता जाना क्या मुंह का कौर है, बड़ी बहू? मैं तो कलकत्ते का खाक-पत्थर कुछ चीन्हता ही नहीं। घबराने से क्या होगा? जो भाग में लिखा है, उसे क्या तुम बदल दोगी? दामाद को कहा तो है, कलकत्ता जा रहे हो तो नवाब साहब से भी मिल आना। दामाद तो कलकत्ता से यहीं लौटेंगे। कह रखा है कि उसे भी पकड़कर साथ में ले आए।"

बड़ी बहू ने कहा, "क्या दामाद जी ने कोई चिट्ठी भेजी है?"

बड़े मालिक ने कहा, "महि ने तो कुछ बताया नहीं। शायद कोई चिट्ठी नहीं आई है... अरे, यह क्या? ओ मुन्ना, यह दवा की शीशी कहां मिली तुझे?"

चम्पा की मिक्स्चर की शीशी दोनों हाथों में पकड़े उसी समय शंख कमरे में घुसा। बड़े मालिक जल्दी से दवा की शीशी लेने झपटे, मगर शंख ने शीशी नहीं दी और बड़ी बहू के पास खिसक गया।

बड़े मालिक ने कहा, "दे दो, दे दो, दवा नहीं छूते।"

शंख बोला, "दवा नहीं लेते। दीदी खाएगी। दीदी बीमार है।"

शंख ने दवा की शीशी बड़ी बहू को थमा दी, "दीदी बीमार, दीदी खाएगी, दीदी की दवा।"

बच्चे को देखकर और उसकी बातें सुनकर बड़ी बहू के मन का बोझ बहुत-कुछ हल्का हो गया। चेहरे पर मुस्कराहट आ गई।

बोलीं, "हां बच्चा, मैं दवा खाऊंगी। तुम अभी तक कहां थे?"

उस जरा-से बच्चे की बुद्धि देखकर बड़ी बहू अवाक रह गईं। यह भी समझता है कि बीमार हूं, इसीलिए दवा की शीशी लेकर मुझे खिलाने आया है।

शंख ने कहा, "दवा खाएगी, दवा खाएगी।"

बड़ी बहू ने शंख को अपने पास खींच लिया और उसके सिर पर हाथ फेरने लगीं। देखो तो, अपने सिर में कितनी गंदगी है। बालों में लट पड़ रही है। बालों में अच्छी तरह कंघी न हो और तेल न पड़े तो खुश्की हो जाती है, मगर करे कौन? वे तो पड़ी हुई हैं। चम्पा भी बिचारी पड़ी हुई है। रह गई बूड़ी। बिचारी दो दिन के लिए यहां मन बहलाने आई थी, दो दिन बाद उसे काले कोस जाना है। सो, कहां तो हाथ-पांव फैलाकर दो दिन आराम करती, कहां बिचारी को रसोईघर में बैठकर चूल्हा झोंकना पड़ रहा है।

तभी गिरिबाला एक कटोरे में साबूदाना लेकर कमरे में घुसी। साबूदाना गरम था और उसमें में कागजी नीबू की महक आ रही थी।

बड़ी बहू ने हंसते हुए गिरिबाला से कहा, "ओ बूड़ी, देख तो अपने लाड़ले की करामात। यह तो अभी से डाक्टर बन गया। दवा की शीशी लाकर मुझे दी और कहता है—नानी दवा खाएगी। नानी बीमार है।"

बड़ी बहू की बात सुनकर सिर हिलाते हुए शंख बोला, "नानी दवा खाएगी। नानी बीमार।"

बड़े मालिक ने कहा, "डाक्टर का बेटा है न। कहा है—बाप का बेटा, सिपाही का घोड़ा। बहुत नहीं तो थोड़ा-थोड़ा।"

घोड़े की बात कान में पड़ते ही बड़ी बहू को छोड़कर शंख बड़े मालिक के पास आ गया।

उनका हाथ पकड़कर बोला, "नाना, घोड़ा।"

बड़े मालिक ने पूछा, "घोड़े पर बैठोगे?"

खुशी के मारे शंख उछलने लगा, "घोड़े पर चढ़ूंगा। नाना घोड़ा।"

गिरिबाला हंसने लगी।

बोली, "आपने मरभुक्खे को साग का खेत दिखा दिया न?"

इस बीच में शंख बड़े मालिक का हाथ पकड़कर खींचता हुआ उनसे कह रहा था, "नाना, घोड़े पर चढ़ूंगा। घोड़ा दो।"

बड़े मालिक ने कहा, "तो चलो चलते हैं, दोनों मिलकर घोड़ा पकड़ते हैं।"

शंख को लेकर बड़े मालिक बाहर जाने का उपक्रम कर ही रहे थे कि तभी गिरिबाला बोल उठी, "ताऊ जी, खाना हो गया है, जल्दी से नहा-धो लीजिए।"

उनके बाहर जाने के बाद साबूदाने का कटोरा गोद में रखकर बड़ी बहू छोटे बच्चे की तरह मिनमिन करने लगीं।

"साबूदाना तो अब मुंह में रखने को भी मन नहीं करता। लगता है, उल्टी हो जाएगी। न हो, तू मुझे एक मुट्ठी भात दे दे।"

गिरिबाला ने हंसते हुए कहा, "तुम तो चम्पा से भी बढ़ गई हो, ताई। चम्पा बिचारी तो साबूदाना पाकर ही खुश हो जाती है।"

बड़ी बहू ने बड़ी मुश्किल से अपना रोष दबाते हुए कहा, "रोज-रोज साबूदाना निगलना खाक अच्छा लगेगा।"

गिरिबाला ने कहा, "जब तक बुखार छोड़ नहीं देता तब तक डाक्टर और कुछ खाने को नहीं देगा। लो खा लो। मैंने नीबू डालकर अच्छी तरह मिला दिया है। खाने में खराब नहीं लगेगा।"

अब बड़ी बहू ने चुपचाप कटोरा ले लिया और उसमें रखा साबूदाना जहर की तरह पी लिया। फिर मुंह पोंछकर लेट गई।

भूषण की चिट्ठी आई है। उसने मझले मालिक को लिखा है :

"बाबूजी, हम लोगों के असम जाने का दिन तय हो गया है। इस सप्ताह के अंत में हम चायबागान की ओर रुख करेंगे। अब समय एकदम नहीं है। इधर बागान की डिस्पेंसरी के लिए साज-सामान और दवाएं आदि खरीदने के सिलसिले में मैं कलकत्ता छोड़ने से मजबूर हूं। मझली भाभी की बड़ी इच्छा है शंख को देखने की। इसलिए उन्हें कलकत्ता लाना होगा। मेरे पास इतना समय भी नहीं है कि मैं आकर उन लोगों को ले जाऊं। उन्हें एक-दो दिन में ही कलकत्ता पहुंचा देना होगा।

मझले भैया का कहना है कि बागान की व्यवस्था बहुत अच्छी है। किसी को किसी प्रकार की असुविधा नहीं होगी। हमें कलकत्ता से ढाका अथवा चटगांव मेल से ग्वालंद जाना होगा। चटगांव मेल में ही जाना सुविधाजनक है। ग्वालंद से चांदपुर तक स्टीमर से और चांदपुर से फिर रेल द्वारा लाकसाम और कूलाऊड़ा जंक्शन होते हुए दक्षिणभाग स्टेशन उतरना होगा। दक्षिणभाग स्टेशन से हाथी या कोई सवारी लेकर चायबागान पहुंचना होगा। चिंता की कोई बात नहीं। मगर हां, हाथी की बात आप किसी से न कहिएगा, बेकार में

लोग डरेंगे। असम में हाथी से खेती करते हैं। वह बैल से भी ज्यादा सीधा जानवर है।

अभी मुझे सौ रुपए वेतन और पचास रुपए अलाउंस के मिलेंगे। इसके अलावा कंपनी मुझे रहने को बंगला और नौकर देगी। पता चला है कि व्यापार करने का भी काफी अवसर है। इससे मुझे और भी उत्साह हो रहा है।

अब सुधामय के बारे में कुछ लिखता हूं। कुछ समझ में नहीं आ रहा है, क्या लिखूं। आप लोगों ने जो पता दिया था, उस पर सुधामय भैया अब नहीं रहते। यह एक मैस है। वहां जाकर मैंने पता किया तो मालूम हुआ कि बहुत दिन पहले ही वे वहां से चले गए। कहां गए, कोई नहीं जानता। पहले कभी-कभी वहां आ जाते थे और अपनी चिट्ठी-पत्री ले जाते थे। मैस के मैनेजर उनके बारे में कोई बात नहीं करना चाहते थे। आखिर में जब मैंने उन्हें विश्वास दिलाया कि मैं पुलिस का आदमी नहीं हूं, उनका संबंधी हूं तो उन्होंने हमारा पता अपने पास रख लिया और बोले—सुधामय की कोई खबर होगी तो मैं आपको पहुंचा दूंगा। मामला क्या है, मैं खुद भी समझ नहीं पा रहा हूं। मुझे अच्छा नहीं लग रहा है। इस कारण से भी आपका कलकत्ता आना मुझे जरूरी लग रहा है। जो भी हो, यह पत्र पढ़ते ही आप उन लोगों को लेकर यहां चले आइए।

बड़ी मां और चम्पा की तबीयत क्या अब ठीक है? आशा करता हूं, बाकी सब लोग भी सकुशल होंगे। यहां सभी सकुशल हैं। आपको तथा अन्य बड़ों को मेरा सादर प्रणाम पहुंचे। छोटों को आशीर्वाद।"

आपका

भूषण

यह चिट्ठी पढ़कर निश्चिंत रह पाना संभव न था। मामला कहां तक पहुंचा है, इसे वहां बैठे-बैठे जानना संभव न था। मझले मालिक परेशान हो उठे। उन्होंने तय किया कि वे एक सप्ताह के लिए कलकत्ता जाएंगे। चाहे जैसे भी हो, सुधामय को ढूंढ़ निकालना ही होगा। सुधामय क्या चाहता है, इसका पता लगाना होगा। सचमुच अगर उसने किसी सर्वनाशी संकल्प के साथ अपने को जोड़ रखा है तो पूरी ताकत से उसे उससे अलग करना होगा।

भूषण की चिट्ठी की कुछ बातें मझले मालिक ने सभी को बता दीं। सुधामय के बारे में केवल इतना कहा कि भूषण की उससे मुलाकात नहीं हो पाई है। यह भी बताया कि वे गिरिबाला और उसके बच्चे को लेकर कलकत्ते जा रहे हैं और लौटते समय सुधा को साथ लाएंगे।

पंद्रह

जरा-सी देर हो जाने के कारण वे लोग कलकत्ते की ट्रेन नहीं पकड़ सके। ट्रेन प्रायः उनके सामने से निकल गई। सारी रात कलकत्ता जाने वाली और कोई ट्रेन न थी। रात के अंतिम पहर में दार्जिलिंग मेल थी। मझले मालिक बड़े निराश हुए। उन्हें उस अभागी बस पर बड़ा गुस्सा आया, जो झिनैदा से चूयाडांगा स्टेशन तक के कुल बीस मील के रास्ते में कितनी वार खराब हुई, गिनना मुश्किल है।

अब क्या किया जाए? उन्होंने कुली से वेटिंगरूम में बिस्तर खोल देने को कहा। सोए हुए बच्चे को बिस्तर पर लिटाकर गिरिबाला भी आराम से बैठ गई। शंख के लिए बोतल में दूध था। रात दस बजे के आसपास एक बार दूध पिलाकर सुला देने पर सवेरा होने के पहले वह नहीं जागेगा। मझले मालिक ने टाइम-टेबल देखकर पता लगाया कि ट्रेन सवेरे पांच बजकर पंद्रह मिनट पर सियालदह स्टेशन पर पहुंच जाएगी। वहां से गड़पार स्थित भूषण के भाई के मकान तक जाने में हद से हद आधा घंटा और लगेगा।

मझले मालिक दुकान से थोड़ी पूड़ी-तरकारी ले आए। वह सब खाना गिरिबाला को पसंद न था, फिर भी उसने खाया। उसके मन की हालत भी ठीक न थी। चम्पा का बुखार अच्छा हो गया था, कम से कम वह ऐसा ही समझ रही थी। मगर उनकी बिदाई के ठीक पहले उसे फिर बुखार आ गया। उसकी देह पीली पड़ गई थी। अच्छे डाक्टर को दिखाए बिना काम चलने वाला न था। यह बात वह अपने बाप को बता जाएगी। पता नहीं, अब फिर कब वह मायके आ पाए?

बाप, भाई और परिवार के दूसरे लोगों को छोड़कर गिरिबाला किसी अचीन्हे बियाबान में घर बसाने चली है। उसका एकमात्र भरोसा भूषण पर है। अब गिरिबाला जो संसार बसाएगी उसकी वह मालकिन होगी। हां, सचमुच, उसके सिर पर तो और कोई न होगा। यह बात पहले उसके ध्यान में नहीं आई थी। उपनी नई गृहस्थी में उसके साथ केवल भूषण और शंख होंगे।

गिरिबाला अपने इस नए विचार को घुमा-फिरा कर देखने लगी। उसके बाप के घर में जो स्थान बड़ी मां का है, ससुराल में जो स्थान सास का है और उसके पिता के डोमार वाले घर में जो स्थान उसकी स्वर्गीया मां का था, अपनी नई गृहस्थी में अब गिरिबाला उसी स्थान की अधिकारिणी होगी। किसी के अधीन होकर, किसी की डांट खाकर किसी के भरोसे उसे अब नहीं रहना होगा। अब गिरिबाला ही तय करेगी कि घर में कौन-सी चीज कितनी आएगी और किसे क्या देना होगा। वही गिरिबाला, जो कुछ दिन पहले भी सभी का हुक्म मानकर चलती थी, किसी बात में उसका वश नहीं चलता था। वह डरी-डरी रहती थी। ब्याह हो जाने के बाद बाप के घर में लड़की का क्या जोर चल सकता

है? ससुराल जाने पर भी गिरिबाला का कोई जोर न चला। चलता भी कैसे? अब गिरिबाला को लग रहा है, वह तो उसकी गृहस्थी न थी, वह तो उसकी सास की गृहस्थी थी।

हां, अब उसका जोर चलेगा। अब उसे अपनी गृहस्थी मिलेगी। अच्छा-बुरा जो भी होगा सबके लिए गिरिबाला स्वयं जिम्मेदार होगी। वह सोच रही थी, वह भी दिखा देगी कि गृहस्थी कैसे चलाई जाती है। वह किसी को खोंचा नहीं मारेगी, किसी की अवहेलना नहीं करेगी। अपनी गृहस्थी में वह किसी का दिल नहीं दुखाएगी। उसे जो कड़वापन झेलना पड़ा है, उसके आश्रय में रहने वाले किसी और को न झेलना पड़े, इसके लिए गिरिबाला जी-जान से कोशिश करेगी।

और पहली बार गिरिबाला को लगा, चायबागान की नौकरी स्वीकार करके भूषण ने कुछ बुरा नहीं किया है। बल्कि उसने एक पूरे घर की मालकिन होने का सुअवसर गिरिबाला के सामने ला दिया है। जितना ही गिरिबाला इस मामले को गहराई से देखती, उतना ही उसे लगता, भूषण ने ठीक किया है। उसका भाग्य अच्छा था कि गिरिबाला की बात मानकर उसने अपने मझले भैया के प्रस्ताव से इनकार नहीं किया। अब वह भूषण को अपने कितने निकट पाएगी। विवाह के बाद से ही वह कितना चाहती रही है कि भूषण को पूरा-पूरा पा सके, मगर आज तक उसकी यह इच्छा पूरी नहीं हुई थी। विवाह के बाद एक साल तो अपनी लाज से मुक्ति पाने में लग गया। वर्ष बीतते न बीतते उसे मालूम हुआ कि वह मां बनने वाली है। लज्जा का यह एक और कारण उपस्थित हो गया। हालांकि उसने अपने को संभाल लिया, फिर भी अपने मन मुताबिक वह भूषण को अपने निकट न पा सकी। वह ख़ुद जिस तरह गृहस्थी के कामों में और शंख की देखभाल में दिन-रात डूब गई, उसी तरह भूषण भी अपने रोगियों की भीड़ में खो गया। रोगियों की भीड़, बड़े-बूढ़ों की उपस्थिति, यह सब उसकी नई गृहस्थी में नहीं होगी। केवल वह होगी और भूषण। गिरिबाला हिसाब करके देखने लगी। एक ओर वह बाप, बहन, बड़ी मां, बुआ जी और दादी जी आदि को खो रही है तो दूसरी ओर वह कुछ पा भी रही है। कुछ क्यों, बहुत कुछ पा रही है। भूषण को एकांत रूप से अपने निकट पाना,जैसे दोनों मुट्ठियों में सोने के सिक्के भर जाने वाली बात हो। यह बात याद करते ही उसे रोमांच हो आया।

तभी छुक्-छुक्-छुक्-छुक् करती हुई एक गाड़ी आकर प्लेटफार्म पर रुकी। क्या यह हमारी गाड़ी है, गिरिबाला ने सोचा। वह जल्दी से उठ बैठी।

मझले मालिक एक बेंच पर बैठे थे।

उन्होंने पूछा, "क्यों रे, उठ क्यों गई?"

गिरिबाला थोड़ा झेंप गई। फिर बोली, "सोचा, हमारी गाड़ी आ गई।"

मझले मालिक थोड़ा हंसकर बोले, "यह तो मालगाड़ी है। हमारी गाड़ी आने में अभी काफी देर है।"

गिरिबाला दुबारा झेंपी। देखा, सचमुच मालगाड़ी थी। रात के हल्के अंधेरे में वह भुतही लग रही थी। डोमार में रहते हुए भी उसने मालगाड़ी देखी है। मालगाड़ियां उसे एकदम पसंद नहीं हैं। कुल मिलाकर मालगाड़ियां एक अजीब प्रभाव डालती हैं उसके मन पर। न खुलापन, न रोशनी, जैसे उसका दम घुटने लगता है। लगता है, कोई भारी चीज आकर उसकी छाती पर खड़ी हो गई है। पूरे स्टेशन को घेर कर खड़ी हो जाती है मालगाड़ी और एक बार रुकी तो हिलने का नाम नहीं लेती। धड़ाम-धड़ाम, ठक-ठक-ठकास, कई तरह की अजीबोगरीब आवाजें करती चलती है। उसे देखकर लगता है, अब कभी लौटकर नहीं आएगी। मगर देखो तो, थोड़ी देर में ही फिर बेशर्म की तरह लौट आती है। अपने गांव के सरकार महाशय जैसा इसका स्वभाव है। हां, सवेरे उठते ही दादी के साथ खटपट शुरू कर देंगे। झगड़ा जब बहुत बढ़ जाएगा तो अपना छाता कांख में दबाकर चीखकर कहेंगे, "लो संभालो। अब यह अपनी नरक-जैसी गृहस्थी, मैं तो च [illegible]। जिधर सींग समाएगी निकल जाऊंगा।" और फिर घर से निकल पड़ेंगे। मगर देखा जाएगा कि दोपहर के खाने का समय होते ही फिर पांव दबाए आकर घर में घुस जाएंगे, जैसे कुछ हुआ ही न हो। मालगाड़ी को देखकर लगता है, यह भी उन्हीं सरकार महाशय की तरह है।

गिरिबाला फिर लेट गई। पता नहीं,कब यह मालगाड़ी विदा होगी। कब आएगी कलकत्ते की गाड़ी! समय उसे अब काट खाने लगा था।

इस बात को अस्वीकार करने का कोई लाभ नहीं कि गिरिबाला कलकत्ते पहुंचने के लिए बहुत उतावली हो उठी है। वैसे उसे कुछ-कुछ डर भी लग रहा है। उसके संझले भसुर साहब आदमी हैं और जेठानी भी कलकत्ते वाली हैं। शादी के समय ही उन्हें गिरिबाला ने देखा था। उसे याद है कि उसकी संझली जेठानी ने उसके बालों की बहुत तारीफ की थी और नए फैशन में उसकी चोटी गूंथ दी थी। पाटी-खोंपा या ऐसा ही कुछ अंग्रेजी नाम बताया था उस फैशन का। गिरिबाला वह बात अब भूल गई है। उस समय उसकी हालत एकदम पतली हो गई थी। एकदम पसीने से नहा उठी थी। कितनी तो लाज लगी थी उसे। चम्पी के ब्याह में वे लोग नहीं आए थे, कपड़े और पैसे भेज दिए थे। संझले भसुर शंख को देखना चाहते हैं। यह छोकरा भी ऐसा बहेतू हो गया है कि वहां जाकर क्या असभ्यता कर बैठेगा, यह सोच-सोचकर गिरिबाला परेशान हो रही है।

वेटिंगरूम के भीतर बड़ी गर्मी थी। पसीने से भीगकर गिरिबाला व्याकुल हो रही थी। बेचारा शंख भी भीगकर लथपथ हो रहा था। गिरिबाला ने देखा, उसके पिता भी बार-बार पसीना पोंछ रहे हैं। बार-बार बाहर जा रहे हैं। एक हाथपंखा ही होता तो कितना अच्छा होता। गिरिबाला अपने आंचल को पंखे की तरह झलने लगी।

इसके पहले गिरिबाला ने कभी स्टेशन पर रात नहीं काटी थी। स्टेशन भी अद्भुत जगह है। वेटिंगरूम का कमरा भी छोटा-सा ही है। कमरे में बहुत हल्की रोशनी है। दीवाल

पर एक बड़ा-सा लैंप जल रहा है, जिसकी रोशनी अच्छी नहीं है। पहले कुलियों ने गिरिबाला को किसी और कमरे में बिठाना चाहा था। उस कमरे के दरवाजे पर एक औरत की तस्वीर बनी थी, जिसके नीचे लिखा था—जनाना। यह क्या बात है? उस कमरे में उसे अकेली छोड़ने के लिए मझले मालिक तैयार न हुए और उसे इस कमरे में ले आए। यहां पर और भी दो-तीन लोग हैं। इसलिए गिरिबाला एक कोने में गुड़ीमुड़ी होकर बच्चे को लिए पड़ी है।

मालगाड़ी थोड़ा आगे सरक गई। फिर भी वातावरण का भारीपन कम न हुआ। तभी पास की एक टिन की छत पर बारिश की बूंदें टिपा-टिप, टिपा-टिप बजने लगीं। पास ही कहीं पर कुछ गैरबंगाली प्रवासी झैंया-झक्कड़ बाजा बजाते हुए गला फाड़कर गा रहे थे। उनके बेसुरे गाने और बाजे की आवाज से कान के पर्दे फटने लगे थे। वाह रे! यह भी कोई गाना है! भगवान बचाएं। रह-रहकर कच्चे चमड़े की बदबू तैर आती थी। गिरिबाला की देह घिन से सिकुड़ी जा रही थी।

इस सबके बावजूद पता नहीं, कब गिरिबाला को नींद आ गई। एक समय अचानक बड़े जोर की आवाज हुई और चारों ओर शोरगुल मच गया। गिरिबाला की नींद टूट गई। शंख भी डर से कांप उठा और जागकर रोने लगा। गिरिबाला ने देखा, एक पैसेंजर गाड़ी प्लेटफार्म पर आकर खड़ी हो गई है। कुछ लोग "चा गराम, पावरोटी बिस्कुट" बोलते हुए तेजी से इधर-उधर दौड़ लगा रहे थे। गिरिबाला फिर हड़बड़ाकर उठ बैठी। लगता है, उनकी गाड़ी आ गई।

मझले मालिक ने उनींदे स्वर में कहा, "सोओ, सोओ, सोई रह। हमारी गाड़ी रात के आखिरी पहर में आएगी। अभी भी बहुत देर है उसके आने में।"

अभी भी बहुत देर है। बाबा! और कितनी देर होगी। गिरिबाला थोड़ी हताश हुई। उसे प्यास भी लगी थी। उसके पेट में भुट-भाट हो रही थी। शंख भी उसक-पुसक करके रोने लगा। किसी तरह भी सो नहीं रहा था। गिरिबाला को बहुत बुरा लग रहा था। किसी तरह कलकत्ता पहुंच जाए तो जान बचे।

मझले मालिक सूने प्लेटफार्म पर शंख को गोद में उठाए घूम-घूमकर काफी देर तक उसे सुलाने की कोशिश करते रहे। कमरे में कितनी गर्मी है! यह नन्हा बच्चा क्या वहां सो सकता है। एक हाथपंखा लाना चाहिए था। बीच-बीच में बूंदें पड़ रही हैं, मगर उससे गर्मी और भी बढ़ रही है। लगता है, एकदम उबालकर ही मानेगी। मझले मालिक की पीठ पर इतने में ही घमोरियां निकल आई थीं। कमरे में आकर उसने सोए हुए नाती को लड़की की गोद में दे दिया।

फिर वे बाहर निकल आए। बाहर फिर भी कुछ आराम था। चारों ओर सन्नाटा। केवल तार बाबू के कमरे में रह-रहकर टेलीग्राफ यंत्र किट-किट कर उठता था। टेबल पर

हाथ टिकाए और अपना सिर उस पर रखकर तार बाबू बीच-बीच में झपकी भी ले रहे थे। और अचानक हड़बड़ाकर जाग पड़ते थे और किट-किट करने लगते थे। और दूर, प्लेटफार्म के अंतिम छोर से भी दूर, सिगनल की लाल आंख एकटक घूर रही थी। रह-रहकर बूंदें पड़ने लगती थीं तो मझले मालिक की दृष्टि धुंधला जाती थी। उधर मैदान की ओर से मेढकों की एकतान टर्र-टर्र और मक-मक सुनाई पड़ रही थी।

कलकत्ता पहुंचने में अव ज्यादा देर नहीं है, सोच रहे थे मझले मालिक। वहां पहुंचते ही भूषण को लेकर सुधामय की खोज में निकल पड़ना होगा। बड़ी बहू बीमारी से दुबली हो गई, ऊपर से सुधा की चिंता। सुधामय के लिए उनका मन कलप रहा है। इस बार उसे जैसे भी हो, घर ले आना होगा। बड़ी बहू चाहती हैं, सुधा का विवाह कर दिया जाए। सुधा का विवाह वहुत जरूरी है। गर्दन पर जिम्मेवारी आने से उसके विचार और उसकी चिंताएं वास्तविक हो उठेंगी। उसे यथार्थ समझ में आएगा।

सुधा ने देश को आजाद कराने का व्रत लिया है। विवाह नहीं करेगा, ऐसी सूचना उसने दी है। मझले मालिक हंसे। कौपीन पहनने वालों के देश में जन्म लिया है न उसने। रात दिन ब्रह्मचर्य, तपस्या, त्याग यही सब बातें यहां गूंजती रहती हैं। स्वाधीनता का अर्थ है समृद्धि, उपयोग का अधिकार, यह बात इनके दिमाग में नहीं घुसती। क्या कभी भूखी आत्मा की सद्गति होती है? मगर यह बात कहकर देखो, आजकल के छोकरे पीछे पड़ जाएंगे। मझले मालिक का दिमाग तरह-तरह के विचारों से बजबजा रहा था। देह पर कौपीन, हाथों में गीता और मुंह में देश को आजाद करने का व्रत—एक नया फैशन चला है। दूसरी ओर गांधी महाराज चर्खा लेकर मैदान में उतरे हैं। कहते हैं, चर्खा कातो। चर्खे से ही स्वराज आएगा। सभी जैसे छूमंतर से स्वराज लाना चाहते हैं। देशवासियों की विचारशक्ति को धुंधला करके, आंख बंद किए उनको मंत्र जपने के लिए बाध्य कर रहे हैं। मेरी बात सुनो, इसी से स्वराज आएगा। जनता अज्ञानी और विवेकहीन बनी रहे। उनकी आंखें खोलने में बहुत मेहनत है। उससे तो अच्छा है, आंखमिचौनी चलती रहे।

सुधामय भी बार-बार आंखमिचौनी खेलने जाता है। मझले मालिक भी बार-बार उसकी आंखें खोलने की कोशिश करते हैं। पता नहीं, इस बार सुधा उनकी बात मानेगा या नहीं।

मझले मालिक ने आसमान की तरफ देखा, जैसे वे अपनी बातों का उससे आश्वासन मांग रहे हों। मगर कहां आकाश? वह तो बादलों की चादर में मुंह ढके हुए था।

कलकत्ते वाली ट्रेन का निर्दिष्ट समय भी बीत गया, मगर ट्रेन नहीं आई। पता लगा, दीर्जिलिंग मेल एक घंटा लेट है। धीरे-धीरे स्टेशन की नींद टूटी। समय बीतने लगा। भोर हो गई, फिर भी रोशनी नहीं निकली। आसमान काले बादलों से घिरा हुआ था। रोशनी कहीं न थी। बारिश शुरू हो गई थी। बड़ी मुश्किल से गिरिबाला हाथ-मुंह धोकर आई।

शंख को भी उसने धो-पोंछ दिया। शंख को भूख लगी थी, मगर दूध नहीं था। जो थोड़ा-सा दूध ले आई थी गिरिबाला, उसने रात में ही पिला दिया था। कौन जानता था, ऐसी आफत आएगी? उन्हें तो कल रात में ही कलकत्ता पहुंच जाना था। शंख अब रोने लगा था।

मझले मालिक परेशान हो उठे। अब दूध यहां कहां मिलेगा? चाय वालों से दूध लेने गए, उन्होंने कहा, वे दूध नहीं बेचते। बड़ी मुश्किल में जान फंस गई थी। ऊपर से ट्रेन भी लेट हो रही थी। दूध की तलाश में मझले मालिक इधर-उधर फिर रहे थे। उन्होंने देखा, एक जगह कई लोग भीड़ लगाए खड़े हैं। बीसेक खद्दरधारी लोग हाथों में माला लिए एक किनारे खड़े हैं। उनमें कुछ मुसलमान भी हैं। बात क्या है?

लगता है, कोई नेता-वेता आएगा या कोई राजबंदी जेल से छूटकर आ रहा होगा। मझले मालिक ने सोचा, इसलिए ये लोग उसके स्वागत में खड़े हैं। शंख उनकी गोद में ही था। अब वह पूरी ताकत से रो रहा था। मझले मालिक समझ नहीं पा रहे थे, क्या करें। बारिश इतनी तेज़ हो रही थी कि स्टेशन के बाहर की दुकानों तक जाना मुश्किल हो गया था। मगर ताज्जुब की बात यह थी इतनी बारिश में भी लोग भीगते हुए स्टेशन पर जमा हो रहे थे। इस बार जो दल आया उसमें दो-एक खद्दरधारी महिलाएं भी थीं। मझले मालिक ने देखा, महिलाएं बुरी तरह रो रही थीं। मामला क्या है?

शंख रो-रोकर बेहाल हो उठा था। मझले मालिक उसे लेकर फिर स्टेशन के भीतर चले गए। इस बीच प्लेटफार्म पर और भी अनेक लोग आ गए थे। उनमें से अधिकांश के हाथों में मालाएं थीं, चेहरा गंभीर था और पांव खाली थे।

क्या दूध मिलेगा ही नहीं? बड़ी मुश्किल में जान फंसी। शंख अब रोते-रोते ऐंठकर टेढ़ा हुआ जा रहा था। किसी तरह भी वह संभल नहीं रहा था। स्टेशन के सन्नाटे में शंख की रुलाई से मझले मालिक को बड़ी शर्म-सी आ रही थी। गिरिबाला ने उसे गोद में लेकर दूध पिलाने की भी कोशिश की, मगर शंख मां की छातियां पकड़ने से इनकार कर रहा था। इसी समय ट्रेन के आने का गजर बज उठा। मझले मालिक टिकट खरीदने दौड़े। टिकट खरीदने के बाद, हार मानकर उन्होंने एक पावरोटी खरीदी और एक टुकड़ा शंख को दिया। पावरोटी पाकर शंख चुप हो गया।

दार्जिलिंग मेल जब धीरे-धीरे प्लेटफार्म में घुसी तो वह पूरी तरह भीगी हुई थी। बारिश का पानी डिब्बों की छत पर से उसकी बाडी पर होता हुआ बह रहा था। जो लोग अब तक हाथों में फूलमालाएं पकड़े प्लेटफार्म पर चुपचाप खड़े थे, वे हड़बड़ाते हुए इंजन की ओर भागे। मझले मालिक बड़ी मुश्किल से भीड़ ठेलते हुए, गिरिबाला और शंख को लिए एक इंटर क्लास के डिब्बे में घुस गए। इस बीच गाड़ी में से कई लोग मुंह बाहर निकालकर चीखने लगे थे, "अरे भाई, सुनिए, सामने नहीं, सामने नहीं, पीछे की तरफ जाइए। गार्ड

के डिब्बे के साथ जो लगेज वैन लगी है, उसी में है।"

मझले मालिक यह सब देख-सुनकर भौंचक हो रहे थे। नाना की गोद में बैठा शंख भी चकित होकर पावरोटी खाना भूल गया था।

मझले मालिक ने देखा, पैसेंजरों की बातें सुनकर वहां जुटी जनता हड़बड़ाती हुई गाड़ी के पीछे की ओर दौड़ी। वे महिलाएं भी दौड़ रही थीं, जिन्हें मझले मालिक ने कुछ देर पहले रोते हुए देखा था।

अवाक होकर मझले मालिक ने एक आदमी से पूछा, "क्या बात है, भाई, इतनी दौड़-भाग क्यों हो रही है?"

उस आदमी ने उत्तर दिया, "अरे! आप जानते ही नहीं, देशबन्धु यह दुनिया छोड़कर चले गए। इसी ट्रेन से उनकी डेड बाडी जा रही है, लगेज वैन में है।"

देशबन्धु नहीं रहे। एकाएक मझले मालिक की समझ में बात नहीं आई। कौन? क्या देशबन्धु भी बंगाल में दो-चार हैं? इसका मतलब है, सी.आर. दास अब इस दुनिया में नहीं हैं। मझले मालिक की छाती में यह बात गोली की तरह धंस गई। यह क्या, कहां मरे? दार्जिलिंग में। जी हां, दार्जिलिंग में। कल ही तो मरे हैं। ओह! क्या प्रोशेसन था। लगता था। दार्जिलिंग उलट जाएगी। यात्री लोग आपस में बातें कर रहे थे। देख तो रहे हैं, हर स्टशेन पर भीड़ ही भीड़। यहां गाड़ी डेढ़ घंटा लेट पहुंची है। शाम तक कलकत्ता पहुंच जाएं तो समझिए वड़ी बात है।

मझले मालिक के कानों में आवाजें घुस रही थीं, मगर वे उनका आशय नहीं समझ पा रहे थे। देशबन्धु इसी गाड़ी से जा रहे हैं, फिर भी वे इस दुनिया में नहीं हैं। आश्चर्य! एक पल में ही मझले मालिक की आंखों के सामने से सब कुछ जैसे लुप्त हो गया, जैसे न कहीं ट्रेन थी, न स्टेशन। लग रहा था, जैसे वह युग ही एक सिरे से गायब हो गया हो। उनकी छाती में जैसे एक शून्य भर गया। शरीर की हर शक्ति जैसे निचुड़ गई हो, वे धप से बैठ गए। वर्तमान की सीमा लांघकर उनकी स्मृति हू-हू करती हुई अतीत की तरफ उनके कालेज जीवन में पहुंच गई। उस समय वे इसी अमिट उत्साही अग्निशिखा के संपर्क में आए थे। तब उन्होंने इनके अनेक खौलते हुए भाषण सुने थे। परवर्ती जीवन में सी.आर. दास के अनेक भाषण उन्होंने समाचार पत्रों में पढ़े थे, मगर उन सबको छोड़कर उनका मन कालेज जीवन के एक भाषण की कुछ पंक्तियों पर जा टिका। हालांकि उन्होंने वह भाषण सुना नहीं था, बल्कि अखबार में ही पढ़ा था। इस समय उस भाषण की कुछ पंक्तियां अचानक क्यों उनके मन में उभरी, यह कहना मुश्किल था। इंग्लैंड में पढ़ने गए चितरंजन दास ने एक खुली सभा में वह भाषण दिया था।

"दोस्तो! यहां की पार्लियामेंट में दिए गए भाषणों में हमने अंग्रेजों को कहते हुए सुना है कि उन्होंने भारत को तलवार के वल पर जीता है और तलवार से ही उसे अपने कब्जे

में रख सकते हैं। दोस्तो! इंग्लैंड ने ऐसा कुछ नहीं किया है। उसकी तलवारों और बंदूकों ने यह विशाल और शानदार साम्राज्य नहीं खड़ा किया। इंग्लैंड की सैन्य शक्ति और बहादुरी ने उसे यह विजय नहीं दिलाई। मुख्यतः यह एक नैतिक जीत थी। इसे इंग्लैंड की नैतिकता की जीत मान सकते हैं। इंग्लैंड इस पर गर्व कर सकता है, यह अनुचित न होगा। मगर इस सबका श्रेय तलवार को देना और यह तर्क पेश करना कि भारत में तलवार की नीति को ही बनाए रखना चाहिए, मेरे विचार से, एकदम तुच्छ बात है और एक अंग्रेज के लिए ऐसा कहना या सोचना उसके योग्य नहीं है।"

इंग्लैंड ने भारत को तलवार और बंदूक के बल पर नहीं, नैतिक शक्ति के बल पर जीता था, इसलिए भारत को तलवार के बल पर दबाए रखने की बात किसी अंग्रेज के मुंह से शोभा नहीं देती। यह बात एकदम सत्य है, मगर सच बात कहने का साहस कितने लोगों में होता है। देशबंधु ने अपने जीवन में कितने ही भाषण दिए होंगे, मगर ऐसी दूसरी बात उन्होंने नहीं कही, कम से कम मझले मालिक ने तो नहीं सुनी।

कितने अफसोस की बात है कि किसी पक्ष ने उनकी इस बात पर ध्यान नहीं दिया। आज यह बात किसी को याद भी नहीं है। संभवतः कोई और यह बात कहेगा भी नहीं। जिनके मन में ऐसी बातें स्थान पाती हैं शायद उनका युग ही खत्म हो चुका है।

दूसरे ही पल उन्हें याद आया, इसी गाड़ी से देशबन्धु का शव कलकत्ता जा रहा है। मझले मालिक भी इसी ट्रेन से कलकत्ता जा रहे हैं। कैसा अद्भुत संयोग है। जैसे वे अपने युग के शव को ढोकर ले जा रहे हैं।

यात्री फिर बातचीत में मशगूल हो गए। "हां, यह एक राजा की मौत है। इन दिनों देशबंधु कलकत्ता कारपोरेशन के मेयर, कार्उंसिल में विरोधी दल के नेता, स्वराज्य पार्टी के लीडर और बंगाल के देशबंधु थे।" तभी एक और व्यक्ति ने कहा, "केवल बंगाल के क्यों जनाब, वे तो पूरे देश के हैं, देशबंधु हैं।" अचानक मझले मालिक का मन हुआ कि जाकर उन्हें देख आए। वह उठ खड़े हुए।

बोले, "जाकर एक बार देख आता हूं।"

एक सहयात्री बोल उठा, "हां, हां, अब कहां जा रहे हैं? गार्ड ने सीटी दे दी है। गाड़ी छूटने ही वाली है। अगले स्टेशन पर जाकर देख आइएगा।

एक हिचकोला खाकर गाड़ी चल पड़ी। दूसरे ही पल स्टेशन के बाहर आ गई। जोरदार बारिश हो रही थी। मझले मालिक जिस खिड़की के पास बैठे थे उसमें से होकर पानी के छींटे उन पर पड़ रहे थे। यात्रियों ने पटापट खिड़कियों के शीशे गिरा लिए। एक पल बाद पीछे वाली खिड़की से भी छींटे आने लगे। अचानक मझले मालिक को लगा जैसे वह डिब्बा, अथवा वह पूरी ट्रेन एक विराट शवधार में बदल गई है।

सूने मन और सूनी आंखों से मझले मालिक एकटक शीशे को देखते रहे। अचानक

शंख की चीख सुनकर जैसे वे जाग उठे। यही तो है मृत्यु के राज में जीवन का कोलाहल। अचानक शंख खिड़की के शीशे पर दोनों हाथों से थप-थप मारता हुआ जोर-जोर से चीखने लगा, "पानी, पानी, पानी।"

मुद्रक : भारत मुद्रणालय, नवीन शाहदरा, दिल्ली